तित्थोगाली-पइण्णय

पंन्यास कल्याण विजय गणिवर
ठा. गजसिंह राठोड़, न्याय व्याकरणतीर्थ

अज्ञात प्राचीन आचार्यकृत

तित्थोगाली-पइण्णय

(तीर्थ ओगाली प्रकीर्णक)

शोधक, छायाकार, अनुवादक
एवं सम्पादक:—
पंन्यास कल्याणविजय गणिवर
ठा० गजसिंह राठोड़, न्यायव्याकरणती र्थ

प्रकाशक :

श्वेताम्बर (चार थुई) जैन संघ, जालोर
श्वेताम्बर (चार थुई) जैन संघ तखतगढ (पाली)
श्री अचलचन्द, जोइतमल बालगोता
ओठवाड़ा (जालोर)

प्रथम संस्करण ५००

महावीर निर्वाण जयन्ती २५०० वाँ वर्ष

रु० ३५/-

प्राप्ति स्थान : (१) श्री कल्याण विजय शास्त्र समिति,
जालोर
(२) श्री नन्दीश्वर तीर्थ कार्यालय, जालोर

मुद्रक : अर्चना प्रकाशन, १ कालाबाग, अजमेर

अहिंसा सत्याऽस्तेयादि, ब्रह्माऽपरिग्रहात्मकः।
प्रोक्तो पंचशिखो धर्म-स्तं वीरं प्रणमाम्यहम् ॥

मुक्तेः शताब्दिसुमहे तव पञ्चविंशे,
भक्तया प्रदेष्ट मनसा च समर्पयामि।
तीर्थप्रवाहविषये स्फुटमर्थ पूर्ण,
तुभ्यं प्रकीर्णकमिदं श्रमणेन्द्र वीर!

बालोर, १ मई, १९७५ पंन्यासः गणिः कल्याणविजयः

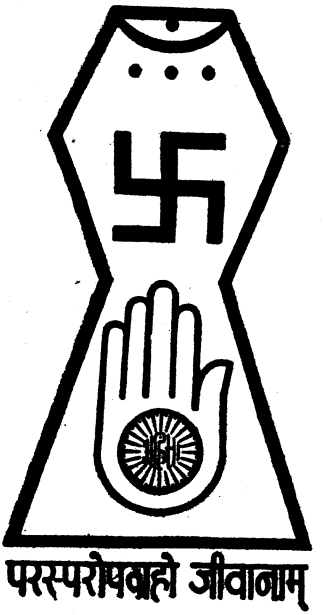

पं० कल्याणविजय जी महाराज

प्रकाशकीय

हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है कि भारतीय एवं पाश्चात्य जैन जैनेतर विद्वान् विगत एक शताब्दी से जिस ग्रन्थरत्न "तित्थोगाली पइन्नय" (तीर्थोद्गारिक अथवा तीर्थोग्गाली प्रकीर्णक) की तीव्र उत्कण्ठा के साथ प्रतीक्षा कर रहे थे, उस ग्रन्थराज को भारतीय पुरातन संस्कृति के प्रेमियों की सेवा में प्रस्तुत करने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। किन-किन सुविशाल एवं महान् द्वीपों के किन-किन भाग्यशाली विशाल क्षेत्रों में जैन धर्म का पुनीत प्रवाह अनादि काल से सदा एक सा अविच्छिन्न अबाध गति से कल-कल निनाद करता हुआ कोटि-कोटि ही नहीं, असंख्य भी नहीं अपितु अनन्तानन्त भव्य प्राणियों के कलिमल को धोता चला आ रहा है, अनन्तकाल तक धोता ही चला जायगा तथा किन-किन महान् द्वीपों के किन-किन अतिविशाल भूभागों में धर्मतीर्थों का किस-किस समय उद्गम होता है, कब तक वह तीर्थ प्रवाह अमन्द गति से प्रवाहित होता रहता है तथा वह तीर्थ-प्रवाह कब किस प्रकार कितने समय के लिए तिरोहित हो जाता है, इन सब तथ्यों शाश्वत सत्यों का विवरण बड़े ही संक्षेप में पर नितान्त सहज सुबोध अति सुन्दर शैली में दिया गया है।

यदि संक्षेप में कहा जाय तो यह ग्रन्थ जैन धर्म के विराट् स्वरूप का सजीव शब्द चित्र है। हमें यह देख कर बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि इस प्रकार के अनमोल ग्रन्थ का प्रकाशन मुद्रण प्रणाली का आविष्कार होते ही किस

कारण नहीं करा दिया गया पर जब कारणों की तह में गये सहज ही कारण समझ में आ गया। वास्तविकता यह है कि इस ग्रन्थ की प्रतियां बड़ी दुर्लभ हैं और जो हैं भी वे इतनी अशुद्ध और अस्पष्ट हैं कि उसका हिन्दी अनुवाद करना तो दूर, शुद्ध स्वरूप में लिखना भी बड़ा जटिल और दुस्साध्य कार्य है।

जैन इतिहास और जैनागमों के उद्भट विद्वान् पंन्यास कल्याण विजयजी महाराज साहब ने बहुत वर्षों पहले अपने भण्डार के लिए इस ग्रन्थ की एक प्राचीन ताड़पत्रीय प्रति से लिखित प्रति अपने गुरुदेव से प्राप्त की और उसमें संशोधन करने का तथा उसे प्रकाशित करवाने का प्रयास किया। अन्यान्य अत्यावश्यक कार्यों में व्यस्त रहने के कारण वे उस कार्य को सम्पन्न न कर सके और इस प्रकार इस ग्रन्थ का प्रकाशन स्थगित ही रहा।

इसी वर्ष जैन आगम-साहित्य तथा प्राकृत एवं संस्कृत आदि भारतीय प्राच्य भाषाओं के विद्वान् ठाकुर गजसिंहजी राठौड़ का जैन इतिहास विषयक खोज हेतु पंन्यासप्रवर श्री कल्याणविजयजी महाराज साहब की सेवा में जालोर आना हुआ। श्री केसरविजय जैन ग्रन्थागार की हस्तलिखित ऐतिहासिक प्रतियों का अवगाहन करते समय ठाकुर साहब की शोधप्रधान दृष्टि तित्थोगाली पइन्नय की उक्त हस्तलिखित प्रति पर पड़ी और उन्होंने पं० कल्याण-विजयजी महाराज के निर्देश एवं मार्ग दर्शन में इस ग्रन्थ का विशुद्ध रूप में पुनर्लेखन, संस्कृत छाया और हिन्दी अनुवाद करना मई, १९७५ में प्रारम्भ किया। इस ग्रंथ की अन्य प्रतियों के अभाव में पं० श्री कल्याणविजयजी और ठाकुर साहब को इस ग्रंथ के अशुद्ध पाठों को शुद्ध करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। ठाकुर साहब की प्रार्थना पर स्थानकवासी परम्परा के आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज साहब ने ठाकुर साहब द्वारा लिखित इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि का अवलोकन कर स्थान-स्थान पर विवादास्पद एवं अशुद्ध पाठों को शुद्ध किया।

पंन्यासप्रवर श्री कल्याणविजयजी महाराज साहब, आचार्य श्री हस्ती मलजी महाराज साहब और ठा० श्री गजसिंह जी राठौड़ द्वारा इस ग्रन्थ को विद्वद्भोग्य बनाने में जो परिश्रम किया गया है, उसके लिये हम इनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। इस ग्रन्थ के प्रकाशन, साज-सज्जा आदि में श्री कान्तीलालजी चौथमलजी, जालोर ने बड़ी ही रुचि के साथ परिश्रम किया। अतः हम श्री कान्तिलालजी के प्रति भी अपना हार्दिक आभार प्रकट करते हैं।

यह ग्रंथ प्रेस में छपना प्रारम्भ हो गया था उसके पश्चात् स्वनामधन्य स्व० आचार्य श्री राजेन्द्रसूरीजी महाराज के आहोर नगर स्थित ज्ञान भण्डार से इस ग्रंथ की एक प्रति प्राचीन प्रति मिली। आहोर भण्डार के व्यवस्थापकों के सौजन्य से श्री राठौड़ को उस प्रति की फोटोस्टेट कापी करवाने की सुविधा मिली और उस फोटो कापी की सहायता से इस ग्रन्थ के कतिपय पाठों को शुद्ध स्वरूप प्रदान करने में बड़ी सुविधा हुई। इसके लिए हम अभिधानराजेन्द्र नामक विशाल ग्रंथराज के रचनाकार स्व० श्री राजेन्द्रसूरी जी के आहोर स्थित ग्रंथागार के व्यवस्थापकों के प्रति भी आभार प्रकट करते हैं।

हमारी यह आंतरिक उत्कट अभिलाषा थी कि इस ग्रंथ को प्रकाश में लाने वाले पंन्यासप्रवर श्री कल्याणविजयजी महाराज साहब के कर-कमलों में इस ग्रंथ की मुद्रित प्रति शीघ्रातिशीघ्र समर्पित करें पर कराल काल ने हमारी सब आशाओं-अभिलाषाओं को कठोर वज्राघात कर कुचल डाला। केवल जैन जगत् ही नहीं, अपितु इतिहास क्षितिज के प्रकाशमान प्रचण्ड मार्तण्ड पंन्यासप्रवर श्री कल्याणविजयजी महाराज इहलीला समाप्त कर स्वर्गस्थ हो गये। हमें केवल इतना ही संतोष है कि इस ग्रन्थ के कतिपय मुद्रित फार्म उनके कर-कमलों में उनके स्वर्गस्थ होने से एक मास पूर्व पहुंच गये थे और उन्होंने इस ग्रन्थ के फार्म देखकर आन्तरिक सन्तोष अभिव्यक्त किया था।

हम अर्चना प्रकाशन, अजमेर के अधिष्ठाता और कर्मचारी वर्ग के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं कि उन्होंने इस ग्रन्थ के प्राकृत मूल पाठ, संस्कृत छाया को भी यथाशक्ति शुद्ध रूप में मुद्रित करने में पूर्ण परिश्रम किया।

सदस्यगण,

श्री श्वेताम्बर जैन (चार थुई) संघ, जालोर

एवं

श्री श्वेताम्बर जैन (चार थुई) संघ तखतगढ़।

जिला पाली

स्व. श्री जोइतमलजी बालगोता के सुपुत्र :—

सर्व श्री अचलचन्दजी और मांगीलालजी

ललितकुमारजी और महेन्द्रकुमारजी

ओठवाड़ा जिला जालोर

पंन्यास प्रवर श्री कल्याणविजय जी महाराज साहब

का

जीवन परिचय

मेरे परम आराध्य गुरुदेव पंन्यास श्री कल्याणविजय जी महाराज साहब जैन जगत् के महान् प्रभावक सन्त हुए हैं। उन्होंने जिन शासन की उन्नति और समाज के नैतिक एवं धार्मिक धरातल के उत्कर्ष के लिए अपने ६८ वर्ष के उत्कट साधनापूर्ण श्रमण जीवन में जो महान् कार्य किये हैं, वे जैन धर्म के इतिहास में सदा सर्वदा स्वर्णाक्षरों में लिखे जाते रहेंगे। "वीर निर्वाण संवत् और जैनकाल गणना" नामक ग्रन्थ लिखकर इस महासन्त ने भारतीय इतिहासविदों ही नहीं अपितु पाश्चात्य विद्वान् इतिहासज्ञों में भी विपुल यश मूर्धन्य स्थान प्राप्त किया है। जैनागमों, निर्युक्तियों, चूर्णियों, टीकाओं, भाष्यों एवं इतिहास ग्रन्थों का बड़ा ही गहन और सूक्ष्म अध्ययन कर आपने विविध विषयों पर अधिकारिक विद्वत्ता प्राप्त कर ली थी। ज्योतिषशास्त्र स्थापत्य और मूर्तिकला के तो वे विशिष्ट विद्वान् माने जाते थे। जैन इतिहास के सम्बन्ध में ग्रन्थों, शोधपूर्ण लेखों, पट्टावलियों आदि के माध्यम से आपने प्रमाण पुरस्सर जो नवीन खोजपूर्ण तथ्य रखे, उनसे प्रभावित हो अनेक इतिहासविदों ने उन्हें समय-समय पर "इतिहासमार्तण्ड" के सम्मानपूर्ण सम्बोधन से सम्बोधित किया है।

जैन साहित्य और इतिहास के सम्बन्ध में शोध हेतु एक विद्वान् श्रद्धेय पंन्यास प्रवर की सेवा में आये। उन्होंने आपके बहुमुखी प्रतिभापूर्ण पांडित्य, आपके द्वारा रजिस्टरों पुस्तकों एवं डायरियों में विविध विषयों के विभिन्न ग्रन्थों पर निरन्तर अर्द्ध शताब्दी से लिखे जाते रहे खोजपूर्ण नोट्स आपके द्वारा सैंकड़ों बड़ी-बड़ी कापियों में लिखवाकर सुरक्षित किये गये, जैन परंपरा के सैंकड़ों अमूल्य हस्तलिखित ग्रन्थों, आपके द्वारा संग्रहीत हस्तलिखित शास्त्रों एवं पुस्तकों के भण्डार, श्री कल्याण शास्त्र समिति संग्रह (भंडार) (इनकी कुछ हस्तलिखित प्रतियाँ अहमदाबाद में शा किस्तुरभाई लालभाई लाइब्रेरी में संग्रह की गई हैं) और अति समृद्ध एवं विशाल श्री केसर विजय जैन

लाइब्रेरी भण्डार को देखा। वे गुरुदेव के अगाध ज्ञान एवं गरिमापूर्ण बहुमुखी प्रतिभा से अत्यन्त प्रभावित हुए। उस समय जो उनके मुख से उनके हृदय के जो उद्‌गार निकले, उनसे पंन्यासप्रवर कल्याणविजय जी म० सा० की अतिमानव महानता का सहज ही आभास हो जाता है। अत: अति संक्षेप में उनके उन उद्‌गारों का उल्लेख किया जा है। उन विद्वान ने कहा—

"महाभारत के शान्ति पर्व में एक बड़ा ही हृदयग्राही उल्लेख उपलब्ध होता है। भीष्म पितामह कुरुक्षेत्र के रणांगण में शरशय्या पर लेटे हुए हैं। शिखण्डी को आगे कर अर्जुन द्वारा किये हुए गांडीव धनुष के शरंप्रहारों से संसार के इस अप्रतिम योद्धा के पृष्ठभाग का रोम-रोम छलनी के छेदों के समान बिंधा हुआ है। देह के पिंजरे में इतने गहरे इतने अधिक मर्मान्तिक व्रण गाण्डीव के अमोघ बाणों से हो रहे हैं कि प्राण पखेरू को उस पिंजरे में से उड़ जाने के लिए कोई किंचित्मात्र भी बाधा नहीं है। पर बालब्रह्मचारी भीष्म इच्छामृत्यु का वरण करने के लिए कृतसंकल्प हैं और सूर्य के दक्षिणायन में आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा—कौन्तेय! संसार का ज्ञानसूर्य अस्त होना ही चाहता है। महान् रणयोगी भीष्म सूर्य के उत्तरायण में आते ही देह त्याग देंगे। तुम्हें संसार के किसी भी विषय का; धर्म के मर्म का अथवा विमुक्ति का ज्ञान प्राप्त करना हो तो उनके चरणों में बैठ कर सूर्य के उत्तरायण में आने से पहले-पहले, वह ज्ञान प्राप्त कर सकते हो। उस नर-श्रेष्ठ भीष्म के दिवंगत होते ही विशिष्ट ज्ञान का सूर्य अस्त हो जायगा—

तस्मिन् हि पुरुषव्याघ्रे, कर्मभिस्वं दिवंगते।
भविष्यति मही पार्थ, नष्टचन्द्रेव शर्वरी ॥२०
तद् युधिष्ठिर गांगेयं, भीष्मं भीमपराक्रमम्।
अभिगम्योपसंगृह्य, पृच्छ यत्ते मनोगतम् ॥२१
तस्मिन्नस्तमिते भीष्मे, कौरवाणां धुरंधरे।
ज्ञानान्यस्तं गमिष्यन्ति, तस्मात्त्वां चोदयाम्यहम् ॥२३

—शान्तिपर्व, अध्याय ४६

भीष्म को महाभारत में योगेश्वर कृष्ण ने ज्ञान का पूर्णचन्द्र अथवा दिनमणि बताया है, उसी प्रकार आज के युग में ये महासन्त पंन्यासप्रवर कल्याणविजय जी विविध विषयों के पारद्रष्टा ज्ञानसूर्य हैं। जैन विद्वान् ही

ही नहीं सभी विषयों के शोधार्थी इस ज्ञानसूर्य से प्रकाश और मार्गदर्शन प्राप्त कर अपने लक्ष्य में सफलकाम हो सकते हैं। लाख-लाख प्रणाम है इस ज्ञानसूर्य को सरस्वती के महान् उपासक को।

ये उद्‌गार हैं पंन्यासप्रवर श्री कल्याणविजय जी महाराज के पांडित्य एवं प्रतिभापूर्ण महान् व्यक्तित्व से प्रभावित एक उच्चकोटि के विद्वान् के।

जन्मना अभावों और अभियोगों में पला हुआ निराश्रित शिशु अपने दृढ़ संकल्प और सतत परिश्रम से इतना महान् बन गया, यह अपने आप में एक बड़ी ही अद्‌भुत, बड़ी ही प्रेरक कहानी है. जो प्रत्येक मानव को यह विश्वास दिलाती है, उसकी धमनियों में कुछ कर गुजरने के लिये एक अद्‌भुत विद्युत का संचार करती है। अति संक्षेप में उस कर्मयोगी महासन्त का जीवन परिचय 'स्वान्तःसुखाय परहिताय च' दिया जा रहा है—

पंन्यासप्रवर श्री कल्याणविजयजी महाराज साहब का जन्म विक्रम सं० १९४४ में भूतपूर्व सिरोही राज्य के लास नामक ग्राम में आषाढ़ कृष्ण अमावस्या को मृगशिरा नक्षत्र में हुआ। आपके पिता का नाम किशनरामजी और माता का नाम कदीबाई था। आप ब्राह्मण जाति के जागरवाल पुरोहित नाम से विख्यात उच्च कुल में उत्पन्न हुए। जिस समय आप १२ वर्ष के अबोध बालक थे उसी समय वि० सं० १९५६ में आपके पिता का स्वर्गवास हो गया। वि० सं० १९५६ में भारत में बड़ा ही भयानक दुष्काल पड़ा, जिसमें भूख ने ताण्डव नृत्यकर भीषण नरसंहार किया। छपना काल का नाम सुनते ही सिहर उठने वाले भुक्तभोगी आज भी विद्यमान हैं। असहाय विधवा को अपना और अपने बच्चों का पेट भरने के लिये लास गांव छोड़ना पड़ा। चरित्रनायक के जन्म से पूर्व ही इनके अग्रज का अल्पायु में अवसान हो गया था अतः माता-पिता ने इन्हें जन्म के पश्चात् तराजू में इस विश्वास से तोला कि रूढ़िवादी इस प्रकार की प्रक्रिया से उनकी संतान जीवित रह जाय। उस अन्धविश्वास का प्रतिफल भी विश्वासजनक ही रहा। आपके पश्चात् आपकी एक बहिन और उसके पश्चात् एक भाई का जन्म हुआ।

आपको जन्म ग्रहण करते ही तराजू में तोला गया था अतः आपका नाम तोलाराम रखा गया। छपने काल में आपकी माता इन्हें, इनकी छोटी बहिन और उससे छोटे भाई हेमाजी को लेकर देलदर नामक ग्राम में पहुंची।

चिन्तकों ने कहा है--आपत्ति जब आती है तो अकेली नहीं आती, अपने पूरे लश्कर के साथ आती है। इधर पिता की मृत्यु, पेट भरने के लिए

जन्मभूमि का त्याग और उधर एक मात्र आश्रय माता की रुग्णता। वि. सं. १९५७ में आपकी माता कदीबाई भी अपने अबोध बच्चों को असहाय छोड़ परलोकवासिनी बन गई। १३ वर्ष की छोटी वय में ही हमारे चरित्रनायक को किस प्रकार की भीषण आपत्तियाँ सहनी पड़ीं, इसका अनुमान प्रत्येक पाठक सहज ही लगा सकता है। पर वस्तुतः विपत्ति ही वीरों और विचारकों को जन्म देती है। एक राजस्थानी कवि ने कहा भी है—

संग जल जावे नारियाँ, अर नर जावे कट्ट।
घर बालक सूना रमै, उण घर में रजवट्ट॥

हमारे चरित्रनायक उस समय के तोलाराम ने भी आपत्तियों से घबराकर धैर्य नहीं छोड़ा। उतर पड़े वे कर्मक्षेत्र में। माता की मृत्यु के पश्चात् आपने देलदर के सेठ हंसराजजी प्रेमराजजी पोरवाल के यहाँ आजीविकोपार्जन हेतु कार्य करना प्रारम्भ किया। बारह-तेरह वर्ष की आयु का बालक तोलाराम श्रेष्ठी के घर के काम में जूझने लगा। घर के छोटे बच्चों को रखना, गाय और भैंस को चारा, बांटा नीरना, गाय भैंस का दूध निकालना और दधिमन्थन करना, ये बालक तोलाराम के जिम्मे मुख्य काम थे। इनके अतिरिक्त घर के और भी आवश्यक कार्यों को करने में हमारे चरित्रनायक ने किसी प्रकार की आनाकानी नहीं की। "सब को काम प्रिय हैं न कि चाम (सुन्दर गौरवर्ण)" इस कहावत के अनुसार बालक तोलाराम ने घर भर के लोगों का मन जीत लिया। सभी तोलाराम को अपने घर का ही एक सदस्य समझने लगे।

अध्यापक के पास घर के बालकों को पढ़ते देखकर तोलाराम भी उनके पास बैठ जाता। तीव्रबुद्धि तोलाराम थोड़े ही दिनों में प्रारम्भिक लिखना पढ़ना और गणना सीख गया।

जिस घर में बालक तोलाराम रह रहा था वह घर जैनधर्मावलम्बी था। विविध क्षेत्रों में विचरण करते हुए जैन साधु-साध्वियों का देलदर में आना-जाना रहता ही था। तोलाराम पर स्नेहातिरेक से घर के लोग बहुधा साधु-साध्वियों को बालक तोलाराम के हाथ से ही आहार-पानी आदि बहराते थे।

संयोग से कीर्तिचन्द्रजी महाराज का देलदर में पदार्पण हुआ। उनके साथ गुलाबचन्दजी नामक एक वैरागी थे जो आज भी महान् सौभाग्यशाली सौभाग्यविजयजी के नाम से महासन्त के रूप से विराजमान हैं। वैरागी गुलाबचन्द जी को श्री कीर्तिचन्द्रजी महाराज के पास पढ़ते हुए देख कर बालक

तोलाराम के अन्तर्मन में भी अध्ययन और ज्ञानार्जन की भूख बड़े ही तीव्र वेग से जागृत हुई। बालक तोलाराम ने श्रेष्ठीपरिवार के समक्ष अपनी आन्तरिक अभिलाषा प्रकट की। उदार श्रेष्ठि-परिवार ने अपना अहोभाग्य समझ तोलाराम को श्रमणश्रेष्ठ कान्तिचन्द्रजी महाराज की सेवा में रहने की अनुमति सहर्ष दे दी।

बालक तोलाराम वैरागी गुलाबचन्द्र के साथ-साथ कान्तिचन्द्र जी महाराज से शिक्षा ग्रहण करने लगा। अहर्निश आत्मार्थी साधुओं के सम्पर्क में रहने के फलस्वरूप बालक तोलाराम भी वैराग्य के गहरे रंग में रंग गया। अनेक वर्षों तक वैरागी शिक्षार्थी के रूप में मुनि कीर्तिचन्द्रजी के पास शास्त्रों का और लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् आशुकवि नित्यानन्दजी श्रीमाली के पास सारस्वतचन्द्रिका, सिद्धान्त कौमुदी, सिद्ध हेम शब्दानुशासन, धर्मशर्माभ्युदय कादम्बरी, रघुवंश, श्रुतबोध, वृहद्रत्नाकर एवं ज्योतिष, न्याय आदि विषयों के अनेक ग्रन्थों का मार्मिक अध्ययन किया।

विक्रम सं० १९६४ में वैशाख शुक्ला ६ के दिन सिंह लग्न में ऐतिहासिक नगर जालोर में महामुनि केसरविजयजी महाराज के पास हमारे चरित्रनायक वैरागी तोलाराम पुरोहित ने २० वर्ष की युवा वय में अपने साथी वैरागी गुलाबचन्द के साथ निर्ग्रन्थ श्रमण धर्म की दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के समय केसरविजयजी महाराज ने तोलाराम का नाम कल्याणविजय और गुलाबचन्द का नाम सौभाग्यविजय रखा।

श्रमण धर्म में दीक्षित होने के पश्चात् मुनि कल्याणविजयजी ने प्रमाण नयतत्वालोक, स्याद्वादमंजरी, रत्नाकरावतारिका आदि नेक न्यायशास्त्रों, आगमों, निर्युक्तियों, चूर्णियों, महाभाष्यों, ज्योतिषविद्या के ग्रन्थों और इतिहास ग्रन्थों का बड़ी ही सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया।

मुनि कल्याणविजयजी के अध्ययन की एक बहुत बड़ी विशेषता यह रही कि विविध विषयों के ग्रन्थों का अध्ययन करते समय जो भी विशिष्ट, अश्रुतपूर्व और किसी भी दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात किसी भी ग्रन्थ में दृष्टिगोचर हो गई तो उसे उसी समय डायरी में लिख लिया। सरस्वती के इस महान् उपासक सन्त ने जीवन भर अध्ययन करते समय यही क्रम जारी रखा। उनके इस अथक परिश्रम का ही फल है कि उनके हाथ की लिखी हुई सैंकड़ों डायरियाँ, नोटबुकें, रजिस्टर, लेख आदि आज भी उनके ज्ञानभण्डार में विद्यमान हैं, जो अनेक विद्वानों के अभिमत के अनुसार विविध

विषयों के शोधार्थियों के लिए बड़े ही उपयोग और मार्गदर्शक हो सकते हैं।

६८ वर्ष के अपने साधनापूर्ण जीवन में इस महासन्त ने भारत के सुदूरस्थ विभिन्न क्षेत्रों में घूम-घूम कर नगर नगर, ग्राम-ग्राम और घर-घर में भगवान् महावीर का दिव्य सन्देश पहुंचाया। अपने अमोघ उपदेशों से समाज में व्याप्त कुरूढ़ियों और अज्ञान को दूर करते हुए, अपने लेखों और ग्रन्थों से भावी पीढ़ियों को सदा के लिए सत्पथ का दिशानिर्देश करते हुए अपना स्वयं का और पर का भी कल्याण कर अपने कल्याणविजय नाम को सार्थक किया।

विक्रम सं० १९९४ में मार्गशीर्ष शुक्ला ११ के दिन अहमदाबाद में आपको तथा मुनि सौभाग्यविजयजी महाराज को आपके गुरू एवं संघ द्वारा गणिपद प्रदान किया गया। इसी दिन हमारे चरित्रनायक को गणिपद के साथ पंन्यासपद भी प्रदान किया गया।

पंन्यासप्रद ग्रहण करने से पूर्व और पश्चात् आपने स्थान-स्थान पर अनेक मन्दिरों की प्रतिष्ठाएँ करवाईं। जालोर में आपकी प्रभावपूर्ण प्रेरणा से जालोर मे नन्दीश्वर तीर्थ की स्थापना एवं समाज कल्याण के विविध कार्यों के लिए एक अति विशाल भूखण्ड खरीदा गया। आपकी प्रेरणा से ही संघ ने उस भूखण्ड में आपके अमूल्य निर्देशन में एक अति भव्य और विशाल नन्दीश्वर तीर्थ का निर्माण करवाया, जो भारतवर्ष में सबसे बड़ा नन्दीश्वर तीर्थ है। इस नन्दीश्वर तीर्थ का निर्माण कार्य वर्षों तक चलता रहा और अन्ततोगत्वा वि. सं. २००५ की माघ शुक्ला ६ के दिन आपश्री के करकमलों से ही इस महान् तीर्थ की प्रतिष्ठा करवाई गई। प्रतिष्ठा के समय इस तीर्थ में ५०० मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई गई।

इसी भूखण्ड में समाज के लोगों की सुविधा के लिए तथा इस तीर्थ की यात्रा करने हेतु आये हुए यात्रियों की सुविधा के लिए एक विशाल धर्मशाला का निर्माण करवाया गया। इसी भूखण्ड में सद्विद्या के प्रचार प्रसार के लिए सर्वप्रथम एक भव्य छात्रावास का निर्माण करवा कर छात्रों को सभी प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की गई थीं।

यह सब विशाल भूखण्ड भूतपूर्व मारवाड़ राज्य के प्रजावत्सल महाराजा श्री उम्मेदसिंहजी महाराज साहब के कृपाप्रसाद एवं लाला श्री हरिश्चन्द्रजी की सहायता से प्राप्त हुआ था।

वाणी की ही तरह पंन्यासप्रवर श्री कल्याणविजयजी महाराज की लेखनी में भी बड़ा चमत्कार और अद्भुत प्रभाव था। सच्ची बात को सयौक्तिक रूपेण डंके की चोट के साथ कहना और लिखना यह उनकी जन्मजात विशेषता थी। सच्ची बात को समाज के समक्ष रखने में उन्होंने अपने जीवन में कभी किसी से किंचित्मात्र भी भय का अनुभव नहीं किया।

एक अजैन कुल में उत्पन्न हुए शिशु ने अपने दृढ़ संकल्पों एवं अध्यवसायों के बल पर कालान्तर में एक विशाल कल्पतरु के समान विराट् स्वरूप धारण किया, धर्मप्रेमी मानव समाज को अपने अमृतोपम त्रिविधताप से संतप्त मानव समाज को और विशेषतः धर्मप्रेमी समाज को शीतल सघन छाया से शान्ति और उपदेशामृतकणों से तृप्ति प्रदान की और इस प्रकार ६८ वर्ष तक समाज को शान्ति पहुंचाने के अनन्तर इस महासन्त ने विक्रम सं० २०३२ आषाढ़ शुक्ला १३ के दिन प्रातःकाल ९.१५ बजे ८८ वर्ष की आयु में इहलीला समाप्त कर स्वर्गारोहण किया। ज्ञान का सूर्य अस्त हो गया।

आज इस महासन्त का भौतिक शरीर हमारे समक्ष नहीं है पर इनके द्वारा किये गये समाजहित, संवहित और जनकल्याण के कार्य शताब्दियों तक भावी पीढ़ियों को मार्गदर्शन कराते हुए प्रेरणा देते रहेंगे।

कोटि-कोटि प्रणाम है उस महान् विभूति को।

● मुनि मुक्तिविजय

सम्पादकीय

'तित्थोगाली पइन्ना'—नामक इस सैद्धान्तिक एवं इतिहास ग्रन्थ के सम्पादन, छाया एवं हिन्दी अनुवाद करने की इसी वर्ष (१९७५) के प्रथम चरण में पंन्यास श्री कल्याणविजयजी महाराज साहब ने मुझे प्रेरणा की। मैंने उन महासन्त की आज्ञा शिरोधार्य कर उनके द्वारा अर्द्धशोधित प्रति के आधार पर अपने लिए अति दुस्साध्य इस कार्य को मई १९७५ में प्रारम्भ किया। प्रति बड़ी ही अशुद्ध थी। अनेक स्थलों को देखकर तो भयंकर निराशा भी हुई। दुविधा में भी पड़ा कि इस प्रकार का असाध्य कार्य मैं सम्पन्न कर भी सकूंगा अथवा नहीं। पर जिस कार्य को एक बार हाथ में ले लिया उसे अधूरा छोड़ने की आत्मसम्मान ने स्वीकृति नहीं दी।

यों तो मैं इस ऐतिहासिक ग्रन्थ से पूर्णतः अपरिचित नहीं था। इसके अनेक उदाहरण अनेक ग्रन्थों और इतिहास विषयक लेखों में वर्षों से पढ़ता आ रहा था। सन् १९७१-७२ में श्रद्धेय पण्डित दलसुख मालवणिया के सौजन्य से मुझे 'कहावली' के साथ-साथ तित्थोगाली पइन्ना का अन्तिम अर्द्धभाग भी एल० दी० इन्डोलोजिकल इन्स्टीट्यूट अहमदाबाद में पढ़ने को मिला था। उन दोनों ग्रन्थों के सम्पादन की उमंगें भी उस समय मानस में तरंगित हुई थीं। तित्थोगाली पइन्ना की जैन धर्म और भारतीय इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली कतिपय गाथाएँ मेरी जागृत एवं सुषुप्ति दोनों ही

अवस्थाओं में कतिपय अहोरात्रों तक चिन्तन का विषय भी रह चुकी थीं। विद्यार्थी जीवन में कुछ आगमों का अध्ययन करते समय अन्तःस्थल में एक तीव्र उत्कण्ठा उत्पन्न हुई थी कि सौभाग्य से यदि कभी सुअवसर मिला तो आगमों का सुन्दर अनुवाद और विवेचन करूँगा। चालीस वर्षों के लम्बे व्यवधान के पश्चात् उस उत्कण्ठा के अनुरूप अवसर मिला है तो इस अवसर को निराशा के घने कोहरे में खो देना उचित नहीं इस विचार से मनोबल जागृत हुआ और इस कार्य को पूर्ण करने का दृढ़ संकल्प किया। उत्कट चिन्तन और अहर्निश प्रयास से उत्तरोत्तर सफलताएँ मिलती गईं, उत्साह बढ़ता गया। अन्ततोगत्वा ढाई मास के कठोर बौद्धिक परिश्रम से ग्रन्थ की मूल गाथाओं, संस्कृत छाया और हिन्दी अनुवाद का आलेखन पूरा हुआ। मेरे आराध्य गुरुदेव आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज साहब ने अपनी अत्यधिक व्यस्त दैनन्दिनी में से पर्याप्त समय निकाल कर इस ग्रन्थ के पाठों में अपेक्षित संशोधन किया। वास्तविकता तो यह है कि आचार्य श्री की असीम अनुकम्पा से ही मैं इस कार्य को कर सका हूँ।

इस ग्रन्थ की ८०० गाथाओं की छाया और अनुवाद कर लेने के पश्चात् श्री राजेन्द्रसूरिजी महाराज के आहोर भण्डार से इस ग्रन्थ की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति भी मिल गई। जोधपुर में २५-६-७५ को इस प्रति की फोटोस्टेट कापियाँ तैयार करवाईं। यद्यपि यह प्रति भी अशुद्धियों से भरी थी पर दो प्रतियां हो जाने के कारण पाठों के मिलान और शुद्धीकरण में पर्याप्त सहायता मिली।

इस ग्रन्थ के संपादन के लिये इसकी अनेक प्रतियों की आवश्यकता के साथ-साथ एतद्विषयक शोध के लिये गहन अध्ययन, विपुल ऐतिहासिक सामग्री, कठोर श्रम और पर्याप्त समय की आवश्यकता थी और है। क्योंकि इसकी अनेक गाथाएं अव्यवस्थित और अत्यधिक अशुद्ध होने के साथ साथ समवायांग आदि आगमों में और अन्यान्य ग्रन्थों में भी थोड़े परिवर्तित स्वरूप में उपलब्ध होती हैं। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के मूल तथा टीकागत अनेक शब्द और वाक्यांश भी इसकी गाथाओं में यथावत् स्वरूप में दृष्टिगोचर होते हैं। ये सब तथ्य इस ग्रन्थ के रचनाकार के समय आदि के सम्बन्ध में निर्णय करने के लिये बड़े सहायक हो सकते हैं। इन सब गहराइयों में उतरने के लिये आवश्यक अध्ययन क्षमता, समय; सामग्री आदि साधनों का मैं अपने आप में अभाव अनुभव करता हूं।

इस ग्रन्थ के विहंगमावलोकन से ही प्रत्येक पाठक को विश्वास हो जायगा कि यह श्वेताम्बर परम्परा का ही ग्रंथ है न कि किसी अन्य परम्परा का। यह श्वेताम्बर परम्परा का ही ग्रंथ है, इस तथ्य को सिद्ध करने वाले प्रमाण इस ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर एक नहीं अनेक भरे पड़े हैं। उदाहरण के तौर पर हुण्डावसर्पिणी काल में होने वाले १० आश्चर्यों का इसमें विशद विवेचन किया गया है। इन दस आश्चर्यों का उल्लेख करने वाली जो गाथा श्वेताम्बर परम्परा के मान्य ग्रन्थों में उपलब्ध होती है, वह उसी रूप में इस ग्रन्थ में विद्यमान है। आगम साहित्य के अध्येताओं में से आज अधिकांश की यही धारणा है कि दश आश्चर्य केवल जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में प्रवर्तमान अवसर्पिणी काल की चौवीसी के काल में ही हुए। पर प्रस्तुत ग्रन्थ तित्थोगाली पइन्नय में स्पष्ट उल्लेख है कि ये दश आश्चर्य प्रवर्तमान हुण्डावसर्पिणी काल में ढाई द्वीप के ५ भरत और पाँच ऐरवत—इन दशों क्षेत्रों में हुई दशों ही चौवीसियों के काल में हुए और उसके परिणामस्वरूप जिस समय भरत क्षेत्र में १९वें तीर्थंकर भगवान् मल्लिनाथ स्त्रीरूप में उत्पन्न हुए उसी समय अन्य ४ भरत और ५ ऐरवत क्षेत्रों में ये भी १९ वें तीर्थंकर स्त्री रूप में ही उत्पन्न हुए।

जहां तक इस ग्रन्थ के प्रणयनकाल का प्रश्न है—इस समस्त ग्रन्थ में प्रतिपादित तथ्यों का गहराई से चिन्तन मनन करने पर भी इस प्रश्न का कोई स्पष्ट प्रामाणिक अथवा सर्वमान्य उत्तर नहीं मिलता।

इस ग्रन्थ की गाथा संख्या ८७१ में "निच्चानिच्च सियवादे" यह अन्तिम चरण और ८७२ और ८७३ में क्रमशः "जो सियवायं भासति" तथा "जो सियवायं निंदति" इन दो प्रथम चरणों को देखकर अनेक विद्वान् इस ग्रन्थ के प्रणेता का समय अनुमानित करने का प्रयास करते आये हैं पर मेरी स्वल्प बुद्धि के अनुसार इस प्रकार की अटकलबाजी से कोई सुनिश्चित सर्वमान्य निर्णय अथवा निष्कर्ष नहीं निकलने वाला है जिस "सियवाय" (स्याद्वाद) शब्द के आधार पर अनुमान की दौड़ लगाई जा रही है वह स्वयं ही विवादास्पद है। सुनिश्चित रूप से प्रमाणपुरस्सर आज कोई विद्वान् यह नहीं कह सकता कि अमुक समय में "स्याद्वाद" शब्द का जन्म जैन वांग्मय में हुआ। जब स्याद्वाद शब्द के प्रादुर्भाव का समय ही अपने आप में निश्चित है तो उसके आधार पर अन्य तथ्य का समय किस प्रकार निकाला जा सकता है। अनिर्णीत और अनिश्चित तथ्य को आधार मान कर किसी बात

इन सब अभावों की स्थिति में भी मैंने अपनी स्वल्प बुद्धि के अनुसार इस ग्रन्थ को सर्वांग सुन्दर और विद्वद्भोग्य बनाने का पूरी लगन के साथ प्रयास किया है। मैं इस कार्य में कितना सफल हो सका हूं, इसका निर्णय तो पाठकों पर ही निर्भर करता है।

इतिहास में थोड़ी अभिरुचि होने के कारण विगत अनेक वर्षों से इस ग्रन्थ को उपलब्ध करने और पढ़ने की तीव्र उत्कण्ठा थी। मैंने यह भी अनुभव किया कि इतिहास के अनेक विद्वान्, कतिपय शोधार्थी और इतिहास में थोड़ी बहुत भी अभिरुचि रखने वाले विज्ञ इस ग्रन्थ को पढ़ने के लिये लालायित रहे हैं। पर अद्यावधि इसका प्रकाशन न होने के कारण उनकी इसे पढ़ने ही नहीं देखने तक भी उत्कण्ठा अपूर्ण ही रही है। पिछले चार पांच वर्षों से इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में कतिपय विद्वानों के ये विचार भी पढ़ने को मिले कि यह ग्रन्थ न श्वेताम्बर परम्परा का है और न दिगम्बर परम्परा का ही, यह तो यापनीय परम्परा के समान किसी अन्य विलुप्त परम्परा का ग्रन्थ है। इतिहास-प्रेमियों की इसे पढ़ने की जिज्ञासा को शान्त करने की इच्छा के साथ साथ यह ग्रन्थ किसी अन्य विलुप्त परम्परा का ग्रन्थ है, इस भ्रान्ति को दूर करने की अदृष्ट प्रेरणा भी न मालूम क्यों मेरे अन्तःकरण में स्फुरित हुई और उत्तरोत्तर बलवती होती ही गई। यह भी एक बहुत बड़ा कारण है कि अपनी सामर्थ्य से बाहर के इस ग्रन्थ के सम्पादन जैसे गुरुतर भार को अपने सिर पर वहन करने का मैंने साहस कर लिया।

इक्ष्वाकुवंश पर महाकाव्य का प्रणयन करते हुए महाकवि कालिदास जैसे समर्थ विद्वान् ने भी निम्नलिखित श्लोकार्द्ध द्वारा उस महान् कार्य के निष्पादन के लिये अपने आपको अल्पमति बताते हुए कहा है:—

'क्व सूर्यप्रभवो वंश, क्व मे अल्पविषया मतिः।'

तो ऐसी दशा में अनादि अनन्त जिनेन्द्रवंश और उस जिनेन्द्र वंश द्वारा प्रतिपादित धर्मतीर्थ के प्रवाहों का विवरण प्रस्तुत करने वाले इस ग्रन्थराज का सम्पादन प्रयास मेरे जैसे स्वल्पातिस्वल्पज्ञ अकिंचन व्यक्ति के लिये कितना हास्यास्पद है, इस विचारमात्र से ही किसी अन्य की तो क्या कहूं मैं स्वयं भी अपने आप पर हंस पड़ता हूं। पर जो कार्य कर रहा हूं वह अति श्रेष्ठ है, अति पुनीत है और कर्मकलुष को ध्वस्त करने वाला है, इस विचार से पुनः आश्वस्त और प्रकृतिस्थ हो जाता हूं।

के किसी तथ्य के निर्णय पर पहुंचने का प्रयास किया जाय तो वह निर्णय भी अनिर्णीत, अनिश्चित, अप्रामाणिक और अस्वीकार्य ही होगा।

मैंने भी अपने सामर्थ्य के अनुसार इस ग्रन्थ के प्रणेता का समय सुनिश्चित करने का पर्याप्त प्रयास किया है। इस ग्रन्थ की एक एक गाथा का पर्यालोचन करते समय मेरी दृष्टि अनेक ऐसी गाथाओं पर पड़ी, जिन्हें मैंने इस समस्या के समाधान करने में आंशिक रूपेण आधार बनाने की बात सोची। उनमें से गाथा इस प्रकार है:—

भगवं कह पुव्वाओ, नट्ठाओ उवरिमाई चत्तारि।
एवं जहा विदिट्ठं, इच्छह सब्भावतो कहिउं ॥७०३॥

अर्थात्—"भगवन्! ऊपर के (ग्यारहवां, बारहवां, तेरहवां और चौदहवां, ये अन्तिम) चार पूर्व किस प्रकार नष्ट हो गये? इस सम्बन्ध में आपने अपने विशिष्ट ज्ञान के द्वारा जैसा देखा—जाना है, वह कृपा कर मुझे बताइये।"

यह गाथा इस ग्रंथ के रचनाकाल के सम्बन्ध में किसी निर्णय पर पहुंचने के लिये सहायक सिद्ध हो सकती है। इस गाथा में प्रश्नकर्त्ता स्वाध्यायी श्रमण ने सर्वशास्त्र निष्णात अपने गुरु से केवल अन्तिम चार (ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें और चौदहवें) पूर्वों के नष्ट होने का कारण ही पूछा है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस ग्रन्थ में उल्लिखित अज्ञातनामा प्रश्नकर्त्ता श्रमण के समय में दश पूर्व यथावत् पूर्णरूपेण विद्यमान थे। यदि दश पूर्वों में से पांच, चार, तीन, दो अथवा एक भी पूर्व उसके समय में विद्यमान नहीं होता तो वह चार पूर्वों के नष्ट होने का कारण पूछने के स्थान पर नौ, दश, ग्यारह, बारह अथवा १३ पूर्वों के नष्ट होने का कारण इसमें निर्दिष्ट अपने अज्ञातनामा गुरु से पूछता। इससे स्पष्टतः यह सिद्ध होता है कि इस ग्रन्थ के प्रणयन-काल में १० पूर्व यथावत् विद्यमान थे।

इस अनुमान की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि प्रस्तुत 'तित्थोगाली पइन्नय' ग्रन्थ में भगवान् महावीर के आठवें पट्टधर आर्य स्थूलभद्र तक ही पट्टधरों के नाम का उल्लेख है। आर्य स्थूलभद्र के पश्चात् किसी एक पट्टधर का भी इस ग्रन्थ में उल्लिखित पट्टपरम्परा में नहीं दिया गया है। यदि दशपूर्वधरों के पश्चाद्वर्ती काल में इस ग्रन्थ का प्रणयन किया जाता तो आर्य स्थूलभद्र के पश्चात् हुए आर्य महागिरि, आर्य सुहस्ती, आर्य

बलिस्सह आदि दशपूर्वधर महान् आचार्यों का तथा वीर नि० सं० ५२५ के आसपास स्वर्गस्थ हुए अन्तिम दशपूर्वधर आचार्य आर्यवज्र का और साढ़े नव पूर्वों का ज्ञान प्राप्त करने वाले एवं अनुयोगों का पृथक्करण करने वाले आर्यरक्षित का कहीं न कहीं अवश्य ही उल्लेख किया जाता।

मेरे इस अनुमान की पुष्टि करने वाले और भी अनेक प्रमाण इस ग्रन्थ में विद्यमान हैं। इस पूरे ग्रन्थ को पढ़ने से ग्रन्थकार की एक विशिष्ट शैली पाठक के समक्ष साक्षात् साकार हो उठती है। जो जो घटनाएँ इस ग्रन्थ के रचनाकाल से पूर्व घटित हो चुकी थीं उनके लिए ग्रन्थकार ने प्रत्येक धातु का भूतकाल का प्रयोग किया है। उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित गाथाएँ चिन्तनीय एवं मननीय हैं—

एतेण कारणेन, पुरिसजुगे अठमम्मि वीरस्स।
सवराहेण पणट्ठाइं, जाण चत्तारि पुव्वाइं ॥८०३
तं एवमंगवंसो य, नंदवंसो मरुयवंसो य।
सवराहेण पणट्ठा, समयं सज्झायवंसेण ॥८०५

इन गाथाओं पर गम्भीरतापूर्वक चिन्तन मनन करने तथा 'पणट्ठाइं' और 'पणट्ठा' शब्दों के भूतकाल के प्रयोग पर विचार करने से स्पष्टतः प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ के प्रणयन से पूर्व ही चार पूर्व,- स्वाध्याय वंश (अनवष्टप तप, पारंचित तप और चार पूर्व) और नन्दवंश नष्ट हो गये थे। यहां जो 'मरुयवंस' के नष्ट होने का उल्लेख है वह शोध का विषय है। मौर्य वंश का द्योतक तो यह नहीं हो सकता क्योंकि इसमें न तो कहीं मौर्यवंश का ही उल्लेख है और न मौर्यकाल की आदि से लेकर अन्त तक की किसी एक भी घटना का ही।

जो घटनाएँ इस ग्रन्थ के रचनाकाल तक घटित नहीं हुई हैं उनका उल्लेख करते समय ग्रन्थकार ने सर्वत्र प्रत्येक धातु का भविष्यत् काल का रूप दिया है। स्थूलभद्र के समय तक की घटनाओं के सम्बन्ध में भूतकाल का प्रयोग कर चुकने के तत्काल पश्चात् की गाथा संख्या ८०७ के —

'होही अपच्छिमो किर, दसपुव्वी धारओ वीरो'

इस अन्तिम अर्द्धभाग में 'होही' अर्थात् 'भविष्यति' शब्द प्रयोग स्पष्टतः यही प्रकट करता है कि इस ग्रन्थ के निर्माण के बहुत काल पश्चात् यह घटना घटित होगी। शेष पूर्वों के विच्छेद तथा एकादशांगी के ह्रास

का आगे की जिन-जिन गाथाओं में उल्लेख किया गया है वहाँ सब जगह भविष्यत्काल का ही प्रयोग है। गाथा संख्या ८०८--

एयस्स पुव्वसुय सायरस्स, उदहिव्व अपरिमेयस्स।
सुणसु जह अथ काले, परिहाणी दीसते प्रच्छा ।। में प्रयुक्त 'जह', 'अथ', 'काले' और 'पच्छा' शब्द साधारण से साधारण विचारक के हृदय पर यही छाप अंकित करते हैं कि इस गाथा से पूर्व की घटनाएँ इस ग्रन्थ के प्रणयन काल से पूर्व घटित हो चुकी थीं और इस गाथा से आगे जिन घटनाओं का उल्लेख किया जा रहा है, वे सब घटनाएँ इस ग्रन्थ के प्रणयन से पश्चात् घटित होंगी।

इन सब प्रमाणों से यह अनुमान किया जाता है कि यह रचना दशपूर्व-धर काल भी है। पर इसका स्वरूप थोड़ा विकृत हो चुका है। नन्दीसूत्र के आद्य मंगल में उल्लिखित संघस्तुति की तीन चार गाथाएं प्रस्तुत ग्रन्थ में भी यथावत् रूपेण विद्यमान हैं। इन गाथाओं से यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि यह रचना वीर निर्वाण सं० १००० में स्वर्गस्थ हुए आर्य देवर्द्धि गणी के पश्चाद्वर्ती काल की है। क्योंकि इस ग्रन्थ में अनेक गाथाएं प्रक्षिप्त हैं, यह बात तो इस ग्रन्थ की अन्तिम गाथा मे ही सिद्ध हो जाती है। इस ग्रन्थ में कुल मिलाकर गाथाओं की संख्या १२५९ अंकित की गई है जब कि इस ग्रन्थ की समाप्ति के पश्चात् दी गई इस गाथा में इस की मूल गाथाओं की संख्या १२३३ ही दी गई है।

इन सब तथ्यों से यही सिद्ध होता है कि इस ग्रन्थ का रचना काल वीर नि० सं० २१५ के पश्चात् का दशपूर्वधर काल है और नन्दी सूत्र के आद्य मंगल की जो गाथाएं इसमें उल्लिखित हैं वे वस्तुतः इसमें पश्चाद्वर्ती काल में प्रक्षिप्त की गई हैं। भाष्यों, चूर्णियों आदि अन्य जैन वाङ्मय में जो इसकी गाथाएं उपलब्ध होती हैं वे निश्चितरूपेण इसी ग्रन्थ से प्राचीन काल में ली गई हैं।

इस ग्रन्थ की जो ताड़पत्रीय प्रति पाटन के भण्डार में है वह भी अति प्राचीन (संभवतः वि० सं० १४०० के आस पास की—मेरे पास निश्चित लेखन संवत् है पर इस समय मेरे से १०० माइल की दूरी पर है, अतः निश्चिचत तौर पर मैं इस समय नहीं लिख सकता) है। उस ताड़पत्रीय प्रति के अशुद्ध लेखन से यह अनुमान किया जाता है कि शताब्दियों तक कर्ण और

कण्ठ परम्परा से आये हुए इस ग्रन्थ के पाठ उस ताड़पत्रीय प्रति में लेखन के समय तक कतिपय अंशों में विस्मृत और विकृत हो चुके थे।

प्रेस के व्यवस्थापक ने संशोधन हेतु मेरे पास प्रूफ भेजने में असमर्थता प्रकट करते हुए प्रूफ देखने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ही ले लिया था। प्राकृत और संस्कृत के प्रूफ देखने में तो कठिनाई अवश्यंभावी है। इस कारण इस पुस्तक की छपाई में कतिपय अशुद्धियां रह गई हैं जो इसलिए क्षम्य हैं कि संस्कृत छाया और हिन्दी अनुवाद को देखने पर किंचित् अशुद्धियाँ रह गई हैं उन्हें प्रत्येक पाठक स्वतः ही ठीक कर सकता है।

मेरे स्वयं के प्रमाद, बुद्धि व्यामोह अथवा समयाभाव के कारण भी सम्भव है अशुद्धियां रह गई हों। मुझे सहृदय पाठकों पर पूर्ण विश्वास है कि वे मुझे इसके लिये अवश्यमेव क्षमा कर देंगे।

गजेन्द्र सदन, लोटोनी (पाली)
दि० २५-१०-७५

ठाकुर गर्जसिंह राठौड़
न्यायव्याकरण-तीर्थ

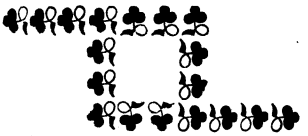

शुद्धि-पत्र

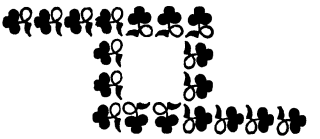

अशुद्ध	शुद्ध	गाथा	पृष्ठ
पत्य	पल्य	११ छाया	४
नाम विभति	नाम विभक्ति	१७	५
संतु	तु	२२	७
निच्चोउ य	निच्चोउग	६८	२१
नित्यास्तु च	नित्यर्तुक	६८ छाया	२१
अक्षय्य	सब ऋतुओं के अक्षय्य	६८ अर्थ	२१
सुत्तत्थेण	सुतत्तेण	७१५	२२०

तित्थोगाली पइन्नय

तीर्थोद्गारिक प्रकीर्णक

जयइ ससिपाय-निम्मल-तिहुयण-वित्थिण्ण-पुण्णजस-कुसुमो ।
उसभो केवल-दंसण-दिवायरो दिट्ठदट्ठव्वो ।१।
(जयति शशिपाद*-निर्मल त्रिभुवन विस्तीर्ण पुण्य-यश कुसुमः ।
ऋषभः केवल-दर्शन-दिवाकरः दृष्ट-द्रष्टव्यः ।।)

चन्द्रकिरण के समान समुज्ज्वल, जिनका पावन यश रूपी पुष्प सम्पूर्ण (ऊर्ध्व, अधः, तिर्यक्) लोकों में व्याप्त है, वे संसार के समग्र चर-अचर एवं रूपी-अरूपी पदार्थों को देखने—जानने वाले अनन्तदर्शन के सूर्य प्रभु ऋषभदेव जयवन्त हैं ।१।

बावीसइं च निज्जियपरीसह-कसाय-विग्घ-संघाया ।
अजियाईया भवियारविन्द-रविणो जयंति जिणा ।२।
(द्वाविंशति च निर्जित-परीषह-कषाय-विघ्न-संघाता ।
अजितादिका भविकारविन्दरवयः जयंति जिनाः ।।)

परीषहों, कषायों और विघ्नों के (सम्पूर्ण) समूहों पर (पूर्णतः) विजय प्राप्त करने वाले एवं कमलपुष्प स्वरूप भव्य प्राणियों के लिये सूर्यों के समान (सुखप्रद) भगवान् अजितनाथ आदि बावीस तीर्थंकर जयवन्त हैं ।२।

जयइ सिद्धत्थ-नरिंद-विमल-कुल विपुल नहयल-मयंको ।
महिपालससिमहोरगमहिंदमहिओ महावीरो ।३।
(जयति सिद्धार्थनरेन्द्रविमलकुल-विपुल नभस्तल-मयंकः ।
महिपाल-शशि-महोरग-महेन्द्र-महितो महावीरः ।।)

महाराज सिद्धार्थ के उज्ज्वल कुलरूपी गगन मण्डल के पूर्णचन्द्र तथा नरेन्द्रों, नक्षत्रेन्द्रों, नागेन्द्रों और महेन्द्रों द्वारा पूजित भगवान महावीर जयवन्त हैं ।३।

---

* शशिपाद—शशिकिरण इत्यर्थः

नमिऊण समण-संघं सुनाय-परमत्थ-पायडं वियडं ।
वोच्छं निच्छययत्थं, तित्थोगालीए संखेवं ।४।
(नत्वा श्रमण-संघं सुज्ञात-परमार्थ-प्राकृतं विकटं ।[1]
वक्ष्यामि निश्चितार्थं, तीर्थोद्गालिकस्य संक्षेपम् ।)

परमार्थ के पूर्णरूपेण ज्ञाता, अनादि और विराट श्रमणसंघ को नमन कर मैं तीर्थोद्गार[2] (तीर्थोद्गम) अथवा तीर्थ के ओगालों[3] (दश क्षेत्रों में) प्रवाहों के सुनिश्चित अर्थ का संक्षेपतः कथन करूँगा ।४।

रायगिहे गुण-सिलए भणिया वीरेण गणहराणं तु ।
पयसयसहस्समेयं, वित्थरओ लोगनाहेणं ।५।
(राजगृहे गुणशीलके, भणिता वीरेण गणधरेभ्यस्तु ।
पदशत-सहस्रमेतं, विस्तरतः लोकनाथेन ।)

त्रिलोकीनाथ भगवान् महावीर ने राजगृह नगर के गुणशीलक नामक उद्यान में विस्तारपूर्वक एकलाख पद-प्रमाण तीर्थोद्गारिक अथवा तीर्थ प्रवाहों के प्रकीर्णक का कथन गणधरों को किया ।५।

अइ संखेवं मोत्तुं, मोत्तूण पवित्थरं अहं भणिमो ।
अप्पक्खरं महत्थं, जह भणियं लोगनाहेण ।६।
(अति-संक्षेपं मुक्त्वा, मुक्त्वा प्रविस्तरं अहं भणामि ।
अल्पाक्षरं महार्थं, यथा भणितं लोकनाथेन ।)

अति संक्षेप और अति विस्तार इन दोनों पद्धतियों का परित्याग कर मैं प्रगाढ़ अर्थ भरे स्वल्पाक्षरों में उसका उसी प्रकार वर्णन करूँगा जिस प्रकार कि विश्वनाथ (प्रभु महावीर) ने कहा था ।६।

कालोउ अणाईओ, पवाहरूवेण होइ नायव्वो ।
निहणविहूणो सो च्चिय, बारस अरगेहिं निद्दिट्ठो ।७।
(कालस्तु अनादिकः, प्रवाहरूपेण भवति ज्ञातव्यः ।
निधन-विहीनः स खलु, द्वादशारकैः निर्दिष्टः ।)

---

१ महान्तम् । २-३ देखिये 'पाइयसद्द-महण्णवो

काल अनादिकाल से (नदी के) प्रवाह के समान निरन्तर गतिशील है, यह जानना चाहिए। वह (काल) अन्तरहित है और बारह अरों (काल विभागों) द्वारा उसका निर्देश किया गया है ।७।

दव्वट्ठयाए निच्चो, होई अणिच्चो अ नयमए बीए।
एगत्तो मिच्छत्तं, जिणाण आणा अणेगंता ।८।
(द्रव्यार्थतया नित्यः भवति अनित्यश्च नयमते द्वितीये।
एकान्तो मिथ्यात्वम्, जिनानां आज्ञा अनेकान्ता।)

वह कालद्रव्य द्रव्यार्थिक नय अर्थात् द्रव्य की अपेक्षा नित्य-शाश्वत और द्वितीय पर्यायार्थिक नय अर्थात् पर्याय की अपेक्षा अनित्य (विनाशशील) है। इसे एकान्तरूप से नित्य अथवा अनित्य मानना मिथ्यात्व है, क्योंकि जिनेश्वरों (वीतराग सर्वज्ञों) ने अनेकान्त (स्याद्वाद) सिद्धान्त को स्वीकार करने की आज्ञा प्रदान की है ।८।

ओसप्पिणी य उस्सप्पणी य, भरहे तहेव एरवए।
परियत्तंति कमेणं, सेसेसु अवट्ठिओ कालो ।९।
(अवसर्पिणी च उत्सर्पिणी च, भरते तथैव ऐरवते।
पर्यटतः क्रमेण, शेषेषु अवस्थितः कालः।)

ढाई द्वीप के पांच भरत और पांच ऐरवत क्षेत्रों में अवसर्पिणी काल और उत्सर्पिणी काल क्रमशः परिभ्रमण करते रहते हैं। शेष सभी क्षेत्रों में यह काल अपरिवर्तनीय रूप में सदा एक समान विद्यमान रहता है ।९।

ओसप्पिणी पमाणं, भणंति लोगुत्तमा निहयमोहा।
सव्वण्णु जिण-वरिंदा, समासओ तं निसामेह ।१०।
(अवसर्पिणी प्रमाणं, भणंति लोकोत्तमा निहत-मोहाः।
सर्वज्ञाः जिनवरेन्द्राः, समासतः तन्निसामयत।)

मोह को विनष्ट करने वाले लोकोत्तम सर्वज्ञ जिनेश्वर (समय समय पर) अवसर्पिणी काल का (जो) प्रमाण बताते हैं, उसे संक्षेपतः सुनिये ।१०।

जोयण वित्थिण्णोखलु पल्लो* एगाहिय-पारूढाणं ।
भरिओ असंख-खंडियकयाण बालग्ग-कोडीणं ।।११।
(योजन-विस्तीर्णः खलु पल्यः एकाह्निक प्ररूढाणाम् ।
भरितअसंख्यखण्डीकृतानां बालाग्र-कोटीनाम् ।)

एक योजन (४ कोस) लम्बे, चौड़े और गहरे एक पल्य (वस्तु रखने का खड्डा) को दो दिन पहले जन्मे हुए यौगलिक शिशुओं के एक एक बाल को करोड़ करोड़ अति सूक्ष्म टुकड़े कर, बालों के उन सूक्ष्मातिसूक्ष्म टुकड़ों से (दबा दबा) कर भर दिया जाय ।११।

वाससए वाससए, एक्किक्के अवहडंमि जो कालो ।
सो कालो बोधव्वो, उवमा एक्कस्स पल्लस्स ।१२।
(वर्ष शते वर्ष शते, एकैके अपहृते यः कालः ।
स कालो बोधव्यः, उपमा एकस्य पल्यस्य ।)

उस पल्य में से बाल के एक एक टुकड़े को एक एक सौ वर्षों के अन्तर से निकाला जाय । इस प्रकार उन बालों के टुकड़ों से उस पल्य के पूर्णरूपेण रिक्त होने में जितना समय लगता है, उस समय को एक पल्य की उपमा से समझना चाहिए ।१२।

एतेसिं पल्लाणं कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया ।
तं सागरोवमस्स उ, एकस्स भवे परिमाणं ।१३।
(एतेषां पल्यानां कोट्या कोटिः भवेत् दशगुणिताः ।
तत् सागरोपमस्य तु, एकस्य भवेत् परिमाणम् ।)

इस प्रकार के दश कोटाकोटि पल्योपमों का एक सागरोपम परिमाण वाला काल होता है । अर्थात् दश कोटाकोटि पल्योपम का सागरोपम काल होता है ।१३।

दस कोडाकोडीए सागरनामाण हुंति पुण्णाउ ।
ओसप्पिणीपमाणं, तहेवुसप्पिणीए वि ।१४।

---

* पल्लो-पल्य पल्यकःखलु यत्र कापि वस्तु आधिक्रियते ।

(दश कोट्या कोटिसागरनाम्नां भवन्ति पूर्णास्तु ।
अवसर्पिणीप्रमाणं, तथैव उत्सर्पिण्या अपि ।)

सागरोपम नामक इस काल की दश कोटा-कोटि संख्या जब पूर्ण हो जाती है, तो उस काल को अवसर्पिणी-परिमाण काल कहते हैं। अवसर्पिणी काल के समान उत्सर्पिणी काल भी दश कोटाकोटि सागरोपम का होता है ।१४।

ओसप्पिणी य उस्सप्पिणी य, दोन्निवि अणाइनिहणाओ ।
न वि होई अति कालो, नवि होही सव्वसंखेवो ।१५।
(अवसर्पिणी च उत्सर्पिणी च द्वे ऽपि अनादिनिधने ।
नापि भवति अतिकालः नापि भवति सर्व-संक्षेपः ।)

अवसर्पिणीकाल और उत्सर्पिणीकाल—ये दोनों अनादि काल से (इसी प्रकार) चले आ रहे हैं। इनके इस काल-परिमाण में न कभी किञ्चित्मात्र भी आधिक्य होता है एवं न कभी किञ्चित्मात्र न्यूनता ही ।१५।

ते चेव कालसमया तासिं वोच्छामहं समाणेणं ।
ओसप्पिणी अणुलोमा, पाडिलोमुस्सप्पिणी भणिया ।१६।
(तौ चैव काल समयौ तयोः वक्ष्याम्यहं समानेन ।
अवसर्पिणी अनुलोमा, प्रतिलोमा उत्सर्पिणी भणिता ।)

ये काल के दो विभाग हैं। इनका मैं समान रूप से विवरण प्रस्तुत करूँगा। अवसर्पिणी काल अनुलोम अर्थात् ह्रासोन्मुख और उत्सर्पिणी काल प्रतिलोम अर्थात् उत्कर्षोन्मुख कहा गया है ।१६।

छच्चेव काल समया हवंति ओसप्पिणीए भरहंमि ।
तेसिं नामविभत्तिं, जहकम्मं कित्तइस्सामि ।१७।
(षड् चैव कालसमयाः भवंति अवसर्पिण्याः भरते ।
तेषां नाम-विभक्तिं, यथाक्रमं कीर्तयिष्यामि ।)

भरत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल के छः विभाग होते हैं। उनके नाम और विभागों का मैं यथाक्रम से वर्णन करूँगा ।१७।

सुसमसुसमा य सुसमा, तइया पुण सुसमदूसमा होई ।
चउत्थी दूसम सूसमा* दूसम अतिदूसमा छट्ठी ।१८।
(सुषमसुषमा च सुषमा, तृतीया पुनः सुषमदुःषमा भवति ।
चतुर्थी दुःषम सुषमा, दुःषमा, अतिदुःषमा षष्ठी ।)

सुषमसुषमा, सुषमा, तीसरा सुषम—दुःसमा, चौथा दुःषम-सुषमा, पाचवां दुःषमा और छठा अतिदुःषमा ।१८।

एते चेव विभागा, नवरं उस्सप्पिणीए छच्चेव ।
पडिलोमा परिवाडीए, तेसि होइ नायव्वा ।१९।
(एते चैव विभागा, नवरं उत्सर्पिण्यां षट् चैव ।
प्रतिलोमाः परिपाट्या, तेषां भवति ज्ञातव्याः ।)

ये ही छः काल विभाग उत्सर्पिणी काल में भी होते हैं परन्तु यह ज्ञातव्य है कि वे अवसर्पिणी काल के छः काल विभागों के प्रतिलोम अर्थात् उल्टे अनुक्रम से होते हैं ।१९।

सुसमासुसमाएउ चत्तारि हवंति कोडाकोडीउ ।
तिण्णि सुसमाए कालो, दो सुसमदूसमाए उ ।२०।
(सुषमासुषमायां तु चतस्रः भवन्ति कोटिकोट्यः ।
तिस्रः सुषमायां कालः, द्वे सुषमादुःषमायां तु ।)

सुषमसुषमा नामक आरक चार कोटाकोटि सागरोपम का, सुषमा नामक आरक तीन कोटाकोटि सागरोपम का और सुषम-दुःषमा नामक आरक दो कोटाकोटि सागरोपम काल का होता है ।२०।

एक्का कोडाकोडी, बायालीसाए तह सहस्सेहिं ।
वासाण होइ ऊणा, दूसमसुसमाए सो कालो ।२१।
(एका कोटिकोटिः द्वाचत्वारिंशद्भिः तथा सहस्रैः ।
वर्षाणां भवति ऊना, दुःषमसुषमाया स कालः ।)

---

* प्रति में 'सुसमाचउत्थी' पाठ है, जो किसी लिपिकार की त्रुटि का आभास कराता है ।

दुःषम सुषमा नामक आरक बयालीस हजार वर्ष न्यून एक कोटाकोटि सागरोपम का होता है ।२१।

अह दुसमाए कालो, वाससहस्साइं एकवीसं तु ।
तावइओ चेव भवे, कालो अइदूसमाए वि ।२२।
(अथ दुःषमायां कालः, वर्षसहस्राणि एकविंशति तु ।
तावान् चेव भवेत्, कालः अति दुःषमाया अपि ।)

दुःषमा नामक आरक इकवीस हजार वर्ष का और अति दुःषमा (दुःषमदुःषमा) नामक आरक भी उतने ही अर्थात् इकवीस हजार वर्ष का होता है ।२२।

नवसागरोवमाण, कोडाकोडीओ होंति दुगुणाओ ।
जा होइ अकम्मभूमी भरहेरवएसु वासेसु ।२३।
(नव सागरोपमानां, कोटिकोट्यः भवन्ति द्विगुणिताः ।
या भवति अकर्मभूमिः, भरतैरवतेषु वर्षेषु ।)

भरत और ऐरवत क्षेत्रों में ९ कोटाकोटि सागरोपम काल अवसर्पिणी का और ९ कोटाकोटि सागरोपम काल ही उत्सर्पिणी का—इस प्रकार दोनों के काल को जोड़ने पर १८ कोटाकोटि सागरोपम काल तक भरत और ऐरवत क्षेत्रों में अकर्म भूमि (भोग भूमि) रहती है ।२३।

स्पष्टीकरण—ऐसा प्रतीत होता है कि तेवीसवीं गाथा में मोटे रूप से अकर्म भूमि का काल बताया गया है । वस्तुतः अवसर्पिणी काल के सुषमदुःषमा नामक तृतीय आरक की समाप्ति के ६४ लाख पूर्व शेष रहने पर भरत तथा ऐरवत क्षेत्रों में कर्मभूमि का प्रादुर्भाव तथा उत्सर्पिणी काल के सुषमदुःषमा नामक चतुर्थ आरक के प्रारम्भ में ६४ लाख पूर्व व्यतीत हो जाने पर ५ भरत और ५ ही ऐरवत—इन १० क्षेत्रों में कर्मभूमि का अवसान हो जाता है । इस प्रकार १८ कोटाकोटि सागरोपम के अवसर्पिणी के प्रथम तीन और उत्सर्पिणी के अंतिम इन छह आरकों में १ करोड़ २८ लाख पूर्व तक कर्मभूमि काल रहता है । अर्थात् एक करोड़ २८ लाख पूर्व, तीन वर्ष, ८ मास और

१५ दिन कम १८ कोटाकोटि सागरोपम काल पर्यन्त भरत तथा ऐरवत क्षेत्रों में अकर्म भूमि (भोगभूमि) रहती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि १८ सागरोपम जैसे सुदीर्घ काल की तुलना में एक करोड २८ लाख पूर्व, तीन वर्ष, साढ़े आठ मास का काल नगण्य समझकर तित्थोगालीय पइन्नाकार ने यहां इस काल का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। यह भी संभव है कि इस प्रकार का स्पष्टीकरण करने वाली कोई गाथा पूर्व काल में रही हो और वह कालान्तर में लिपिकार के प्रमाद के कारण विलुप्त हो गई हो।

काल गणना में किसी प्रकार की भ्रान्ति न रहे, इस उद्देश्य से इस गाथा के अनन्तर निम्नलिखित गाथा प्रस्तुत की जा रही है:—

चोवट्ठिं सयसहस्सा, पुव्वाण दुगुणिया दुन्नि सुसमदूसमासु।
ता होइ कम्मभूमि, भरहेरवएसु दससु वासेसु॥

तेवट्ठिं च सहस्सा, वियड्ढावासाण होंति उड्ढस्स।
जा होइ कम्मभूमि, भरहेरवएसु वासेसु। २४।
(त्रिषष्टि च सहस्राः वैताढ्यावासानाम् भवन्ति ऊर्ध्वस्य।
या भवति कर्मभूमिः भरतैरवतेषु वर्षेषु॥)

ऊपर के अर्थात् १ करोड़ २८ लाख पूर्व, तीन वर्ष, ८ मास १५ दिन दोनों सुषमदुःषमा आरों, ८४ हजार वर्ष कम २ सागरोपम परिमाण वाले दोनों दुःषम-सुषमा आरकों दोनों दुःषम आरकों एवं दोनों दुःषम-दुःषमा आरकों के क्रमशः पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध के ६३ हजार वर्ष परिमित काल और दोनों दुःषम-दुःषमा आरकों के क्रमशः परार्द्ध और पूर्वार्द्ध के २१ हजार वर्ष पर्यन्त वैताढ्य (गिरि कन्दराओं में) वास के काल को मिला कर दो सागरोपम, एक करोड़ २८ लाख पूर्व तीन वर्ष साढ़े आठ मास काल पर्यन्त भरत तथा ऐरवत क्षेत्रों में कर्मभूमि रहती है।

स्पष्टीकरण :—प्रचलित धारणानुसार दोनों दुःषम-दुःषमा आरों के प्रारम्भ से अन्त तक पूरे ४२ हजार वर्ष पर्यन्त भरत तथा

ऐरवत क्षेत्रों के मनुष्य एवं तिर्यञ्चों का वैताढ्य की कन्दराओं में निवास माना गया है। पर इस गाथा से प्रकट होता है कि तित्थोगालिय पइन्नयकार ने अवसर्पिणी काल के दुष.म दुःषमा के उत्तरार्द्ध से उत्सर्पिणी काल के दुषःम दुःषमा पूर्वार्द्ध तक अर्थात् २१ हजार वर्ष तक ही इन दश क्षैत्रों के मानवों एवं तिर्यञ्चों को वैताढ्यवास माना है। २४।

एसो ठिति विरहिओ, कालो पुण होइ धम्मचरणस्स ।
एत्तो परं तु वोच्छं, छव्विहमणुमाणओ कालं ।२५।
(एषः स्थितिविरहितः, कालः पुनर्भवति धर्मचरणस्य ।
इतः परं तु वक्ष्यामि, षड्विधं अनु मानतः कालं ।)

यह धर्मचरण की स्थिति से रहित काल होता है। अब इस से आगे छः प्रकार के काल- मान का अनुक्रमशः मैं कथन करूंगा। २५।

दससु वि कुरूण सरिसं, भरहमिव आसि सुसमसुसमाए ।
नवरिमणाट्ठियकालो, एरवयादीण वि तहेव ।२६।
(दशष्वपि कुरूषु सदृशं. भरतमिदं आसीत् सुषम-सुषमायां ।
नवरं अनावर्तितः कालः, ऐरवतादीषु अपि तथैव ।।)

सुषम-सुषमा नामक आरक में भरत क्षेत्र की तरह दशों कुरुक्षेत्रों तथा उसी प्रकार ऐरवत आदि क्षेत्रों में भी समान रूप से अनपवर्त्य अर्थात् अपरिवर्तनीय सुखपूर्ण काल रहता है। २६।

एतेसिं खेत्ताणं, मणिकणगविभूसियाउ भूमीओ ।
रयणाण पंचवन्निय, सोहंतिह भित्ति-चित्ताओ ।२७।
(एतेषां क्षेत्राणां, मणिकनकविभूषिताः भूमयः ।
रत्नानां पंचवर्णिकाः, शोभंति इह भित्ति-चित्राः ।।)

उस सुषम-सुषमा नामक आरक में उपरि वर्णित सभी क्षेत्रों के भू-भाग मणियों एवं स्वर्ग से विभूषित और सर्वत्र पांच प्रकार के रत्नों से जटित मनोहर भित्ति-चित्र सुशोभित रहते हैं।२७।

वावीपुक्खरणीओ, देसेदेसेत्थ दीहियाओ य ।
पेच्छणगसंकुलाओ, सयणासण मंडिय तहाओ ।२८।
(वापी पुष्करिण्यः, देशे देशे अत्र [च्छ] दीर्घिकाश्च ।
प्रेक्षणकसंकुलाः, शयनासनमण्डिताः तथा तु ।।)

उस आरक में स्थान स्थान पर सर्वत्र देखने योग्य अनेक मनोरम दृश्यों से सकुल, शैया-आसनों आदि से सुसज्जित वापियाँ, पुष्करिणियाँ एवं दीर्घिकाएँ होती हैं ।२८।

महुघयइक्खुरसोदगखीरासव वरवारुणी जलाओ ।
काओ य पगइपाणिय फलिय सरिच्छत्थ भरियाओ ।२९
(मधु-घृत-इक्षुरसोदकक्षीरासव-वरवारुणी जलाः ।
काश्च प्रकृतिपानीय-स्फटिकसदृशा अत्र भरिताः ।)

जो शहद, घृत, इक्षुरस, द्राक्षा, क्षीर, आसव और उत्तम वारुणी के समान सुस्वादु एवं सुगन्धित जल से परिपूर्ण तथा उनमें से कतिपय वापियाँ आदि स्फटिक मणि के समान स्वच्छ प्राकृतिक पानी से भरी रहती हैं ।२९।

जाओ वि रयणवेलुय, परिगयाउ सोयणे सुह विहाराओ ।
तामरस कमल कुवलय, नीलुप्पलसोहिय जलाओ ।३०।
(या अपि रत्नवैडूर्य-परिगताः शोभनाः सुखविहाराः ।
ताम्ररस-कमल-कुवलय, नीलोत्पलशोभित-जलाः ।।)

वे सब वैडूर्य रत्नों से निर्मित अतिसुरम्य, सुखपूर्वक विचरण करने योग्य तथा ताम्ररस कमल, कुवलय एवं नीलोत्पल से सुशोभित जल से परिपूर्ण होती हैं ।३०।

तासिं चडोलखडहडगविविह उप्पायज्जगइ पव्वयगा ।
इंदियसुहोवभोगा, सभावजाया रयणचित्ता ।३१।
(तासां च अडोल खटहटक विविध उत्पाद जगति पर्वतकाः ।
इन्द्रिय सुखोपभोगा, स्वभावजाता रत्न-चित्रा ।)

उन वापियों, पुष्करिणियों और दीर्घिकाओं के चारों ओर अति सुन्दर प्राकृतिक प्राकार जगतियाँ आदि रत्नों से जटित और चक्षु आदि इन्द्रियों को बड़ा आनन्द प्रदान करने वाली होती हैं ।३१।

देसे देसे य सुरम्मा, केलिलयाहरग केयइ घरा य ।
तेसु वि य रयणचित्ता, मणिकणगसिलातला रम्मा ।३२।
(देशे देशे च सुरम्या केलिलता-गृह-केतकि-गृहाश्च ।
तेष्वपि च रत्नचित्रितः, मणिकनकशिलातला रम्याः ।)

स्थान स्थान पर नयनाभिराम लताओं से निर्मित केलि-कुंज और केतकी मण्डप होते हैं। उन निकुञ्जों और केलि-गृहों में अनेक प्रकार के रत्नमय चित्रों से सुशोभित अति कमनीय मणि शिलाएँ एवं कनक-शिलाएँ यथास्थान बिछी रहती हैं ।३२।

एतेसु य अन्नेसु य, पहाणभोगोवभोगपउरेसु ।
विविहे पुण्णफलरसे य सक्कसिरिमणुभवंति ।३३।
(एतेषु च अन्येषु च, प्रधान भोगोपभोग प्रचुरेषु ।
विविधान् पुण्यफलरसांश्च शक्रश्रियमनुभवन्ति ।)

पांच भरत तथा पांच ऐरवत एवं देवकुरु, उत्तरकुरु आदि उत्कृष्ट कोटि के भोगोपभोग प्रधान क्षेत्रों में यौगलिक मानव विविध पुण्यफलों के रस स्वरूप इन्द्र के समान सुख ऐश्वर्य का उपभोग करते हैं ।३३।

गाम नगरागराइ, पिउपिंडनिवेयणा जम्मफला ।
एते न संति भावा, ऐतेसु सुरालयनिभेसु ।३४।
(ग्रामनगरागरादि, पितृपिण्डनिवेदना च जन्मफलाः ।
एते न संति भावाः, एतेषु सुरालयनिभेसु ।)

उस काल में सुरलोक सदृश उपर्युक्त क्षेत्रों में ग्राम, नगर, प्रासाद पित्रा-पुत्र का पारस्परिक कर्त्तव्य और जन्मफल अर्थात् रोग-शोक-जरा-दुःखादि का अस्तित्व तक नहीं रहता ।३४।

असिमसिकिसिवाणिज्जं, ववहारो नत्थि रायधम्मो वा ।
तेसिं मिहुणणा तया, रोसोपोसोवएसो वा ।३५।

(असि-मसि-कृषि-वाणिज्यं, व्यवहारः नास्ति राजधर्मो वा ।
तेषां मिथुनानां तदा, रोषः पोषः अपदेशो वा ।)

उस समय के उन यौगलिक मानवों में असि (तलवार), मसि (लेखन), कृषि, वाणिज्य, पारस्परिक आदान-प्रदान, शासक-शासित, आक्रोश, पोषण और परस्पर उपकार-अपकार आदि का व्यवहार नहीं होता ।३५।

पउमुप्पलनीसासा, विरूवितणू निब्भया निरूवलेवा ।
वंगवलिपलियरहिया, एतेसु नरा तया सुहिया ।३३।
(पद्मोत्पलनिश्वासा, विरूपितनु निर्भया निरुपलेपाः ।
बंक-वलि-पलितरहिता, एतेषु नरा तदा सुखिनः ।)

इन क्षेत्रों में उस समय के मानव कमल पुष्प की भीनी मादक सुगन्ध के समान श्वासोच्छ्वास वाले, विशिष्ट सुन्दर शरीरधारी, पूर्ण निर्भय, छल-छद्म द्वेषादि से निर्लिप्त, बांक-टेढ़ श्वेतकेश आदि शारीरिक दोषों से रहित एवं सर्वथा सुखी होते हैं ।३६।

गंभीरनिद्धघोसा, साणुक्कोसा अमच्छर सहावा ।
अणुलोमवाउवेगा, अपरिमिय–परक्कमपलोया ।३७
(गंभीर निद्धघोषाः, सानुक्रोशा अमत्सरस्वभावाः ।
अनुलोम वायुवेगाः, अपरिमितपराक्रमप्रलोकाः ।)

उस समय मानव-मिथुन घनरवगम्भीर गुंजायमान स्वर, मात्सर्य-मुक्त स्वभाव, वायु के समान अप्रतिहत यथेच्छ वेग और अपरिमित पराक्रम एवं तेज सम्पन्न होते हैं ।३७।

कस्सइ अणभियोगा, अहमिंदा वज्जरिसभसंघयणा ।
माणुम्माणुववेया, पेसलच्छसव्वंगसंघयणा ।३८।
(कस्यापि अनभियोगाः, अहमिन्द्रा वज्रऋषभ-संहननाः ।
मानोन्मानोपपेताः पेशलाच्छसर्वांगसंहननाः ।)

वे सभी मानव युगल सबके प्रति अभियोग रहित, समान रूप से सभी 'मैं इन्द्र हूं' इस प्रकार की भावना वाले वज्र ऋषभ संहनन-धारी, सुडौल देहधर, सुगठित एवं सुन्दर अंगोपांग युक्त होते हैं।३८।

ते नरगणासुरुवा, सुभगा सुहभागिणो सुरभिगंधा ।
मिगरायसरिसविक्कम, वरवारण मत्तसरिसगई ।३९।
(ते नरगणाः सुरूपाः, सुभगाः सुखभागिनः सुरभिगंधाः ।
मृगराजसदृशविक्रम, --वरवारणमत्तसदृशगतयः ।)

वे नर-नारी गण परम सुन्दर, सुभग, सुखभाजन, सुवासित मनमोहक सुगन्ध सिंह के समान पराक्रमी और मदोन्मत्त श्रेष्ठ गजराज की गति सदृश गमन करने वाले होते हैं ।३९।

पगइपयणुकसाया, अप्पिच्छा अणिहिसंचयअचंडा ।
बत्तीस लक्खणधरा, पुढवी पुप्फफलाहारा ।४०।
(प्रकृति प्रतनुकषायाः, अल्पेच्छा अनिधि-संचय-अचण्डाः ।
द्वात्रिंशल्लक्षणधराः, पृथ्वी-पुष्प फलाहारा ।)

वे सब स्वभावतः क्षीण कषाय, स्वल्पेच्छ निधि एवं संचयविहीन शान्त, ३२ लक्षणों से युक्त और पृथिवज खाद्य तथा फलों का आहार करने वाले होते हैं ।४०।

पुढविरसो य सुसाओ मच्छंडियखंड-सक्कर-समाणो ।
पुप्फ पगडु उत्तर रसतरा, अणुवमरसा उ साउफला ।४१।
(पृथ्वीरसश्च सुस्वादः, मत्स्यंडि-खंड-शर्करा समानः ।
पुष्पा प्रकटुत्तर रसतराः, अनुपमरसास्तु स्वादु फलाः ।)

उस समय में पृथ्वी का स्वाद मिश्री अथवा शक्कर के समान मधुर पुष्पों का रस नितान्त परमात्कृष्ट और सुस्वादु, फलों का रस इतना स्वादिष्ट होता है कि उस के स्वाद का वर्णन करने के लिये संसार में कोई उपमा नहीं है ।४१।

पुप्फ फलाणं च रसं, अमयरस-इट्ठतरगं जिणा बिंति ।
संवच्छरपरि सज्जिय, नवनिहिपइ भोयण घराओ ।४२

(पुष्प-फलानां च रसं, अमृतरस-इष्टतरकं जिनाः ब्रुवन्ति ।
संवत्सर-परिसज्जित, नवनिधिपति भोजन-गृहात् ।)

जिनेश्वर भगवान उस समय के फूलों तथा फलों के रस को अमृत रस और नवनिधिपति चक्रवर्ती की पाकशाला में वर्ष भर के परिश्रम से निर्मित भोजन की अपेक्षा भी अत्यन्त इष्टतर अर्थात् स्वादिष्ट बताते हैं ।४२।

भरहाइ दस वि खेत्ता, देव-कुराई वि तत्तिया चेव ।
एते बीसं खित्ता, वियाण पढमिल्लुए अरगो (गे) ।४३।
(भरतादि दशापि क्षेत्रा, देवकुर्वाद्यापि तावत्काः चैव ।
एते विंशति क्षेत्राः, विजानीहि प्रथमिल्लके आरके ।)

पांच भरत, पांच ऐरवत पाँच देवकुरु और पांच ही उत्तरकुरु इन बीस क्षेत्रों में सुषमसुषमा नामक प्रथम आरक की अवधि में इस प्रकार की स्थिति समझनी चाहिए ।४३।

आउसरीरुस्सेहो, सागर कोडीउ जाव चत्तारि ।
पलिओवमाई तिण्णिउ, तिण्णि य कोसा समा भणिया ४४
(आयुशरीरोत्सेधः सागर कोट्यः यावत् चत्वारि ।
पल्योपमानि त्रीणि त्रयो क्रोशाः सभा भणिता ।)

इन बीस क्षेत्रों में सुषमसुषमा नामक प्रथम आरक की चार कोटाकोटि सागरोपम की सम्पूर्ण अवधि में समान रूप से यौगलिक मानवों की आयु तीन पल्योपम और शरीर की लम्बाई तीन कोस बताई गई है ।४४।

एतेसु य खेत्तेसुं, तेसिं मणुयाण पुव्व सुकएणं ।
दसविह दुमाउ तइया, उवभोग-सुहा उवणमंति ।४५।
(एतेषु च क्षेत्रेषु, तेषां मनुजानां पूर्वसुकृतेन ।
दशविधा द्रुमास्तदा, उपभोग-सुखानि उपनमंति ।)

इन बीस क्षेत्रों में उस समय के मानव-मिथुनों को उनके पूर्वोपार्जित पुण्य के फलस्वरूप दश प्रकार के द्रुम अर्थात् कल्पवृक्ष श्रेष्ठ सुखोपभोग की सम्पूर्ण सामग्री तत्काल प्रस्तुत करते हैं ।४५।

मत्तंगयाय भिंगा, तुडियंगा दिव्वजोइचित्तंगा ।
चित्तरसा मणियंगा, गेहागारा अणियणा य ।४६।
(मत्तंगकाश्च भृंगाः, त्रुटितांगा दीप-ज्योति-चित्रांगाः ।
चित्ररसाः मण्यंगा गृहकारा अनग्नाश्च ।)

उन दश प्रकार के कल्पवृक्षों के नाम निम्नलिखित हैं:--
मत्तंग (१) भृंग (२), त्रुटितांग (६), दीप (४), ज्योति (५) चित्रांग (६), चित्ररस (७), मण्यंग (८), गेहकर (९) और अनग्न (१०)।४६

मत्तंगएसु मज्जं सुहवेज्ज भायणाइं भिंगेसु ।
तुडियंगेसु य संगय, तुडियाइं तह प्पगाराइं ।४७।
(मत्तंगकेषु मद्यं, सुख-वेद्यं भाजनानि भृंगेषु ।
त्रुटितांगेषु च संगत— त्रुटितानि तथा प्रकाराणि ।)

मत्तंग नामक कल्पवृक्षों से उन मानवों को अहर्निश सुखानुभूति में मग्न रखने वाला पेय, भृंग नामक कल्पवृक्षों से भाजनपात्रादि, त्रुटितांग नामक वृक्षों से तुरही आदि विविध प्रकार के वाद्य-यन्त्र ।४७।

दीवसिहा जोइसिनामगा य एते करिंति उज्जोयं ।
चित्तंगेसु य मल्लं, चित्तरसा भोयणट्ठाए ।४८।
(दीपशिखा ज्योतिर्नामकाश्च. एते कुर्वन्ति उद्द्योतम् ।
चित्रांगेषु च माल्यं, चित्ररसा भोजनार्थाय ।)

दीपशिखा एवं ज्योति नामक वृक्षों से यथेप्सित सुखद प्रकाश, चित्रांग नामक कल्पद्रुमों से माला, हार आदि मनोज्ञ प्रसाधन और चित्ररस नामक कल्पवृक्षों से भोजन सामग्री ।४८।

मणिअंगेसु य भूसणवराइं, भवणाइं भवणरूवेसु ।
आइण्णेसु य वणियं, वत्थाइं बहुप्पगाराइं ४९।
(मण्यंगेषु च भूषणवराणि, भवनानि भवनरूपेषु ।
अनग्नेषु च वर्णितं, वस्त्राणि बहुप्रकाराणि ।)

मण्यंग नामक कल्पद्रुमों से सभी प्रकार के श्रेष्ठ आभूषण, गेहाकार नामक कल्पवृक्षों से प्रासाद, और अनग्न नामक कल्पतरुओं से भांति भांति के परिधान-वस्त्र उपलब्ध होत हैं ।४९।

एतेसु य अन्नेसु य नर-नारि-गणाण ताण उवभोगो ।
देव-कुराइसु नियओ, भरहाइ (सु) असासओ होइ ।५०।
(एतेषु च अन्येषु च, नरनारिगणानां तेषामुपभोगः ।
देवकुर्वादिषु नियतः, भरतादिषु अशाश्वतः भवति ।)

इन कल्पवृक्षों तथा अन्यान्य कल्पवृक्षों से उन नर-नारी समूहों का उपभोग देवकुरु आदि दश क्षेत्रों में सदासर्वदा नियत और ५ भरत ५ ऐरवत इन दश क्षेत्रों में अशाश्वत अर्थात् अस्थायी होता है ।५०।

ते किंचिवि सावसेसंमि आउए, मिहुणगाइं पसवित्ता ।
कालगया य सुहेण, अइराय सुरालयमुवेंति ।५१।
(ते किंचिदपि सावशेषे आयुषि मिथुनकानि प्रसवित्वा ।
कालगताश्च सुखेन, अचिरात् सुरालयमुपयान्ति ।)

स्वल्प आयु शेष रहने पर वे यौगलिक मानव एक एक मिथुन (एक बालक एक बालिका) को जन्म देकर सुखपूर्वक मृत्यु पा सीधे स्वर्ग में जाते हैं ।५१।

मउया सपारनिरया, उज्जुसहावा अकोहणा अलुद्धा ।
तवसंजमेण विणा, लहंति एयाइं ठाणाइं ।५२।
(मृदवः स्वदारनिरताः ऋजुस्वभावा अक्रोधनाः अलुब्धाः
तप-संयमेन विना, लभंते एतानि स्थानानि ।)

वे लोग प्रकृति से मृदु, स्वदारसंतोषी, सरल, स्वभावी, क्रोध, लोभ तथा तप-संयम रहित इस प्रकार के स्थानों को प्राप्त करते हैं । ५२ ।

एवं तवसंजमनियमेण उ, मुच्चइ सव्वस्स चेव दुक्खस्स ।
अमरवरेसु य पावइ विसिट्ठतरयं विसयसोक्खं ।५३।

(तप संयम नियमेन तु मुच्यते सर्वस्माच्चैवदुःखात् ।
अमरवरेषु च प्राप्नोति विशिष्टतरकं विषयसौख्यं ।)

तप एवं संयम से तो मानव सब प्रकार के दुःखों से (सदा सर्वदा के लिये) मुक्त हो जाता है अथवा श्रेष्ठ देवताओं में विशिष्टतर विषय-सुख को प्राप्त करता है ।५३।

सुसमा सुसमाए एसा, समासओ वंनिया मणूसाणं ।
उवभोगविहि समत्ता, सुसमा एत्तो परं वोच्छं ।५४।
(सुषमा सुषमाया एषा, समासतः वर्णिता मनुष्याणाम् ।
उपभोगविधिः समाप्ता, सुषमां इतः परं वक्ष्यामि ।)

सुषम-सुषमा नामक आरक में मनुष्यों की उपभोग विधि का संक्षेपतः वर्णन समाप्त हुआ । अब उनका सुषमा नामक आरक के समय की भोगविधि का वर्णन करूँगा ।५४।

हरिवरिसाई खेत्ता, दस भरहादी य तत्तिया चैव ।
आसे समासुसमाए, बीए अरगंमि निद्दिट्ठा ।५५।
(हरिवर्षादि क्षेत्राः दश भरतादि च तावत्काश्चैव ।
आसन् समा-सुषमायां, द्वितीये आरके निर्दिष्टाः ।)

हरिवर्ष आदि दश तथा उतने ही भरत आदि क्षेत्रों की सुषमा नामक काल में जो स्थिति थी वह द्वितीय आरक में निर्दिष्ट की गई है ।

अणिगणदीवसिहाविय, तुडियंगा भिंग तह य कोवीणा ।
उरुसहयामोयपमोया, चित्तरसा पच्छरुक्खा य ।५६।
[अनग्नदीप-शिखापि च, त्रुटितांगाः भृंगास्तथा च कोपीनाः ।
उरुसहजा आमोद प्रमोदाः, चित्ररसाः पक्षवृक्षाश्च ।]

अनग्ना, दीपशिला, त्रुटितांगा, भिंगा, कोपीन, उरुसहजा, आमोदा, प्रमोदा, चित्ररसा और पक्षा नामक कल्पवृक्ष द्वितीय आरक के यौगलिकों को भोगोपभोग की सामग्री उपलब्ध कराते हैं ।५६।

वत्थाइं मणिगणेसुं, दीवसिहे पुण करेंति उज्जोयं ।
तुडियंगेसु य गेज्जं भिंगेसु य भायण-विहीउ ।५७।
[वस्त्राणि अनाग्नेयेषु, दीपशिखाः पुनः कुर्वन्ति उद्योतम् ।
त्रुटितांगेषु च गेयं भृंगेषु च भाजनविधयः ।]

अनग्न नायक कल्पवृक्षों से वस्त्र, दीपशिखा-कल्प वृक्षों से प्रकाश, त्रुटितांगों से वाद्य-संगीत, भृंगों से विविध पात्र ।५७।

कोवीणे आभरणं, उरू सुहभोग तह य वण्णगविहीउ ।
आमोएसु य मज्जं मल्लविहीओ पमोएसु ।५८।
[कोपीने आभरणं, उरौ सुखभोगा तथा च वर्णक-विधयः ।
आमोदेषु च मद्यं, माल्यविधयः प्रमोदेषु ।]

कोपीना नामक कल्पवृक्षों से आभरण, उरुसहजा नामक कल्पतरुओं से प्रसाधन-सामग्री आमोदा नामक कल्पवृक्षों से सुख सागर में मग्न रखने वाला पेय, प्रमोदा नामक सुरतरुओं से हार, माला आदि आभूषण ।५८।

चित्तरसेसु य इट्ठा, णाणाविहभक्खभोयणविहीओ ।
पच्छा मंडव सरिसा बोधव्वा कप्परुक्खा य ।५९।
[चित्ररसेसु च इष्टाः नानाविधभक्ष्य भोजनविधयः ।
पक्षाः मण्डप सदृशाः, बोधव्याः कल्पवृक्षाश्च ।]

चित्ररसा नामक कल्पतरुओं से यथेष्ट नानाविध भोज्योपभोज्य सामग्री मिलती है। पक्ष नामक कल्पवृक्ष मण्डप के समान होते हैं। ये दश प्रकार के कल्पवृक्ष समझने चाहिए ।५९।

पासाय जालहंमिय, अणुवमगब्भजालविहिपरया ।
मणिरयणभित्तिचित्ता, रयणुद्दसिराय ।६०।
(प्रासादजालहर्मित अनुपम गर्भ-जाल विधिपरकाः ।
मणिरत्न-भित्तिचित्राः, रत्नोद्वर्वशिराश्च ।।)

वे मण्डपाकार पक्ष नामक कल्पवृक्ष जाली झरोखों से सुशोभित अनुपम कलाकृतिपूर्ण अति सुन्दर सुविशाल प्रासादों के समान होते हैं। वे मणिरत्नमय सुन्दर भित्तिचित्रों से अलंकृत और रत्ननिर्मित गगनचुम्बी शिखरों से शोभायमान होते हैं।६०।

दो गाउय उच्छेहा, पुरिसा ताय होंति महिलाओ ।
दोन्नि पलिओवमाइं, परमाउं तेसि बोधव्वं ६१।
(द्वे, गव्यूते उत्सेधाः, पुरुषाः तथा च भवंति महिलाः ।
द्वे पल्योपमे, परमायुः तेषां बोद्धव्याः ।।)

सुषमा नामक उस द्वितीय आरक के नर तथा नारी गण दो गाऊ (कोस) की ऊंचाई और दो पल्योपम की उत्कृष्ट आयु वाले होते हैं, ऐसा समझना चाहिए।६१।

एसा उवभोगविही, सुसमाए हवइ पुरिस–महिलाणं ।
एक्केक्कपलिय गाउय, परिहीणं आउ उच्चत्तं ।६२।
(एषा उपभोगविधिः सुषमायां भवति पुरुष-महिलानाम् ।
एकैक पल्यं गव्यूतिश्च परिहीनं आयु उच्चत्वं ।।)

सुषमा नामक आरक में पुरुषों तथा महिलाओं की यह उपभोगविधि है। सुषम-सुषमा काल के मनुष्यों की अपेक्षा इस काल के मनुष्यों की आयु एक एक पल्य और ऊंचाई एक एक कोस घट जाती है अर्थात् दो पल्य की आयु एव दो कोस की ऊचाई रह जाती है।६२।

हेमवय हिरण्णवया, दस खेत्ता हवंति भरत खेत्तसमा ।
सुसमदूसम–कालो, आसी तइए उ अरगंमि ।६३।
(हैमवतहिरण्यावर्ताः दश क्षेत्राः भवंति भरतक्षेत्रसमाः ।
सुषमदुषमकालः, आसीत् तृतीये तु आरके ।)

अवसर्पिणी के तीसरे आरक में सुषम-दुषमा नामक काल था। उसमें हैमवत और हिरण्यावर्त आदि दशों क्षेत्र भरत-क्षेत्र के समान (अवस्था वाले) होते हैं।६३।

जो अणुभावो सुसमाए, सो सुसमदूसमाए वि।
दो दोय पलिय गाउय, परिहीणं आउ उच्चत्तं ।६४।
(योऽनुभावः सुषमायां, सः सुषमदुःषमायामपि ।
द्वौ द्वौ च पल्य गव्यूते च, परिहीनं आयु उच्चता ।)

जो जो अनुभाव अथवा परिस्थितियां सुषमा नामक आरक में होती हैं वे ही सुषम-दुःषम नामक आरक में भी होती हैं। मोटे तौर पर अन्तर यह है कि (प्रथम आरक के मनुष्यों की अपेक्षा) इन तृतीय आरक के मनुष्यों की आयु दो दो पल्य तथा ऊंचाई दो दो कोस कम रह जाती है।६४।

पलिओवमलोहद्धं, परमाउं होई तेसि मणुयाणं ।
तइयाए उक्कोसं, अवसाणे पुव्वकोडी उ ।६५।
(पल्योपमलोहार्द्धा, परमायुः भवति तेषां मनुजानाम् ।
तृतीयायां उत्कर्षं, अवसाने पूर्वकोटी तु ।।)

तीसरे आरे में मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु लोहार्द्ध पल्योपम और तृतीय आरक के अवसान काल में एक करोड़ पूर्व रह जाती है।६५।

ओसहि-बल-वीरिय परक्कमा य, संघयण-पज्जवगुणा य ।
अणुसमयं हायंती, उवभोगसुहाणि य नराणं ।६६।
[औषधिबल-वीर्यपराक्रमाश्च, संहनन पर्यव [पर्याय] गुणाश्च ।
अनुसमयं हीयन्ते, उपभोग-सुखानि च नराणाम् ।।]

ओषधि (वनस्पति), बल, वीर्य, पराक्रम, संहनन, पर्याय गुण और मनुष्यों के उपभोग तथा सुख प्रति समय (काल का सबसे सूक्ष्मतम अविभाज्य भाग) निरन्तर हीन अर्थात् कम होते जाते हैं।६६।

मूलफल-कन्द-निम्मल, नाणाविह इट्ठ-गंध-रस-भोगा ।
ववगयरोगायंका, सुरूव सुर-दुन्दुभिथणिया ।६७।

[मूलफलकन्दनिर्मल, नानाविध इष्ट-गंधरस-भोगाः ।
व्यपगत रोगातंकाः सुरूप-सुरदुन्दुभिस्तनिताः ।]

अनेक प्रकार की अभीष्ट सुगन्ध और रसों से युक्त निर्मल मूल, फल एवं कन्दों का उपभोग करने वाले, रोग एवं आतंक से रहित, परम सुन्दर, देवदुन्दुभी के निर्घोष के समान (कर्णप्रिय) स्वर वाले और—।६७।

सच्छंद वणविया (हा) री, ते पुरिसा ताय होंति महिलाउ ।
निच्चा उ य पुप्फफला, ते विय रुक्खा गुण सहीणा ।६८।
(स्वच्छंदवनविहारिणः, ते पुरुषास्ताश्च भवन्ति महिलास्तु ।
नित्यास्तु च पुष्पफलाः, ते ऽपि च वृक्षाः गुण-सहीनाः ।।)

यथेच्छ वनविहारी—वे पुरुष और महिलावर्ग होते हैं । अक्षय्य पुष्पफलशाली वे कल्पवृक्ष भी अपने गुणों से क्रमशः हीन होते जाते हैं ।६८।

नाणा मणिरयणमया, तेसिं सयणासणाइं रुक्खेसुं ।
नरनारीगणो मुइओ, सुहं वसइ तत्थ स सुवइ ।६९।
(नाना मणिरत्नमयाः, तेषां शयनासनानि वृक्षेषु ।
नरनारिगणः मुदितः, सुखं वसति तत्र स स्वपिति ।।)

उन लोगों के, कल्पवृक्षों में विविध मणियों एव रत्नों से जटित शय्याएं एव आसन होते हैं, जिन पर वे सदा प्रमुदित रहने वाले नर-नारी-युगल सुखपूर्वक रहते एवं सोते बैठते हैं ।६९।

ओसप्पिणी इमीए, तइयाए समाए पच्छिमे भाए ।
पलिओवमट्ठभागे, सेसंमि उ कुलगरुप्पत्ती ।७०।
(अवसर्पिण्यामस्यां, तृतीयायाः समायाः पश्चिमे भागे ।
पल्योपमाष्टभागे, शेषे तु कुलकरोत्पत्तिः ।।)

इस अवसर्पिणी काल के तृतीय आरक के अन्तिम भाग में एक पल्योपम का आठवां भाग अवशिष्ट रहने पर कुलकरों को उत्पत्ति होती है ।७०।

अद्ध भरहमज्झिल-तिभागे गंगासिंधुमज्झंमि ।
एत्थ बहुमज्झ देसे, उप्पन्ना कुलगरा सत्त ।७१।
(अर्ध भरतमध्यस्थ, त्रिभागे गंगा-सिन्धु-मध्ये ।
अत्र बहुमध्यदेशे, उत्पन्नाः कुलकराः सप्त ।।)

भरतार्द्ध के मध्यस्थित त्रिभाग के गंगा और सिन्धु के बीच के प्रदेश के ठीक मध्यस्थ भू-भाग में (क्रमशः) सात कुलकर उत्पन्न हुए ।७१।

पुव्वभवजंम नामप्पमाण-संघयणमेवसंठाणं ।
विणिच्छिआउभागा, भवणोवाओ य नीती य ।७२।
(पूर्वभव-जन्म नाम-प्रमाण, संहननमेवं संस्थानम् ।
विनिश्चितायुभागः, भवनोत्पादश्च नीतिश्च ।।)

मैं (उनके) पूर्व भव; जन्म नाम प्रमाण, संहनन, संस्थान, निश्चित आयु-भाग, भवन निर्माण और नीतियों का कथन करूंगा ।७२।

अवरविदेहे दो वणिय-वयंसा माइ उज्जुए चेव ।
कालगया इह भरहे, हत्थीमणुओ य आयाय ।७३।
[अपरविदेहे द्वौ वणिक् वयस्यौ मायावी ऋजुकश्चैव ।
कालगता इह भरते, हस्ती मनुजश्च आयातः ।।]

अपर विदेह क्षेत्र में दो वणिक मित्र थे । उनमें से एक वणिक् मायावी और दूसरा सरल प्रकृति का था । मर कर वे दोनों यहां भरत क्षेत्र में उत्पन्न हुए । मायावी वणिक् का जीव हाथी के रूप में और ऋजु-प्रकृति वणिक् का जीव मनुष्य के रूप में ।७३।

दट्ठुं सिणेहकरणं, गयमारूहणं च नामनिप्फत्ती ।
परिहाणिम्मिह कलहो, सामत्थण-विणवणं हत्थी ।७४।
[दृष्ट्वा स्नेहकरणं, गजमारोहणं च नामनिष्पत्तिः ।
परिहानौ इह कलहः, सामर्थन-विज्ञपनं हस्ती ।।]

मनुष्य (विमलवाहन नामक प्रथम कुलकर) और हाथी ने एक दिन परस्पर एक दूसरे को देखा। पूर्वजन्म की मैत्री के कारण तत्काल उन दोनों का परस्पर स्नेह हो गया। हाथी उस पुरुष के पास आकर बैठा और वह पुरुष उस पर आरूढ़ हो एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमने लगा। सुन्दर श्वेत गजराज पर आरूढ़ उस पुरुष को देखकर यौगलिकों ने उसका नाम विमलवाहन रक्खा। काल प्रभाव से कल्प-वृक्षों एवं उनके द्वारा प्राप्त होने वाली भोग-सामग्री के परिक्षीण होने पर यौगलिकों में कल्पवृक्षों के स्वामित्व के प्रश्न को लेकर कलह होने लगे। कलह के मूल कारण पर यौगलिकों ने परस्पर विचार-विमर्श किया और विमलवाहन को अपना मुखिया मानकर उसके समक्ष सामूहिक रूप से निवेदन किया कि वह उनके आपसी कलह को दूर करें। विमलवाहन ने उस श्वेत हस्ती पर आरूढ़ हो सर्वत्र घूम घूम कर यौगलिकों में कल्पवृक्षों का समुचित बंटवारा किया।७४।

पढमित्थ विमलवाहण, चक्खुम जसमं चउत्थमभिचंदे ।
तत्तो अ पसेणइए, मरूदवे चेव नाभी य ।७५।
[प्रथमोऽत्र विमलवाहनः, चक्षुम-यशोमान् चतुर्थ अभिचंद्रः ।
ततश्च प्रसेनजितकः मरुदेवश्चैव नाभिश्च ।७५।

उन सात कुलकरों के नाम इस प्रकार हैं :—विमलवाहन (१), चक्षुष्मान (२), यशोमान (३), अभिचन्द्र (४), प्रसेनजित् (५), मरुदेव (६) और नाभि (७) ।७५।

नवधणुसयाइं पढमो, अट्ठ य सत्तद्ढ सत्तमाई च ।
छच्चेव अद्धछट्टा, पंचसया पणवीसा य ।७६ दारं।
(नव-धनुशतानि प्रथमः, अष्टौ च सप्तार्ध सप्तमानं च ।
षट्चैव अर्धषष्ठं, पंचशता-पंच विंशतिश्च ।७६द्वारं।)

प्रथम कुलकर के शरीर की ऊंचाई ९०० धनुष, द्वितीय की ८०० धनुष, तृतीय की ७५०, चतुर्थ की ७००, पंचम की ६००, छटे की ५५० और सातवें कुलकर के शरीर की लम्बाई ५२५ धनुष थी ।७६।

वज्जरिसह संघयणा, समचउरंसा य हुंति संठाणे ।
वण्णं वि य वुच्छामि, पत्तेयं जस्स जं आसी ।७७।
[वज्रऋषभ-संहननाः, समचतुरस्राश्च भवन्ति संस्थाने ।
वर्णमपि च वक्ष्यामि, प्रत्येकं यस्य यदासीत् ।।]

ये सभी कुलकर वज्रऋषभनाराच-संहनन और समचतुरस्र संस्थान के धारक थे। इनमें से प्रत्येक का जो जो वर्ण था, उसका भी मैं कथन करूंगा ।७७।

चक्खुम जसमं च पसेणइय, एते पियंगुवण्णाभा ।
अभिचंदोससिगोरो; निम्मलकणगप्पभा सेसा ।७८।
[चक्षुमान यशोवांश्च प्रसेनजित्, एते प्रियंगुवर्णाभाः ।
अभिचन्द्रः शशिगौरः; निर्मल-कनकप्रभाः शेषाः ।]

इनमें से चक्षुष्मान, यशोमान और प्रसेनजित, ये तीन कुलकर जामुन के समान वर्ण वाले, अभिचन्द्र कुलकर चन्द्रमा के समान गौर वर्णवाले और शेष तीन—विमलवाहन, मरुदेव तथा नाभि कुलकर कुन्दन के समान वर्ण वाले थे ।७८।

चंदजस चंदकंता; सुरूव पडिरूव चक्खुकंता य ।
सिरिकंता मरुदेवी; कुलगरपत्तीण नामाइं ।७९।
[चन्द्रयशा चन्द्रकान्ता; सुरूपा प्रतिरूपा चक्षुकान्ता च ।
श्रीकान्ता मरुदेवी; कुलकर-पत्नीनां नामानि ।।]

कुलकरों की पत्नियों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—चन्द्रयशा (१), चन्द्रकान्ता (२), सुरूपा (३), प्रतिरूपा (४), चक्षुकान्ता (५), श्रीकान्ता (६) और मरुदेवी (७) ।७९।

संघयणं संठाणं, उच्चत्तं चेव कुलगरेहिं समं ।
वण्णेण एगवण्णा, सव्वाउ पियंगुवण्णा उ । ८० ।
(संहननं संस्थानं, उच्चता चैव कुलकरैः समं ।
वर्णेन एकवर्णाः, सर्वाः प्रियंगुवर्णास्तु ।)

इन कुलकर पत्नियों के संहनन संस्थान और शरीर की ऊंचाई उनके पति के समान ही थी। शरीर के वर्ण की दृष्टि से वे सभी केवल एक प्रियंगु (जामुन) वर्ण की थीं।८०।

पलिओवम दसभाओ, पढमस्साऊ तओ असंखिज्जा।
ते आणुपुव्विहीणा, पुव्वा नाभिस्स संखेज्जा।८१।
(पल्योपमदशभागः प्रथमस्य आयुः तत असंख्येयाः।
ते आनुपुर्व्या हीना, पूर्वा नाभेः संख्येयाः)

प्रथम कुलकर विमलवाहन की आयु पल्योपम का दशवां भाग थी। तदनन्तर द्वितीय कुलकर से छठे कुलकर—इन पांच कुलकरों की आयु असंख्यात पूर्व की किन्तु पूर्ववर्ती से पश्चाद्वर्ती की उत्तरोत्तर अल्प थी। अन्तिम कुलकर नाभि की आयु संख्यात पूर्व की थी।८१।

[1]पुव्वस्स उ परिमाणं, सयरिं खलु हुंति कोडिलक्खाउ।
छप्पन्नं च सहस्सा, बोधव्वा वास-कोडीणं।८२।
(पूर्वस्य तु परिमाणं, सप्ततिः खलु भवन्ति कोटिलक्षाः।
षट्पंचाशच्च सहस्राः, बोद्धव्याः वर्ष कोटीनाम्।)

पूर्व का परिमाण यह है कि ७० करोड़ लाख और ५६ हजार करोड़ वर्षों का एक पूर्व होता है।८२।

जं चेव आउयं कुलगराणं, तं चेव होई तासिंपि।
जं पढमगस्स आउं तावईयं होइ हत्थिस्स। ८३।

---

१. होई पुव्वंगमेगं, चुलसीई वरिसलक्ख सखाए।
तं तग्गुणं तु पुव्वं, सत्तरि छप्पन्न दसलक्खा॥
भणियं च—पुव्वस्स उ परिमाणं, सयरिं खलु होति कोडि-लक्खाओ।
छप्पनं च सहस्सा, बोधव्वा वास-कोडीणं॥
—कहावली-(अप्रकाशित)

(यच्चैव आयुषं कुलकराणां, तच्चैव भवति तासामपि ।
यत्प्रथमकस्यायुः, तावत्कं भवति हस्तिनः ।)

कुलकरों की जितनी आयु होती है, उतनी ही आयु कुलकर पत्नियों की भी होती है। प्रथम कुलकर की आयु के समान ही उनके हाथी की भी आयु होती है ।८३।

जं जस्स आयुयं खलु, तं दसभाए समं विभइऊणं ।
मज्झिलअं निभागं, कुलगर-कालं वियाणाहिं ।८४।
(यद्यस्य आयुष्यं खलु, तत् दशभागैर्समं विभज्य ।
मध्यमकं त्रिभागं, कुलकर-कालं विजानीथ ।)

जिस कुलकर की जितनी आयु है, उस आयु को समान रूप से दश भागों में विभाजित किया जाय। उन दश भागों में से मध्य के तीन भागों को कुलकर का कुलकर-काल समझना चाहिए ।८४।

पढमो य कुमारत्ते, भागो चरिमो य वुड्ढभावंमि ।
तप्पयणुपेज्जदोसा, सव्वे देवेसु उववण्णा ।८५।
(प्रथमश्च कुमारत्वे, भागः चरमश्च वृद्धभावे ।
तत्प्रतनुप्रेयदोषाः, सर्वे देवेषु उत्पन्नाः ।)

प्रत्येक कुलकर का उसकी आयु के दश भागों में से कुलकर-काल के पहले का भाग कुमारावस्था में और अन्तिम भाग वृद्धावस्था में व्यतीत होता है ।८५।

दो चेव सुवण्णेसुं उदहिकुमारेसु होंति दो चेव ।
दो दीवकुमारेसुं एगो नागेसु उववण्णो । ८६ ।
(द्वौ चैव सुवर्णेषु, उदधिकुमारेषु भवतः द्वौ चैव ।
द्वौ दीपकुमारेषु, एकः नागेषु उपपन्नः ।)

उन सात कुलकरों में से दो कुलकर स्वर्णकुमारों में, दो उदधिकुमारों में, दो दीपकुमारों में उत्पन्न हुए तथा एक नागकुमारों में ।८६।

आइल्ला छव्वित्थीओ, नागकुमारेसु हुंति उववण्णाः ।
एगा सिद्धिंपत्ता, मरुदेवी नाभिणं पत्ती । ८७ ।
(आद्याः षडपि स्त्रियः, नागकुमारेषु भवन्ति उपपन्ना ।
एका सिद्धिं प्राप्ता मरुदेवी नाभेः पत्नी ।)

सात कुलकर पत्नियों में से आदि की छः नागकुमारों में उत्पन्न हुईं और अन्तिम एक नाभि कुलकर की पत्नी मरुदेवी सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हुई ।८७।

हक्कारे मक्कारे, धिक्कारे चेव दंडनीईओ ।
वोच्छं तासिं विसेसं जहक्कमं आणुपुव्वीए । ८८ ।
(हक्काराः मक्काराः धिक्काराश्चैव दण्डनीत्यः ।
वक्ष्ये तासां विशेषं यथाक्रमं आनुपूर्व्या ।)

उन कुलकरों की 'हक्कार', 'मकार' और 'धिक्कार'—ये तीन प्रकार की दण्डनीतियां थीं । मैं उनका विशेष रूप से अनुक्रमशः कथन करूंगा ।८८।

पढमबीयांण पढमा, तइयचउत्थाण अहिणवा बिया ।
पंचम छट्ठस्स य, सत्तमस्स विसेसं तइया अभिणवाउ ।८९।
(प्रथमद्वितीययोः प्रथमा, तृतीयचतुर्थयोः अभिनवा द्वितीया ।
पंचमषष्ठयोश्च, सप्तमस्य विशेषं तृतीया अभिनवा तु ।।)

प्रथम और द्वितीय कुलकर ने अपने कुलकर-काल में पहली 'हक्कार' दण्डनीति का प्रयोग किया । तीसरे और चौथे कुलकरों ने (प्रथम दण्डनीति के साथ साथ) 'मकार' नामक दूसरी नवीन दण्डनीति का और तदनन्तर पांचवें, छट्ठे और सातवें कुलकरों ने पहली दो दण्डनीतियों के साथ २ विशेषतः अभिनवा तीसरी दण्डनीति—'धिक्कार' का प्रयोग किया ।८९।

एवं चेव वत्तव्वा (बया), एरवयाईसु नवसु खेत्तेसु ।
इक्किक्कंमि य तइया, सत्तेव य कुलगरा कमसो ।९०।

(एवं चैव वक्तव्याः, एरवतादिषु नवसु क्षेत्रेषु ।
एकैके च तदा, सप्तैव च कुलकराः क्रमशः ।।)

ऐरवत आदि ६ क्षेत्रों में भी इसी प्रकार की वक्तव्यता समझनी चाहिए। उनमें से प्रत्येक क्षेत्र में उसी काल में क्रमशः सात-सात कुलकर उत्पन्न हुए ।९०।

सव्वे विमाणप्पवरे, अणुत्तरे भुंजिऊण से भोए ।
सव्वट्ठसिद्धिनामे, उदहिसमाणाइं तेत्तीसं ।९१।
(सर्वे विमानप्रवरे, अनुत्तरान् भुक्त्वा ते भोगान् ।
सर्वार्थसिद्धि समानानि, उदधि समानानि त्रयत्रिंशत् ।।)

पांच भरत तथा पांच ऐरवत—इन दशों क्षेत्रों में इस अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थङ्करों के च्यवन कल्याणक का विवरण प्रस्तुत करते हुए 'तित्थोगाली पइन्नयकार कहते हैं :—

वे सब (दशों प्रथम तीर्थङ्करों के जीव) विमानों में सर्वोत्कृष्ट सर्वार्थसिद्ध नामक विमान में तेतीस सागरोपम तक सर्वोत्तम दिव्य भोगों का उपभोग कर ।९१।

ओसप्पिणी इमीसे, तइयाए समाए पच्छिमे भाए ।
चइऊण विमाणाउ, उत्तरासाढाहि नक्खत्ते ।९२।
(अवसर्पिण्यामस्यां, तृतीयायाः समायाः पश्चिमे भागे ।
च्युत्वा विमानात्, उत्तराषाढायां नक्षत्रे ।।)

इस अवसर्पिणी काल के तृतीय आरक के अन्तिम भाग में, उत्तराषाढा नक्षत्र में उस (सार्वार्थसिद्ध) विमान से च्यवन कर ।९२।

कुलगर वंसपसूओ, आसी इक्खागवंस-संभूओ ।
नाभीनाम कुलगरो, पवरो तेसिं नरगणाणं ।९३।
(कुलकरवंशप्रसूतः आसीत् इक्ष्वाकुवंशसंभूतः ।
नाभिर्नामकुलकरः, प्रवरः तेषां नरगणानाम् ।।)

कुलकर वंश में जन्म ग्रहण किये हुए इक्ष्वाकुवंशावतंस, उस समय के मनुष्यों में सर्वाधिक श्रेष्ठ जो नाभि नामक कुलकर थे ।९३।

तस्साणुरूवसी सा, सव्वंगोवंगलक्खण-पसत्था ।
उत्तमरूव सरूवा, जाया मरुदेवि नामित्ति ।९४।
(तस्यानुरूपवती सा, सर्वाङ्गोपाङ्गलक्षणप्रशस्ता ।
उत्तमरूप-सुरूपा, जाया मरुदेविनामेति ।।)

उनकी, उनके समान परम रूपवती, सभी अंगोपांगों के समस्त सुलक्षणों से श्रेष्ठ, उत्तम रूप और स्वरूप सम्पन्ना मरुदेवी नामक पत्नी थी ।९४।

तीए उदरंमि तीसो, तिनाणसहिओमहायसो भयवं ।
गब्भत्ता उववन्नो, पढमीसो भरहवासस्स ।९५।
(तस्या उदरेत्रयीशः त्रिज्ञानसहितः महायशा भगवान् ।
गर्भतया उपपन्नः, प्रथमेशः भरतवर्षस्य ।।)

उन मरुदेवी की कुक्षि में तीन ज्ञानधारी महायशस्वी त्रैलोक्य-नाथ भगवान् भारतवर्ष के प्रथम अधिपति आविर्भूत हुए ।९५।

एवं नव तित्थयरा, चंदाणणमाइ नवसु खेत्तेसु ।
चइऊण विमाणधरा, उत्तरसाढाहिं नक्खत्ते ।९६।
(एवं नव तीर्थंकराः, चन्द्रानन आदि नवसु क्षेत्रेषु ।
च्युत्वा विमानधराः, उत्तराषाढायां नक्षत्रे ।।)

इसी प्रकार ऐरवत आदि ९ क्षेत्रों में चन्द्रानन आदि ९ तीर्थङ्कर उत्तराषाढा नक्षत्र में विमानों से चव कर ।९६।

कुलगरवंसपसूआ, आसी इक्खागवंस संभूया ।
नवकुलगर नाभिसमा, पवरा तेसिं नरगणाणं ।९७।
(कुलकरवंशप्रसूताः आसन् इक्ष्वाकुवंश-संभूताः ।
नव कुलकर-नाभिसमाः, प्रवराः तेषां नरगणानाम् ।।)

(उपर्युक्त ९ क्षेत्रों में उसी समय) कुलकर वंश में प्रसूत, इक्ष्वाकुवंशावतंस नाभि कुलकर के ही समान उस समय के मानवों में श्रेष्ठतम ९ कुलकर हुए ।९७।

उत्तमरूवसरूवा, तेसिं भज्जाउ कुलगराणं तु ।
तासिं उदरुपन्ना, नवसु वि वासेसु तित्थयरा ।९८।
(उत्तमरूपस्वरूपाः तेषां भार्याः कुलकराणां तु ।
तासामुदरोत्पन्नाः, नवस्वपि वर्षेषु तीर्थंकराः ।।)

उन कुलकरों की परम रूप लावण्य सम्पन्ना पत्नियां थीं। उन ६ कुलकर पत्नियों की कुक्षियों में ऐरवत आदि ६ ही क्षेत्रों में ६ तीर्थङ्कर आविर्भूत हुए ।९८।

एवं दस भवणीसा, दससुवि वासेसु हुंति समकालं ।
उत्तमरूवसुरूवा, तिनाणसहिआ महाभागा ।९९।
(एवं दश भुवनीशाः, दशष्वपि वर्षेषु भवन्ति समकाले ।
उत्तमरूप-सुरूपाः, त्रिज्ञानसहिताः महाभागाः ।।)

इस प्रकार भरत ऐरवत आदि दशों क्षेत्रों में, एक ही समय में परमोत्तम रूपस्वरूप सम्पन्न, मति, श्रुति एवं अवधि इन तीन ज्ञान के धारक तथा महा भाग्यवान् दश त्रिभुवनेश्वर (तीर्थङ्कर) होते हैं ।९९।

मरुदेवी पमुहाउ, विकसियकमलाणणाउ रयणीओ ।
पिच्छंति सुहपसुत्ता चोद्दस पवरे महासुमिणे ।१००।
(मरुदेवी प्रमुखास्तु, विकसित-कमलाननाः रजन्याम् ।
प्रेक्षन्ति सुखप्रसुप्ताः चतुर्दशप्रवरान् महास्वप्नान् ।।)

प्रफुल्लित कमल के समान मुखवाली मरुदेवी प्रमुख (दशों क्षेत्रों की दशों कुलकरपत्नियां रात्रि के समय सुखभरी निद्रा में सोई हुईं चौदह सर्वोत्कृष्ट महास्वप्न देखती हैं ।१००।

संखेंदुकुंदगोरं विउलक्खंदं सुतिक्ख-सिंगग्गं ।
नियनियवयणमभिगयं, वसभं पेच्छन्ति विलसंतं ।१०१।
(शंखेन्दुकुंदगौरं, विपुलस्कन्धं सुतीक्ष्णशृंगाग्रम् ।
निजनिजवदनमभिगतं, वृषभं प्रेक्षन्ति विलसन्तम् ।।)

पहले स्वप्न में वे शंख एवं चन्द्रमा के समान नितान्त गौरवर्ण के, उभरे हुए पेशल स्कंधों वाले, सुन्दर तथा तीखे सींगों वाले देदीप्यमान वृषभ को अपने अपने मुख में प्रवेश करते हुए देखती हैं।१०१।

बीइयंमि भिंगकरडं[1] सत्तंगपइट्ठियं धवल-दंतं ।
उत्थिय-करं गइंदं, सुरिंद-नागप्पभं पुरओ । १०२ ।
(द्वितीये भृङ्गकरटं, सप्तांगप्रतिष्ठितं धवलदंतम् ।
उत्थित करं गजेन्द्रं सुरेन्द्रनागप्रभं पुरतः ।)

दूसरे स्वप्न में (वे दशों जिन-माताएं) ऐरावत के समान सूंड को ऊपर उठाए हुए, शुभ्र श्वेत दांतों एवं श्रेष्ठ सप्तांग वाले ऐसे सुन्दर गजराज को अपने सम्मुख देखती हैं, जिसके कपोलों के चारों ओर मदपान और मधुर गुंजार करते हुए भ्रमरों के झुण्ड मंडरा रहे हैं।१०२।

विक्खिण्ण केसरसहं,[2] महुगुलियक्खं सुजायलांगूलं ।
हरिण-विवक्खं सक्खं,[3] सुतिक्ख नहं तओसीहं ।१०३।
(विकीर्ण केसरसखं, मधुगुलिताक्षं सुजात लांगूलम् ।
हरिण-विपक्षं साक्षात् सुतीक्ष्णनखं ततः सिंहम् ।)

वे तीसरे स्वप्न में फलाई हुई केसर, मधु के समान पिंगलवर्ण की आंखों, सुनिष्पन्न पूंछ और तीखे नखों वाले मृगारि सिंह को अपने सम्मुख देखती हैं।१०३।

चउहिं चउदंतेहिंय, नागवरिंदेहिं धवलदंतीहिं ।
सिरि-अभिसेयं पेच्छंति, जिणवराणं तु जणणीओ ।१०४।
(चतुर्भिश्चतुर्दंतैश्च, नागवरेन्द्रैर्धवलदन्तैः ।
श्री-अभिषेकं प्रेक्षन्ति, जिनवराणां तु जनन्यः ।)

---

१ करड-करट-किरति मदं-कृ-अटन् गज गजगण्डे ।
२ सह अव्यय-सार्द्धं शब्दार्थे-प्राकृतत्वादनुस्वारम् ।
३ सक्ख—साक्षात् (अव्यय.) ।

वे दशों तीर्थङ्करों की माताएं, गजराजों में श्रेष्ठ चार चार दांतों वाले श्वेत हस्तियों द्वारा लक्ष्मी का अभिषेक किया जा रहा है, इस प्रकार का चौथा स्वप्न देखती हैं।१०४।

नाणारयण-विचित्तं, वियसियकमलुप्पल-सुरभिगंधिं ।
छप्पय गणोववेयं, दामं, पेच्छंति सुसिलिट्ठं । १०५ ।
(नानारत्न विचित्र, विकसित कमलोत्पल सुरभिगंधिम् ।
षट्पद गणोपपेतं, दाम, प्रेक्षन्ति सुश्लिष्टम् ।)

अनेक प्रकार के रत्नों के साथ गूंथी गई, उसमें पिरोये गये अनेक प्रकार के कमलोत्पलादि में विकसित पुष्पों से मनमोहक सुगन्ध वाली और भ्रमरों के झुण्डों द्वारा सेवित अति कमनीय अपूर्व माला को वे जिन-जननियां पांचवें स्वप्न में देखती हैं।१०५।

उदयगिरिमत्थयत्थं, रस्मिसहस्सेहिं समणुगम्मंतं ।
पेच्छंति सुहपसुत्ता, कुमुदागरबोहगं चंद ।१०६।
(उदयगिरिमस्तकस्थं, रश्मिसहस्रैर्समनुगमन्तम् ।
प्रेक्षन्ति सुख प्रसुप्ता कुमुदाकर बोधकं चन्द्रम् ।)

तदनन्तर सुखभर निद्रा में सोई हुई वे दशों तीर्थङ्करों की माताएँ छठे स्वप्न में उदयाचल के उच्चतम शिखर पर स्थित, सहस्र किरणों के परिवार सहित बढ़ते हुए, तथा कुमुदवनों को प्रफुल्लित करने वाले चन्द्रमा को देखती हैं।१०६।

एवं वियसियवयणा, रविमंडलमुज्जलं पगासंतं ।
पेच्छिंति अंबरगय, अब्भामत्थ ट्ठियं पुरओ ।१०७।
(एवं विकसितवदनाः, रविमण्डलमुज्जवलं प्रकाशन्तम् ।
प्रेक्षन्ति अंबरगतं, अभ्रमस्तके स्थितं पुरतः ।)

इसी प्रकार प्रसन्नमुखी वे जिन-माताएं सातवें स्वप्न में आकाश के शिरोभाग पर स्थित उज्ज्वल सूर्यमण्डल को आकाश में अपने सम्मुख देखती हैं, जो कि समस्त संसार को प्रकाशित कर रहा है।१०७।

दिव्वं रयण विचित्रं; पेच्छंति महांसुयं परमरम्मं ।
निवज्जवज्जसारं, विज्जुज्जल चंचल-पडागं ।१०८।
(दिव्यं रत्नविचित्रं, प्रेक्षंति महांशुकं परमरम्यम् ।
निर्वद्यवज्रसारं, विद्युदुज्ज्वल —चंचलपताकम् ।)

आठवें स्वप्न में वे विविध दिव्य रत्नों से जटित, परम रम्य, महांशुक (अनुपम वस्त्र विशेष) से निर्मित, उत्तमवज्र की सारभूत; बिजली की झलक के समान उज्ज्वल प्रकाशमान चंचल पताका जिसमें लगी हुई है, ऐसे— ।१०८।

तुङ्गं गयण विलग्गं, धरणियल पइट्ठियं महाकायं ।
आगासमुवमिणेउं, ठियं महिंदज्झय पुरओ ।१०९।
(तुङ्ग गगनविलग्नं, धरणितलप्रतिष्ठितं महाकायम् ।
आकाशमुपमेतु, स्थित महीन्द्रध्वज पुरतः ।।)

मानों आकाश को मापने के लिये उत्तुंग गगन के उपरितन छोर को स्पर्श करते हुए, पृथ्वीतल पर प्रतिष्ठित महान् विशालकाय महेन्द्र ध्वज को अपने सम्मुख स्थित देखा ।१०९।

हेमंत बाल दिणयर, समप्पभं सुरभिवारिपडिपुण्ण ।
दिव्व कंचण-कलसं, पउम-पिहाणं तु पेच्छंति ।११०।
(हेमन्त बाल-दिनकरसमप्रभं सुरभिवारिपरिपूर्णम् ।
दिव्यं कंचनकलशं, पद्म-पिधानं तु प्रेक्षन्ति ।।)

हेमन्त ऋतु के उदीयमान सूर्य के समान नयनाभिराम प्रभावाले, सुगन्धित जल से परिपूर्ण, पद्म के पिधान से ढके हुए दिव्य कंचन कलश को उन जिन-जननियों ने नौवें स्वप्न में देखा ।११०।

फलिह-सरिच्छच्छजल सउणगण निसेवियं मणभिराम ।
वियसिय पउमसरं तं, पेच्छंति उ हरिसिय-मणाउ ।१११।
[स्फटिकसदृशाच्छजलं, शकुन गणनिसेवितं मनोऽभिरामम् ।
विकसित पद्मसरं तं; प्रेक्षन्ति तु हर्षित मनास्तु ।]

दसवें स्वप्न में हर्षितमना वे दशों तीर्थङ्करों की माताएं स्फटिक रत्न के समान स्वच्छ जल से परिपूर्ण, भांति-भांति के पक्षि-समूहों से सेवित और विकसित पद्मसरोवर को देखती हैं ।१११।

उम्मिसहस्सपउरं, नाणाविहमच्छकच्छ भाइण्णं ।
गम्भीरगज्जियरावं, खीरसमुद्दं तु पेच्छंति ।११२।
(उर्मि सहस्र प्रचुरं, नानाविध मत्स्य कच्छभाकीर्णम् ।
गम्भीरगर्जितरवं, क्षीरसमुद्रं तु प्रेक्षन्ति ।)

तदनन्तर ग्यारहवें स्वप्न में वे प्रचुर सहस्रों लहरों से शोभायमान, अनेक प्रकार के मत्स्यों एवं कच्छपों से संकुल (भरे) और गम्भीर गर्जन करते हुए क्षीर समुद्र को देखती हैं ।११२।

वज्जमिरीइकवयं, विणिमुयंतं समूसियमुदारं ।
पासायं पेच्छंती पडागमालाउलं रम्मं ।११३।
(वज्र-मिरीचिकवचं, विनिमुंचन्तं समुच्छ्रितमुदारम् ।
प्रासादं[1] प्रेक्षन्ति, पताकामालाकुलं रम्यम् ।)

बारहवें स्वप्न में वे जिनेश्वरों की माताएं वज्र की किरणों के कवच को छोड़ते हुए, पताकाओं की पंक्तियों से संकुल, गगनचुम्बी, विशाल सुरम्य प्रासाद को देखती हैं ।११३।

स्पष्टीकरण—प्रचलित मान्यता और सत्तरिसय ठाण प्रकरण के अनुसार जिन-तीर्थंकरों के जीव विमानों से च्यवन कर माता के गर्भ में आते हैं । उनकी माताएं बारहवें स्वप्न में विमान देखती हैं । जिन तीर्थंकरों के जीव नरक से आते हैं उनकी माताएं बारहवें स्वप्न में भवन देखती हैं । यथा:—नरयउट्ठाण इहं, भवणं सग्गचुयाण उ विमाणं ।

किन्तु तित्थोगाली पइन्नयकार ने बारहवें स्वप्न में तीर्थंकरों की माताओं द्वारा प्रासाद अथवा नाग भवन के दर्शन का उल्लेख करते हुए स्पष्ट लिखा है कि भगवान् ऋषभदेव का जीव सर्वार्थसिद्ध विमान से च्यवन कर माता के गर्भ में आया उस समय माता मरुदेवी

---

१ पासाय–प्रासाद—पुं० । देवानां राज्ञां च भवने–[भगवती, श. ५, उ. ३]

ने बारहवें स्वप्न में प्रासाद देखा। प्रासाद का अर्थ देवभवन तो होता है पर विमान नहीं। तित्थोगाली पइन्नयकार ने बारहवें स्वप्न में नागभवन के देखने का भी उल्लेख किया है। भवनपति देवताओं के आवास भवन ही कहलाते हैं न कि प्रासाद। ऐसी दशा में प्रस्तुत ग्रन्थ में उल्लिखित 'प्रासाद' कहीं विमान के अर्थ में तो प्रयुक्त नहीं हुआ है—यह विद्वानों के लिये विचार का विषय है।

मंदरगुहगंभीरं, पमुइय पक्कीलियं मणभिरामं।
नाग-भवणं महंतं, पेच्छंति पीवर सिरीयं।११४।
(मंदरगुहा गभीरं, प्रमुदित प्रक्रीडितं मनोऽभिरामम्।
नागभवनं महान्तं, प्रेक्षन्ति पीवर श्रीकम्।)

बारहवां दूसरा स्वप्न :—(अथवा)—मंदराचल की गुफा के समान गहन गम्भीर, प्रमोद बढ़ाने वाला, क्रीडा योग्य, अत्यन्त मनोरम और अक्षय श्रीसम्पन्न महान् नाग भवन को देखती हैं।११४।

सिट्ठिंधणपज्जलियं, बहुयावहं नियय भूइसंयुत्तं।
पेच्छंति रयणचयं, किरणावलि-रंजिय दिसो [द] हं।११५।
(श्रेष्ठेन्धन प्रज्ज्वलितं, बहुधावहं निजकभूति संयुक्तम्।
प्रेक्षन्ति रत्नचयं[1], किरणावलिरंजित दिशोदशम्।)

तीर्थङ्करों की मरुदेवी आदि दशों माताएं १३ वें स्वप्न में घृत, कपूर, अगरु, धूप, चन्दन आदि श्रेष्ठ इंधन से प्रज्वलित, अपने ज्वाला-माला, जगमगाहट, ज्योति आदि सभी वास्तविक गुणों से सम्पन्न अग्नि के समान अपनी किरणावलि से दशों दिशाओं को प्रकाशित करती हुई रत्नराशि को देखती हैं।११५।

परिणय कुसुंभ सरिसं, आहुइपउरं हुयासणजलियं।
तणु पवणेरियजालं, निद्धूम पयक्खिणासत्तं।११६।
(परिणत कुसुंभ सदृशं[2] आहुति-प्रवरं हुताशनज्वलितम्।
तनु-पवनेरितज्वालं, निर्धूम प्रदक्षिणासक्तम्।)

---

१ चयन चयः। पिण्डी भवने (अनुयोगद्वार, सटीक)

२ आफू के खिले पुष्प के समान।

चौदहवें स्वप्न में मरुदेवी आदि जिन-माताएं पके हुए आफू (खस-तिजारा) के फूल के समान, श्रेष्ठ आहुतियों से प्रज्वलित, मन्द-मन्द पवन द्वारा प्रेरित ज्वालाओं वाली प्रदक्षिणासक्त निर्धूम-अग्नि को देखती हैं।११६।

एयं चौद्दस सुमिणं, ताउ पेच्छंति वीरजणणीओ ।
मरुदेवी पमुहाओ, कहिंसु नियकुलगराणं तु ।११७।
(एतान् चतुर्दश स्वप्नान्, तास्तु प्रेक्षन्ति वीरजनन्यः ।
मरुदेवी प्रमुखाः, कथयन्ति निजकुलकराणान्तु ।)

मरुदेवी आदि दशों ही वीर महापुरुषों की माताएं इन उपर्युक्त चौदह स्वप्नों को देखती हैं और अपने अपने कुलकर को अपने स्वप्न सुनाती हैं।११७।

तो ते कुलगरनाहा, जायाओ भणंति सोहणं वयणं ।
होहिंति तुम्ह पुत्ता, कित्तीज्जुत्तामहासत्ता ।११८।
(ततः ते कुलकरनाथाः, जायान् भणन्ति शोभनं वचनम् ।
भविष्यन्ति युष्माकं पुत्राः, कीर्तियुक्ताः महासत्त्वाः ।)

स्वप्नों को सुनने के पश्चात् वे दशों कुलकर पति अपनी-अपनी पत्नियों को इस प्रकार के सुहावने शुभवचन कहते हैं--'तुम महान् यशस्वी और शक्तिशाली पुत्रों को जन्म दोगी।'११८।

ते विय अम्हाहिंतो, अहिया होहिंति नत्थि संदेहो ।
अहवावि कुलगराणा वि विसिट्ठतरयंतु जं ठाणं ।११९।
(ते खलु अस्माभ्योऽधिकाः भविष्यन्ति नास्ति सन्देहः ।
अथवापि कुलकरेभ्योऽपि विशिष्टतरकं तु यत् स्थानम् ।)

"वे हम से भी बढ़कर होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अथवा वे कुलकरों से भी किसी विशिष्ट विरुद के धारक होंगे, ऐसा इन स्वप्नों से प्रतीत होता है।११९।

ज (अ) त्थो य पहायंमि, गयंमिसूरे जुगंतर कमसो ।
मिहुणाण ताण पासं, सक्कीसाणागया सहसा ।१२०।

(अथच प्रभाते, गते सूर्ये युगान्तरं क्रमशः ।
मिथुनानां तेषां पार्श्वे शक्रेशानौ आगतौ सहसा ।]

तदनन्तर प्रभात होने और सूर्य के क्रमशः गगन में बढ़ने पर उन दशों कुलकर मिथुनों के समीप शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र (वैक्रिय शक्ति से अपने दश दश स्वरूप बनाकर) उपस्थित हुए ।१२०।

तेहिं विणएण तो ते, सुविण फलं पुच्छिया सुरवरिंदा ।
बिते उपवईसि, कयंजली सुरवरो भणिया ।१२१।
(तैः विनयेन ततः तौ, स्वप्न-फलं पृष्टौ सुरवरेन्द्रौ ।
ब्रूवाते उपविश्य, कृताञ्जल्यौ सुरवरौ भणितौ ।)

तदनन्तर उन कुलकर दम्पत्तियों ने विनयपूर्वक उन दोनों इन्द्रों से उन चौदह स्वप्नों का फल पूछा । प्रश्न सुनकर दोनों देवेन्द्र उन दम्पतियों को हाथ जोड़कर बैठे और कहने लगे ।१२१।

जह एते साइसया. दिट्ठा कल्लाणदंसणा सुमिणा ।
होहिति तुम्ह पुत्ता, उत्तम विण्णाण संजुता ।१२२।
(यथा एते सातिशया, दृष्टा कल्याण-दर्शनाः स्वप्नाः ।
भविष्यन्ति युष्माकं पुत्रा, उत्तम विज्ञानसंयुक्ता ।)

'जिस प्रकार के ये अतिशय सम्पन्न और कल्याण सूचक स्वप्न देखे गये है. (इनका फल यह है कि) आपके यहां उत्तम और विशिष्ट ज्ञान से सम्पन्न पुत्र जन्म ग्रहण करेंगे ।१२२।"

होहिंति पुहइपाला, दससुवि खेत्तेसु ते महासत्ता ।
दरिसंति य सिप्पसयं बावत्तरि चेव य कलाओ ।१२३।
(भविष्यन्ति पृथ्वीपालाः दशष्वपि क्षेत्रेषु ते महासत्त्वाः ।
दर्शयिष्यन्ति च शिल्पशतं, द्वासप्ततीश्चैव च कलाः)

'वे महान् सत्त्वशाली महापुरुष दसों क्षेत्रों में पृथ्वी की पालना करने वाले होंगे । वे सौ प्रकार के शिल्पों और बहत्तर प्रकार की कलाओं की लोगों को शिक्षा देंगे ।१२३।"

भोत्तूण वरेभोए, रज्जं काऊण दाऊ दाणं तु ।
काऊण य सामण्णं, आहिंति अयरामरं ठाणं ।१२४।
(भुक्त्वा वरान् भोगान् , राज्यं कृत्वा दत्वा दानं तु ।
कृत्वा च श्रामण्यं, गमिष्यन्ति अजरामरं स्थानम् ।)

"वे उत्तमोत्तम भोगोपभोगों का उपभोग कर सुदीर्घ काल तक राज्य करने के पश्चात् वर्ष भर महादान देकर श्रमण धर्म की परिपालना एवं स्थापना करेंगे और अन्त में अजरामर स्थान-मोक्ष में जावेंगे ।१२४।"

एवं दोवि सुरिन्दा, सुमिण-फलं साहिऊण मिहुणाणं ।
अच्छह सुहंतिवुत्तूं, आमन्तेउं[1] गया सग्गं ।१२५।
(एवं द्वावपि सुरेन्द्रौ, स्वप्नफलं साधयित्वा मिथुनेभ्य ।
आस्तां सुखेन इति उक्त्वा, आमन्त्रयित्वा गतो स्वर्गम् ।)

इस प्रकार दोनों सुरेन्द्र उन दशों कुलकर मिथुनों को चौदह स्वप्नों का फल बता, 'सुखपूर्वक रहिये'--यह निवेदन करने के पश्चात् उनकी अनुज्ञा प्राप्त कर अपने-अपने स्वर्गलोक की ओर लौट गये ।१२५।

अह हरिसिया कुलगरा, आदेसं[2] तं सुणेत्तु सक्काणं ।
जणणीओ वि पमोयं, अउलं गच्छंति तं वेलं ।१२६।
(अथ हर्षिता कुलकराः, आदेशं तत् श्रुत्वा शक्रयोः ।
जनन्योऽपि प्रमोदमतुलं गच्छन्ति तस्यां वेलायाम् (तां वेलाम्) ।)

दोनों इन्द्रों द्वारा बताई गई ज्ञातव्य बातों अथवा निर्देश को सुनकर कुलकर बड़े हर्षित हुए । जिनेश्वरों की जननियां भी उस वेला में परम प्रमुदित हुईं ।१२६।

---

१ आमंतण-आमन्त्रण-न० । अभिनन्दने, सम्बोधने, कामचारानुज्ञारूपे ।

२ (क) आदेशो नाम ज्ञातव्य वस्तुप्रकार: (विशेषावश्यक भाष्य)
(ख) आदिश्यत इत्यादेश: निर्देशे (निशीथ चू., उ. १)

तप्पिभिहमागंतुं, माणुसरूवं समासिया तह य ।
जिण जणणीओ सेवंति, देवया[1] उ च जयेणं ।१२७।
(तत्प्रभृति आगत्य, मानुषरूपं समाश्रिताः तथा च ।
जिन-जननीन् सेवन्ति, देवतास्तु च यत्नेन ।)

उसी समय से (देवेन्द्रों के लौटते ही) देव-देवियां मनुष्य रूप धारण कर बड़े यत्न के साथ तीर्थङ्करों की माताओं की सेवा करने लगीं ।१२७।

सक्का देसेण तया, नाणाविहपहरणा इहिं जिणवरिंदे ।
रक्खंति हट्ठतुट्ठा, दससुवि खेत्तेसु देवीओ ।१२८।
(शक्रादेशेन तदा, नानाविधप्रहरणादिभिः जिनवरेन्द्रान् ।
रक्षन्ति हृष्ट तुष्टाः, दशष्वपि क्षेत्रेषु देव्यः ।)

शक्र की आज्ञानुसार दशों ही क्षेत्रों में देवियां हृष्ट तुष्ट हो दशों गर्भस्थ तीर्थङ्करों की प्रहारादि प्रवृत्तियों एवं सब प्रकार के अनिष्टों से रक्षा करती हैं ।१२८।

संपुण्ण दोहलाओ, विचित्त सयणासणीउ सव्वाउ ।
अप्प हियं आहारं, सेवंति मणाणुकूलं तु ।१२९।
(सम्पूर्ण दोहदाः, विचित्र शयनासन्यः सर्वास्तु ।
अल्पं हितमहारं, सेवन्ति मनोऽनुकूलं तु ।)

तीर्थङ्करों की उन दशों माताओं के उत्तमोत्तम अद्भुत शय्या-आसनादि थे । उनके समस्त दोहदों की तत्काल पूर्ति हो गई । वे सब अपने मन के अनुकूल (यथेच्छ) अल्प और हितकारी अशन-पानादि ग्रहण करती थीं ।१२९

ववगय सोगभयाउ, वहमाणीउ सुहेहिं ते गब्भे ।
पत्ते वि पसवमासे, अवत्त गूढगब्भाओ ।१३०।
(व्यपगतशोकभयाः वहमाना सुखैस्तान् गर्भान् ।
प्राप्तेऽपि प्रसवमासे, अव्यक्तगूढगर्भास्तु ।)

---

३ देवता-देवत्व-न. । दैवभावे-स्थानांग, ठा., उ ४, । देवया-इन्द्रादि देवेषु । स्था.

सब प्रकार के शोक तथा भय से रहित वे अपने अपने गर्भस्थ तीर्थङ्कर को सुखपूर्वक वहन कर रही थीं। प्रसव मास के समुपस्थित हो जाने पर भी वे अव्यक्त गूढगर्भा ही बनी रहीं। अर्थात् साधारण गर्भवतियों की तरह उनके उदर प्रसवकाल तक भी बढ़े हुए-पोवर-प्रतीत नहीं होते थे।१३०।

जह वड्ढंति सुगब्भा, सोहा तह तासि पीवरा होइ।
अहियं च जणे मिहुणाणं, तेहि सह संगयं कुणइ।१३१।
यथा वर्द्धन्ते सुगर्भाः, शोभा तथा तासां पीवरा भवति।
अधिकं च जनाः मिथुनानां, ताभ्यो सह संगतिं कुर्वन्ति)

ज्यों ज्यों उनके कल्याणकारी गर्भ बढ़ने लगे त्यों त्यों उनकी शोभा (ओज-तेज प्रशंसा) भी उत्तरोत्तर अधिकाधिक बढने लगी और आबाल-वृद्ध यौगलिक जन अधिकाधिक उनके संसर्ग में रहने लगे।१३१।

अह नवमंमि अईए, मासे समुवट्ठिए उ दसमंमि।
चित्त बहुल ट्ठमीए, बोलीणे पढम रत्तम्मि।१३२।
(अथ नवमे अतीते मासे समुपस्थिते तु दशके।
चैत्र बहुलाष्टम्यां, विलीने प्रथम-रात्रौ।)

इस प्रकार नौवें मास के व्यतीत हो जाने और दशवें मास के समुपस्थित होने पर चैत्र कृष्णा अष्टमी की प्रथम अर्द्ध रात्रि के बीत जाने के पश्चात्।१३२।

उत्तरसाढाविसए, अहसम्पत्ते निसागरे कमसो।
पसवंति सुहेण य, सुए लक्खण-जुत्ते महासत्ते।१३३।
(उत्तराषाढाविषये, अथ सम्प्राप्ते निशाकरे क्रमशः।
प्रसवन्ति सुखेन च, सुतान् लक्षणयुक्तान् महासत्त्वान्।)

जब चन्द्रमा क्रमशः उत्तराषाढा नक्षत्र में आया उस समय मरुदेवी आदि दशों क्षेत्रों के कुलकरों की पत्नियां सभी सुलक्षणों से युक्त महासत्त्वशाली प्रतापी पुत्रों को सुखपूर्वक जन्म देती हैं।१३३।

नाणारयण विचित्रा, वसुधारा निउडिया पगासंती ।
गम्भीर महुरसद्दो, तो दु दुहिनाडिओ गयणो ।१३४।
(नाना रत्न विचित्राः, वसुधारा निष्पतिता प्रकाशन्ती ।
गम्भीर मधुर शब्दः, ततो दुंदुभिनादितो गगने ।)

अनेक प्रकार के रत्नों से प्रकाशमान् विचित्र वसुधारा की वृष्टि हुई और देवताओं द्वारा बजाई गई देव दुंदुभियों का मधुर एवं गम्भीर घोष गगन मण्डल में गूंजने लगा ।१३४।

देवोववयण-पहाए, रयणी आसी य सा दिवस भूया ।
पमय गण गीय-वाइय, कहक्कज्जु (हु) तुट्टिसद्दाला ।१३५।
(देवोपपतन-प्रभयाः, रजनी आसीत् च सा दिवसभूता ।
प्रमदागण गीत वादित्र, कहक्कह तुष्टि शब्दाला ।)

देव-देवियों के उपपात अर्थात् आगमन के कारण उनके ओज, तेज, आभूषणों और विमानों की प्रभा से वह चैत्र कृष्णा अष्टमी की रात्रि दिन के समान प्रकाशमान बन गई। कोकिलकण्ठिनी सुन्दरियों के समूहों द्वारा गाये गये गीतों की सुमधुर स्वरलहरियों एवं उनके द्वारा बजाए गए वाद्य यन्त्रों की तालपूर्ण सुमधुर ध्वनि तथा प्रमुदित-यौगलिकों के कहकहों से वह रात्रि शब्दाला अर्थात् वाचाल प्रतीत होने लगी ।१३५।

उड्ढमहतिरियलोए, वत्थव्वाओ दिसा-कुमारीओ ।
उहिणाणेण जिणे, जाए नाऊण तंमि खणे ।१३६।
(ऊर्ध्वाधः तिर्यग् लोके, वास्तव्याः दिक्कुमार्यः ।
अवधि ज्ञानेन जिनान् जातान् ज्ञात्वा तस्मिन् क्षणे ।)

ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यक् लोक में निवास करने वाली दिक्कुमारियों ने अवधिज्ञान से तीर्थङ्करों का हुआ जानकर तत्क्षण ।१३६।

जिणभत्तिहरिसियाओ, जीयं[1]तिय जोयणप्पमाणेहिं ।
सव्वायर[2] परि गप्पिय, जाण विमाणेहिं दिव्वेहिं ।१३७।
(जिनभक्तिहर्षिताः जीतमिति च योजन-प्रमाणैः ।
सर्वादरपरिकल्पित, यानविमानै-दिव्यैः ।)

वे जिनेन्द्र प्रभु के प्रति भक्ति-विभोर हो—"यह हमारा परम्परागत कर्त्तव्य-कल्प अथवा आचार है"- यह कह कर सर्वथा समुचित रूपेण सुव्यवस्थित एव सुसज्जित एक योजन विस्तार वाले दिव्य विमानों द्वारा ।१३७।

अह उवेंति तहिं तुरियं, हरिसवसुक्करिसपुलइयंगीओ ।
अभिवंदिऊण पयया, थुणंति महुरस्सरा इणमो ।१३८।
(अथ उपेन्ति तत्र त्वरितं, हर्षवशोत्कर्षपुलकितांग्यः ।
अभिवंदित्वा प्रयताः, स्तुवन्ति मधुरस्वरा एतत् ।)

शीघ्र ही जिन-जननियों के पास पहुँचती हैं और हर्षातिरेक वशात् उत्कृष्ट रूपेण पुलकित गात्रा वे सब जिन-माताओं को वन्दन कर यत्नपूर्वक मधुर स्वर से इस भांति उनकी स्तुति करती हैं- ।१३८।

तुम्हं नमो नवधंकय, सरिसविवुव्संत कोमलच्छीणं ।
जेहिं इमे सुयरयणे, वूढे कुच्छीहिं जिणचन्दे ।१३९।
(युष्माभ्यः नमः नवधा कृत्य, सर्षपेवोप्शांत कोमलाक्षीभ्यः ।
याभि इमे सुतरत्ना व्यूढाः कुक्षीभ्यः जिनचन्द्राः ।)

"सरसों के फूल के समान सौम्य, शान्त और सुकोमल नेत्रों वाली (विश्ववंदनीय मातेश्वरियो !) आपको नवधाभक्तिपूर्वक नमस्कार है । (धन्य हैं आप) जिन्होंने कि इन जिनचन्द्रों को पुत्र रत्न के रूप में अपनी कुक्षियों में धारण एवं वहन किया है ।१३९।"

सुतित्थसमाणाहिं, ब्रियडं तिभुवणमलंकियं पयडं ।
पढमिल्लजगगुरुणो, जणिया तित्थंकरा जाहिं ।१४०।

---

१. जीतमेतत्-कल्प एष इति कृत्वा । (रायपसेणिय)

२. सव्वादर-सर्वादर-सर्वोचित कृत्यकरणे (विपाक, श्र. १, अ. ९)

(सुतीर्थसमानाभिः, विकटं त्रिभुवनमलंकृतं प्रकटम् ।
प्रथमिल्लजगगुरवः, जनिताः तीर्थंकराः याभिः ।)

"संसार के सर्वोत्कृष्ट तीर्थ के समान (जिन) आपने प्रथम जगद्गुरुओं-तीर्थङ्करों को जन्म दिया है, वस्तुतः आपने विराट्---अति विशाल त्रैलोक्य को स्पष्टतः प्रकट रूप में अलंकृत किया है ।१४०।"

जिणजणणीउ थोउं, भणंति ताउ सुचारुवयणाउ ।
अम्हे इहागयाउ, भत्तीए दिसाकुमारीओ ।१४१।
(जिनजननीन् स्तुत्वा, भणंति ताः सुचारुवचनानि ।
वयं इह आगताः, भक्त्या दिक्कुमार्यः ।)

जिनेश्वरों की माताओं की स्तुति करने के पश्चात् वे सुमधुर वचनों द्वारा निवेदन करती हैं— मातेश्वरियो !) 'हम दिशाकुमारियाँ हैं, जो यहां भक्तिपूर्वक आई हैं ।१४१।

जिणचंदाण भगवओ, वोच्छिण्णपुणब्भवाण विणएण ।
काहामो जम्ममहं, तुम्हेहिं न भाइयव्वंति ।१४२।
(जिनचन्द्राणां भगवतां, व्युच्छिन्नपुनर्भवानाम् विनयेन ।
करिष्यामः जन्ममहं, युष्माभिर्न भेतव्यमिति ।)

"धर्म तीर्थ को इन क्षेत्रों में सुदीर्घकालीन व्युच्छित्ति के पश्चात् यहां पुनः उत्पन्न हुए इन धर्म तीर्थ संस्थापक जिनचन्द्र भगवन्तों का हम जन्म-महोत्सव करेंगी । अतः आपको अपने मन में किसी प्रकार का भय अथवा आशंका नहीं लानी चाहिए ।१४२।

सोमणसगंधमायण, विज्जुप्पभमालवंतवासी उ ।
अट्ठदिस दिव्व वाउं, वच्छवच्छ व्वाओ अहोलोए ।१४३।
(सौमनस गंधमादन, विद्युत्प्रभमाल्यवन्त वासीन्यः ।
अष्टदिश दिव्य वायुं वत्सं वत्सं वास्तव्या अधोलोके ।)

सौमनस, गन्धमादन, विद्युत्प्रभ और माल्यवन्त में निवास करने वाली आठ दिशाकुमारिका देवियां अधोलोक की निवासिनियां मानी जाती हैं ।१४३।

भोगंकराभोगवती. सुभोगा तह भोगमालिणि सुपत्था ।
तत्तो चेव सुमित्ता, अणिंदिया पुप्फमाला य ।१४४।
(भोगकरा भोगवती, सुभोगा तथा भोगमालिनी सुपथ्या ।
ततश्चैव सुमित्रा, अनिन्दिता पुष्पमाला च ।)

भोगंकरा, भोगवती, सुभोगा, भोगमालिनी. सुवच्छा, सुमित्रा, अनिन्दिता और पुष्पमाला ।१४४।

एया उ पवणेणं, सुभेण ते जम्मभूमिवणखंडे ।।
आलोयणं समंता, साहेंति पहट्ठमणाए ।१४५।
(इमास्तु पवनेन, शुभेन ताः जन्मभूमि वन खण्डे ।
आलोडनं समंतात्, शासयन्ति प्रहर्षितमनाः ।)

ये (अधोलोक निवासिनी) दिशाकुमारियां शुभ-सुखद पवन विकूर्वित कर तीर्थंकरों के जन्मभवन और उसके चारों ओर एक योजन भूमि को बड़े हर्ष के साथ पूरी तरह परिमार्जित कर स्वच्छ और सुन्दर बनाती हैं ।१४५।

अमणुण्ण दुरभिगंधं, तण सक्क पर पत्त विरहियं काउं ।
महुरं गायंती उ, पासे चिट्ठंति जणणीणं ।१४६।
(अमनोज्ञ दुरभिगंधं, तृण सिक्त परपत्र विरहितं कृत्वा ।
मधुरं गायन्त्यस्तु. पार्श्वे तिष्ठन्ति जननीनाम् ।)

वे इस प्रमार्जन क्रिया द्वारा उस भूमि को अमनोज्ञ पदार्थों, दुर्गन्ध, तृण, पत्रादि से रहित बनाकर मधुर संगात गाता हुई तीर्थंकरों की माताओं के पास उपस्थित रहती हैं ।१४६।

मेहंकरा मेहवई. सुमेह तह मेहमालिणि विचित्ता ।
तत्तो य तोयधारा, वलाहका वारिसेणा य ।१४७।
(मेघंकरा मेघवती, सुमेघ तथा मेघमालिनी विचित्रा ।
ततश्च तोयधारा, बलाहका वारिषेणा च ।)

मेघंकरा, मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, विचित्रा, तोयधरा, बलाहका और वारिषेणा ।१४७।

(जंबू द्वीप प्रज्ञप्ति में पांचवी और छठी देवियों का नाम सुवच्छा और वच्छमित्रा उल्लिखित हैं ।)

नंदणवणकूडेसुं, एयाओ उड्ढलोग वत्थव्वा ।
तुरियं वि उव्विउणं, सगज्जिय सविज्जुले मेहे ।१४८।
(नंदनवनकूटेभ्यो, एताः ऊर्द्ध्वलोक वास्तव्याः ।
त्वरितं विउज्झित्वा, सगर्जितसविद्युतान् मेघान् ।)

ऊर्ध्वलोक में नन्दनवन के कूटों पर निवास करने वाली ये देवियां बड़ी स्फूर्ति के साथ सुमधुर गर्जन और बिजली की चमक सहित बादलों की विकुर्वणा कर ।१४८।

थोवाक्खिल्ल विरहियं, सुरहिजलबिंदु विद्दवियरेणुं ।
थाणयण[1] निव्वुइकरं करेंति वसुधातले तत्थ ।१४९।
(स्तोकाखिल विरहितं, सुरभिजलबिन्दु विद्रावितरेणुं ।
उत्थानमनं निर्वृतिकरं, कुर्वन्ति वसुधातले तत्र ।)

न्यूनाधिक्य रहित सुगन्धित जलबिन्दुओं द्वारा धूलि को जमा कर वहां के पृथ्वीतल को हल्का गीला और आनन्दप्रद बना देती हैं ।१४९।

पुणरवि जलहर कलियं, सव्वोउ य संभवं सुरभिगंधिं ।
वासंति कुसुमवासं, सुवंगवंगेहिं वा मीसं ।१५०।
(पुनरपि जलधरकलित, सर्वतश्च संभवं सुरभिगंधं ।
वर्षयन्ति कुसुमवृष्टिं, लवंगबंगैर्व्यामिश्रम् ।)

तदनन्तर वे विविध पुष्पों के बादलों को विकुर्वणा कर उस क्षेत्र पर लवंग-बंगादि की गंध से मिश्रित अत्यन्त मनोहर-मधुर पुष्पों की सर्वत्र समान रूप से वर्षा करती हैं ।१५०।

---

१ थाणय—देशी । आलवाळा अर्थात् छिड़काव किया हुआ ।

तो तं दसद्धवण्णं, पिंडगयं छमायले विमले ।
सोहइ नवसरयमिवसुनिम्मलं जोइ संगमणे ।१५१।
(ततस्तद्दशार्द्धवर्णं, पिण्डगतं क्ष्मातले विमले ।
शोभते नवसरमिव सुनिर्मलं ज्योतिसंगमे ।)

एक दूसरे से संलग्न पांच वर्ण के फूलों का सर्वत्र छाया हुआ वह एकीभूत पुष्प समूह सूर्य की किरणों के संयोग से चकाचौंध फैलाते हुए नवसर हार के समान उस विमल धरातल पर सुशोभित होने लगा ।१५१।

तह कालागरु कुंदुरुक्क धूयमप्पमत्ते तद्दिसिकं ।
काउ सुरकण्णाउ चिट्ठंति पगासमाणीउ ।१५२।
(तथा कालागरुः कुंदरुक्क,-धूपमप्रमत्ताः तद्दिशिकम् ।
कृत्वा सुरकन्यकास्तु, तिष्ठन्ति प्रकाशमानाः ।)

वे दिशाकुमारियां कालागरु, कुन्दुरुक्क आदि सुगन्धित द्रव्यों से निष्पन्न धूप को जलाकर जिनजन्म-भवन की ओर सुगन्धित धूम को प्रवाहित करती हुई तथा अपने शरीर की प्रभा से दशों दिशाओं को प्रकाशमान करती हुई अप्रमत्त हो उपस्थित रहती हैं ।१५२।

णंदुत्तरा य णंदा, आणंदा णंदिवद्धणा चेव ।
विजयाय वेजयन्ती, जयन्ती अवराइआऽट्ठमिया ।१५३।
(नन्दोत्तरा च नन्दा, आनन्दा नन्दिवर्धना चैव ।
विजया च वैजयन्ती, जयन्ती अपराजिता अष्टमिकां ।)

नन्दोत्तरा, नन्दा, आनन्दा, नन्दिवर्द्धना, विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और आठवीं अपराजिता—।१५३।

एयाउ रूयग नगे, पुव्वे कूडे वसंती अमरीओ ।
आयंसग हत्थाओ, जणणीण ट्ठंति पुव्वेण ।१५४।
(एतास्तु रूचकनगे, पूर्वे कूटे वसन्त्यः अमर्यः ।
आदर्शक हस्ताः, जननीनां तिष्ठन्ति पूर्वेण ।)

ये रुचक पर्वत के पूर्व-कूट पर निवास करने वाली दिक्कुमारियां तीर्थङ्करों की माताओं के पूर्व की ओर हाथों में दर्पण लिये खड़ी रहती हैं ।१५४।

रुयगे दाहिणकूडे, अट्ठसमाहार सुप्पइण्णा य ।
तत्तो य सुप्पपुट्ठा, जसोधरा चेव लच्छिमई ।१५५।
(रूचके दक्षिण कूटे, अष्टसमाहार सुप्रदत्ता च ।
ततश्च सुप्रपुष्टा, यशोधरा चैव लक्ष्मीमती ।)

रुचक, मध्यप्रदेशस्थ पर्वत के दक्षिण कूट पर निवास करने वाली आठ दिशाकुमारियां समाहारा, सुप्रदत्ता, सुप्रबुद्धा, यशोधरा, लक्ष्मीवती ।१५५।

---

* १५४ और १५५ संख्या वाली उपरि लिखित दो गाथाओं के अतिरिक्त ताड़पत्रीय प्रति में गाथा संख्या सूचक इन्हीं अंकों के साथ निम्नलिखित दो गाथाएं भी विद्यमान हैं :—

भोगवती चित्रगुप्ता, वसुंधरा चेव गहिय भिंगारा ।
देवीण दाहिणेणं, चिट्ठति पगायमाणीओ ।१५४।
(भोगवती चित्रगुप्ता, वसुंधरा चैव गृहीत भृंगाराः ।
देवीनां दक्षिणेन तिष्ठन्ति प्रगीयमानाः ।)

देवीउ देवजाइ, इलादेवी सुराय पुहवी एगनासा य ।
पउमावई णवमियाभद्दासीया य अट्ठमिया ।१५५।
(देव्यः देवजातिः सुरा च पृथ्वी एकनाशा च ।
पद्मावती च नवमी, भद्रा, सीता च अष्टमिका ।)

भोगवती (शेषवती) चित्रगुप्ता और वसुन्धरा अपने अपने हाथों में झारियां लिये जिनेन्द्र जननियों के दक्षिण की ओर गीत गाती हुई उपस्थित रहती हैं ।१५४।

देवजाति (इलादेवी), सरादेवी, पृथिवी, एकनाशा, पद्मावती, नवमिका, भद्रा और आठवीं सीता ।१५५।

रूयगावर कूड निवासिणीओ पच्चत्थिमेण जणणीणं ।
गायन्तीउ चिट्ठंति, तालिवेंटे गहेऊणं ।१५६।
(रुचकाऽपरकूट-निवासिन्यः, पश्चिमेन जननीनाम् ।
गायन्त्यः तिष्ठन्ति, तालवृन्तान् गृहित्वा ।)

ये रुचक पर्वत के अपर कूट पर निवास करने वाली दिक्कुमारिकाएं जिनेन्द्रों की माताओं के पश्चिम पार्श्व की ओर गाती हुई तथा व्यंजन हाथ में लिये उपस्थित रहती हैं ।१५६।

तत्तो अलंबुसा, मिस्सकेसी तह पुंडरिगिणी चेव ।
वारुणीहासा सव्वग, सिरी हिरी चेव उत्तरओ ।१५७।
(ततोऽलंबुषा, विश्वकीर्ति तथा पुंडरीकिणी चैव ।
वारुणीहासा, सर्वगा, श्रीश्चैव ह्री उत्तरतः)

रुचक पर्वत की उत्तर दिशा में रहने वाली दिशा कुमारियां— अलम्बुषा, मिश्रकेशी, पुण्डरीकिणी, वारुणी, हासा, सर्वगा (सर्वप्रभा), श्री और ह्री ।१५७।

चामर हत्थगयाओ, चउरामहुरभणियाओ ।
गायंतीउ महुरं, चिट्ठंति दससु वासेसु ।१५८।
(चामर हस्तगताः, चतुराः मधुरभाषिण्यः ।
गायन्त्यस्तु मधुरं, तिष्ठन्ति दशसु वर्षेषु ।)

जो बड़ी ही चतुर और प्रिय भाषिणियां होती हैं, वे दशों क्षेत्रों की जिन-माताओं के चारों ओर चँवर ढुलातीं और मधुर गीत गाती हुई खड़ी रहती हैं ।१५८।

रुयगे विदिसाकूडेसु, चत्तारि दिसिकुमारीओ ।
चित्ता य चित्तकणगा, सतेर, सोयामणि सनामा ।१५९।
(रुचके विदिशाकूटेषु, चत्वारि दिशि कुमारिकाः ।
चित्रा च चित्रकनकां, सतेरा सौदामिनीस्वनामा ।)

रुचक पर्वत के विदिशा कूटों पर निवास करने वाली चित्रा, चित्रकनका, शतेरा और सौदामिनी ये चार दिक्कुमारियां ।१५९।

चउसु दिसासु ठियाउ, जिणवराण माणीणं ।
महुरं गायंतीओ, विज्जुज्जोयं करेंति हू ।१६०।
(चतुस्सु दिशासु स्थिताः, जिनवराणां मातृणाम् ।
मधुरं गायन्त्यः, विद्युद्द्योतं कुर्वन्ति खलु ।)

जिनेन्द्र भगवन्तों की माताओं के चारों ओर चारों दिशाओं में खड़ी हो मधुर गान के साथ-साथ विद्युत का प्रकाश करती हैं ।१६०।

रुयगस्स मज्झओ जे, दिसासु चत्तारि दिसिकुमारीओ ।
रुयगा रुयगजसावि य, सुरूप रुयगावइ सनामा ।१६१।
(रुचकस्य मध्यतः याः दिशासु चत्वारि दिक्कुमारिकाः ।
रुचका रुचकयशापि च, सुरूप रुचकावती सनामा ।)

रुचक पर्वत के मध्य भाग की चारों दिशाओं में रहने वाली रुचका, रुचकयशा, सुरूपा और रुचकावती ।१६१।

एया उ जणणीणं चउद्दिसिं चउरमहुर भणिया उ ।
दीविय हत्थगया उ उव्विट्ठंति पगायमाणीओ ।१६२।
(एतास्तु जननीनां, चतुर्दिक्षु चतुर-मधुरभणिताः ।
दीपिका हस्तगताः, उपतिष्ठन्ति प्रगायमानाः ।)

ये चारों चतुर और मधुरभाषिणी दिक्कुमारियाँ जिनेन्द्रों को माताओं के चारों ओर चारों दिशाओं में गीत गाती हुई अपने हाथों में प्रकाश पुंज लिये खड़ी रहती हैं ।१६२।

रुयगस्स मज्झ देसे, वसंति विदिसासु दिव्व देवीओ ।
विजया य वेजयन्ती, जयन्ति अपराजिया चेव ।१६३।
(रुचकस्य मध्यदेशे, वसंति विदिशासु दिव्य-देव्यः ।
विजया च वैजयन्ती, जयन्ती अपराजिता चैव ।)

रुचक पर्वत के मध्य भाग में विदिशाओं में रहने वाली—विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता--ये चार दिव्य देवियां ।१६३।

नालं छेत्तूण तया, मुणालसिरियं जिणिंद चंदाणं ।
रयण समुग्गे[1] काउं, पसत्थ भूमीसु निहणंति ।१६४।
(नालं छित्वा तदा, मृणालसदृशं जिनेन्द्र चन्द्राणाम् ।
रत्न समुद्गे कृत्वा, प्रशस्त भूमीषु निःखनन्ति ।)

जिनेन्द्र बालचन्द्रों के कमलनाल के समान कोमल नाल को काट कर, उन्हें रत्नपात्रों में रख प्रशस्त एवं पवित्र भूमि के गर्भ में विवर खोद कर गाड़ देती हैं ।१६४।

(जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के उल्लेखानुसार विवर खोद कर नाल को उसमें रख देती हैं और उस को रत्नों और वज्रों से ढक कर ऊपर मिट्टी डाल हरितालिका (दूब) से विवर के मुख को बांध देती हैं ताकि उस पर दूब उग जाने के पश्चात् कालान्तर में किसी प्रकार की आशातना न हो ।)

हरियालियाए पेढाइं, बन्धित्ता विवराण सव्वेसिं ।
कुव्वन्ति कदलि घरए, दाहिण्ण पुव्वुत्तरदिसासु ।१६५।
(हरितालिकाभिः पृष्ठानि बध्वा विवराणि सर्वेषाम् ।
कुर्वन्ति कदलि गृहाणि, दक्षिण-पूर्वोत्तरदिशासु ।)

फिर वे उन सब विवरों (खड्डों) को पृष्ठ को दूब से बांधती हैं और पश्चिम दिशा को छोड़कर दक्षिण; पूर्व तथा उत्तर इन तीनों दिशाओं में तीन कदलिगृह बनाती हैं ।१६५।

तेसिं बहुमज्झदेसे, चाउस्साले तओ विउव्वेंति ।
मज्झे तंसि तिन्नि य, रययंति सिंहासणवराइ ।१६६।
(तासां बहुमध्य देशे, चतुःशालकानि ततः विकुर्वन्ति ।
मध्ये तासां त्रीणि च, रचयन्ति सिंहासन वराणि ।)

---

१ समुग्ग—समुद्ग । पात्र विशेष (जीवाभिगम सटीक)

उन कदलिगृहों के नितान्त मध्य भाग में वे अपनी वैक्रिय शक्ति द्वारा चतुःशालाएं और तीनों चतुःशालाओं के मध्य तीन श्रेष्ठ सिंहासनों की रचना करती हैं।१६६।

ताहे जिणजणणीओ, जेण महिया दाहिणोव चउसाले ।
सिंहासणे ठवित्ता, सयपाग सहस्स पागेहिं १६७।
(ततः जिनजननीन्, येन महीयसी दक्षिणोपचतुःशाला ।
सिंहासने स्थापयित्वा, शतपाकसहस्रपाकेभ्यः ।)

तत्पश्चात् वे तीर्थङ्करों की माताओं को दक्षिण दिशा में स्थित चतुःशाला में ले जा कर सिंहासन पर बैठाती हैं और शतपाक, सहस्रपाक तैलों से ।१६७।

अब्भंगेऊण तउ सणियं, गंधोदएण सुरभीणं ।
उव्वट्टेऊण तओ पुरछिमं नेंति चउसालं ।१६८।
(अब्भ्यंगयित्वा ततःशनैः, गंधोदकेन सुरभिणा ।
उद्वर्तयित्वा ततः पुरश्चिमं नयन्ति चतुःशालाम् ।)

धीरे धीरे उनके शरीर का अभ्यंगन-मर्दन करती हैं। अभ्यंगन के अनन्तर शतपाकादि तैलों की चिकनाहट को उनके शरीर से दूर करने हेतु सुरभिपूर्ण गन्धोदक से जिन-जननियों के शरीर का उद्वर्तन कर उन्हें पूर्व दिशा की चतुःशालाओं में ले जाती हैं।१६८।

तत्थ ठवेउं सीहासणे सुमणि कणगरयणकलसेहि ।
पउमुप्पल पिहाणेहिं, सुरसि (भि) खीरोय भरिएहिं ।१६९।
(तत्र स्थापयित्वा सिंहासनेषु, सुमणिकनकरत्नकलशैः ।
पद्मोत्पलपिधानै, सुरभि क्षीरोदकभरितैः ।)

वहां चतुःशाला के बीच में रखे सिंहासनों पर सुखासीन कर अमूल्य मणियों, स्वर्ण और रत्नों से निर्मित पद्म एवं नीलोत्पल के ढक्कनों से ढके तथा सुगन्धित क्षीरोदक से भरे कलशों से।१६९।

न्हावेऊणं विहिणा, जणणीओ दसवि मंडिया विहिणा ।
लहुएहिं जिणवरिंदे, दिव्वाभरणेहिं मनंति ।१७०।

(स्नापयित्वा विधिना, जनन्यः दशापि मण्डिताः विधिना ।
लघुकैर्जिनवरेन्द्राः, दिव्याभरणैः मनंति [मंडन्ति] ।)

दशों जिन-जननियों को विधिपूर्वक नहला कर उन्हें शृंगार चातुरी के साथ दिव्य वस्त्राभूषणों से अलंकृत करती हैं। वे छोटे छोटे दिव्य आभरणों से उन नवजात तीर्थङ्करों को भी विभूषित करती हैं।१७०।

अह उत्तरिल्ल भवणं; नेउं सीहासणे निवेसित्ता ।
हरिचंदण[1] कट्ठाइं; आणेउं नन्दणवणाओ ।१७१।
(अथ उत्तरिल्लं भवनं; नीत्वा सिंहासने निवेशयित्वा ।
हरि चन्दनकाष्ठानि; आनेतुं नन्दनवनात् ।)

तदनन्तर वे उन्हें उत्तर दिशा में बनाये गये भवन की चतुः शाला में ले जाकर सिंहासन पर आसीन करती हैं और नन्दनवन से हरित चन्दन (सरस गोशीर्ष चन्दन) की लकड़ियाँ लाकर।१७१।

समिहाओ काऊणं ! अग्गिहोमं करेंति पययाउ ।
भूतीकम्मं काउं, जिणाणरक्खं अह करेंति ।१७२।
(समिधान् कृत्वा, अग्निहोत्रं कुर्वन्ति प्रयतास्तु ।
भूतिकर्म कृत्वा, जिनानां रक्षामथ कुर्वन्ति ।)

उनकी समिधा बनाती हैं। तदनन्तर वे यत्नपूर्वक हवन करने के पश्चात् भूतिकर्म कर तीर्थङ्करों की अनिष्टों से रक्षा करती हैं। ।१७२।

तित्थयर कन्नमूले, मणिमय पासाण वट्टए[2] मसिणे ।
आफोडेंति भणेत्तिय, महिहर आऊ भवंतु जिणा ।१७३।

---

१ हरि चंदण–देशी-कुङ्कुमे, देशी शब्द नाम माला, सर्ग ८, गाथा ६५। तद्धि नात्रोपयुक्तम् । अत्र तु सरस-गोशीर्षचन्दनार्थे शब्दमेतत् प्रयुक्तं प्रतिभाति ।

२ वृत्तको—पाषाणवृत्तगोलकावित्यर्थः ।

(तीर्थंकर कर्णमूले, मणिमयपाषाण वर्तकौ कृष्णौ ।
आस्फोटयन्ति भणन्ति च महिधर-आयु-भवन्तु जिनाः ।)

तत्पश्चात् वे मणिमय काले पाषाण के दो गोल वृत्ताकार बाटों को तीर्थंकरों के कर्णमूल के पास आस्फोटित (परस्पर टकराती) करती हुई कहती हैं—'हे जिनेन्द्र भगवान्! आपकी महीधर—पर्वत के समान आयु हो ।१७३।

रययमएहि हच्छं, अच्छर सा तंदुलेहिं विमलेहिं ।
तित्थयराणं पुरओ, करेंति अट्ठट्ठ मंगलयं ।१७४।
(रजतमयैः हृस्वं, अप्सराताः तंदुलैर्विमलैः ।
तीर्थंकराणां पुरतः कुर्वन्ति अष्टाष्टमंगलकम् ।)

इसके पश्चात् वे अप्सराएं चाँदी के बने विमल चांवलों से शीघ्रतापूर्वक उन तीर्थङ्करों के सम्मुख आठ आठ अष्ट मंगलों का निर्माण करती हैं ।१७४।

जलथलय पंचवन्निय, सव्वोउ य सुरहि कुसुमकय पूयं ।
काउं कोउग भवणे, चउद्दिसि घोसणं कासी ।१७५।
(जल-स्थलश्च पंचवर्ण्यः, सर्वतश्च सुरभि कुसुमकृता पूजा ।
कृत्वा कौतुक भवनानि, चतुर्दिशासु घोषणामकार्षन् ।)

तदनन्तर उन्होंने जल एवं स्थल में उत्पन्न हुए परम सुगन्धित पांच प्रकार के पुष्पों से नवधा भक्ति पूर्वक उनकी पूजा की । पूजा के पश्चात् अनेक प्रकार के कौतुक किये और फिर इस प्रकार की घोषणा की ।१७५।

तित्थयर माइपिउणे, तित्थयराण य मणेण जो पावं ।
चिंतेज्ज तस्सहुसिरं, फुट्टिही निस्संसयं सयहा ।१७६।
(तीर्थंकर-मातापित्रोः, तीर्थंकराणां च मनसा यः पापं ।
चिन्तयेत् तस्य हि शिरं, स्फुटिष्यति निस्संशयं शतधा ।)

"तीर्थङ्करों के माता पिता और तीर्थङ्करों के प्रति यदि कोई मन से भी पापपूर्ण कृत्य करने का विचार करेगा तो यह निस्संदिग्ध है कि उस का शिर सौ टुकडे होकर फूट जायगा।१७६।"

एवं उग्घोसेवुंता, तो घत्तुं जिणेस माहीए ।
ठावंति जम्मभवणे, सयणिज्जे हरिसिय मणाओ ।१७७।
(एवं उद्घोषयित्वा ताः, ततः गृहीत्वा जिनेशमातृ न् ।
स्थापयन्ति जन्मभवने, शयनीये हर्षितमनाः ।)

इस प्रकार की उद्घोषणा करके परम हर्ष मनाती हुई वे तीर्थंकरों की माताओं को जन्म भवनों में उनको शय्याओं पर लाकर लिटा देती हैं।१७७।

परिवारेउं सव्वा तो, ते सिंगार हावकलियाओ ।
गायंति सवण सुहयं, सत्तस्सर सीभरं गेयं ।१७८।
(परिवार्य सर्वास्ततस्ताः शृंगार हाव कलिताः ।
गायन्ति श्रवण सुखदं, सप्त स्वर सीभरं गेयम् ।)

तदनन्तर शृंगार और हाव भाव की प्रतीक वे ५६ दिक्कुमारी महत्तरिकाएँ अपना सब दिशाकुमारियों के साथ एकत्र हो सप्तस्वर-लहरियों से सम्मोहक और श्रवण सुखद मंगलगान गाती हैं।१७८।

तत्तो जिण जणणीओ, महुरं गीयं दिसाकुमारीणां ।
सुणमाणेउं सहसा, नियया ए संगयाताओ ।१७९।
(ततः जिन-जनन्यः, मधुरं गीतं दिक्कुमारीणाम् ।
श्रूयमाणास्तु सहसा, निद्रया संगतास्ताः ।)

इसके पश्चात् दिशाकुमारियों के मधुर संगीत को सुनाती हुई तीर्थंकरों की माताएं सहसा निद्रा में निमग्न हो गईं।१७९।

ताहे भवणाहिवई वीसं, सोलस य वणयराहिवई ।
चन्दाइच्चाइं गहा, सरिक्ख तारागण समग्गा ।१८०।

(ततः भवनाधिपतयो विंश, षोडश च व्यन्तराधिपतयः ।
चन्द्रादित्यादिग्रहाः, सऋक्षास्तारागण समग्राः ।)

तदनन्तर बीस भवनेन्द्रों, सोलह व्यन्तरेन्द्रों, चन्द्र, सूर्य, ग्रहों, नक्षत्रों सहित समस्त तारागणों ।१८०।

कप्पाहिवती वि तओ, ओहिनाणेण जाणिऊण जिणे ।
जाहे जाया समहिय, मयंक सोमाण सच्छा य ।१८१।
(कल्पाधिपतयोऽपि ततः, अवधिज्ञानेन ज्ञात्वा जिनान् ।
यदा जाताः समधिक मृगांकशोभनच्छाया ।)

और कल्पेन्द्रों ने अवधि ज्ञान से जब यह जाना कि चन्द्र और सूर्य से भी अधिक निर्मल एवं तेजस्वी जिनेन्द्रों का जन्म हो गया है ।१८१।

तो हरिस गग्गर (द्) गिरा, सहरसमब्भुट्ठिया सपरिवारा ।
महियलनमिय वरंगा, संथुणियं आयरतरेण ।१८२।
(ततः हर्षगद्गद्गिरः, सहर्षमभ्युत्थिताः सपरिवाराः ।
महितलनमित वरांगाः, संस्तुतं आदरतरेण ।)

तो वे सब हर्ष गद्गद् वचन बोलते हुए सहसा अपने परिवार सहित उठ खड़े हुए और पृथ्वीतल पर अपना मस्तक झुका कर बड़े आदर के साथ उन्होंने तीर्थंकरों की स्तुति की ।१८२।

सव्विड्ढीए सपरिसाए, हरिसवसुज्जुया सभत्तीआ ।
जिणचंदे दट्ठुं मणा जाणविमाणेहिं आगया तुरिअं ।१८३।
(सर्वर्द्धया सपरिषदा, हर्षवशोद्यताः सभक्तिकाः ।
जिनचन्द्रान् द्रष्टुमनाः यानविमानैं आगताः त्वरितम् ।)

उन्होंने हर्षविभोर हो भक्तिपूर्वक अपने अपने समस्त परिवार सहित अति शीघ्र ही पूरी तैयारी की और जिनचन्द्रों के दर्शनों की तीव्र उत्कण्ठा मन में लिये वे सम्पूर्ण दिव्य देवर्द्धियों के साथ यान-विमानों से तत्काल जिन-जन्म-भवनों पर पहुंचे ।१८३।

हरिसियमणा सुरिंदा, जिणचंदे उयएतहिं दट्ठुं ।
जाया समहियसोहा, ससिव्वदट्ठूण कुमुयवणे ।१८४।
(हर्षितमनाः सुरेन्द्राः, जिनचन्द्रान् उदितान् तत्र दृष्ट्वा ।
जाताः समधिकशोभाः, शशिमिव दृष्ट्वा कुमुदवनाः ।)

हर्षितमना देवेन्द्रों ने जब वहां नवोदित जिनचन्द्रों के दर्शन किये तो तत्काल उनकी शोभा-कान्ति ठीक उसी प्रकार अत्यधिक बढ़ गई, जिस प्रकार कि चन्द्र दर्शन करते ही कुमुद बन की ।१८४।

जणणि सहिए जिणिंदे, नमिऊण पयाहिणं काऊणं ।
करयल कयंजलिपुडा, विणयेण य पज्जुवासंति ।१८५।
(जननिसहितान् जिनचन्द्रान् नत्वा प्रदक्षिणां कृत्वा ।
करतलकृताञ्जलिपुटाः, विनयेन च पर्युपासन्ति ।)

माताओं सहित जिनेन्द्रों को नमस्कार कर और प्रदक्षिणा कर के वे सब हाथ जोड़े विनय पूर्वक उनकी पर्युपासना करने लगे ।१८५।

अह सोहम्मे कप्पे, विसयपसत्तस्स सुरवरिंदस्स ।
सक्कस्स नवरि दिव्वं, सहसा सीहासणं चलियं ।१८६।
(अथ सौधर्मे कल्पे, विषय प्रसक्तस्य सुरवरेन्द्रस्य ।
शक्रस्य नवरं दिव्यं, सहसा सिंहासनं चलितम् ।)

तीर्थंकरों का जन्म होते ही सौधर्म कल्प में दिव्य देवभोगों में प्रसक्त सुरवरेन्द्र शक्र का दिव्य सिहासन सहसा हिला ।१८६।

अह ईसाणे कप्पे, विसयपसत्तस्स सुरवरिंदस्स ।
ईसाणस्स वि दिव्वं, सहसा सीहासणं चलियं ।१८७।
(अथेशाने कल्पे, विषयप्रसक्तस्य सुरवरेन्द्रस्य ।
ईशानस्यापि दिव्यं, सहसा सिंहासनं चलितम् ।)

इसी प्रकार ईशान कल्प में विषयासक्त सुरश्रेष्ठों के अधिपति ईशानेन्द्र का सिंहासन भी सहसा चलायमान हुआ ।१८७।

ओहीए उवउत्ता, जाये दट्ठूण जिणवरे तो ते ।
पचलिय कुंडलमउला, आसणरयणं पमोच्चीय ।१८८।
(अवधिज्ञाने उपयुक्ताः जातान् दृष्ट्वा जिनवरान् तु ते ।
प्रचलित-कुण्डलमौल्य, आसनरत्नं प्रमुच्य ।)

अवधिज्ञान के उपयोग द्वारा नवजात तीर्थंकरों को देखते ही चमचमाते चपल कुण्डल-मुकुटधर देवेन्द्र अपने आसन रत्न से उतर कर ।१८८।

अह सत्तट्ठ पयाइं. अणु (अभि) गच्छित्ताण जिणवरे वरदे ।
अंचत्ति वामजाणुं, इयरं भूमीए निहुं ।१८९।
(अथ सप्ताष्ट पदानि, अभिगत्वा जिनवरान् वरदान् ।
अञ्चन्ति वामं जानुं, इतरं भूमौ निहत्य ।)

जिनेन्द्र जिस दिशा में विद्यमान हैं, उस ओर सात आठ पद जिनेन्द्रों के अभिमुख जाकर वाम जानु को मोड़कर तथा दक्षिण जानु को भूमि पर टिका ।१८९।

पणमंति सिरेण जिणे, पुणे पुणो पागसासणेपयया ।
उट्ठेऊंण भणंतिय, वयणमिणं नेगमेसिसुरे ।१९०।
(प्रणमन्ति शिरसा जिनान्, पुनर्पुनः पाकशासनाः प्रयताः ।
उत्थाय भणन्ति च, वचनमिदं नैगमेषि-सुरान् ।)

मस्तक झुकाकर वे इन्द्र बार बार बड़े यत्न के साथ जिनेन्द्रों को प्रणाम करत हैं और तदनन्तर उठकर नैगमेषी देवों को इस प्रकार के वचन बोलते हैं ।१९०।

पंचसु एरवए सुं, पंचसु भरहेसु दस जिणा जाया ।
काहामो अभिसेयं, करेह विदियं सुरगणाणं ।१९१।
(पंचसु एरवतेषु, पंचसु भरतेषु दश जिनाः जाताः ।
करिष्यामोऽभिषेकं, कुरुश्व विदितं सुरगणानाम् ।)

पांच ऐरवत क्षेत्रों में पांच भरत क्षेत्रों में इस प्रकार दस तीर्थंकरों का जन्म हुआ है। सब देवगणों को विदित कर दो कि हम सब उन तीर्थंकर प्रभुओं का जन्माभिषेक करेंगे।१९१।

सक्कीसाणाणत्तो, तो ते घेत्तु सुरे विसय सुत्ते ।
वयण भणंति भणिया, सुघोस घंटाए बोहेउं ।१९२।
(शक्रेशाना-ज्ञातः ततस्ते गृहीतुं सुरान् विषयसुप्तान् ।
वचनं भणन्ति भणिताः, सुघोष घंटया बोधयितुं ।)

शक्र और ईशानेन्द्र के इस आदेश को सुनते ही विषयसुख में निमग्न देवताओं को इन्द्रों की आज्ञा से परिचित करने तथा उन्हें साथ लेने के लिये हरि-नैगमेषी देव सुघोष घण्टा का घोष करते हुए इस प्रकार के वचन बोलते हैं।१९२।

भो भो सुणंतु सव्वे, सुरवसहा सुरवतीण वयणमिणं ।
एग समएण जाया, दसवि जिणा दससु वासेसु ।१९३।
(भो भो शृण्वन्तु सर्वे, सुरवृषभाः सुरपतीनां वचनमिदम् ।
एकसमयेन जाताः, दशोऽपि जिनाः दशषु वर्षेषु)

"हे सुरवृषभो ! देवेन्द्रों के इस निर्देश को आप सभी सुनिये" "भरत ऐरवत आदि दशों क्षेत्रों में एक ही समय में दशों ही तीर्थङ्करों का जन्म हुआ है।१९३।

ता तेसिं जम्म महो, जम्मजरामरणविप्प मुक्काणं ।
वच्चामो मणुयलोगं, जिणभिसेगस्स कज्जेण १९४।
(ततः तेषां जन्म महो, जन्मजरामरण विमुक्तानाम् ।
व्रजामो मनुष्यलोकं, जिनाभिषेकस्य कार्येण ।)

जन्म-जरा-मृत्यु से सदा-सर्वदा के लिये विप्रमुक्त होने वाले उन जिनेश्वरों का जन्म महोत्सव मनाने, जिनाभिषेक का कार्य निष्पन्न करने के लिये हम मनुष्य लोक में जा रहे हैं।१९४।

तं तुब्भेवि सपरियणा, आयरितएण गहिय नेवत्थ ।[1]
अण्वेह[2] देवराए, सविमाण गया सह वियहिं ।१९५।
(तद् यूयमपि सपरिजनाः, आर्यत्वेन गृहीत नेपथ्याः ।
अन्वीहस्व देवराजान्, स्व विमानगताः सह वियता ।)

इसलिये परिजन सहित आप सब भी ऐसे अवसरों पर परम्परा से चले आ रहे अपने आचार-व्यवहार के अनुरूप वेष धारण कर अपने अपने विमान पर आरूढ हो आकाश में साथ साथ इन्द्रों का अनुगमन करें" ।१९५।

तो ते सुरवरवसभा, वयणं सोऊण नेगमेसीणं ।
जाणविमाणारूढा, सक्कविमाणा समोसरिया ।१९६।
ततः ते सुरवरवृषभाः, वचन श्रुत्वा नैगमेषीनाम् ।
यान विमानारूढाः, शक्रविमानात् समवसृताः ।)

हरि नैगमेषी देवों के वचन सुनते ही वे सब श्रेष्ठ देवतागण अपने अपने यानों एवं विमानों पर आरूढ हो इन्द्रों के विमानों से बाहर निकल एकत्रित हुए ।१९६।

अह वासवावि सव्वे, उत्तर वे उव्विए करिय रूवे ।
एरावयधवलवसिं, कय जयसद्दा समारूढा ।१९७।
(अथ वासवा अपि सर्वे, उत्तरविकुर्विताः कृतरूपाः ।
ऐरावत धवल वृषं, कृतजयशब्दा समारूढाः ।)

तदनन्तर उत्तर वैक्रिय लब्धि द्वारा रूप बनाये हुए वे इन्द्र भी जयघोष करते हुए ऐरावत एवं श्वेत वृषभ पर आरूढ हुए १९७।

रोहेंति दो वि सक्का, उत्तर वे उव्विएहिं पण्णासं ।
पण्णासं दससु वि, क्खेत्तेसु एंति दुइयं ।१९८।

---

१ नेवत्थ-नेपथ्य-न० । वेषे, "वेसो नेवत्थं ।" को गा० २३३ । स्त्रीपुरुषाणां वेष, स्था., ४ ठा. २ उ. । निर्मलवेषे, ज्ञात., श्रु. १ अ. १६

२ अणह—आशा पालयत: – इत्यर्थोऽपि संभाव्यते ।

(आरोहतः द्वावपि शक्रौ, उत्तवैक्रियाभिः पञ्चाशतम् ।
पञ्चाशतम् दशष्वपि, क्षेत्रेषु एन्ति द्रुतम् ।)

उत्तर वैक्रिय लब्धि द्वारा अपने अपने पचास पचास स्वरूप बनाये हुए दोनों इन्द्र दशों क्षेत्रों में तत्काल पहुंचते हैं ।१९८।

पहय पडुपंडपोसा, सलोगवालग्गमहिसि परिवारा ।
संपत्थियाय सुरवई, जिणाण पामूलमभिचंदा ।१९९।
(प्रहत पटु पंडपोषाः स्वलोकपालाग्रमहीषि परिवाराः ।
संप्रस्थितौ सुरपती, जिनानां पादमूलमभिचन्द्राः ।)

समस्त देवपरिवार और अग्रमहीषियों से परिवृत्त वे देवेन्द्र दिव्य वाद्यों के सुमधुर घोष के बीच नवजात तीर्थंकरों के चरणों की सेवा में उपस्थित होने की उत्कण्ठा लिये सुरालय से प्रस्थित हुए ।१९९।

संपत्ता य खणेणं, सुरच्छर संघ परिवुडा तहियं ।
जाया जत्थ जिणंदा, वोच्छिण्ण पुणब्भवा गुरुणो ।२००।
(संप्राप्तौ च क्षणेण, सुराप्सरासंघपरिवृताः तत्र ।
जाताः यत्र जिनेन्द्राः, व्युच्छिन्नपुनर्भवाः गुरुवः ।)

अप्सराओं एवं विशाल देव परिवार से परिवृत्त वे देवेन्द्र पल भर में ही उन स्थानों पर पहुँचे जहाँ बड़े लम्बे अन्तराल की व्युच्छित्ति के पश्चात् जगद्गुरु तीर्थंकरों ने पुनः धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करने के लिये जन्म ग्रहण किया था ।२००।

पेच्छंति सव्व सक्का, जिणेवि भवसागरंतरेदीवे ।
इक्खागवंस जाए, सयल जगाणंद णे हत्थं ।२०१।
(प्रेक्षन्ति सर्वे शक्राः, जिनानपि भवसागरान्तरे दीपान् ।
इक्ष्वाकुवंश जातान्, सकल जगानन्दस्नेहार्थम् ।)

वहाँ वे देवेन्द्र और देवी-देवगण हर्षविभोर हो अथाह अपार अनन्त भव सागर के बीच अन्तरीपों के समान, समस्त संसार को

आनन्द प्रदान करने वाले और इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए उन त्रैलोक्यनाथ तीर्थंकरों को देखते हैं ।२०१।

अहजिण दंसणवियसिय, मुहकमलावंदिऊण जिणचंदे ।
देवगण संपरिवुडा इंदाजिणजम्मभवणाणं ।२०२।
(अथ जिनदर्शन विकसित, मुखकमलाः वंदित्वा जिनचन्द्रान् ।
देवगण संपरिवृताः, इन्द्राः जिन-जन्मभवनानाम् ।)

जिनेन्द्र भगवन्तों के दर्शनजन्य-हर्षातिरेक से प्रफुल्ल वदनारविन्द एवं देववृन्द से परिवृत्त इन्द्रों ने दशों तीर्थंकरों को वन्दन कर जिनेन्द्रजन्म प्रासादों के ।२०२।

अह पासे ठाऊणं, भणंति सेणावइं पयत्तेणं ।
जणणीणं सगासाओ, आणेह जिणे विणएणं ।२०३।
(अथ पार्श्वे स्थित्वा, भणन्ति सेनापतिं प्रयत्नेन ।
जननीनां सकाशात्, आनय जिनान् विनयेन ।)

पास अवस्थित हुए और उन्होंने शक्र सैन्य के सेनानी हरिनैगमेषी देव को आदेश दिया कि वे पूर्ण विनय पूर्वक नवजात तीर्थंकरों को उनकी माताओं के पास से पूरी सावधानी के साथ ले आयें ।२०३।

तो ते हरिसियवयण, साहिऊण अहो सुहीं जिणवरिंदे ।
थित्ते विणाय विणया, उवणंति सहस्सनयणाणं ।२०४।
(ततस्ते हर्षितवचनाः साक्षी धयित्वा अहोः सुखीन् जिनवरेन्द्रान् ।
स्थितान् विज्ञातविनयेन, उपनयन्ति सहस्रनयनानाम् ।)

इन्द्रों की आज्ञा को सहर्ष शिरोधार्य कर विनय विधि के विशेषज्ञ हरि नैगमेषी देव सुखनिधान जिनेश्वरों का इन्द्रों के पास लाते हैं ।२०४।

अह ते देवाणवई, नयणसहस्सेहिं जिणवरे तइया ।
न वि तिप्पंतीक्खंता, तिहुयणसोहमहिव्वसोभे ।२०५।

(अथ ते देवानां पतयः, नयनसहस्रैः जिनवरान् तदा ।
नापि तृप्यन्ति ईक्षन्तः त्रिभुवनशोभाभ्यधिकशोभान्)

त्रैलोक्य की समस्त शोभाओं की अपेक्षा भी अत्यधिक उत्कृष्ट शोभाशाली उन तीर्थंकरों को अपने अपने हजार नेत्रों से निरन्तर देखते हुए भी वे सब इन्द्र अपने आपको पूर्ण तृप्त अनुभव नहीं कर रहे हैं ।२०५।

तो पणमीउ जिणिंदे, इंदा परमेण भत्तिराएण ।
पगया घेत्तूण जिणे, पंचप्पाणे विउव्वंति ।२०६।
(ततः प्रणम्य जिनेन्द्रान्, इन्द्राः परमेण भक्तिरागेण ।
प्रगताः गृहित्वा जिनान्, पंच[धा]आत्मानं विकुर्वन्ति ।)

तदनन्तर वे इन्द्र परम भक्तिराग से जिनेन्द्रों को प्रणाम करते हैं और जिनेन्द्रों को लेकर प्रस्थित होते हैं। प्रत्येक इन्द्र वैक्रिय शक्ति द्वारा अपने पांच पांच स्वरूप बनाता है ।२०६।

गहिय जिणिंदो एक्को, दो दो पासेसु चामरे सच्छे ।
धवला य चत्त हत्थे, एक्केक्केत्थ वज्ज धरे ।२०७।
(गृहितजिनेन्द्र एकः, द्वौ द्वौ पार्श्वेषु चामराः स्वच्छाः ।
धवलाश्च चतुर्हस्तेषु एकैकेऽथ वज्रधराः ।)

एक एक इन्द्र ने जिनेन्द्रों को अपने करपल्लवों में ग्रहण किया। प्रत्येक तीर्थंकर के दोनों पार्श्वों में दो दो इन्द्र चँवर ढुलाते हुए चलने लगे। पार्श्वस्थ चारों इन्द्र चार हाथों में स्वच्छ सफेद चँवर और चार हाथों में वज्र ग्रहण किये हुए थे ।२०७।

चउव्विह देवसमग्गा, ते सक्का तिव्व जाय परितोसा ।
उप्पइऊणागासां, सुमेरु संपट्ठिया तुरिय ।२०८।
(चतुर्विध देवसमग्राः, ते शक्रा तीव्रजातपरितोषाः ।
उत्पत्याकाशं सुमेरुं संप्रस्थिताः त्वरितम् ।)

वे वैमानिक, ज्योतिष्क, भवनपति और वाणव्यन्तर—चारों प्रकार के समस्त देवसमूह एवं इन्द्र उत्कट आह्लाद का अनुभव करते

हुए आकाश में उड़े और मनोवेग से सुमेरु पर्वत की ओर अग्रसर हुए ।२०८।

तो बाल जिणवरिंदे, उवगायंता सुरा सपरिवारा ।
वच्चंति मुइय मणसा, पुरओ सव्वाहिगारेण ।२०९।
(ततः बालजिनवरेन्द्रान् उपगायन्तः सुराः परिवाराः ।
व्रजन्ति मुदितमनसा, पुरतः सर्वाधिकारेण ।)

उन नवजात दशों तीर्थेश्वरों के आगे आगे सपरिवार सुविशाल सुरसमूह अपनी समस्त दिव्य देवर्द्धि के ठाट के साथ तीर्थंकरों की महिमा के गीत गाता हुआ मुदित मन हो आकाश मार्ग से चलने लगा ।२१६।

पंचण्हं वि मेरूणं गिरिवरसिहरे खणेण संपत्ता ।
कंचण दमोववेए, सव्वेउय पुप्फ फल भरिए ।२१०।
(पंचानामपि मेरूणां गिरिवरशिखरे क्षणेन संप्राप्ताः ।
कंचन द्रुमोपपेते, सर्वर्तुक पुष्पफलभरिते ।)

जिनेन्द्रों को लिये हुए वे देव-देवेन्द्र सब ऋतुओं के पुष्प-फलों से लदे स्वर्णवृक्षों से सुशोभित पांचों ही सुमेरु पर्वतों के शिखरों पर क्षण भर में ही पहुँच गये ।२१०।

पंचण्हं वि मेरूणं एक्केक्कं होइ पंडुगवणं तु ।
लज्जइ तेलोक्कस्स वि, लच्छी संपिंडिया तेसु ।२११।
(पंचानामपि मेरूणां, एकैकं भवति पाण्डुकवनं तु ।
लज्जति त्रैलोक्यस्यापि, लक्ष्मी संपिंडिता तेषु ।)

पांचों ही सुमेरु पर्वतों में से प्रत्येक पर एक एक पाण्डुकवन है, जिनकी शोभा श्री के समक्ष तीनों लोक की एकत्र पिण्डीभूत लक्ष्मी भी लज्जित हो जाती है ।२११।

ताण बहुमज्झ देसे चूला जिणभवणसोहिया रम्मा ।
वेरूलिय विमलरूवा, पंचट्ठग जोयणु व्विद्धा ।२१२।

(तेषां बहुमध्यदेशे, चूलाः जिनभवनशोभिताः रम्याः ।
वैडूर्य विमलरूपाः, पंचाष्टक योजनोद्विद्धाः)

उन पाण्डुकवनों के बिल्कुल मध्य भाग में जिन-भवनों (जिन मन्दिरों) से सुशोभित, वैडूर्य मणि की स्वच्छ श्वेत अति रमणीय पांच योजन चौड़ी और आठ योजन लम्बी, चूलाएं हैं ।२१२।

पंचण्हव मेरूणं, चूला एक्केक्किया मुणेयव्वा ।
सासय जिणभवणाओ, हवंति पंचेव चूलाओ ।२१३।
(पंचानामपि मेरूणां, चूला एकैकाः मुनेतव्या ।
शाश्वतजिनभवनात्, भवन्ति पंचैव चूलाः ।)

पांचों ही मेरु पर्वतों की एक एक चूला जाननी चाहिये । वे पांचों चूलाएं शाश्वत जिन-भवन स्वरूपा होती हैं ।२१३।

बारस जोयण पिहुलाओ, ताओ ठवणं तु जोयणे चउरो ।
तासिं चउद्दिसिं पि य, सिलाउ चत्तारि रंमाउ ।२१४।
द्वादशयोजनपृथुलाः, ताः स्थापनं तु योजनानि चत्वारि ।
तासां चतुर्दिग्स्वपि च, शिला, चतस्रः रम्याः ।)

प्रत्येक चूला १२ योजन पृथुल अर्थात् मोटी तथा चार योजन स्थापना (आधार शिला) वाली होती हैं । उन पांचों चूलाओं के चारों ओर चारों दिशाओं में बड़ी ही सुन्दर चार शिलाएं होती हैं ।२१४।

पंचसयायामाओ, मज्झे दीघतणद्धरुंदाओ ।
चंदद्धसंठियाओ, कुमुयवरहार गोराओ ।२१५।
(पंचशतायामाः, मध्ये दीर्घतायार्द्धरुंदाः ।
चन्द्रार्द्धिसंस्थिताः, कुमुदवरहारगौराः)

उनमें से प्रत्येक शिला ५०० योजन विस्तार वाली, मध्यभाग में स्थूल तथा उत्तरोत्तर मुटाई में घटते घटते अन्त में तृण के अर्धभाग तुल्य मोटी, चन्द्राकार तथा श्रेष्ठ कुमुद पुष्प के हार सदृश गौरवर्ण की होती है ।२१५।

पुव्वेण पंडुकंबल, अवरेण अइ पंडुकंबला होइ ।
रत्ताइरत्तकंबल, सिला य दो दक्खिणुत्तरओ ।२१६।
(पूर्वेण पाण्डुकंबला, अपरेण अतिपाण्डुकंबला भवति ।
रक्तातिरक्तकंबले, शिले च द्वे दक्षिणोत्तरतः ।)

प्रत्येक चूला के पूर्व में पाण्डुकम्बलाशिला, पश्चिम में अति पाण्डुकम्बला शिला, दक्षिण में रक्तकम्बला शिला और उत्तर दिशा मे अतिरक्तकम्बला शिला होती है ।२१८।

पुव्वावरासु दो दो, सिलासु सीहासणाइं रम्माइं ।
चंदद्ध दक्खिणुत्तर, सिलासु एक्केक्कयं भणियं ।२१७।
पूर्वापरासु [रयोः] द्वे द्वे, शिलासु [लयोः] सिंहासनानि रम्याणि ।
चन्द्रार्द्धं दक्षिणोत्तर, शिलासु [लयोः] एकैकं भणितम् ।)

प्रत्येक शिला के पूर्व तथा पश्चिम भाग में दो दो तथा दक्षिणोत्तर दोनों अर्द्धचन्द्राकार भागों पर एक एक, इस प्रकार चारों दिशाओं में चारों भागों पर अतीव सुन्दर ६ सिंहासन होते हैं ।२१७।

सीतासीतोयाणं, उभओ कूलुब्भवा जिणवरिंदा ।
अभिसिंचंते सुरेहि, जम्मे पुव्वावर सिलासु ।२१८।
(सीतासीतोदयोरुभयोः कूलोद्भवाः जिनवरेन्द्राः ।
अभिसिंच्यन्ते सुरैः, जन्मनि पूर्वापर शिलासु ।)

सीता तथा सीतोदा नदियों के दोनों तटों पर उत्पन्न होने वाले तीर्थङ्करों का देवताओं द्वारा पूर्व तथा पश्चिम दिशाओं में स्थित शिलाओं पर जन्माभिषेक किया जाता है ।२१८।

भरहे रवयजिणिंदा, बालत्ते पुण चंद सरिस मुहा ।
अभिसिंचंते सुरेहिं; जंमे उत्तर सिलासु ।२१९।
(भरतैरवतजिनेन्द्राः, बालत्वे पुनश्चन्द्र सदृश मुखाः ।
अभिसिंच्यन्ते सुरैः, जन्मनि च उत्तर शिलासु ।)

तथा भरत एवं ऐरवत क्षेत्रों में, बाल्यकाल में पूर्णचन्द्र के समान मुख वाले तीर्थङ्करों का जन्म होने पर देवताओं द्वारा उत्तर की ओर स्थित शिलाओं पर जन्माभिषेक किया जाता है ।२१६।

अह सो सोहम्मवती, सहिओ बत्तीस सुरवरिंदेहिं ।
दक्खिण-सिलाउ पंचवि, सहस्स पत्ताणणा पत्तो ।२२०।
(अथ सः सौधर्मपतिः, सहितः द्वात्रिंशैः सुरवरेन्द्रैः ।
दक्षिण शिलासु पंचापि, सहस्र पत्राननाः प्राप्ताः ।)

तत्पश्चात् ३२ इन्द्रों सहित सहस्राक्ष सौधर्मेन्द्र पांचों दक्षिण दिशिस्थ शिलाओं पर पहुँचा ।२२०।

अह सो ईसाणवती, सहिओ बत्तीस सुरवरेन्द्रैः ।
उत्तरसिलाउ पंच वि, सहस्स पत्ताणणो पत्तो ।२२१।
(अथ स ईशानपतिः, सहितो द्वात्रिंश-सुरवरेन्द्रैः ।
उत्तरशिलासु पंचापि, सहस्र पत्राननाः प्राप्ताः ।)

इसके पश्चात् ईशान देवलोक का अधिपति ईशानेन्द्र भी बत्तीस इन्द्रों सहित उत्तर दिशा में स्थित पांच शिलाओं पर पहुँचा ।२२१।

तो तत्थ पवर कंचण,-मयंमि सिंहासणे निवेसित्ता ।
इंदो जिणिंदचंदे, उच्छंगेहि वहेसी य ।२२२।
(ततः तत्र प्रवर कंचनमये सिंहासने निवेशयित्वा ।
इन्द्रो जिनेन्द्र चन्द्रान्, उत्संगैः वहन्ति च ।)

तदनन्तर वहां उत्कृष्ट कोटि के स्वर्ण से निर्मित सिंहासनों पर निवेशित (स्थापित) कर इन्द्र ने उन जिनेन्द्रचन्द्रों को अपनी गोद में धारण किया ।२२२।

छज्जंति सुरवरिंदो, उज्छंगगए जिणे धरेमाणो ।
अभिनव जाए कंचण, दुमेव्व हिमपवर-धरिमाणो ।२२३।
(छाजन्ति सुरवरेन्द्राः, उत्संगगतान् जिनान् धार्यमाणः ।
अभिनवजातान् कंचन द्रुमानिव हिमप्रवरः धार्यमाणः ।)

गोद में विराजमान जिनेन्द्रों को धारण किये हुए इन्द्र सद्योत्पन्न कांचन वृक्षों को धारण किये गिरिराज हिमाद्रि के समान सुशोभित हो रहे थे ।२२३।

अह अच्चुयकप्पवती, धुयकलि कलुसाणं जिणवरिंदाणं ।
अभिसेयं काउमणो, अभिओगे सुरवरे भणइ ।२२४।
(अथ अच्युतकल्पपतिः, धुतकलिकलुषाणां जिनवरेन्द्राणाम् ।
अभिषेकं कर्तुं मना, आभियोगिकान् सुरवरान् भणति ।)

तदनन्तर दुष्कृतों की कालिमा को धो डालने वाले जिनवरों का जन्माभिषेक करने की अभिलाषा से अच्युत् कल्प नामक स्वर्ग के इन्द्र ने अपने सेवक सुरश्रेष्ठों को आदेश दिया ।२२४।

तित्थसरियामहादह, चउ उदहिजलं च दिव्व कुसुमं च ।
आणेह इहं सिग्घं, जं वि य इट्ठमभिसेए ।२२५।
(तीर्थसरितामहाद्रह,-चतुरुदधिजलं च दिव्य-कुसुमं च ।
आनयत इह शीघ्रं, यदपि चेष्टमभिषेके ।)

तीर्थ-नदियों, महाद्रहों तथा चारों समुद्रों का जल, दिव्य पुष्प एवं जन्माभिषेक के लिये अभीष्ट सभी प्रकार की सामग्री शीघ्रातिशीघ्र लेकर आओ ।२२५।

संमं पडिच्छिउणं, सुरवरवसभाणं तं सुरा वयणं ।
आणेंति विमल सलिलं, सव्वेसुं जहुत्त ठाणेसुं ।२२६।
(सम्यक् प्रतीच्छ्य, सुरवरवृषभानां तत् सुरा वचनम् ।
आनयन्ति विमल सलिलं, सर्वेभ्यः यथोक्त स्थानेभ्यः ।)

सुरेश्वरों के आदेश को समीचीनतया हृदयाङ्कित एवं शिरोधार्य कर देवगण सभी यथोक्त स्थानों से पवित्र जल लाते हैं ।२२६।

सव्वोसहिसिद्धत्थं, गहरियालिय कुसुमगं च चुण्णे य ।
आणेंति ते पवित्रं, दह नइतडतह महिंद सुरा ।२२७।

(सव्वौषधिसिद्धार्थं, गहनमलीकं कुसुमकं च चूर्णान् च ।
आनयन्ति ते पवित्रं, द्रहनदीतटतः महेन्द्र-सुराः ।)

महेन्द्र स्वर्ग के वे सुरगण द्रहों और महानदियों के तटों से सर्वौषधि सिद्ध पवित्र एवं शुद्ध पुष्प और चूर्ण लाते हैं ।२२७।

ता अच्चुय कप्पवई, सुवन्नमणिरयणभोम कलसेहिं ।
पउमुप्पलपिहाणेहि, कुसुम गंधुदग भरिएहि ।२२८।
(ततः अच्युतकल्पपतिः, स्वर्णमणिरत्नभौमकलशैः ।
पद्मोत्पलपिधानै, कुसुमगंधोदकभरितैः ।)

अभिषेक हेतु आवश्यक सभी सामग्री को जुटाने के पश्चात् अच्युतेन्द्र पुष्पों की सम्मोहक सुगन्धियों से सुवासित जल से पूर्ण एवं पद्मपत्रों से ढके स्वर्ण, मणि, रत्न और (अलभ्य) मिट्टी के कलशों द्वारा—।२२८।

अभिसिंचइ दसवि जिणे, सपरिवारो पहट्ठ मुहकमलो ।
पहय पडुपडह, दुंदुहि जयसद्दुघोसणरवेणं ।२२९।
(अभिसिंचति दशानपि जिनान्, सपरिवारः प्रहृष्टमुखकमलः ।
प्रहत पटु पटह, दुंदुभिजयशब्दोद्घोषणरवेण ।)

परिवार सहित हर्षोत्फुल्लवदन मुद्रा में प्रताडित दिव्य पटहों, दुंदुभियों आदि वाद्यों की सुमधुर ध्वनि और "जय-जय" के गगन-भेदी घोषों के बीच दसों ही जिनेश्वरों का जन्माभिषेक करते हैं ।२२९।

गोसीसचंदणरसं, सुमणं सोहावियं य दिव्वं च ।
सलिलं च तेयजणणं, जिणाणं उवरिं वुहंति सुरा ।२३०।
(गोशीर्षचन्दनरसं, सुमनंज्ञं शोभावितं च दिव्यं च ।
सलिलं च तेजजननं, जिनानामुपरि वाहयन्ति सुराः ।)

सुरवृन्द उन जिनेश्वरों पर आह्लाद शोभा और तेजवर्द्धक दिव्य गोशीर्ष चन्दन का रस तथा जल वर्षाते हैं ।२३०।

सुरगहियकलसमुह,-निग्गएण गंधोदएण विमलेण ।
पउममहद्दहनिग्गय, गंगासलिलोह सरिसेणं ।२३१।
(सुरगृहीतकलशमुखनिर्गतेन गंधोदकेन विमलेन ।
पद्ममहाद्रहनिर्गतगंगासलिलौघसदृशेन ।)

पद्म महाद्रह से उद्गत गंगा महान् जलप्रवाह के समान देवताओं के हाथों में ग्रहण किये गये अपरिमित कलशों के मुंह से निकले पवित्र सुगन्धित जल की धाराओं के—।२३१।

उवरिं निवडं तेणं, बालजिणे तेयरासिं संपण्णे ।
अहियं दिप्पंति तहिं, पयपरिसित्ते हुयवहेव्व ।२३२।
(उपरि निपतं तेन, बालजिनाः तेजराशिसंपन्नाः ।
अधिकं दिप्यन्ति तत्र, पय[1]परिषिक्तः हुतवह इव ।)

उत्तमांग और सभी अंगों पर गिरने के फलस्वरूप वे सभी सद्यःजात तीर्थंकर तेजोपुंज से सम्पन्न हो घृतसिंचित अग्नि की ज्वाला के समान वहां अधिकाधिक देदीप्यमान होने लगे ।२३२।

तो जिणवराभिसेए, नट्टंति विविह रूववेसधरा ।
ससुरासुर गंधव्वा, ससिद्धविज्जाहरा मुइया ।२३३।
(ततः जिनवराभिषेके नृत्यन्ति विविधरूपवेषधराः ।
ससुरासुरगन्धर्वाः, ससिद्धविद्याधराः मुदिताः।)

तदनन्तर जिनवरों के जन्माभिषेक में सुर, असुर, गन्धर्व, सिद्ध और विद्याधर प्रमुदित हो अनेक प्रकार के रूप एवं वेष धारण कर नृत्य करते हैं ।२३३।

ततवितंत घणघुसिरं, वज्जंवाइंति केइ सुरवसहा ।
गायंति ससिंगारं, सत्तसरसीभरं गेयं ।२३४।
(तत वितंत घनघोषकरं वाद्यं वादयन्ति केचित् सुरवृषभाः ।
गायन्ति सशृंगारं, सप्तस्वरसीभरं गेयम् ।)

---

१ अत्र पय शब्दो घृतार्थे प्रयुक्तो प्रतीयते ।

अनेक सुरश्रेष्ठ गगन को गुंजरित कर देने वाली ताल के साथ, सघन वारिद घटा के गर्जन तुल्य गम्भीर घोष करने वाले वाद्य यन्त्र बजाते हैं तथा कतिपय देव शृंगार रस से ओत-प्रोत सातों स्वरों में अति मधुर सम्मोहक गीत गाते हैं ।२३४।

चउ अभिणय संजुत्तं, उणयालीसं-गहार पडिपुण्णं ।
सुललिय पय विच्छेदं, नट्टं दाइंति तत्थ सुरा ।२३५।
(चतुरभिनयसंयुक्तं, एकोनचत्वारिंशदंगहार प्रतिपूर्णम् ।
सुललितपदविच्छेदं, नाट्यं दापयन्ति तत्र सुराः ।)

जिनजन्म महोत्सव के उस पवित्र एवं सुखद स्वर्णिम सुअवसर पर कतिपय देवगण चारों प्रकार के अभिनय से संयुक्त, उनचालीस प्रकार की भावपूर्ण अंगभंगिमाओं से परिपूर्ण और परम लालित्य से ओतप्रोत अति सुन्दर नाट्य प्रस्तुत करते हैं ।२३५।

वग्गंति फोडयंति य, तिवइं छिंदंति विविहवेसधरा ।
वासंति जलधराइं य सविज्जुयं सथणियं तहिं अण्णे ।२३६।
(वल्गन्ति स्फोटयन्ति च त्रिपदीं छिन्दन्ति विविधवेषधराः ।
वर्षन्ति जलधराः च, सविद्युतं सस्तनितं तत्र अन्ये ।)

अनेक प्रकार के वेष धारण किये कतिपय देव मदोन्मत्त हाथियों की तरह चिंघाडते, कई देव वायु को प्रकम्पित कर देने वाली ध्वनि के साथ खम्भ ठोकते, कतिपय देव त्रिपदी का विच्छेद करते एवं कतिपय देवगण बादलों की गड़गड़ाहट एवं बिजली की चकाचौंध के साथ जलधाराओं की वर्षा करते हैं ।२३६।

हयहिंसिय गयगज्जिय, रह घणघण सीहनाय जय सद्दे ।
कुणमाणेहिं सुरेहिं, रसईव य गगणं दलइ भूमी[1] ।२३७।
(हयहिंसित, गजगर्जित (वल्गित) रथ-घणघण सिंहनाद जयशब्दानि
क्रियमाणैः सुरैः हसस्सतीव च गगनं दलति भूमिः ।)

---

१ "रसइ गगणंगणं दलइ भूमी" इति पाठे सति चमत्कृति सविशेषा शोभते ।
(रसति गगनांगनं दोलयति भूमिः)

घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की चिंघाड़, रथों की घर-घराहट और देव समाज द्वारा किये गये सिंहनादों तथा जयघोषों से धरती डगमग-डगमग डोलने लगी और आकाश फटने सा लगा।२३७।

नच्चंति अच्छराओ, अभिणय अंगोवहार पडिपुण्णं ।
चउरंगहार मणहर, सहावभावं ससिंगारं ।२३८।
नृत्यन्ति अप्सरसः, अभिनय अंगोपहार प्रतिपूर्णम् ।[1]
चतुरंगहार मनहर-सहावभावं सशृंगारम् ।

अप्सराएं हावभावों से भरपूर, शृंगाररस से ओतप्रोत, अभिनय और भावपूर्ण अंगभंगिमाओं से परिपूर्ण चार प्रकार का मनोहर नृत्य करती हैं।२३८।

तो पइय भेरि झल्लरि, दुंदुहि गंभीर महुर निग्घोसो ।
अंबरतले विचंभइ, हरिसुक्करिसं जणेमाणो ।२३९।
(ततः प्रहत-भेरि-झल्लरी, दुंदुभिगंभीरमधुरनिर्घोषः ।
अम्बरतले विश्चम्भति, हर्षोत्कर्षं जनयन् ।)

प्रताडित भेरियों, झल्लरियों एवं दुंदुभियों का घनगर्जन तुल्य गम्भीर और मधुर घोष प्रत्येक के मानस में उत्कृष्ट हर्ष उत्पन्न करता हुआ गगनमण्डल में प्रतिध्वनित तथा व्याप्त हो जाता है।२३९।

ससुरासुरनिग्घोसो, कहकहक्कुडिकलयलसणाहो ।
मुच्चइ[2] दससुदिसासु, पक्खुभिय महोदहिसरिच्छो ।२४०।
(स सुरासुरनिर्घोषः, कहक्कहोत्कटकलकल सनाथः ।
मुंचति[3] दशसु दिशासु, प्रक्षुभित महोदधि-सदृशः ।)

सुर एवं असुर समाज द्वारा किये गये जय आदि घोषों, कलकल निनादों सहित वातावरण को मुखरित कर देने वाले उत्कट कहकहों से उत्पन्न वह सम्मिश्रित निर्घोष विक्षुब्ध महासागर के समान दशों दिशाओं में उन्मुक्त रूप से बढ़ने लगा।२४०।

---

१ अध्याहारेणात्र 'नृत्यम्' इति वाच्यम्। २ गुज्जई। ३ गुंजति।

तो उग्गासिद्धथग,-सव्वोसहि कुसुम न्हाणवासेहिं ।
अच्चुय इंदो दससुवि, जिणाभिसेयं करेसिण्हं ।२४१।
ततः उदक-सिद्धार्थक-सर्वौषधि-कुसुम-स्नान-वस्त्रेभ्यः ।
अच्युतेन्द्रः दशस्वपि[1] जिनाभिषेकं करोति स्म ।)

तत्पश्चात् दसों ही स्थानों पर अच्युतेन्द्र सिद्धार्थक, सभी प्रकार की औषधियों, कुसुमों, स्नान एवं वस्त्रादि से दसों ही तीर्थङ्करों का जन्माभिषेक करते है ।२४१।

अवसेसावि सुरवति, तेणेव कमेण पाणयाईया ।
सव्विड्ढीए सपरिसा, जिणभिसेयं करेसिण्हं ।२४२।
अवशेषा अपि सुरपतयः, तेनैवेमया[2] प्राणतादिकाः ।)
सर्वर्द्ध्या सपरिषदया, जिनाभिषेकं कुर्वन्ति स्म ।)

अच्युतेन्द्र द्वारा किये जिनजन्माभिषेक के अनुसार उसी विधि से शेष इन्द्र भी अपने अपने सुरसमाज और उत्कृष्ट ऋद्धियों के साथ उन दसों ही जिनेश्वरों का जन्माभिषेक करते हैं ।२४२।

जाहे कया सव्वेहिं, अभिसेया देव दाणवेहिं वा ।
सक्कीसाणा दोन्नि वि, धवलवसहसिंगधारा हिं ।२४३।
(यदा कृता सर्वैः अभिषेकाः देव-दानवैर्वा
शक्रेशानौ द्वावपि, धवल वृषभशृंगधारिभः[3] ।)

सभी देव-दानवेन्द्रों द्वारा उक्तविधि से जन्माभिषेक सम्पन्न हो जाने के अनन्तर शक्र तथा ईशानेन्द्र ने श्वेत वृषभों के के शृंगों से निकली जलधाराओं से जिनेश्वरों का अभिषेक किया ।२४३।

चउ उदहि सलिल सरिया, जलं च वसभेसु पक्खिवति सुराः ।
असुरसुरच्छरसहिया, जिणाभिसेयं करेऊणं ।२४४।

---

१ अध्याहारेण 'स्थानेषु'—इति वाच्यम् ।
२ अध्याहारेण 'विधिना'—इति वाच्यम् ।
३ "जिनाभिषेकं कुरुतः ।' इत्यध्याहारेणात्र ग्राह्यम् ।

(चतुरुदधिसलिलसरिता-जलं च वृषभेषु प्रक्षिपन्ति सुराः ।
असुर-सुर-अप्सरा सहिताः, जिनाभिषेकं कृत्वा ।)

देवगण चारों महासागरों और महानदियों का जल वृषभों पर उंडेलते हैं। असुरों, सुरों और अप्सराओं सहित जिनाभिषेक सम्पन्न करने के पश्चात् ।२४४।

पम्हल सुयंध सुमन य, वत्थेण जिणाण अंगुवंग गयं ।
अवणेउण जलरयं, सहस्सनयणा पयत्तेणं ।२४५।
परिमल-सुगंध-सुमनश्च, वस्त्रेण जिनानामंगोपांगगतम् ।
अपनीत्वा जलरजं, सहस्रनयनाः प्रयत्नेन ।)

पद्मपराग, सुगन्धित पुष्पों से निर्मित अंगराग एवं वस्त्रादि से इन्द्रों ने कुशलतापूर्वक जिनेश्वरों के अंगोपांगों पर लगे जल और विविध औषधियों के रजकणों को परिमार्जित कर—।२४५।

हरिचंदणाणुलित्ते, दिव्वाभरणहु भूसणे काउं ।
सक्का कुणंति तेसिं, सीसपज्जावहारा दी ।२४६।
(हरित् चन्दनानुलिप्तानि, दिव्याभरणानि हि भूषणानि कृत्वा ।
शक्राः कुर्वन्ति तेषां, शीर्षपर्यावहारादीनि ।)

दिव्य वस्त्राभूषणों को हरताल लिप्त से किया और उनसे जिनेश्वरों का नख-सिख शृंगार किया। २४६।

कोउगसयाइं विहिणा, काऊणं जिणवराण मुहकमलं ।
न वि तिप्पंतीक्खंता, अच्छि सहस्सेहिं देविंदा ।२४७।
(कौतुक शतानि विधिना, कृत्वा जिनवराणां मुखकमलम् ।
नापि तृप्यन्तीक्षन्ताः, अक्षि सहस्रैः देवेन्द्राः ।)

तदनन्तर विधि सहित सैंकड़ों प्रकार के कौतुक-कुतूहल करने के पश्चात् जिनेश्वरों के मुखकमलों को हजार-हजार नेत्रों से अनवरत देखते हुए भी तृप्त नहीं हो रहे थे ।२४७।

तो देव दाणविंदा, स अच्छरा सपरिसा पहट्ठमणा ।
अभिसंथुणंति पयया, थुइ सय परिसंथुए वीरे ।२४८।
(ततः देवदानवेन्द्राः सारसयः सपरिषदाः प्रहृष्टमनाः ।
अभिसंस्तुवन्ति प्रयताः, स्तुतिशत परिसंस्तुतान् वीरान् ।)

तत्पश्चात् अप्सराओं एव अपनी परिषद् सहित देवेन्द्र और दानवेन्द्र हर्ष विभोर हो सैकड़ों स्तुतियों से अभिसंस्तुत उन वीर शिरोमणि दशों तीर्थंकरों की यत्नपूर्वक स्तुति करते हैं ।२४८।

तुम्ह नमो पायाणं, चक्कंकुसलक्खणंकियतलाणं ।
जम्मखएइट्ठियाण, अणेय तणु तप्पणक्खाणं ।२४९।
(युष्मभ्यं नमो पद्भ्यः, चक्रांकुशलक्षणांकिततलेभ्यः ।
जन्मक्षये स्थितेभ्यः, अनेकतनुतर्पणाक्षेभ्यः ।)

चक्र एवं अंकुश के लांछनों से सुशोभित तलवों वाले, जन्म-मृत्यु के समूलनाश हेतु आगे बढ़े हुए तथा अनेक प्राणियों के शरीर और नेत्रों को तृप्त करने वाले आपके चरण कमलों को बारम्बार नमस्कार है ।२४९।

कम्मरयं अट्ठविहं नसिंति फुडं भव्वाण जीवाणं ।
तेण सरणं पवन्ना, जिणाण पाए सिवुप्पाए ।२५०।
(कर्मरजं अष्टविधं, नाशयन्ति स्फुटं भव्यजीवानाम् ।
तेन शरणं प्रपन्नाः, जिनानां पादान् शिवोत्पादकान् ।)

भव्य जीवों की आठ प्रकार की कर्मरज को आपके पद पंकज विनष्ट करते हैं । इसीलिये हम शिवसुखप्रदायक जिनेश्वरों के चरण-कमलों की शरण में आये हैं ।२५०।

धण्णा जिण जणणीओ, सिद्धगइ पहदेसगा जिणा जाहिं ।
उदरेणं जिणवसभा, धम्मधुराधारगा ढविया ।२५१।
(धन्याः जिनजनन्यः, सिद्धगतिपथदर्शकाः जिना याभिः ।
उदरेण जिनवृषभाः, धर्मधुराधारकाः स्थापिताः ।)

धन्य हैं जिनेश्वरों की माताएं, जिन्होंने सिद्ध गति के पथ को दिखाने वाले तथा धर्म की धुरी का धारण करने वाले महान् तीर्थङ्करों को अपनी कुक्षियों में वहन किया ।२५१।

एवं सरूवएहि, गुणेहिं अभिवंदिऊण जिणवरिंदे ।
जयइ जिनसासणंति, तियपहवसियमाणाहि घुट्ठं ।२५२।
(एवंस्वरूपै गुणैः, अभिवन्दित्वा जिनवरेन्द्रान् ।
जयति जिन शासनमिति, त्रिपथि समानैर्घुष्टम् ।)

इस प्रकार की स्तुतियों से गुणगानपूर्वक जिनेश्वरों को वन्दन करने के पश्चात् सुरलोक और भवनों में निवास करने वाले सुरासुर समूहों ने "जिनशासन की जय हो"—इस प्रकार का दिव्य तुमुल घोष किया ।२५२।

मोत्तूण य ते पवरे, कंचण सीहासणे सुरवरिंदा ।
घेत्तूण जिणे सहिया, सुरेहिं संपत्थिया तुरियं ।२५३।
(मुक्त्वा च ते प्रवरान्, कंचन सिंहासनान् सुरवरेन्द्राः ।
गृहित्वा जिनान् सहिताः सुरैः संप्रस्थिताः त्वरितम् ।)

तदनन्तर उन अतिसुन्दर स्वर्ण के सिहासनों से उठ कर सुरेश्वरों ने तीर्थंकरों को अपने हाथों में अच्छी तरह आसीन किया और वे सुरसमूह के साथ सुमेरु पर्वत से शीघ्रतापूर्वक प्रस्थित हुए ।२५३।

संपत्ता य खणेण, जिण जम्मवणे पुरंदरा सुइया ।
नमिऊण जिणे, अप्पंति, विम्हिया नेगमेसीणं ।२५४।
(संप्राप्ताश्च क्षणेन, जिनजन्मवने पुरन्दराः शुचिकाः ।
नत्वा जिनान् अर्पयन्ति, विस्मिता नैगमेषीभ्यः ।)

जिन-जन्ममहोत्सव को सम्पन्न कर पवित्र बने हुए वे सुरासुरेन्द्र क्षण भर में ही सुमेरु पर्वत से जिनेन्द्रों के जन्मवन में आये। उन्होंने जिनेन्द्रों को नमस्कार कर उन्हें हरिणैगमेषी देवों को समर्पित किया ।२५४।

तेहिं वि कंचणगोरा, मयलंछण सोमदंसणा सुमणा ।
निक्खित्ता परमगुरू, पासे जणणीण नियगाणं ।२५५।
(तैरपि कंचनगौराः, मृगलांछन सोमदर्शनाः सुमनाः ।
निक्षिप्ताः परमगुरवः, पार्श्वे जननीनां निजकानाम् ।)

हरिणैगमेषी देवों ने कांचनाभ देह छवि वाले एवं मृगलांछन युक्त पूर्णचन्द्र के समान प्रियदर्शी, प्रसन्नमना परमगुरु तीर्थङ्करों को उनकी अपनी अपनी माताओं के पार्श्व में पहुंचा दिया ।२५५।

तो मरुदेवाईणं, निद्दं अवहरिय वासवा मुइया ।
सह देवीहिं थुणंति, जिणाण जणणीण पियरो य ।२५६।
(ततः मरुदेव्यादीनां, निद्रामपहृय वासवाः मुदिताः ।
सह देवीभिः स्तुवन्ति, जिनानां जननीन् पितॄंश्च ।)

तत्पश्चात् मरुदेवी आदि दशों जिनमाताओं की निद्रा का अपहरण कर इन्द्र अपनी देवियों के साथ प्रमुदित हो जिनेश्वरों की जननियों और जनकों की स्तुति करते हैं ।२५६।

भत्तिबहुमाण विणएण, एवमभिवंदिय सदेवीहिं ।
जलयर गंभीरेणं, सरेण अह वासवो भणइ ।२५७।
(भक्तिबहुमान विनयेन, एवमभिवंद्य सदेवीभिः ।
जलधरगम्भीरेण, स्वरेणाथ वासवो भणति ।)

परम भक्ति, समादरों और विनयपूर्वक देवियोंस हित सुरासुरेन्द्रों द्वारा इस प्रकार स्तुति एवं अभिवंदन किये जाने के पश्चात् घनघटारव गम्भीर स्वर में देवेन्द्र कहने लगे—।२५७।

भो भो पिसाय भूया, सरक्खसा जक्खनाग गंधव्वा ।
तुब्भेविय महमारि सासजरकारया चेव ।२५८।
(भो भो पिशाचभूताः, सराक्षसाः यक्षनागगंधर्वाः ।
यूयमपि महामारिश्वासज्वरकारकाश्चैव ।)

भो ! भो ! पिसाचो, भूतो, राक्षसो, यक्षो, नागो, गन्धर्वो तथा महामारी, श्वास ज्वरादि रोगों के फैलाने वाले तुम सब देव भी-।२५८।

सुट्ठयरं जेसिं पुण कुज्झयणं निरंतरं कण्णा ।
भावेसु भण्णमाण, निसुणिंतु सुरासुरे सव्वे ।२५९।
सुष्ठुतरं येषां पुनः कुध्यानं निरंतरं (दत्त) कर्णाः ।
भावेन भण्यमानं, निःशृण्वन्तु सुरासुराः सर्वे ।)

और वे लोग भी जिनका निरन्तर प्रत्येक का बुरा करने की ओर ही ध्यान रहता है, वे सब सुर एवं असुर, मैं जो भाव पूर्वक कह रहा हूँ उसे अच्छी तरह कान खोल कर सुन लें ।२५९।

अण्णाणपमाएणं, अहवा वि य अणुसूय पउग्गेणं ।
मिच्छत्ताभि निवेसेणं, वावि वीमंसओ वावि ।२६०।
(अज्ञानप्रमादेन, अथवापि च अनुसूया प्रउग्रेण ।
मिथ्यात्वाभिनिवेषेण, वापि विमर्षतो वापि ।)

अज्ञान, प्रमाद, अथवा तीव्र डाह, मिथ्यात्व के अभिनिवेशवश अथवा अमर्षवशात् —।२६०।

जइरिच्छाए भएण वेरेण य पुव्वभव निबद्धेण ।
जावंतेऽज्ज जिणाणं, मणसा वि विहंसुरो पावं ।२६१।
(यदृच्छया भयेन वा, वैरेण पूर्वभव निबद्धेन ।
यावंतोऽद्य जिनानां, मनसापि विविहंस्वः पापं ।)

अकारण ही, भयवश अथवा पूर्व भव में निबद्ध वैर के प्रतिशोध के लिये जितने आज जिनेश्वर हैं, उनके प्रति मन में भी किसी प्रकार की दुर्भावना लावेगा—।२६१।

तस्स उ नियएण इहं, दोसेण पलीवियं असरणस्स ।
फिट्टीहि सिरं सिग्घं, सुरस्स सारेण नीसेसं ।२६२।
(तस्य तु निजकेनेहदोषेण प्रदीप्तं अशरणस्य ।
स्फटिष्यति शिरं शीघ्रं, सुरस्य सारेण निःशेषम् ।)

उस अशरण का शिर उसके अपने इस अपराध के फलस्वरूप वज्र से जल कर शीघ्र ही पूर्ण रूपेण फटकर बिखर जायगा ।२६२।

अहवा सग्गाओ च्चिय, पडणं निस्संसयं वियाणिज्जा ।
इंदस्स विय न केवलमेयं तु सुरस्स इयरस्स ।२६३।
(अथवा स्वर्गतः किल, पतनं निःशंसयं विजानीथः ।
इन्द्रस्यापि च न केवलं, एतत्तु सुरस्य इतरस्य ।)

अथवा इस प्रकार का पाप पूर्ण विचार करने वाले का निश्चित रूपेण स्वर्ग से पतन हो जायगा। चाहे वह सामान्य सुर-असुर हो चाहे देवेन्द्र ही क्यों न हो। इस बात को आप सब भली भांति समझ लीजिये।२६३।

एवं ईसाणेणवि उत्तरलोगाधिवेण भणिए ।
इंदस्स वि य न केवलमेत्तंतु सुरस्स इयरस्स ।२६४।
(एवं ईशानेनापि, उत्तरलोकाधिपेन भणिते ।
इन्द्रस्यापि च न केवलमेतत्तु सुरस्य इतरस्य ।)

इसी प्रकार उत्तर लोकाधिपति ईशानेन्द्र ने भी कहा कि इस प्रकार का अपराध करने पर न केवल किसी सुर अथवा असुर का ही अपितु इन्द्र का भी स्वर्ग से पतन अवश्यंभावी है।२६४।

'एवं' त्ति परिगहिए, तंमिहिए भासिए सुरिंदेहि ।
मुक्क रयणुम्मीसं, दसद्धवण्णं कुसुमवासं ।२६५।
('एवं' इति परिगृहीते, तस्मिन् हिते भाषिते सुरेन्द्रैः ।
मुक्ता रत्नोन्मिश्रं, दशार्द्धवर्णा कुसुम वर्षाः ।)

सुरेन्द्रों के इस हितकर वचन को सभी सुरासुरों द्वारा "एवमस्तु" कहकर शिरोधार्य किये जाने पर रत्नवर्षा से मिश्रित पांच रंग के पुष्पों की वृष्टि की गई।२६५।

चुण्णं नाणाविहवण्णं, वत्थाणि च बहुविहप्पगाराइं ।
मुक्काइं सहरिसेहिं, रयणाणि य पहूयाणि ।२६६।
(चूर्णं नानविधवर्णं, वस्त्राणि च बहुविधप्रकाराणि ।
मुक्तानि सहर्षैः, रत्नानि च प्रभूतानि ।)

हर्ष विभोर हो देवों ने विचित्र वर्णों वाले अनेक प्रकार के चूर्णों, वस्त्रों और प्रचुर मात्रा में रत्नों की वर्षा की।२६६।

अह देइ वज्जपाणि, पराए भत्तीए जिणवरिंदाण ।
खोमे कुंडल जुयले, सिरिदामे चेव य सुरूवे ।२६७।
(अथ ददाति वज्रपाणिः, परया भक्त्या जिनवरेन्द्रेभ्यः ।
क्षोमानि कुण्डल युगलानि, श्रीदामानि चैव च सुरूपाणि ।)

तदनन्तर वज्रपाणि शक्र ने परा (उत्कृष्ट) भक्ति के साथ दशों ही जिनेश्वरों (प्रत्येक) को एक एक दिव्य कुण्डलों की जोडी और एक एक कभी न कुम्हलाने वाली अति सुन्दर श्रीदाम भेंट की।२६७।

वत्थालंकार विहिं, सव्वं जणणीण जिणवरिंदाणं ।
सक्कस्स देवरण्णो, अह देंति वरग्गमहिसीओ ।२६८।
(वस्त्रालंकारविधिं सर्वाः जननीभ्यः जिनवरेन्द्राणाम् ।
शक्रस्य देवराज्ञः, अथ ददति वराग्रमहिष्यः ।)

देवराज शक्र की पटरानी देवियों ने सभी जिनेन्द्रों की माताओं को अनुक्रमशः (एड़ी से चोटी तक धारण करने योग्य) सभी प्रकार के दिव्य वस्त्र तथा अलंकार भेंट किये।२६८।

किच्चेसु बहुविहेसु य, जिणाण कायव्वएसु बहुएसु ।
संदिसिऊण सुरिंदा, दिसाकमारीण सव्वेसिं ।२६९।
(कृत्येषु बहुविधेषु च, जिनानां कर्त्तव्येषु बहुकेषु ।
संदेशयित्वा सुरेन्द्राः, दिक्कुमारीन् सर्वान् ।)

जिनेन्द्रों के लिये बहुत से करने योग्य अनेक प्रकार के कार्यों के सम्बन्ध में सभी दिशाकुमारियों को निर्देश देकर सुरेन्द्र---।२६९।

नमिऊण जिणवरिंदे, अच्छिपमाणा सुरविंदेहिं सहिया ।
नंदीसरवरमहिमं, काउं इंदा गया सग्गं ।२७०।

(नमित्वा जिनवरेन्द्रान्, अक्षिप्रमाणात् सुरवृन्दैः सहिताः ।
नन्दीश्वरवरमहिमां, कृत्वा इन्द्राः गताः स्वर्गम् ।)

जिनेन्द्रों को नमस्कार कर सुरवृन्दों सहित नन्दीश्वर द्वीप में जिनवरों की महिमा कर क्षण भर में ही इन्द्र अपने २ स्वर्गलोक को चले गये ।२७०।

इह पंडुरे पभायंमि, दसवि ते कुलगरा निए पुत्ते ।
पिच्छंति सहपियाहि, हरिसवल्लसिय मुहकमला ।२७१।
(इह पाण्डुरे प्रभाते, दशापि ते कुलकरा निजान् पुत्रान् ।
प्रेक्षन्ति सहप्रियाभिः, हर्षवशोल्लसित मुखकमलाः ।)

इधर उषाकाल में हर्षातिरेक से प्रफुल्लित वदन दशों कुलकर अपने पुत्रों सहित अपनी प्रियाओं को देखते हैं ।२७१।

अह वट्टंति जिणिंदा, दियलोगचुया अणोवमसरिया ।
देवी देव परिवुडा, दो दो नारीहिं ते सहिया ।२७२।
अथ वर्तन्ते जिनेन्द्राः, दिव्यलोकचृता अनुपमश्रीकाः ।
देवी-देव परिवृताः, द्वि द्वि नारीभ्यां ते सहिताः ।)

तदनन्तर वे अनुपम शोभाशाली जिनेन्द्र दो दो परिरक्षिका महिलाओं के साथ दिव्य लोकों, देवियों एवं देवों से घिरे रहते हैं ।२७२।

असियसिरया सुनयणा, विबोद्धा धवलदंत पंत्तिया ।
वरपउमगब्भगोरा, फुल्लुप्पलगंधनीसासा ।२७३।
(असित शिरजाः सुनयनाः, विबुधाः धवलदन्तपंक्तिकाः ।
वरपद्मगर्भगौराः, फुल्लोत्पलगंधनिःश्वासाः ।)

काले भंवर बालों, सुन्दर नेत्रों, विशिष्ट बुद्धि और श्वेत दंत पंक्ति वाले वे सभी जिनेन्द्र श्रेष्ठ पद्म पुष्प के गर्भ के समान गौर वर्ण और प्रफुल्लित उत्पल की गन्ध के समान सुगन्धित श्वासोच्छ्वास् वाले हैं ।२७३।

जाईसरा जिणिंदा, अप्परिवडिएहिं तिहिउ नाणेहिं ।
कित्तीयय बुद्धीयय, अब्भहिया तेहि मणुए हिं ।२७४।
(जातिस्मराः जिनेन्द्राः, अप्रतिपतितैस्त्रिभिस्तु ज्ञानैः ।
कीर्त्या च बुद्ध्या च, अभ्यधिकास्तै मनुष्यैः ।)

वे सभी तीर्थङ्कर जातिस्मर ज्ञान तथा पुनः कभी किंचित् मात्र भी कम न होने वाले—मति, श्रुति और अवधि—इन तीन ज्ञान से युक्त तथा कीर्ति एवं बुद्धि की अपेक्षा अपने समय के सभी मनुष्यों से बहुत ही बढ़े-चढ़े (विशिष्ट) हैं ।२७४)

देसूणगं च वरिसं, इंदागमणं च वंसठवणाए ।
आहारमंगुलीए, विहंति देवा मणुण्णं त्ति ।२७५।
(देशूनके च वर्षे, इन्द्रागमनं च (हि) वंशस्थापनाच ।
आहारमंगुल्यां, विदधति देवाः मनोज्ञमिति ।)

जब वे दशों जिनेश्वर एक वर्ष से कुछ न्यून अवस्था के हुए तब पुनः शक्र का आगमन हुआ । उसने दशों जिनेश्वरों के वंश की स्थापना की । देवता उन दशों प्रथम तीर्थंकरों की अंगुली में मनोज्ञ अभीप्सित आहार रख देते हैं ।२७५।

सक्को वंसठवणे, इक्खअग्गू तेण होंति इक्खागा ।
तालफलाहयभगिणी, होहि पत्तीति सारवणा ।२७६।
(शक्रः वंशस्थापने, इक्ष्वाग्रः तेन भवन्ति इक्ष्वाकाः ।
तालफलाहतस्य भगिनी, विष्यति पत्नीति सारवणा[1] ।)

वंश स्थापना के समय इन्द्र इक्षुदण्ड ले कर आया था । उस इक्षु को खाने की अभिलाषा से जिनेन्द्रों ने भुजा पसारी अतः इन्द्र ने उनके वंश की इक्ष्वाकुवंश के नाम से स्थापना की । भरत आदि दशों ही क्षेत्रों में तालफल के गिरने से मरे (दश) नर यौगलिक की बहिन को दशों कुलकरों ने यह कहकर कि वह उनके पुत्र की पत्नी होगी—अपने यहां रखा और उसका सारवण(संगोपन-संरक्षण) किया ।२७६।

१ सरवण—संगोपना कृतेति ।

पढमो अकालमच्चू, तहिं तालफलेणं दारगा पहाओ ।
कण्णाउ कुलगरेहिं, सिट्ठे गहिया पीणिव्वाउ ।२७७।
(प्रथमो अकालमृत्युः, तत्र तालफलैः दारकाः प्रहताः ।
कन्यास्तु कुलकरैः श्रेष्ठाः गृहीताः परिणायतुम् ।)

वहां (दशों क्षेत्रों में) सद्यःजात यौगलिक शिशुओं में से नर शिशु की तालफल के गिरने से प्रथम अकाल मृत्यु हुई। कुलकरों ने यह कह कर कि यह श्रेष्ठ कन्या है, अपने पुत्रों के साथ उनका विवाह करने की इच्छा से उन कन्याओं को अपने यहां रख लिया ।२७७।

भोगसमत्थे नाउं, वरकम्मे कासि तेसि देविंदा ।
दोण्हं वरमहिलाणं, बहुकम्मं कासि देवीउ ।२७८।
(भोगसमर्थान् ज्ञात्वा, वरकर्माणि अकार्षन् तेषां देवेन्द्राः ।
द्वयोरपि वरमहिलयोः वधुकर्माणि अकार्षन् देव्यः ।)

(समय पर) उन जिनेश्वरों को भोगसमर्थ जान कर वर पक्ष की ओर से किये जाने वाले सब कार्य देवेन्द्रों ने तथा उन दो दो कन्याओं के कन्यापक्ष की ओर से किये जाने वाले सभी वधु-कर्म (देवेन्द्रों की) देवियों ने किये ।२७८।

एवं दसवारेज्जा, दससु वि वासेसु होंति नायव्वा ।
दस वि जिणाणं एते, देवासुर परिवुडा वुत्तं ।२७९।
(एवं दश वरेच्छा, दशष्वपि वर्षेषु भवन्ति ज्ञातव्याः ।
दशानामपि जिनानामेते, देवासुर परिवृता उक्ताः ।)

इस प्रकार दशों ही क्षेत्रों में दश वरिच्छाएं होती हैं। दशों ही जिनों के देवासुरों से परिवेष्टित वृत्तान्त कहे गये हैं ।२७९।

छ पुव्वसय सहस्सा, पुव्वि जायस्स जिणवरिंदस्स ।
तो भरह बंभि सुंदरि, बाहुबलि चेव जायाइं ।२८०।

(षट् पूर्वशत सहस्राणि, पूर्वं जातस्य जिनवरेन्द्रस्य ।
ततो भरत ब्राह्मी सुन्दरी, बाहुबली चैव जाताः ।)

जब जिनवरेन्द्र ऋषभदेव को जन्म ग्रहण किये ६ लाख पूर्व व्यतीत हो गये तब भरत, ब्राह्मी, सुन्दरी और बाहुबली का जन्म हुआ ।२८०।

देवी सुमंगलाए, भरहो बंभी य मिहुणगं जायं ।
देवीए सुनन्दाए, बाहुबली सुन्दरी चेव ।२८१।
(देव्याः सुमंगलायाः, भरतः ब्राह्मी च मिथुनकं जातम् ।
देव्याः सुनन्दायाः बाहुबली सुन्दरी चैव ।)

देवी सुमंगला की कुक्षि से भरत और ब्राह्मी का मिथुन तथा देवी सुनन्दा की कुक्षि से बाहुबली और सुन्दरी का युगल उत्पन्न हुआ ।२८१।

अउणापन्नं जुयले, पुत्ताण सुमंगला पुणो पसवे ।
नीतीण अइक्कमणे, निवेयणं उसभ सामिस्स ।२८२।
(एकोनपंचाशत युगलान् पुत्राणां सुमंगला पुनः प्रसूतवती ।
नीतीनामतिक्रमणे, निवेदनं ऋषभ स्वामिने ।)

(अठाणवें) पुत्रों के उनपचास युगलों को देवी सुमंगला ने पुनः जन्म दिया जब अनेक यौगलिक लोग नीति का उल्लंघन करने लगे तो प्रमुख लोगों ने ऋषभदेव के समक्ष निवेदन किया ।२८२।

राया करेइ दंडं, सिट्ठे तेसिं ति अम्ह वि स होउ ।
मग्गय कुलगरं सो बवीइ उसभो तुभे राया ।२८३।
(राजा करोति दण्डं, शिष्टे तेभ्य इत्यस्माकमपि सः भवतु ।
मार्गयतः कुलकरं सः ब्रवीति ऋषभः युष्माकं राजा ।)

ऋषभदेव ने कहा कि नीति का अतिक्रमण करने वालों को राजा दण्ड देता है। यह सुनकर यौगलिकों ने कहा--"हमारा भी राजा हो।" ऋषभदेव ने कहा--"तो कुलकर से मांग करो।"

यौगलिकों द्वारा कुलकर नाभि के समक्ष राजा की मांग किये जाने पर उन्होंने कहा--"ऋषभ तुम्हारा राजा हो।" ।२८३।

आभोएउं सक्को, उवागओ तस्स कुणइ अभिसेयं ।
मउडाइं अलंकारं, नरिंदजोगं च से कुणइ ।२८४।
(आभोगयितुं शक्रः उपागतः तस्य करोति अभिषेकम् ।
मुकुटानि अलंकारं नरेन्द्र योग्यं च स करोति ।)

अवधिज्ञान के उपयोग द्वारा यह सब कुछ ज्ञात कर शक्र वहां उपस्थित हुआ। देवराज ने भगवान् ऋषभदेव को नरेन्द्रों के योग्य मुकुटादि सभी अलंकारों से विभूषित कर उनका राज्याभिषेक किया ।२८४।

विसिनीपत्तेहिं य ते उदगं घेत्तुं छुहंति पाएसु ।
साहु विणीया पुरिसा, विणीय नयरी अह निविट्ठा ।२८५।
(विसन्नतां प्राप्ताः परे उदकं गृहित्वा क्षुभन्ति पादयोः ।
साधुः ! विनीताः पुरुषाः विनीता नगर्यथ निविष्टा ।)

यौगलिक पुरुष भगवान् ऋषभदेव के राज्याभिषक के लिये विसिनी अर्थात् नलिनी पत्रों में पानी लेकर आये पर उन्हें वस्त्राभूषणों से अलंकृत देखकर केवल उनके चरण कमलों पर पानी डाल कर अपनी ओर से अभिषेक की प्रक्रिया को सम्पन्न किया। शक्र ने यह देखकर हर्षित हो साधुवाद देते हुए कहा बहुत सुन्दर ! ये बड़े विनीत पुरुष हैं। उनके विनय को देखकर इन्द्र ने नवनिर्मापित नगरी का नाम विनीता रखा ।२८५।

आसा हत्थी गावो गहियाइं रज्ज संगह निमित्तं ।
घित्तूण एवमाई चउव्विहं सगहं कुणइ ।२८६।
(अश्वाः हस्ती गावः, गृहीतानि राज्य संग्रह निमित्तम् ।
गृहित्वा एवमादिनि, चतुर्विधं संग्रहं करोति ।)

राजकीय संग्रह के निमित्त घोड़ों, हाथियों और गायों को पकड़ पकड़ कर एकत्र किया गया। इस तरह के एकत्रीकरण के पश्चात् चार प्रकार का संग्रह किया गया ।२८६।

उग्गा भोगा राइन्न खत्तिया संगहो भवेच्चउहा ।
आरक्खिग गुरुवयंसा सेसा जे खत्तिया तेउ ।२८७।
(उग्राः भोजाः राजन्यः क्षत्रियाः संग्रहो भवेत् चतुर्धा ।
आरक्षकाः गुरुवयस्याः शेषाः ये क्षत्रियास्ते तु ।)

उग्र, भोग, राजन्य और क्षत्रिय--यह चार प्रकार का संग्रह किया गया। ऋषभ देव के समवयस्क साथी आरक्षक और शेष क्षत्रिय कहलाए ।२८७।

पंचेव य सिप्पाइं घडलोहे चित्त णंत कासवणाइं ।
एक्केक्कस्स चाए तो वीसं भवे भेया ।२८८।
(पञ्चैव च शिल्पानि घट तोल चित्र नंत कार्षपणानि ।
एकैकस्य चत्वारि, तत विंशतिः भवेयुः भेदाः ।)

घट, (घड़े आदि वर्तन भाण्डे बनाने का कुम्भकार का शिल्प) लोह, (लोह आदि धातुओं के अस्त्र-शस्त्र उपकरणादि बनाने का लोहकार अथवा धातुकार का शिल्प) चित्रकारी, णंत अर्थात् वस्त्रादि की बुनाई का शिल्प और कर्षण अर्थात् कृषि शिल्प--ये पांच प्रकार के शिल्प भगवान् ऋषभदेव ने लोगों को सिखाये। इन पांचों शिल्पों में से प्रत्येक के चार चार भेद किये जाने पर शिल्प के बीस भेद होते हैं ।२८८।

पुत्तसयस्स पुर सयं निवेसियं तेण जणवय सयं च ।
इह भारहंमिवासे सो पढम पती वसुमईए ।२८९।
(पुत्रशतस्य पुरशतं, निवेशितं तेन जनपदशतं च ।
इह भारते वर्षे सः प्रथमपती वसुमत्याः ।)

राज्य सिंहासन पर आरूढ़ होने के पश्चात् भगवान् ऋषभदव ने अपने १०० पुत्रों के लिये १०० जनपद और सौ ही नगर बसाये। इस भरत क्षेत्र में भगवान् ऋषभदेव ही सबसे प्रथम पृथ्वीपति थे ।२८९।

दसवि जिणिंदा समये, दाणं दाऊण वच्छरं एगं ।
चित्त बहुलट्ठमीए, निक्खंता तेउ छट्ठेणं ।२९०।
(दशाऽपि जिनेन्द्राः समये दानं दत्वा वत्सरमेकम् ।
चेत्र बहुलाष्टम्यां, निष्क्रान्ता ते तु षष्ठेन ।)

दशों ही जिनेन्द्र समय पर एक वर्ष तक दान देकर चैत्र कृष्णा अष्टमी के दिन षष्ठ भक्त (बेले) की तपस्या से महाभिनिष्क्रमण कर दीक्षित हुए ।२९०।

फग्गुण बहुलेक्कारसी, अह अट्ठमेण भत्तेण ।
उप्पणंमि अणंते, महव्वया पंच पण्णवए ।२९१।
(फाल्गुन बहुलैकादश्यां, अथाष्टमेन भक्तेन ।
उत्पन्नेऽनन्ते, महाव्रतान् पंच प्रज्ञपयति ।)

तत्पश्चात् फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन अष्टम भक्त (तेले) की तपस्या पूर्वक अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्त चारित्र के उत्पन्न होने पर पंच महाव्रतों की प्ररूपणा करते हैं ।२९१।

तस्सासि पढम तणयो, चोद्दसरयणाहिवो मणुयसिंहो ।
भरहो णाम महप्पा, अमरवरिंदोवमसिरीउ ।२९२।
(तस्यासीत् प्रथमतनयः, चतुर्दशरत्नाधिपः मनुजसिंहः ।
भरतः नाम महात्मा, अमरवरेन्द्रोपम श्रीकः ।)

उनके ज्येष्ठ पुत्र चौदह रत्नों के स्वामी मनुष्यों में सिंह के समान और देवेन्द्रों के समान श्री, ऋद्धि सिद्धि सम्पन्न एवं ऐश्वर्य शाली भरत नामक महात्मा थे ।२९२।

उप्पन्न चक्करयणं, भरहं वण्णेमि रयणविभवेणं ।
सुरवइविमाणविभवं, बत्तीससहस्स निवनाहं ।२९३।
(उत्पन्नचक्ररत्नं, भरत वर्णयामि रत्नविभवेन ।
सुरपति-विमानविभवं, द्वात्रिंशत्सहस्रनृपनाथम् ।)

जिनके यहाँ चक्ररत्न उत्पन्न हुआ, देवेन्द्र के विमान के समान वैभवशाली और बत्तीस हजार नरेश्वरों के नाथ उन चक्रवर्ती भरत के रत्नवैभव का वर्णन करता हूँ ।२९३।

छ खंड भरहसामी नवनिहिनाहं महायसं चक्किं ।
हयगयरहाण लक्खा, चउरासिंति तु गुणपुण्णा ।२९४।
(षट्खण्ड भरतस्वामिनं नवनिधिनाथं महायशसं चक्रिम् ।
हयगजरथानां लक्षाः चतुरसीतिः तु गुणपूर्णाः ।)

वे भरत क्षेत्र के छः खण्डों के स्वामी, नव निधियों के नाथ, महायशस्वी और चक्री थे। उनके सर्वगुण सम्पन्न घोड़ों, हाथियों और रथों की संख्या प्रत्येक की चौरासी चौरासी लाख थी ।२९४।

चउसट्ठि सहस्स वारंगणाण, मुहपउगछप्पयं पयडं[1] ।
छन्नउई कोडीउ, पाइक्काणं पयंडाणं ।२९५।
(चतुःषष्टिसहस्रवारांगणानां मुखपद्माषट्पदम् प्रकटन् ।
षण्णवतिःकोटियः पदातिकानां प्रचण्डानाम् ।)

चक्रवर्ती भरत चौसठ हजार वरांगनाओं के मुखकमलों के भ्रमर और छयानवें करोड़ प्रचण्ड पदाति सैनिकों के स्वामी थे ।२९५।

तरुण रवि मंडलनिहं चक्कं, छत्तं च सव्वरोगहरं ।
रिउदप्पहरं खग्गं, दंडं विसमे वि तं समीकरणं ।२९६।
(तरुणरविमण्डलनिभं चक्रं, छत्रं च सर्वरोगहरम् ।
रिपुदर्पहरं खड्गं, दंडं विषमेऽपि तत् शमीकरणम् ।)

---

१ उपमा दोषोऽत्र मनसि महच्छल्यायते। अतोऽस्माभिरत्र खल्वधोलिखितं पदम् प्रस्तूयते :—

"चउसट्ठि सहस्स वरगण—छप्पयाण मुह पउम पयउं ।"

उनका चक्र मध्याह्न के तरुण सूर्यमण्डल के समान परम तेजस्वी और भास्वर, छत्र सब रोगों को दूर करने वाला, खड्ग शत्रुओं के दर्प का दलन करने वाला और दण्ड विषमाविषम को भी शम अथवा सम करने वाला था ।२९६।

चंम रयणमभेज्जं, मणिरयणं चेव संसि रोगहरं ।
रविससि-किरण परट्ठं, कागिणि रयणं च तं पवरं ।२९७।
(चर्मरत्नमभेद्यं, मणिरत्नं चैव संशयरोगहरम् ।
रविशशिकिरणपरस्थं, काकिनीरत्नं च तत् प्रवरम् ।)

चक्रवर्ती भरत का चर्मरत्न अभेद्य मणिरत्न सब प्रकार के संशयों और रोगों का हरण करने वाला तथा अति श्रेष्ठ काकिनी रत्न सूर्य और चन्द्र की किरणों से भी अधिक ज्योतिष्मान था ।२९७।

सेणावइ अईवसूरं, सेट्ठिवेसमणदेव पडितुल्लं ।
वड्ढइरयण मणोहर, पुरोहियं चेव संतिकरं ।२९८।
(सेनापति अतीवशूरं श्रेष्ठि वैश्रवण देवपरितुल्यम् ।
वर्धकि (वर्द्धति) रत्नं मनोहरं, पुरोहितं चैव शान्तिकरम् ।)

उनका सेनापतिरत्न अति शूरवीर, श्रेष्ठिरत्न वैश्रवण तुल्य, वर्धकि (बढइ) रत्न मनोहर और पुरोहित रत्न परम शान्तिकारक था ।२९८।

रिवु जीविय विक्काल, हत्थि आसि च वाउवेग सम ।
इत्थीरयण महप्पं, चोद्दसरयणाइं भरहस्स ।२९९।
रिपुजीवितविकरालं हस्त्यश्वे च वायुवेग समे ।
स्त्रीरत्नं महात्मं[1] , चतुर्दश रत्नानि भरतस्य ।)

शत्रुओं के प्राणों के लिये विकराल काल के समान तथा वायुतुल्य वेग वाले हस्तिरत्न तथा अश्वरत्न और महाप्राण स्त्रीरत्न इस प्रकार भरत चक्रवर्ती के ये चौदह रत्न थे ।२९९।

---

१ महात्मं-महाप्राणमित्यर्थः । गाथायां 'महार्घं', इति पाठस्यापि संभावनानुमीयते' ।

नव जोयण वित्थिण्णा, नवनिहीउ अट्ठ जोयणुस्सेहा ।
बारस जोयण दीहा, हिय इच्छियरयण संपुण्णा ।३००।
(नव योजन विस्तीर्णाः, नवनिधयोऽष्टयोजनोत्सेधाः ।
द्वादश योजन दीर्घाः, हृदयेच्छितरत्न संपूर्णाः ।)

चक्रवर्ती भरत नौ निधियों के स्वामी थे। वे नौ निधियाँ नौ योजन विस्तार अर्थात् चौड़ाई वाली, आठ योजन ऊँचाई वालो तथा बारह योजन दीर्घ अर्थात् लम्बी और मनोवांछित सब प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण थीं ।३००।

(मूल प्रति में उपर्युक्त गाथा की संख्या २९९ है और गाथा संख्या ।३००। नहीं है)

नेसप्प पंडु पिंगल, रयण महापउम काल नामा य ।
तत्तो य महाकले, माणव-ए संखनामे य ।३०२।
(निसर्प पाण्डुर पिंगल रत्न महापद्म काल नामा च ।
ततश्च महाकालः, माणवकः शंख नामा च ।)

नैसर्प, पाण्डुक, पिंगल, सर्वरत्न, महापद्म, काल, महाकाल, माणवक और शंख महानिधि–ये ९ प्रकार की निधियां होती हैं ।३०२।

एवं भरह सरिच्छा, नवसुवि खेत्तेसु चक्किणो होंति ।
एत्तो परं तु वोच्छं, जो जाओ चुओ विमाणाओ ।३०३।
(एवं भरत सदृशा, नवस्वपि क्षेत्रेषु चक्रिणः भवन्ति ।
अतः परं तु वक्ष्ये, यः यस्मात् च्युतः विमानात् ।)

इस प्रकार भरत के समान ही ९ शेष क्षेत्रों में भी चक्रवर्ती होते हैं। अब आगे मैं यह बताऊंगा कि चौवीस तीर्थङ्करों में से कौन किस विमान से च्यवन कर उत्पन्न हुए ।३०३।

चत्तारि एक्कओ तिन्नि य, तओ सत्त एक्कमेक्काउ ।
पंचहितो दोय चुए, वंदामि जिणे चउव्वीसं ।३०४।

(चत्वारि एकतः त्रीणि च ततः सप्त एकैकास्तु ।
पंचभिः ततः द्वौ च्युतान्, वन्दामि जिनान् चतुर्विंशतीन् ।)

चार एक ही स्थान से, तीन एक स्थान से, सात एक एक पृथक् स्थान से तथा पाँच स्थानों से दो दो की संख्या में च्युत हुए इस प्रकार इन चौवीस तीर्थंकरों को मैं वन्दन करता हूं ।३०४।

उसभं च जिणवरिंदं, धम्मं संतिं तहेव कुंथुं च ।
सव्वट्ठ विमाणाओ, चत्तारि चुए णमंसामि ।३०५।
(ऋषभं च जिनवरेन्द्रम्, धर्मं शान्तिं तथैव कुंथुं च ।
सर्वार्थ विमानात्, चत्वारि च्युतान् नमामि ।)

सर्वार्थ सिद्ध विमान से च्यवित ऋषभदेव, धर्मनाथ, शान्तिनाथ और कुंथुनाथ इन चार तीर्थङ्करों को मैं नमस्कार करता हूँ ।३०५।

सेज्जंसं च जिणिंदं, अणंतमपच्छिमं च तित्थयरं ।
पुप्फुत्तर विमाणाओ, तिन्निय चुया नमंसामि ।३०६।
(श्रेयांसं च जिनेन्द्रं अनन्तमपश्चिमं च तीर्थङ्करम् ।
पुष्पोत्तर विमानात्, त्रयश्च च्युतान् नमस्यामि ।)

पुष्पोत्तर विमान से च्युत हुए श्रेयांसनाथ, अनन्त नाथ और अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर इन तीनों को मैं नमस्कार करता हूँ ।३०७।

हेट्ठिम गेवेज्जाओ संभवं, पउमप्पहं उवरिमाओ ।
मज्झिम गेवेज्ज चुयं, वंदामि जिणं सुपासरिसिं ।३०।७
(अधस्थ ग्रैवेयकात् संभवं, पद्मप्रभं उपरिमात् ।
मध्यम ग्रैवेयकच्युतं, वंदामि जिनं सुपार्श्वर्षिम् ।)

अधो ग्रैवेयक से च्युत हुए सभवनाथ, उपरिम ग्रैवेयक से च्युत हुए पद्मप्रभु और मध्यम ग्रैवेयक से च्युत हुए सुपार्श्वनाथ तीर्थङ्कर को मैं नमस्कार करता हूँ ।३०७।

आणयकप्पा सुविहीं, सियलजिणमच्चुयाओ कप्पाओ ।
सुक्काउ वासपुज्जं, सहस्साराओ चुयं विमलम् ।३०८।
(आनतकल्पात् सुविधिं, शीतलजिनमच्युतात् कल्पात् ।
शुक्रात् वासुपूज्यं, सहस्रारात् च्युतं विमलम् ।)

आनत कल्प से च्युत हुए सुविधिनाथ, अच्युत कल्प से च्युत हुए शीतलनाथ, शुक्र कल्प से च्युत हुये वासुपूज्य और सहस्रार से च्युत हुए विमलनाथ तीर्थङ्कर को मैं नमस्कार करता हूँ ।३०८।

अभिनंदणं च अजियं, विजयविमाणच्चुयं नमंसामि ।
चंदप्पहं च सुमइं, दोविच्चुया वेजयंताओ ।३०९।
(अभिनंदनं च अजितं, विजयविमानच्युतं नमस्यामि ।
चन्द्रप्रभं च सुमतिं, द्वावपिच्युतौ वैजयंतात् ।)

विजय विमान से च्युत हुए तीर्थङ्कर अभिनन्दन और अजितनाथ को तथा वैजयन्त विमान से च्युत हुए भगवान् चन्द्रप्रभ और सुमतिनाथ को मैं नमस्कार करता हूँ ।३०९।

अरमल्लिं जयंताओ, नमि नेमि पराइया विमाणाउ ।
मुणि सुव्वयं च पासं, पाणयकप्पाच्चुयं वंदे ।३१०।
(अरं मल्लिं जयन्तात्, नमिं नेमिं अपराजितात् विमानात् ।
मुनि सुव्रतं च पार्श्वं, प्राणतकल्पात् च्युतं वन्दे ।)

जयन्त विमान से च्युत हुए भगवान् अरनाथ एवं मल्लिनाथ को, अपराजित विमान से च्युत हुए नमिनाथ एवं अरिष्टनेमि को और प्राणतकल्प से अवतरित हुए भगवान् मुनिसुव्रत तथा पार्श्वनाथ को मैं वन्दन करता हूँ ।३१०।

वयणघडेण एवं, भणेमि जिणवरा चउव्वीसं ।
चरिमभवे वोक्कंते, एत्तो जम्मं निसामेह ।३११।
(वचनघटनया, भणामि जिनवरान् चतुर्विंशान् ।
चरम भवे व्युत्क्रांते, इतः जन्म निसामयता ।)

पद्यरचना द्वारा मैं चौवीस जिनेश्वरों के सम्बन्ध में कथन कर रहा हूँ। उनके अन्तिम देव भव का कथन समाप्त हुआ अब उनके सम्बन्ध में सुनिये ।३११।

पंचसुं एरवएसुं, पंच भरहेसु जिणवरिंदाणं ।
ओसप्पिणी इमीसे, दससु वि खेत्तेसु समकालं ।३१२।
(पंचसु ऐरवतेषु, पंचभरतेषु जिनवरेन्द्राणाम् ।
अवसर्पिण्यामस्यां, दशष्वपि क्षेत्रेषु समकालम् ।)

पांचों ऐरवत क्षेत्रों में और पांचों ही भरत क्षेत्रों अर्थात् ढाई द्वीप के इन दशों क्षेत्रों में, जहां कि अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी रूपी काल चक्र अनुक्रमशः अनवरत गति से अनादिकाल से चलता आया है, चल रहा है और अनन्तकाल तक चलता रहेगा, वहां इस अवसर्पिणी काल में तीर्थङ्करों की चौवीसी का पूर्णतः सम सामयिक अथवा समान काल रहा है ।३१२।

उसभो य भरहवासे, बालचंदाणणो एरवए उ ।
एग समएण जाया, दसवि जिणा विस्स देवो[1] हि ।३१३।
(ऋषभश्च भारतवर्षे, बाल चन्द्रानन[2] ऐरवते तु ।
एक समयेन जाताः, दशाऽपि जिनाः वैश्व देवो हि ।

भरत क्षेत्र में ऋषभ देव और ऐरवत क्षेत्र में बाल चन्द्रानन, इस प्रकार दशों क्षेत्रों में दशों प्रथम तीर्थङ्कर एक ही समय में उत्पन्न हुए। इनके समय में अग्नि भी दशों क्षेत्रों में एक साथ प्रकट हुई। ।३१३। (इस गाथा में जन्म नक्षत्र का उल्लेख नहीं है ।)

---

१ पंचसु भरतक्षेत्रेषु तथैव पंचस्वैरवतक्षेत्रेषु प्रथम तीर्थंकराणां समये वैश्वानरस्योत्पत्तिः संजाता । गाथायामत्र प्रयुक्तस्य विस्सदेवो'-पदस्य संस्कृत स्वरूपं वैश्वदेवः भवति । अग्नेरुत्पत्तिमुद्दिश्यैवैतद् पदं ग्रन्थकर्त्रा प्रयुक्तं स्यादिति प्रतीयते । इतरार्थोऽस्य पदस्य नास्माभिरनुमीयते ।

२ ऐरवतक्षेत्रोत्पन्न प्रथम जिनस्य नाम चण्द्रानन: । बाल शब्दोऽत्र चन्द्रस्य विशेषणार्थे छन्दोऽनुरोधादेव प्रयुक्त इतिसिद्धम् ।

अजिय भरहवासे, सुयणु सुचंदो य एरवय वासे ।
एक समएण जाया, दस वि जिणा रोहिणी जोए ।३१४।
(अजितः भारतवर्षे, सुतनुः सुचन्द्रश्च ऐरवतवर्षे ।
एक समयेन जाताः, दशाऽपि जिनाः रोहिणी योगे ।)

भरत क्षेत्र में अजितनाथ और ऐरवत क्षेत्र में सुचन्द—इस प्रकार ये द्वितीय दशों तीर्थङ्कर भी चन्द्रमा का रोहिणी नक्षत्र के साथ योग होने पर एक ही समय में उत्पन्न हुए ।३१४।

भरहे य संभव जिणो, एरवए अजियसेण जिणचंदो ।
एगसमएण जाया दसवि जिणिंदा पुणव्वसुणा ।३१५।
(भरते च संभव जिनः, ऐरवते अजितसेनजिनचन्द्रः ।
एक समयेन जाताः, दशाऽपि जिनेन्द्राः पुनर्वसुना ।)

भरत क्षेत्र में संभव जिन और ऐरवत क्षेत्र में अजितसेन—इस प्रकार दशों क्षेत्रों में दशों ही तीर्थंकर चन्द्र का पुनर्वसु नक्षत्र के साथ योग होने पर एक ही समय में हुए ।३१५।

(भरत क्षेत्र में अभिनन्दन और ऐरवत क्षेत्र में नंदिसेण एक समय में उत्पन्न हुए---इस अभिप्राय की गाथा लिपिकार के दोष से मूल प्रति में नहीं लिखी गई है ।)

सुमती य भरहवासे, इसिदिण्ण जिणो य एरवय वासे ।
एग समएण जाया, दसवि जिणिंदा महा जोगे ।३१६।
(सुमतिश्च भारतवर्षे, ऋषिदत्तजिनश्चैरवतवर्षे ।
एक समयेन जाताः, दशाऽपि जिनेन्द्राः मघा योगे ।)

भरत क्षेत्र में सुमतिनाथ और ऐरवत क्षेत्र में तीर्थंकर इसिदिण्ण (ऋषिदत्त)---ये दशों तीर्थंकर मघा नक्षत्र के योग में एक ही समय में उत्पन्न हुए ।३१६।

पउमप्पभो य भरहे, वयधारि जिणो य एरवयवासे ।
एग समएण जाया, दसवि जिणा चित्त जोगम्मि ।३१७।

(पद्मप्रभश्च भरते, वयधारिः (व्रतधारी) जिनश्चैरवतवर्षे ।
एक समयेन जाताः, दशाऽपि जिनाश्चित्रायोगे ।)

भरत क्षेत्र में तीर्थंकर पद्मप्रभ और ऐरवत क्षेत्र में वयधारी जिनेश्वर, इस प्रकार चन्द्र का चित्रा नक्षत्र के साथ योग होने पर दशों क्षेत्रों में छठे दशों तीर्थंकर एक काल अथवा एक ही समय में जन्मे ।३१७।

भरहे य सुपासजिणो, एरवए सामचंद जिणचन्दो ।
एग समएणजाया, दसवि जिणिंदा भू (?) विसाहाये योगे ।३१८।
(भरते च सुपार्श्वजिनः, ऐरवते सा(सो)मचन्द्र जिनचन्द्रः ।
एक समयेन जाताः, दशाऽपि जिनेन्द्राः विशाखायोगे ।)

भरत क्षेत्र में सुपार्श्वनाथ और ऐरवत क्षेत्र में तीर्थंकर सामचन्द्र ये दशों ही सातवें तीर्थंकर दशों क्षेत्रों में चन्द्र का विशाखा नक्षत्र के साथ योग होने पर एक ही समय में हुए ।३१८।

चन्दप्पभो य भरहे, एरवए दीहासण जिणचंदो ।
एग समयेण जाया, दसविय अणुराह जोगम्मि ।३१९।
(चन्द्रप्रभश्च भरते, ऐरवते दीर्घासनः जिनचन्द्रः ।
एक समयेन जाताः दशाऽपि चानुराधायोगे ।)

भरत क्षेत्र में आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ और ऐरवत क्षेत्र में दीर्घसेन---इस प्रकार दशों ही क्षेत्रों में दशों ही आठवें तीर्थंकर चन्द्र का अनुराधा नक्षत्र के साथ योग होने पर एक ही समय में उत्पन्न हुए ।३१९। (इस गाथा का क्रमांक मूल प्रति में ३१८ है। ३१९ वीं गाथा मूल मे नहीं है ।)

सुविही य भरहवासे, एरवए चेव जिणवर सयाऊ ।
एगसमयम्मि जाया, दसवि जिणा मूल जोगम्मि ।३२१।
(सुविधिश्च भारतवर्षे, ऐरवते चेव जिनवर शतायुः ।
एकसमये जाताः, दशाऽपि जिनाः मूलयोगे ।)

नौवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में सुविधिनाथ और ऐरवत क्षेत्र में शतायु ये दशों ही तीर्थंकर चन्द्रमा का मूल नक्षत्र के साथ योग होने

दर एक ही समय में उत्पन्न हुए ।३२१।

भरहे य सीयल जिणो, एरवए मुव्वई जिणवरिंदो ।
पुव्वासाढारिक्खे, जाया जिणपुंगवा एते ।३२२।
(भरते च शीतलजिनः, ऐरवते सुव्रती जिनवरेन्द्रः ।
पूर्वाषाढा ऋक्षे, जाताः जिनपुंगवा एते)

दशवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में शीतलनाथ और ऐरवत क्षेत्र में सुव्रती ये दशों तीर्थंकर चन्द्र का पूवाषाढ़ा नक्षत्र के साथ योग होने पर उत्पन्न हुए ।३२२।

भरहे सेज्जंस जिणो, एरवए जुत्तिसेण जिणचन्दो ।
एग समएण जाया, दसवि जिणिंदा सवण जोगे ।३२३।
(भरते श्रेयांस जिनः, ऐरवते युक्तिसेन जिनचन्द्रः ।
एक समयेन जाताः दशाऽपि जिनेन्द्राः श्रवणयोगे ।)

ग्यारहवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में श्रेयांस नाथ और ऐरवत क्षेत्र में युक्तिसेन ये पांच भरत और पांच ऐरवत क्षेत्र के दश तीर्थंकर चन्द्र का श्रवण नक्षत्र के साथ योग होने पर एक ही समय में उत्पन्न हुए ।३२३।

भरहे य वासुपुज्जो, सेज्जंसजिणो य एरवय वासे ।
सयभिसया नक्खत्ते, दसवि जिणिंदा समं जाया ।३२४
(भरते च वासुपूज्यः, श्रेयांस जिनश्चैरवतवर्षे ।
शतभिषा नक्षत्रे, दशाऽपि जिनेन्द्राः समं जाताः ।)

बारहवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में वासुपूज्य और ऐरवत क्षेत्र में श्रेयांस ये दशों तीर्थंकर शतभिषा नक्षत्र के साथ चन्द्र का योग होने पर एक ही समय में उत्पन्न हुए ।३२४

विमलो रह भरहवासे, एरवए सीहसेण जिनचंदो ।
उत्तर भद्दवयाहिं, दसवि जिणा एग समयेणं ।३२५।
(विमलोऽर्हत् भारतवर्षे, ऐरवते सिंहषेण जिनचन्द्रः ।
उत्तराभाद्रपदायां, दशाऽपि जिनाः एक समयेन ।

तेरहवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में विमलनाथ और ऐरवत क्षेत्र में सिंहसेन—ये दशों ही तीर्थंकर उत्तर भाद्रपदा नक्षत्र में एक ही समय उत्पन्न हुए ।३२५।

भरहे य अणंत जिणो एरवए असंजलो जिणवरिंदो ।
एग समयेण जाया दसवि रेवईयोगे ।३२६।
(भरते च अनंतजिनः ऐरवते असंजलो जिनवरेन्द्रः ।
एक समयेन जाताः दशाऽपि रेवतीयोगे ।)

चौदहवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में अनन्तनाथ और ऐरवत क्षेत्र में असंजल ये दशों ही चन्द्र का रेवती नक्षत्र के साथ योग होने पर एक ही समय में उत्पन्न हुए ।३२६।

धम्मो य भरहवासे, उवसंत जिणो य एरवयवासे ।
ए गसमएण जाया, दसवि जिणा पुस्स जोगम्मि ।३२७।
(धर्मश्च भारतवर्षे, उपशान्तजिनश्चैरवतवर्षे ।
एक समयेन जाताः दशाऽपि जिनाः पुष्ययोगे ।)

पन्द्रहवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में धर्मनाथ तथा ऐरवत क्षेत्र में उपशान्त ये दशों तीर्थंकर चन्द्रमा का पुष्य नक्षत्र के साथ योग होने पर दशों क्षेत्रों में एक ही साथ हुए ।३२७।

संती य भरहवासे, एरवए दीहसेण जिणचन्दो ।
एग समएण जाया, दसवि जिणिंदा भरणि जोए ।३२८।
(शान्तिश्च भारतवर्षे, ऐरवते दीर्घषेण जिनचन्द्रः ।
एक समयेन जाताः, दशाऽपि जिनेन्द्राः भरणियोगे ।)

सोलहवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में शान्तिनाथ और ऐरवत क्षेत्र में दीर्घसेन ये दशों ही तीर्थंकर चन्द्र का भरणि नक्षत्र के साथ योग होने पर एक ही समय में उत्पन्न हुए ।३२८।

कुंथू य भरहवासे, एरवयंमि य महाहि लोगबलो ।
एगसमएण जाया, दसवि जिणिंदा कित्तियाजोगे ।३२९।
(कुंथुश्च भारतवर्षे, ऐरवते च महाहि लोकबलः ।
एकसमयेन जाताः, दशोऽपि जिनेन्द्राः कृत्तिकायोगे ।)

सत्रहवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में कुंथुनाथ और ऐरवत क्षेत्र में लोकबल—ये दशों तीर्थंकर चन्द्रमा का कृत्तिका नक्षत्र के साथ योग होने पर एक समय में उत्पन्न हुए ।३२९।

होइअरो य महंतो, भरहे अइपास जिणो य एरवए ।
एगसमएण जाया, दसवि जिणा रेवई जोगे ।३३०।
(भवति अरश्च महान्, भरते अतिपार्श्वः जिनश्चैरवते ।
एकसमयेन जाताः, दशाऽपि जिना रेवतीयोगे ।)

अठारहवें तीर्थङ्कर भरत क्षेत्र में अरनाथ और ऐरवत क्षेत्र में अतिपार्श्व —ये दशों तीर्थङ्कर चन्द्रमा का रेवती नक्षत्र के साथ योग होने पर एक समय में उत्पन्न हुए ।३३०।

मल्ली य भरहवासे, मरुदेवी जिणो य एरवयवासे ।
एगसमएण जाया, दसवि जिणा अस्सिणी जोगे ।३३१।
(मल्ली च भारतवर्षे, मरुदेवी [वो] जिनश्चैरवतवर्षे ।
एक समयेन जाताः, दशाऽपि जिना अश्विनीयोगे ।)

उन्नीसवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में मल्लीनाथ और ऐरवत क्षेत्र में मरुदेवी (मरुदेव)— ये दशों तीर्थंकर अश्विनी नक्षत्र के योग में एक ही समय जन्मे ।३३१।

(बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रत और ऐरवत के तीर्थंकर वर के उल्लेख की गाथा संभवतः लिपिक के दोष से मूल प्रति में नहीं लिखी गई है ।)

नमि[1] जिणचन्दो भरहे, एरवए सामकोह[ट्ठ] जिणचंदो ।
एगसमएण जाया, दसवि जिणा अस्सिणी जोगे ।३३२।

---

१ विंशतितमतीर्थंकरमुनिसुव्रतस्याथ तस्य समये ऐरवत क्षेत्रे जातस्य तीर्थङ्करस्य च नात्र समुल्लेखं विद्यते । लिपिक दोषेणैका गाथात्र परित्यक्तेति सुनिश्चितमेव ।

(नमिः जिनचन्द्रः भरते ऐरवते श्यामकोष्ठः जिनचन्द्रः ।
एकसमयेन जाताः, दशाऽपि जिना अश्विनीयोगे ।]

इक्कीसवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में नमिनाथ और ऐरवत क्षेत्र में श्यामकोष्ठ ये दशों तीर्थंकर दशों क्षेत्रों में एक ही समय में चन्द्र का अश्विनी नक्षत्र के साथ योग होने पर उत्पन्न हुए ।३३२।

भरहे अरिट्ठनेमि, एरवए अग्गिसेण जिणचंदो ।
एगसमएण जाया, दसवि जिणा चित्त जोगम्मि ३३३।
(भरते अरिष्टनेमिः, ऐरवते अग्निषेण जिनचन्द्रः ।
एकसमयेन जाताः, दशाऽपि जिनाः चित्रायोगे)

बावीसवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में अरिष्टनेमि और ऐरवत क्षेत्र में अग्निषेण –ये दशों तीर्थंकर चन्द्र का चित्रा नक्षत्र के साथ योग होने पर एक ही वेला में उत्पन्न हुए ।३३३।

पासो य भरहवासे, एरवए अग्गिदत्त [उत्त] जिणचंदो ।
एग समएण जाया, दसवि विसाहाहि जोगंमि ।३३४।
(पार्श्वश्च भारतवर्षे, ऐरवते अग्निदत्त [गुप्त] जिनचन्द्रः ।
एक समयेन जाताः, दशाऽपि विशाखायोगे ।)

तेबीसवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में पार्श्वनाथ और ऐरवत क्षेत्र में अग्निदत्त, ये दश तीर्थंकर चन्द्र का विशाखा के साथ योग होने पर एक ही समय में उत्पन्न हुये ।३३४।

भरहे वीर जिणिंदे, एरवए वारिसेण जिणचंदो ।
हत्थुत्तराहि जोगे, जाया तित्थंकरा दसवि ३३५।
(भरते वीर जिनेन्द्रः, ऐरवते वारिषेण जिनचन्द्रः ।
हस्तोत्तरायाः योगे, जाताः तीर्थंकराः दशाऽपि ।)

चौवीसवें तीर्थंकर भरत क्षेत्र में वीर (महावीर) और ऐरवत क्षेत्र में वारिषेण–ये दशों ही तीर्थंकर चन्द्रमा का हस्तोत्तरा नक्षत्र के साथ योग होने पर एक ही समय में उत्पन्न हुए ।३३५।

एवं भणिया जम्मा, दससु वि खेत्तेसु जिणवरिंदाणं ।
एत्तो परं तु वोच्छं, वण्णविभागं समासेणं ।३३६।
(एवं भणिताः जन्मानि, दशष्वपि क्षेत्रेषु जिनवरेन्द्राणाम् ।
इतः परं तु वक्ष्ये, वर्णविभागं समासेन ।)

इस प्रकार ढाई द्वीपों के पांच भरत क्षेत्रों एवं पांच ऐरवत क्षेत्रों—इस प्रकार दश क्षेत्रों के तीर्थंकरों के जन्म समय का कथन किया। अब इससे आगे मैं उन तीर्थंकरों के वर्णविभाग का संक्षेपतः वर्णन करूंगा ।३३६।

चत्तारि कालगा जिणवराउ, चउरो पियंगु वण्णाभा ।
चत्तारि पउमगोरा, ससिप्पभा होंति चत्तारि ।३३७।
(चत्वारः कालका जिनवरास्तु, चत्वारो प्रियंगुवर्णाभाः ।
चत्वारो पद्मगौराः, शशिप्रभा भवन्ति चत्वारि ।)

चार तीर्थंकर श्यामवर्ण के, चार प्रियंगु अर्थात् जामुन के रंग जैसी प्रभा वाले, चार तीर्थंकर पद्मगर्भ के समान गौरवर्ण के, चार तीर्थंकर चन्द्रमा की चटक चाँदनी के समान श्वेत वर्ण के थे ।३३७।

(स्पष्टीकरण :—इस गाथा में वर्ण विभाग की दृष्टि से विभिन्न वर्णों के तीर्थंकरों की जो संख्या १६ दी गई है वह केवल जम्बू द्वीप के भरत तथा ऐरवत क्षेत्र के तीर्थंकरों को ही है। इन तीर्थंकरों के साथ धातकी खण्ड और पुष्करार्ध द्वीप के भरत तथा ऐरवत क्षेत्रों में उत्पन्न हुये ६४ तीर्थंकरों की संख्या को जोड़ने पर अवसर्पिणी काल की दश चौबीसियों (पांच चौबीसियाँ ढाई द्वीप के ५ भरत क्षेत्रों की और पांच ही चौबीसियां ढाई द्वीप के पांच ऐरवत क्षेत्रों की) के २४० तीर्थंकरों में से ८० तीर्थंकरों के वर्णों का उल्लेख इस गाथा में बताया गया है।)

जम्बू द्वीप के भरत खण्ड की चौबीसी के आठ तथा ऐरवत क्षेत्र की चौबीसी के आठ इस प्रकार १६ तीर्थंकरों के वर्णों के विवरण के पश्चात् जम्बूद्वीप के भरत खण्ड की चौबीसी के शेष १६

और ऐरवत क्षेत्र की चौबीसी के १६--इस प्रकार जम्बू द्वीप के दोनों क्षेत्रों की अवसर्पिणी काल की दो चौबीसियों के शेष ३२ तीर्थंकरों के वर्ण का उल्लेख करते हुये तित्थोगाली पइन्नयकार कहते हैं :—

वरकणगतविय वण्णा, बत्तीसं सेसगा जिणवरिंदा ।
भरहे एरवए वा, दससुवि खेत्तेसु जिणचंदा ।३३८।
(वरकनकतापितवर्णाः, द्वात्रिंशत् शेषकाः जिनवरेन्द्राः ।
भरते ऐरवते वा, दशस्वपि क्षेत्रेषु जिनचन्द्राः ।)

शेष बत्तीस (३२) तीर्थंकर तपाये हुये शुद्ध एवं श्रेष्ठ स्वर्ण के वर्ण के समान शरीर की कान्ति वाले थे। इसी प्रकार धातकी खण्ड के दो भरत क्षेत्रों एवं दो ऐरवत क्षेत्रों तथा पुष्करार्द्ध द्वीप के दो भरत क्षेत्रों और ऐरवत क्षेत्रों के शेष १२८ (ढाई द्वीप के दश क्षेत्रों के शेष कुल १६०) तीर्थंकर प्रतप्त शुद्ध श्रेष्ठ स्वर्ण के समान वर्ण वाले थे ।३३८।

मुणि सुव्वओ भरहे, एरवयम्मि वरो य सामलगा ।
भरहे अरिट्ठनेमिं, एरवए अग्गिसेणोत्ति ।३३९।
(मुनि सुव्रतः भरते, ऐरवते वरश्च श्यामलकाः ।
भरते अरिष्टनेमिः, ऐरवते अग्निषेण इति ।)

जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में मुनि सुव्रत और उनके साथ ही ऐरवत क्षेत्र में उत्पन्न हुये तीर्थंकर वर (धर) भरत क्षेत्र में भगवान अरिष्टनेमि और उनके साथ एक ही वेला में उत्पन्न हुये ऐरवत क्षेत्र के बाबीसवें तीर्थंकर अग्निषेण श्यामवर्ण के थे ।३३९।

चउसु वि एरवए सु, एवं चउसु विय भरह वासेसु ।
सोलस वि सामलंगा, जिणचंदा होंति नायव्वा ।३४०।
(चतसृष्वपि ऐरवतेषु, एवं चतसृष्वपि च भरतवर्षेषु ।
षोडश अपि श्यामलांगाः, जिनचन्द्राः भवन्ति ज्ञातव्याः ।)

इसी प्रकार धातकी खण्ड एवं पुष्करार्द्ध द्वीप के चारों भरत क्षेत्रों और चारों ऐरवत क्षेत्रों में (भगवान् मुनि सुव्रत तथा भगवान् अरिष्टनेमि के साथ एक ही समय में) उत्पन्न हुये सोलही (१६ ही) तीर्थंकर श्यामवर्ण के थे, यह ज्ञातव्य है ।३४०।

(इस प्रकार वर्तमान अवसर्पिणी काल की ढाई द्वीप में हुई १० चौवीसियों के २४० तीर्थंकरों में से २० तीर्थंकर श्यामवर्णके थे।)

पासोय अग्गिदत्तो, गल्ली मरुदेवी केवली चेव ।
एते चत्तारि जिणा, पियंगु सामा मुणेयव्वा ।३४१।
(पार्श्वश्च अग्निदत्तः, मल्लीः मरुदेवी केवली चैवः ।
एते चतस्रो जिनाः, प्रियंगुश्यामाः मुनेतव्याः ।)

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के तेवीसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ एवं उनके साथ एक ही समय में उत्पन्न हुये जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र के २३ वें तीर्थंकर अग्निदत्त तथा जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के १९ वें तीर्थंकर मल्लीनाथ एवं उनके जन्म के साथ ही उत्पन्न हुये जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र के १९ वें तीर्थंकर मरुदेवी (मरुदेव)—ये चारों प्रियंगुश्यामाभ वर्ण के थे ऐसा जानना चाहिए ।३४१।

पंचसु एरवएसुं, एवं पंचसु वि भरहवासेसु ।
वीसं पियंगुवण्णा, अहिंसि ओसप्पिणीए जिणा ।३४२।
(पंचसु ऐरवतेषु एवं पंचस्वपि भरतवर्षेषु ।
विंशति प्रियंगुवर्णाः, अस्यामवसर्पिण्यां जिनाः ।)

इस प्रकार ढाई द्वीप के पाँच ऐरवत क्षेत्रों और पाँच भरत क्षेत्रों में इस अवसर्पिणी काल के २४० तीर्थंकरों में २० तीर्थंकर जामुन के रंग के समान देह के वर्ण वाले थे ।३४२।

पउमप्पभो य भरहे, वयधारि जिणो य एरवयवासे ।
भरहंमि वासपुज्जो, सिज्जंसो तह य एरवए ।३४३।
(पद्मप्रभश्च भरते, व्रतधारी जिनश्चैरवतवर्षे ।
भारते वासुपूज्यः, श्रेयांशस्तथा च ऐरवते ।)

इस भरत क्षेत्र के छटे तीर्थंकर पद्मप्रभ और उनके समवयस्क, जम्बूद्वीप के ऐरवतक्षेत्र के छठे तीर्थंकर वयधारी, इस भरत क्षेत्र के बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य और उनके जन्म की वेला में ही उत्पन्न हुये, जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र के बारहवें तीर्थंकर श्रेयांस ।३४३।

चउसु वि एरवएसुं, एवं चउसु वि य भरहवासेसु ।
एते वीस जिणंदा, बंधु कुसुमुप्पभा नेया ।३४४।
(चतसृष्वप्येरवतेषु, एवं चतसृष्वपि च भरतवर्षेषु ।
एते विंशत् जिनेन्द्राः बंधूक कुसुमप्रभाः ज्ञेयाः ।)

तथा धात की खण्ड द्वीप एवं पुष्करार्द्ध द्वीप के चार भरत और चार ऐरवत क्षेत्रों में पद्मप्रभ के जन्म समय में उत्पन्न हुये आठ छठे तीर्थङ्कर तथा वासु पूज्य की जन्म वेला में उत्पन्न हुये उक्त आठों क्षेत्रों के बारहवें आठ तीर्थंकर. इस प्रकार अवसर्पिणी की दश क्षेत्रों की दश चौवीसियों के २४० तीर्थंकरों में से बीस (ढाई द्वीप के १० छठे और १० बारहवें) तीर्थंकर बंधूक कुसुम को प्रभा के समान वर्ण वाले जानने चाहिए ।३४४।

चंदप्पो य भरहे, एरवए दीहासणो जिणचंदो ।
सुविही य भरहवा से, एरवयंमि य सयाउ जिणो ।३४५।
(चन्द्रप्रभश्च भरते, ऐरवते दीर्घषेण जिनचन्द्रः ।
सुविधिश्च भरतवर्षे, ऐरवते च शतायुः जिनः ।)

इस भरत क्षेत्र के आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ और उन्हीं की जन्म बेला में उत्पन्न हुए जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र के आठवें तीर्थङ्कर दीर्घासन, इसी भरत क्षेत्र के नौवें तीर्थङ्कर सुविधिनाथ तथा उनके समवयस्क, जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र के नौवें तीर्थंकर शतायु-।३४५।

चउसु वि एरवएसुं, एवं चउसु वि य भरहवासेसु ।
एते वीसं धवला, जिणचंदा होंति नायव्वा ३४६।
(चतसृष्वप्येरवतेषु, एवं चतसृष्वपि च भरतवर्षेषु ।
एते विंशतिः धवलाः, जिनचन्द्राः भवन्ति ज्ञातव्या ।)

और धातकी खण्ड तथा पुष्करार्द्ध द्वीप के चार भरत और चार ही ऐरवत इन आठ क्षेत्रों में चन्द्रप्रभ की जन्म-वेला में ही उत्पन्न हुए आठवें आठ तीर्थंकर तथा सुविधिनाथ के जन्म समय में एक ही वेला में उत्पन्न हुए नौवें आठ तीर्थंकर इस प्रकार कुल बीस (२०) तीर्थंकर श्वेत वर्ण के होते हैं, ऐसा जानना चाहिए ।३४६।

उसभो य भरहवासे, बालचंदाणणो य एरवए ।
अजिय उ भरहे वासे, एरवयंमि य सुचंद जिणो ।३४७।
(ऋषभश्च भरतवर्षे, बाल-चन्द्राननश्चैरवते ।
अजितस्तु भारते वर्षे, ऐरवते च सुचन्द्रः जिनः ।)

जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव तथा जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र के प्रथम तीर्थंकर बालचन्द्रानन, इसी भरत क्षेत्र के दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ तथा जम्बूद्वीपस्थ ऐरवत क्षेत्र के द्वितीय तीर्थंकर सुचन्द –।३४७।

भरहे य संभवजिणो, एरवए अग्गिसेण जिणचंदो ।
अभिनंदणो य भरहे, एरवए नंदिसेण जिणो ।३४८।
(भरते च संभव जिनः, ऐरवते अग्निषेण जिनचन्द्रः ।
अभिनन्दनश्च भरते, ऐरवते नन्दिषेण-जिनः ।)

जम्बूद्वीपस्थ भरत क्षेत्र के तीसरे तीर्थंकर संभवनाथ जम्बूद्वीपस्थ ऐरवत क्षेत्र के तीसरे तीर्थंकर अग्निसेन इसी भरत क्षेत्र के चौथे तीर्थंकर अभिनन्दन, जम्बूद्वीपस्थ ऐरवत क्षेत्र के चौथे तीर्थंकर नंदिसेन–।३४८।

सुमई य भरहवासे, इमिदिण्ण जिणो य एरवयवासे ।
भरहे य सुपास जिणो एरवए साम चंद जिणो ३४९।
(सुमतिश्च भरतवर्षे, ऋषिदत्त जिनश्च ऐरवतवर्षे ।
भरते च सुपार्श्वजिनः, ऐरवते श्यामचन्द्रः जिनः ।)

जम्बूद्वीपीय भरत क्षेत्र के पांचवें तीर्थंकर सुमतिनाथ, जम्बूद्वीपीय ऐरवत क्षेत्र के पांचवें तीर्थंकर ऋषिदत्त, इसी भरत क्षेत्र

के सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ, जम्बू द्वीप के ऐरवत क्षेत्र के सातवें तीर्थंकर श्यामचन्द--।३४९।

भरहे य सीयल जिणो, एरवए सुव्वई जिणवरिंदो ।
भरहे सेज्जंस जिणो, एरवए जुत्तिसेणो वि ।३५०।
(भरते च शीतलजिनः, एरवते सुव्रती जिनवरेन्द्रः ।
भरते श्रेयांसजिनः, ऐरवते युक्तिषेणोऽपि ।)

इसी भरत क्षेत्र के दशवें तीर्थंकर शीतलनाथ, जम्बूद्वीपीय ऐरवत क्षेत्र के दशवें तीर्थंकर सुव्रती, इसी भरत के ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ, जम्बूद्वीपीय ऐरवत क्षेत्र के उनके समवयस्क ग्यारहवें तीर्थंकर युक्तिसेन ।३५०।

विमलो य भरहवासे, एरवए सीहसेण जिणचंदो ।
भरहे अणंतई जिणो, असंजल जिणो य एरवए ।३५१।
(विमलश्च भरतवर्षे, ऐरवते सिंहषेण-जिनचन्द्रः ।
भरते अनन्त हि जिनः, असंजल (आश्वञ्जल) जिनश्च ऐरवते ।)

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के १३ वें तीर्थंकर विमलनाथ और ऐरवत क्षेत्र के तेरहवें तीर्थंकर सिंहसेन, इसी भरत क्षेत्र के १४ वें तीर्थंकर अनन्तनाथ, ऐरवत क्षेत्र के चौदहवें तीर्थंकर असंजल ।३५१।

धम्मो य भरहवासे, उवसंत जिणोय एरवयवासे ।
संती य भरहवासे, एरवए दीहसेण-जिणो ।३५२।
(धर्मश्च भरतवर्षे, उपशान्त जिनश्चैरवतवर्षे ।
शान्तिश्च भारतवर्षे, ऐरवते दीर्घषेण-जिनः ।)

जम्बूद्वीपस्थ भरत क्षेत्र के पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ, जम्बू द्वीप के ही ऐरवत क्षेत्र के पन्द्रहवें तीर्थंकर उपशान्त, इसी भरत क्षेत्र के १६ वें तीर्थंकर शान्तिनाथ, जम्बू द्वीपीय ऐरवत क्षेत्र के सोलहवें तीर्थंकर दीर्घसेन ।३५२।

कुंथू य भरहवासे एरवयम्मि य महाहि लोगबलो ।
अर जिणवरो य भरहे, अइपास जिणो य एरवए ।३५३।
(कुन्थुश्च भरतवर्षे, ऐरवते च महाहि लोकबलः ।
अर जिनवरश्च भरते. अतिपार्श्वजिनश्चैरवते ।)

इस भरत क्षेत्र के १७ वें तीर्थंकर कुंथुनाथ, ऐरवत क्षेत्र के १७ वें तीर्थंकर लोकबल, इस भरत क्षेत्र के अठारहवें तीर्थंकर अरनाथ, ऐरवत क्षेत्र के भी १८ वें तीर्थंकर अतिपार्श्व —।३५३।

नमि जिणवरो य भरहे, एरवए सामकोट्ठ जिणचंदो ।
भरहम्मि य वीर जिणो, एरवए वारिसेणो वि ।३५४।
(नमिः जिनवरश्च भरते, ऐरवते श्यामकोष्ठ-जिनचन्द्रः ।
भरते च वीर जिनः, ऐरवते वारिषेणोऽपि ।)

जम्बुद्वीप के भरत क्षेत्र के इकवीसवें तीर्थंकर नमिनाथ, ऐरवत क्षेत्र के २१ वें तीर्थंकर श्यामकोष्ठ, इसी भरत के चौवीसवें तीर्थंकर वीर (महावीर-वर्द्धमान) और महावीर की जन्मवेला-पुल नक्षत्र में जम्बूद्वीपस्थ ऐरवत क्षेत्र में उत्पन्न हुए वहां के चौवीसवें तीर्थंकर वारिषेण—।३५४।

केवल नाणुज्जोइय, जियलोय पयच्छवत्थुसब्भावा ।
एते बत्तीस जिणा, सुवण्णवण्णा मुणेयव्वा ।३५५।
(केवलज्ञानोद्योतित, त्रिलोक प्रत्यक्ष-वस्तु-सद्भावाः ।
एते द्वात्रिंशज्जिनाः, सुवर्णवर्णाः मुनेतव्याः ।)

ये केवलज्ञान द्वारा प्रकाशित त्रैलोक्य के समस्त चराचर-जड़-चेतन पदार्थों के त्रिकालवर्ती भावों को प्रत्यक्ष देखने जानने वाले बत्तीसों ही तीर्थंकर प्रतप्त स्वर्ण के समान वर्ण वाले थे—यह जानना चाहिये ।३५५।

चउसुवि एरवए सुं, एवं चउसुवि य भरहवासे सु ।
अट्ठावीसं य सयाणं, सुवण्णवण्णं जिणंदाणं ।३५६।

(चतसृष्वप्येरवतेषु एवं चतसृष्वपि च भरतवर्षेषु ।
अष्टाविंशतिः च शतं, स्वर्णवर्णं जिनेन्द्राणाम् ।)

एवं---इस प्रकार (जिस प्रकार कि जम्बूद्वीप के एक भरत और एक ऐरवत क्षेत्र में दो दो एक ही समय में उत्पन्न हुए उपरिवर्णित ऋषभ चन्द्रानन आदि ३२ तीर्थंकर तपाये हुए शुद्ध श्रेष्ठ स्वर्ण के रंग के समान वर्ण वाले थे उसी प्रकार उपरिचर्चित दो दो तीर्थंकरों के जन्म के साथ साथ बिना एक क्षण के अन्तर के---शतशः ठीक एक ही समय में आठ आठ की संख्या में जन्मे हुए, धातकी खण्ड और पुष्करार्द्ध द्वीप के) चारों ही भरत क्षेत्रों और चारों ही ऐरवत क्षेत्रों में १२८ तीर्थंकरों का वर्ण प्रतप्त स्वर्ण के समान था ।३५५।

[स्पष्टीकरणः---ढाई द्वीप में पाँच भरत क्षेत्र हैं---एक जम्बूद्वीप का, दो धातकी खण्ड के और दो ही पुष्करार्द्ध द्वीप के । इसी प्रकार ढाई द्वीप में पांच ऐरवत क्षेत्र हैं:--एक जम्बूद्वीप का दो धातकी खण्ड द्वीप के और दो ही पुष्करार्द्ध द्वीप के । प्रवर्तमान अवसर्पिणी काल में इन दशों क्षेत्रों में प्रत्येक में चौवीस-चौवीस तीर्थंकरों के हिसाब से दश चौवीसियां, तदनुसार २४० तीर्थंकर हुए । ३३६ से ३५५ तक की २० गाथाओं का सारांश यह है कि इन २४० तीर्थंकरों में से बीस तीर्थङ्करों का देह-वर्ण श्यामल, बीस का प्रियंगुवर्णाभ, बीस का पद्मगर्भगौर, बीस का चन्द्र की दुग्ध-धवल चांदनी के समान श्वेत और शेष १६० तीर्थंकरों का वर्ण तपाये हुए श्रेष्ठ स्वर्ण के समान था ।]

दससुवि वासेसेत्तो, जिणिंद चंदाण सुणसु संठाणं ।
वज्जरिसभ संघयणा, समचउरंसाय संठाणे ।३५७।
(दशष्वपि वर्षेषु-इतः, जिनेन्द्रचन्द्राणां शृणु संस्थानम् ।
वज्रऋषभ संहननाः, समचतुरस्राश्च संस्थाने)

ढाई द्वीप के पांच भरत और पांच ऐरवत --इन दशों ही क्षेत्रों में हुए (२४०) तीर्थेश्वरों के संस्थान के सम्बन्ध में अब सुनिये । वे सबके सब (सभी) वज्रऋषभ संहनन और समचतुरस्र संस्थान के धनी थे ।३५७)

बत्तीसं घरयाइं, काउं तिरियाययाहिं रेहाहिं ।
उड्ढायाहिं काउं, पंच घरयाइं तो पढमे ।३५८।
(द्वात्रिंशत् गृहाणि, कृत्वा तिर्यगायताभिः रेखाभिः ।
ऊर्ध्वाधोभिः कृत्वा, पंच गृहाणि ततः प्रथमे ।)

खड़ी ३२ और पड़ी ५ रेखाएं खींचकर ऊपर से नीचे पांच पंक्तियों में सेंतीस-सेंतीस समचोरस घर बनाये जायें। तदनन्तर प्रथम पंक्ति पर—।३५८।

पन्नरस जिण निरंतर, सुन्न दुगं ति जिण सुन्न तियगं च ।
दो जिण सुन्न जिणिंदो, सुन्न जिणो सुन्न दोन्नि जिणा ।३५९।
(पंचदश जिना निरन्तर, शून्यद्विकं त्रयो जिना शून्य त्रिकं च ।
द्वौ जिनौ शून्यं जिनेन्द्रः, शून्यं जिनः, शून्यं द्वौ जिनौ ।)

[इति प्रथमा पंक्तिः]

प्रथम पंक्तिः—

निरन्तर पन्द्रह घरों में क्रमशः पन्द्रह तीर्थङ्करों के नाम, फिर आगे के दो घरों में शून्य, फिर ३ घरों में सोलहवें से अठारहवें तीन तीर्थङ्करों के नाम, फिर आगे के तीन घरों में शून्य, उससे आगे के दो घरों में उन्नीसवें और बीसवें दो तीर्थङ्करों के नाम, उससे आगे के एक घर में शून्य, फिर आगे के एक घर में इकवीसवें तीर्थङ्कर का नाम, आगे के एक घर में शून्य, उससे आगे के एक घर में बावीसवें तीर्थङ्कर का नाम, उससे आगे के एक घर में शून्य और उससे आगे के शेष दो घरों में तेवीसवें और चौवीसवें तीर्थंकरों के नाम ।३५९।

[द्वितीया पंक्तिः]

दो चक्की सुन्न तेरस, पण चक्की सुन्न चक्की दो सुन्ना ।
चक्की सुन्न दु चक्की, सुन्नं चक्की दुसुन्नं च ।३६०।
(द्वौ चक्रिणौ शून्य त्रयोदश, पंच चक्रिणः शून्यं चक्री द्वे शून्ये ।
चक्री शून्यं द्वौ चक्रिणौ, शून्यं चक्री द्वे शून्ये च ।)

[इति द्वितीया पंक्ति]

दूसरी पंक्तिः—

दूसरी पंक्ति पर पहले दो घरों में प्रथम और दूसरे चक्रवर्तियों के नाम, फिर आगे के १३ घरों में शून्य, फिर आगे के पांच घरों में तीसरे से सातवें चक्रवर्तियों के नाम, उससे आगे के एक घर में शून्य फिर आगे के एक घर में आठवें चक्रवर्ती का नाम, उससे आगे के दो घरों में शून्य, फिर आगे के एक घर में नौवें चक्रवर्ती का नाम, उससे आगे के एक घर में शून्य, उससे आगे के दो घरों में दशवें और ग्यारहवें चक्रवर्ती का नाम, उससे आगे के एक घर में शून्य उससे आगे के एक घर में बारहवें चक्रवर्ती का नाम, उससे आगे के अन्तिम दो घरों में शून्य ।३६०।

[अथ तृतीया पंक्तिः]

दस सुन्न पंच केसव, पण सुन्नं, केसी सुन्न केसी य ।
दो सुन्न केसवोऽवि य, सुन्न दुगं केसव ति-सुन्नं ।३६१।
(दश शून्यानि पंच केशवा, पंचशून्यानि केसीः शून्य केसी च ।
द्वे शून्ये केशवोऽपि च, शून्यद्विकं केशवः त्रीणि शून्यानि ।)

तीसरी पंक्तिः—

तीसरी पंक्ति के पहले दश घरों में शून्य, आगे के पांच घरों में क्रमशः ५ केशवों (वासुदेवों) के नाम, आग के पाँच घरों में शून्य, इससे आगे के एक घर में केशव का नाम, फिर एक घर में शून्य, इससे आगे के एक घर में केशव का नाम, फिर दो घरों में शून्य, फिर एक घर में केशव का नाम, फिर दो घरों में शून्य, इससे आगे के एक घर में नौवें केशव का नाम, इससे आगे के अन्तिम तीन घरों में शून्य ।३६१।

पंचसय अद्ध पंचम, चउरो चउद्ध तिन्नि य सयाइं ।
अड्ढाइज्जा दोन्नि य, दिवड्ढमेगं धणुसयं च ३६२।
नइइ असीइ सत्तरि, सट्ठी पणास तह य पणयाला ।
बायालाइं धणुइं य, चालीस [चत्तालं] अद्ध धणुगं च ।३६३।
चत्ताला पणतीसा, तीसा उणतीस अट्ठवीसा य ।
छव्वीसा पणवीसा बीसा तह सोल पणरसं ।३६४।

बारस दस सत्तधणूं, रयणी णव सत्त होइ उच्चत्तं ।
जिण चक्कवट्टिकेसव, चउत्थ घर यंमि निद्दिट्ठं ।३६५।

[चतुर्थ पंक्तिः]

(पंचशत अर्द्ध पंचम, चत्वारि चत्वार्यर्द्ध त्रीणि च शतानि ।
सार्द्ध द्वि द्वौ च, द्वयर्द्ध एकं धनुश्शतं च ।३६२।
नवति अशीतिः सप्ततिः, षष्टिः पञ्चाशत् तथा च पंचचत्वारिंशत् ।
द्वि चत्वारिंशत् धनूंषि च, चत्वारिंशदर्द्ध धनुष्कं च ।३६३।
चत्वारिंशत्ः पञ्चत्रिंशत्ः, त्रिंशत् एकोनत्रिंशत् अष्टाविंशतिश्च ।
षड्विंशतिः पञ्चविंशतिः तथा षोडश पञ्चदश ।३६४।
द्वादश दश सप्त धनूंषि, रत्नयः नव सप्त भवति उच्चता ।
जिनचक्रवर्तिकेशव, चतुर्थ गृहे निर्दिष्टम् ३६५।)

चौथी पंक्ति :---

चौथी पंक्ति में पहले से लेकर ३७ वें घर तक क्रमशः ५०० धनुष, ४५० धनुष, ४००, ३५०, ३००, २५०, २००, १५०, १०० धनुष---३६२।

९०, ८०, ७०, ६०, ५०, ४५, ४२, ४०½ धनुष---।३६३।

४० धनुष, ३५, ३०, २९, २८, २६, २५, २०, १६, १५ धनुष ।३६४।

१२ धनुष, १० धनुष ७ धनुष, ९ रत्नि अर्थात् मुंड हाथ और ७ रत्नि शरीर की लम्बाई। इस प्रकार चौथे घर में तीर्थंकरों, चक्रवर्तियों और केशवों अर्थात् वासुदेवों के शरीर की ऊंचाई बताई गई है ३६५।

उसभो पंच धणुसए पासो नव रयणि सत्तवीर जिणो ।
सेसट्ठ पंच अट्ठ य. पण्णास दस पंच परिहीणा ।३६६।

एतदेव स्पष्टयन्नाह :--

ऋषभः पंचधनुश्शतानि, पार्श्वः नवरत्नयः सप्तवीरजिनः ।
शेषा अष्टौ पञ्च अष्टौ च, पञ्चाशद् दश पञ्च परि हीणाः ।)

इसे और स्पष्ट करते हुए कहा है :—

ऋषभदेव की ऊंचाई ५०० धनुष, पार्श्वनाथ की ऊंचाई ९ मुंड हाथ (रत्नि) और भगवान महावीर की ऊंचाई ७ रत्नि (मुंड हाथ) थी। शेष आठ तीर्थंकरों की ऊंचाई अनुक्रमशः पचास पचास धनुष, पांच तीर्थंकरों की दश-दश धनुष और आठ तीर्थंकरों की ऊंचाई पांच-पांच धनुष कम होती गई है।३६६।

पंचसय अद्धपंचम, बायाला चेव अह पुणे।
चाइयाला अद्ध धणुं च, चउत्थ पंचमे चत्ता ।३६७।

पणतीसा तीसा पुण, अट्ठावीसा तह वीस य धणूइ।
पन्नरसा बारसेव य, धणुणि सत्तेव चक्कीणं ।३६८।

(पंचशत अर्द्ध पञ्चम, द्विचत्वारिंशच्चैव अथ पुनः।
चत्वारिंशदर्ध धनुश्च, चतुर्थे, पञ्चमे चत्वारिंशत्।।

पञ्चात्रिंशत् त्रिंशत्पुनः, अष्टविंशतिस्तथा विंशतिश्च धनूंषिः।
पञ्चदश द्वादशैव च, धनूंषि सप्तैव चक्रीणाम् ।।)

चक्रवर्तियों की ऊंचाई :—

५०० धनुष, ४५०, ४२, ४०½, ४०, ३५, ३०, २८, २०, १५, १२ और ७ धनुष—यह क्रमशः बारह चक्रवर्तियों के शरीर की थी।३६७-३६८।

पढमो धणूणसीति, सत्तरि सट्ठी य पण पणयाला।
उणतीसा छव्वीसा. सोलस दस केसवुच्चत्तं ।३६९।

(प्रथमः धनूंष्यशीतिः, सप्ततिः षष्टिश्च पञ्चाशत् पञ्चचत्वारिंशत्।
एकोनत्रिंशत् षड्विंशतिः, षोडश दश केशवोच्चता ।)

वासुदेवों की ऊंचाई :—

८०, ७०, ६०, ५०, ४५, २९, २६, १६ और १० धनुष—यह क्रमशः ९ वासुदेवों (केशवों) के शरीर की ऊंचाई थी।३६९।

सामण्ण विसेसेणं, तिण्हवि जिण चक्किकेसवाणं तु ।
दससु वि वासेसेवं, चउत्थ घर यंमि निद्दिट्ठं ।३७०।

(सामान्य विशेषेण, त्रयाणामपि जिन चक्रिकेशवानां तु ।
दशस्वपि वर्षेष्वेवं, चतुर्थगृहे निर्दिष्टम् ।)

[गताश्चतुर्था पंक्तिः]

सामान्य एवं विशेष रूप से पांच भरत तथा पांच ऐरवत इन दशों ही क्षेत्रों के तीर्थंकरों, चक्रवर्तियों और केशवों---इन तीनों वर्गों के महापुरुषों के शरीर की ऊंचाई चौथे घर में किये गये उल्लेख के अनुसार होती है ।३७०।

[अथ पंचमा पंक्तिः]

चुलसीति बावत्तरि, सट्ठित्ति पन्नास चत्त तीसा य ।
वीसा दस दो एगं च, हुंतिहु पुव्वाण लक्खाइं ।३७१।

चुलसीति बावत्तरि, सट्ठि तीस दस पंच तिन्नेव ।
एगं च सय सहस्सं, वासाणं होइ विण्णेयं ।२७२।

पणनउइ चुलसीति, पणसट्ठि सट्ठ तह य छप्पन्ना ।
पणपण तीस बारस, दस तिन्नि एगं सहस्साइं ।३७३।

सत्तसया सयमेगं, वासाणं बावत्तरि च ।
पंचद्धसय जिण चक्किकेसवाणं, आउपमाणं मुणेयव्वं ३७३।

(जिनचक्रिकेशवानामुपरिचर्चित यन्त्रानुसारेण क्रमशः सार्द्धमेवायु-प्रमाणं विवर्णयन् ग्रन्थकृद् प्राह :---)

(चतुरशीतिः द्वासप्ततिः, षष्टीति पञ्चाशत् चत्वारिंशत् त्रिंशच्च ।
विंशति दश द्वौ एकं च, भवन्ति खलु पूर्वाणां लक्षानि ।३७१।

चतुरशीतिः द्वासप्ततिः षष्टिः त्रिंशत् दश पञ्च त्रीण्येव ।
एकं च शतसहस्रं, वर्षाणां भवति विज्ञेयम् ।३७२।

पंचनवतिः चतुरशीतिः, पञ्चषष्टिः षष्टिः तथा च षड्पञ्चाशत् ।
पञ्च पञ्चाशत् त्रिंशत् द्वादश, दश त्रीणि एकं सहस्राणि ।३७३।
सप्तशतानि शतमेकं, वर्षाणां द्वासप्ततिश्च ।
पञ्चार्द्ध शत (४५०) जिनचक्रिकेशवानां आयुप्रमाणं मुनेतव्यम् ।
३७४।)

[चतुर्भिःकुलकम्]

पांचवीं पंक्ति :---

पांचवीं पंक्ति के पहले घर से लेकर सेंतीसवें घर तक क्रमशः निम्नलिखित रूप में लिखा जाय :--

८४ लाख पूर्व, ७२ लाख पूर्व, साठ लाख पूर्व, ५० लाख पूर्व, ४० लाख पूर्व, ३० लाख पूर्व, २० लाख पूर्व, १० लाख पूर्व, २ लाख पूर्व, १ लाख पूर्व---।३७१।

८४ लाख वर्ष, ७२ लाख वर्ष, ६० लाख वर्ष ३० लाख वर्ष, १० लाख वर्ष, ५ लाख वर्ष, ३ लाख वर्ष, १ लाख वर्ष--।३७२।

९५ हजार वर्ष, ८४ हजार वर्ष, ६५ हजार वर्ष, ६० हजार वर्ष, ५६ हजार वर्ष, ५५ हजार वर्ष, ३० हजार वर्ष, १२ हजार वर्ष, १० हजार वर्ष, ३ हजार वर्ष, १ हजार वर्ष---।३७३।

७०० वर्ष, १०० वर्ष और ७२ वर्ष। यह पांच भरत और पांच ऐरवत--इन दशों क्षेत्रों के कुल मिलाकर ४५० तीर्थंकर-चक्री-और वासुदेवों की आयु का प्रमाण समझना चाहिए ।३७४।

चुलसीति बावत्तरि, सट्ठी पण्णास चत्त तीसा य ।
वीसा दस दो एगं च, होंति पुव्वाण लक्खाइं ।३७५।

चउरासी य बावत्तरि य, सट्ठी य होइ नायव्वा ।
तीसा दसेव एगं च, वासलक्खा मुणेयव्वा ।३७६।

पञ्चाणउइ सहस्सा, चउरासीति य पंचपण्णा य ।
तीसा दस एग सहस्सं, सयमेगं य बावत्तरिं वीरे ।३७७।

(तदेव तीर्थकृतामायुप्रमाणं पृथकतः विवर्णयन् ग्रन्थकृदाह :--)

(चतुरशीतिः द्वासप्ततिः, षष्टिः पञ्चाशत् चत्वारिंशत् त्रिंशच्च ।
विंशतिः दश द्वौ एकं च, भवन्ति पूर्वाणां लक्षाणि ।३७५।

चतुरशीतिश्च द्वासप्ततिश्च, षष्टिश्च भवति ज्ञातव्या ।
त्रिंशद् दशैव एकं च, वर्षलक्षाः मुनेतव्या ।३७६।

पञ्चनवतिसहस्राः, चतुरशीतिश्च पञ्चपञ्चाशच्च ।
त्रिंशद् दश एक सहस्राणि, शतमेकं च द्वासप्ततिः वीरे ।३७७।)

पृथक् रूप से तीर्थंकरों की आयु का विवरण :---

८४ लाख पूर्व, ७२ लाख पूर्व, ६० लाख पूव, ५० लाख पूर्व, ४० लाख पूर्व, ३० लाख पूर्व, २० लाख पूर्व, १० लाख पूर्व, २ लाख पूर्व, १ लाख पूर्व---।३७५।

८४ लाख वर्ष, ७२ लाख वर्ष, ६० लाख वर्ष, ३० लाख वर्ष, १० लाख वर्ष, १ लाख वर्ष---।३७६।

९५ हजार वर्ष, ८४ हजार वर्ष, ५५ हजार वर्ष, ३ हजार वर्ष, १० हजार वर्ष, १ हजार वर्ष, १०० वर्ष और भगवान् महावीर की आयु ७२ वर्ष। यह ऋषभादि महावीरान्त चौवीस तीर्थंकरों का आयु परिमाण ।३७७।

चउरासीति य बावत्तरी य, पुव्वाण होंति लक्खाइं ।
पंच य तिण्णेगं चिय[1] , वासाणं सय सहस्साउ ।३७८।

(एवं चक्रवर्तीनामपि पृथकत आयुं विवरणयन् ग्रन्थकृदाह :—)

(चतुरशीतिश्च द्वासप्ततिश्च, पूर्वाणां भवन्ति लक्षाणि ।
पञ्च च त्रीणि एकं एव, वर्षाणां शतसहस्रास्तु ।)

पृथक् रूप से चक्रवर्तियों की आयु का निरूपण :---

८४ लाख पूर्व, ७२ लाख पूर्व, ५ लाख वर्ष, ३ लाख वर्ष, १ लाख वर्ष---।३७८।

---

१ चिय —अव्यय। एवकारार्थे, स्थानाङ्ग ठा. २, उ० १

पंचाणउई य सहस्सा, चउरासीति य सट्ठि तीसा य ।
दस तिण्णि सहस्साइं, सत्तसया आउ चक्कीणं ।३७९।
(पञ्चेनवतिश्च सहस्राः, चेतुरशीतिश्च षष्टिः त्रिंशच्च ।
दशं त्रीणि सहस्राणि, सप्तशतानि आयुश्चक्रीणाम् ।)

९५ हजार वर्ष, ८४ हजार वर्ष, ६० हजार वर्ष, ३० हजार वर्ष, १० हजार वर्ष, ३ हजार वर्ष और ७०० वर्ष, यह क्रमशः १२ चक्रवर्तियों की आयुष्य है ।३७९।

चुलसीति बावत्तरि, सट्ठी तीस दसवासलक्खाइं ।
पणसिट्ठ सहस्साइं, छप्पन्ना बारसेगं च आउ अद्ध चक्कीणं ।३८०।
(चतुरशीतिः द्वासप्ततिः, षष्टिः त्रिंशत् दशवर्षलक्षानि ।
पञ्चषष्टि सहस्राणि, षट्पञ्चाशत् द्वादश एकं च आयु अर्द्ध-चक्रीणाम्

[अर्द्धचक्रीणां पृथक्रूपेण तथा जम्बूधातकीपुष्करार्द्ध द्वीपवर्तीषु पंच-भरतेषु तथा पंच-एरवतेश्वेवं दशसु वर्षेषूत्पन्नानां त्रयाणामपि जिनचक्रिवासुदेवानां सामान्य विशेषरूपेणायुप्रमाणं निरूपयन् ग्रन्थ-कर्त्ता प्राहः—]

अर्द्धचक्रियों (वासुदेवों) की आयु का पृथक्तः विवरण :—

८४ लाख वर्ष, ७२ लाख वर्ष, ६० लाख वर्ष, ३० लाख वर्ष १० लाख वर्ष, ६५ हजार वर्ष, ५६ हजार वर्ष, १२ हजार वर्ष और १००० वर्ष—यह क्रमशः ९ वासुदेवों की आयुष्य का परिमाण है ।३८०।

सामण्ण विसेसेणं तिण्हं वि जिणचक्की केसवाणं तु ।
दससुवि वासेसेवं, आउप्पमाणं मुणेयव्वं ।३८१।
(सामान्य विशेषेणत्रयाणामपि जिनचक्रिकेशवानां तु ।
दशस्वपि वर्षेष्वेवं, आयुष्प्रमाणं मुनेतव्यम् ।)

सामान्य एवं विशेष रूप से दशों भरत ऐरवत क्षेत्रों में तीर्थङ्करों

चक्रवर्तियों और वासुदेवों--इन महापुरुषों के तीनों वर्गों का यही आयु प्रमाण जानना चाहिये ।३८१।

३८१ -- प्रतिषु नास्ति --

(यहाँ एक गाथा (सं० ३८१ मू० प्र०) हमारे पास की प्रति में नहीं है। पूर्वापर सम्बन्ध को देखते हुए अनुमान किया जाता है कि वह कोई उपक्रम गाथा होगी जिसमें यह उल्लेख किया गया होगा कि तीर्थंकरों, चक्रियों और वासुदेवों के देहमान और आयुष्य का कथन समाप्त हुआ, अब तीर्थङ्करों के वंश, गोत्र आदि का कथन किया जाता है।)

मुणि सुव्वओ य वर (धर) जिणो, नेमि अग्गिसेण हरिवंसे ।
अवसेसा तित्थयरा, सव्वे इक्खाग वंसाउ ।३८२।
(मुनि सुव्रतश्च (धर) जिनः नेमि अग्निसेनः हरिवंशे ।
अवशेषाः तीर्थंकराः, सर्वे इक्ष्वाकुवंश्याः ।)

मुनि सुव्रत और धर (वर), अरिष्टनेमि तथा अग्निसेन ये (दशों क्षेत्रों के २०) तीर्थंकर हरिवंश में उत्पन्न हुए। शेष (२२०) तीर्थंकर इक्ष्वाकुवंशी थे ।३८२।

मुणि सुव्वओ धरो बिहु, गोयमगोत्ताग्गिसेण नेमी य ।
अवसेसा तित्थयरा, कासवगुत्ता मुणेयव्वा ।३८३।
(मुनि सुव्रतः धरो द्वौ, गौतमगोत्राग्निसेन नेमी च ।
अवशेषाः तीर्थङ्कराः, काश्यपगोत्रा मुनेतव्याः ।)

मुनि सुव्रत और धर ये दोनों तथा अग्निसेन एवं अरिष्टनेमि ये (दशों क्षेत्रों के २०) तीर्थंकर गौतमगोत्रीय थे। अवशिष्ट (२२०) तीर्थंकर काश्यपगोत्रीय जानने चाहिये ।३८३।

वीरो अरिट्ठनेमी, पासो मल्ली य वासुपुज्जो य ।
एते मोत्तूण जिणे, अवसेसा आसि रायाणो ।३८४।
(वीरः अरिष्टनेमीः, पार्श्वः मल्लिश्च वासुपूज्यश्च ।
एतान् मुक्त्वा जिनान्, अवशेषा आसन् राजानः ।)

महावीर, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ, मल्लिनाथ और वासुपूज्य इन (दशों क्षेत्रों के ५०) तीर्थंकरों को छोड़कर अवशिष्ट (१६०) तीर्थंकर राजा थे ।३८४।

गयकुलेसु वि जाया, विसुद्धवंसेसु खत्तिय कुलेसु ।
न य इच्छियाभिसेया, कुमारवासेसु पव्वइया ।३८५।
(राजकुलेष्वपि जाताः, विशुद्धवंशेषु क्षत्रियकुलेषु ।
न चेच्छिताभिषेका, कुमारवासेसु प्रव्रजिताः ।)

क्षत्रिय कुलों विशुद्ध वंशों एवं राजकुलों में उत्पन्न होकर भी इन (५०) तीर्थंकरों ने राज्याभिषेक की कामना नहीं की और ये कुमारवास (कुमारावस्था) में ही प्रव्रजित हो गये ।३८५।

संती कुंथू य अरो, अरहन्ता चेव चक्कवट्टी य ।
अवसेसा तित्थयरा, मंडलिया आसि रायाणो ।३८६।
(शान्तिः कुंथुश्च अरः, अर्हताः चैव चक्रवर्तिनश्च ।
अवशेषा तीर्थंकराः माण्डलिका आसन् राजानः ।)

शान्तिनाथ, कुंथुनाथ और अरनाथ ये (दशों क्षेत्रों के ३०) तीर्थंकर अर्हत् (तीर्थेश्वर) भी थे और चक्रवर्ती भी । शेष (कुमारवास में प्रव्रजित महावीर आदि दशों क्षेत्रों के ५० तीर्थंकरों को छोड़कर--- १६०) तीर्थंकर माण्डलिक राजा थे ।३८६।

उसभजिणो उप्पण्णो, विरमंते सुसम दूसमाएसु ।
तेवीसं तित्थयरा, दूसम सुसमाए उप्पण्णा: ।३८७।
(ऋषभजिन उत्पन्नः, विरमति षुष्षम-दुःषमायाम् ।
त्रयोविंशतिः तीर्थंकराः, दुःषम षुष्षमायामुत्पन्नाः ।)

तीर्थंकरों के जन्म आरक :---

सुषमा दुःषम नामक तीसरे आरक के समाप्ति की ओर बढ़े अन्तिम चरण में (अर्थात् जब तीसरे आरक के समाप्त होने में संख्यात वर्ष---८४ लाख पूर्व, ३ वर्ष ८½ मास अवशिष्ट थे तब) भगवान् ऋषभदेव (शेष ४ भरत और ५ ऐरवत इन ९ क्षेत्रों के ९

प्रथम तीर्थंकरों का जन्म हुआ। शेष २३ (९ क्षेत्रों के तेवीस-तेवीस तीर्थंकरों को सम्मिलित करने पर २३०) का जन्म दुःषमा-सुषम नामक चौथे आरक में हुआ ।३८७।

मंडलिया रायाणो, जिण तेवीसं आसि पुव्वभवेसुं ।
उसभो पुण तित्थयरो, बोधव्वो चक्कवट्टी उ ।३८८।
(माण्डलिकाः राजानः, जिनाः त्रयोविंशा आसन् पूर्वभवेषु ।
ऋषभः पुनस्तीर्थकरः, बोधव्यश्चक्रवर्तिस्तु ।)

तीर्थंकरों का पूर्वभव-राज्य :---

तीसरे पूर्वभव में २३ (शेष ९ क्षेत्रों के सम्मिलित करने पर २३०) तीर्थङ्कर मांडलिक राजा और प्रथम तीर्थङ्कर (शेष ९ क्षेत्रों के प्रथम तीर्थंकरों को सम्मिलित करने पर १० तीर्थङ्कर) चक्रवर्ती थे, यह जानना चाहिये ।३८८

तेवीसं तित्थयरा, पुव्वभवे एकारसंगवी आसि ।
उसभो पुण तित्थयरो, चोद्दस पुव्वी मुणेयव्वो ।३८९।
(त्रयोविंशतिः तीर्थंकरा, पूर्वभवेष्वेकादशांगविद आसन् ।
ऋषभः पुनस्तीर्थङ्करश्चतुर्दशपूर्वी मुनेतव्यः)

पूर्वभव अंग ज्ञान :—

अपने तीसरे पूर्वभव में अजितादि महावीरान्त तेवीस तीर्थंकर एकादशांगधर और केवल एक ऋषभदेव चौदह पूर्वी अर्थात् द्वादशांगधर थे, यह जानना चाहिये ।३८९।

उसभो य विणीयाए, बारवतीए अरिट्ठवरनेमी ।
अवसेसा तित्थयरा, निक्खंता जम्मभूमीसु ।३९०।
(ऋषभश्च विनीतायां, द्वारावत्यामरिष्टवर नेमोः ।
अवशेषास्तीर्थकराः, निष्क्रान्ताः जन्मभूमीसु)

तीर्थंकरों की अभिनिष्क्रमण नगरियां :--

ऋषभदेव विनीता नगरी से, अरिष्टनेमि द्वारावती (द्वारिका)

से और शेष बावीस तीर्थंकर अपनी अपनी जन्म-नगरियों से महाभिनिष्क्रमण कर प्रव्रजित हुए ।३९०।

मल्ली पासो अरहा, सेज्जंसो चेव वासुपुज्जो य ।
पुव्वण्हे पव्वइया, सेसा पुण पच्छिमण्हम्मि ३९१।
(मल्लिपार्श्वाऽर्हतौ, श्रेयांशश्चैव वासुपूज्यश्च ।
पूर्वाह्णे प्रव्रजिताः, शेषाः पुनः पश्चिमाह्णे ।)

तीर्थङ्करों के प्रव्रजित होने का समय—

तीर्थंकर मल्लिनाथ, पार्श्वनाथ, श्रेयांसनाथ और वासुपूज्य--- ये चार तीर्थङ्कर पूर्वाह्ण में तथा शेष बीस तीर्थंकर मध्याह्नोत्तर काल में प्रव्रजित हुए ।३९१।

[स्पष्टीकरण--आवश्यक मलय में निम्नलिखित गाथा द्वारा पार्श्वनाथ, अरिष्टनेमि, श्रेयांसनाथ, सुमतिनाथ और मल्लिनाथ इन पांच तीर्थंकरों के पूर्वाह्ण में दीक्षित होने का उल्लेख किया गया है :---]

पासी अरिट्ठनेमो, सेज्जंसो सुमति मल्लिनाथो य ।
पुव्वण्हे निक्खंता, सेसा पुण पच्छिमण्हम्मि ।२१०।]

एगो भगवं वीरो, पासी मल्ली य तिहिं तिहिं सएहिं ।
भगवं पि वासुपुज्जो, छहिं पुरुस सएहिं निक्खन्तो ।३९२।
(एकः भगवान् वीरः, पार्श्वः मल्ली च त्रिभिस्त्रिभिश्शतैः ।
भगवानपि वासुपूज्यः, षड्भिर्पुरुषशतैः निष्क्रान्तः ।)

तीर्थंकरों के दीक्षा साथी :—

भगवान् महावीर एकाकी ही, भगवान् पार्श्वनाथ और मल्लिनाथ दोनों तीन तीन सौ व्यक्तियों के साथ, भगवान् वासुपूज्य छः सौ पुरुषों के साथ महाभिनिष्क्रमण कर प्रव्रजित हुए ।३९२

उग्गाणं भोगाणं, राइण्णाणं च खत्तियाणं च ।
चउहिं सहस्सेहिं उसभो, सेसा उ सहस्स परिवारा ।३९३।

(उग्राणां भोगानां, राजन्यानाञ्च क्षत्रियाणाञ्च ।
चतुर्भिस्सहस्रैः ऋषभः, शेषास्तु सहस्र परिवाराः ।)

भगवान् ऋषभदेव उग्र (आरक्षक स्थानीय), भोग (गुरु प्राय अर्थात् संसार पक्ष में आयु आदि की दृष्टि से बड़े होने के कारण समादर के पात्र), राजन्य (वयस्य मित्रजन), और क्षत्रिय (सामन्त आदि) इन चार वर्गों के चार हजार पुरुषों के साथ और शेष तीर्थंकर एक एक सहस्र पुरुषों के साथ प्रव्रजित हुए ।३९३।

उदिय उदिय कुलवंसा, सव्वेवि य जिणवरा चउव्वीसं ।
धणकणगरयण निचए अवउज्जिय तेउ पव्वइया ।३९४।
(उदितोदित कुलवंशाः सर्वेऽपि च जिनवराश्चतुर्विंशतिः ।
धनकनकरत्ननिचयान् अपोह्य ते तु प्रव्रजिताः ।)

उत्कृष्ट कुल और उत्कृष्ट वंश में उत्पन्न हुए सभी चौबीसों तीर्थंकर धन-धान्य-स्वर्ण और रत्नों की अति विशाल राशियों का परित्याग कर प्रव्रजित हुए ।३९४।

समणगण पवर गुरुणो, भवियजण विबोहगा जिणवरिंदा ।
पंचमहव्वय जुत्ता, तवचरणुवएसगा धीरा ।३९५।
(श्रमणगणप्रवरगुरवः, भविकजन विबोधकाः जिनवरेन्द्राः ।
पंच महाव्रत युक्तास्तपचरणोपदेशकाः धीराः ।)

सभी तीर्थंकर श्रमणगणों के सर्वोत्कृष्ट महान अधिनायक, जगद्गुरु, भव्य जनों को प्रबुद्ध करने वाले, पांच महाव्रतों के धारक, तपश्चरण के उपदेशक और महाधीर थे ।३९५।

सीहत्ता निक्खंता, सीहत्ता चेव विहरिया धीरा ।
सीहेहिं सीहसरिसेहिं, सीह ललित विक्कमं पत्ता ।३९६।
(सिंहतया निष्क्रान्ता, सिंहतया चैव विचरिताधीराः ।
शिष्यैः सिंहसदृशैः, सिंहललितविक्रमं प्राप्ताः ।)

उन सब तीर्थङ्करों ने सिंह के समान अभिनिष्क्रमण किया उन धीर वीरों ने सिंह की भांति निर्भय हो विचरण किया और सिंहों के

समान शिष्यों के साथ पुरुषसिंहों के योग्य शोभास्पद अनन्त पराक्रम को प्राप्त किया ।३९६।

दंसणनाण चरित्तस्स, देसचरण निच्छयविहण्णू ।
नवसुवि वासेसेवं, निक्खंताक्खायकित्ति जिणा ।३९७।
(दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्य, देशचरण[1] - निश्चयविधिज्ञा ।
नवस्वपि वर्षेष्वेवं, निष्क्रान्ताऽऽख्यातकीर्त्तिजिनाः ।)

दर्शन, ज्ञान, चारित्र तथा व्यवहार और निश्चय की विधि के पूर्ण ज्ञाता विश्वविश्रुत कीर्तिशाली ९ क्षेत्रों के तीर्थंकर भी इसी प्रकार महाभिनिष्क्रमण कर प्रव्रजित हुए ।३९७।

सुमइत्थ बिच्चभत्तेण, निग्गओ वासुपुज्जो जिणो चउत्थेण ।
पासो मल्लिच्चिय, अट्ठमेण सेसाउ छट्ठेण ।३९८।
(सुमतित्थ नित्यभक्तेन. निर्गतः वासुपूज्य जिनश्चतुर्थेन ।
पार्श्वः मल्ली किल, अष्टमेन शेषास्तु षष्ठेन)

तीर्थंकर का अभिनिष्क्रमण तपः—

भगवान सुमतिनाथ नित्य भक्त अर्थात् अनवरत भक्त से, वासुपूज्य चतुर्थ भक्त (एक उपवास) से, पार्श्वनाथ तथा मल्लिनाथ अष्टम भक्त अर्थात् तेळे की तपस्या से और शेष बीस तीर्थङ्कर षष्ठ भक्त अर्थात् बोळे (दो उपवास) की तपस्या से अभिनिष्क्रमण कर दीक्षित हुए ।३९८।

नास्ति प्रतावपि ।३९९।

[३९९ संख्या की गाथा हमारे पास की हस्तलिखितप्रति में नहीं है । पूर्वापर सम्बन्ध को देखते हुए, ऐसा तो प्रतीत नहीं होता कि कोई गाथा लिपिक दोष के कारण छूट गई हो । संख्या लगाने में ही सम्भवतः कोई त्रुटि रह गई है ।]

संवच्छरेण भिक्खा, लद्धा उसभेण लोगनाहेण ।
सेसेहिं बीय दिवसे, लद्धाउ पढमभिक्खाउ ४००।

---

१ व्यवहार

(संवत्सरेण भिक्षा, लब्धा ऋषभेण लोकनाथेन ।
शेषैर्द्वितीय दिवसे, लब्धाः प्रथमभिक्षास्तु ।)

त्रैलोक्यनाथ भगवान् ऋषभदेव ने एक वर्ष पश्चात् प्रथम भिक्षा प्राप्त की। शेष सब तीर्थंकरों ने दीक्षा ग्रहण करने के दूसरे दिन ही प्रथम भिक्षा प्राप्त की ।४००।

उसभस्स पढम भिक्खेक्खोयरसो असि लोगनाहस्स ।
सेसाणं परमण्णं, अमियरस रसोवमं आसि ।४०१।
(ऋषभस्य प्रथमभिक्षायामिक्षुरसमासील्लोकनाथस्य ।
शेषानां परमान्नं, अमृतरस-रसोपममासीत् ।)

लोकनाथ ऋषभदेव की प्रथम भिक्षा में इक्षुरस और शेष तेबीस तीर्थंकरों की प्रथम भिक्षा में अमृतरस के समान स्वादिष्ट श्रेष्ठ पकवान्न था ।४०१।

मल्लीपासुसभस्स, णाणं सेज्जंसवासुपुज्जस्स ।
पुव्वण्हे उप्पण्णं, सेसाणं पच्छिमण्हम्मि ।४०२।
(मल्लीपार्श्वर्षभस्य, ज्ञानं श्रेयांस वासुपूज्यस्य ।
पूर्वाह्णे उत्पन्नं, शेषानां पश्चिमाह्णे ।)

मल्लिनाथ, पार्श्वनाथ, ऋषभदेव, श्रेयांसनाथ और वासुपूज्य इन पांच तीर्थंकरों को पूर्वाह्ण में तथा शेष १९ तीर्थंकरों को पश्चिमाह्ण में केवलज्ञान की उपलब्धि हुई ।४०२।

[स्पष्टीकरण—सत्तरियस ठाणा में निम्नलिखित गाथार्द्ध द्वारा केवल भगवान महावीर का पश्चिमाह्ण में और शेष २३ तीर्थंकरों को पूर्वाह्ण में केवलज्ञान की उपलब्धि का उल्लेख किया गया है—

णाणं उसहाईणं, पुव्वण्हे पच्छिमण्हि वीरस्स ।१९०

ऐसी स्थिति में यह गाथा सं० ४०२ विद्वानों के लिए विचारणीय है।]

चंदाणणे मरुदेवे य, अग्गिदत्ते य जुत्तिसेणजिणे ।
सेज्जंसे पुव्वण्हे, सेसाणं पच्छिमण्हम्मि ।४०३।१
(चन्द्राननमरुदेवौ च अग्निदत्तश्च युक्तिसेन् जिनस्य ।
श्रेयांसस्य पूर्वान्हे, शेषानां पश्चिमाह्नि ।)

चन्द्रानन, मरुदेव, अग्निदत्त, युक्तिसेन और श्रेयांस (नामक पांचों ऐरवत क्षेत्रों के तीर्थंकरों) को पूर्वाह्न में और ऐरवत क्षेत्रों के शेष (९५) तीर्थंकरों को पश्चिमाह्न (अपराह्न) में केवलज्ञान की उपलब्धि हुई ।४०३।

स्पष्टीकरण—तित्थोगाळो पइन्नयकार ने कहीं स्पष्ट शब्दों में धातकी खण्ड एवं पुष्करार्द्धद्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्रों की चौबीसियों के तीर्थंकरों के नामों का उल्लेख नहीं किया है, किन्तु इस गाथा में पांचों तीर्थंकरों के नामों में प्रयुक्त बहुवचन को देखकर अनुमान किया जाता है कि यदि इसमें लिपिकारों की ओर से कहीं त्रुटि नहीं की गई है तो तित्थोगाळी पइन्नयकार की मान्यतानुसार जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र को चौवीसी के तीर्थंकरों के समान शेष चार भरतक्षेत्रों की चार चौवीसियों के तीर्थङ्करों के नाम भी ऋषभ आदि तथा ऐरवत क्षेत्रों की पांचों चौवीसियों के तीर्थंकरों के नाम भी समान रूप से चन्द्रानन आदि थे ।]

दससुवि वासेसेवं, दस समेगं[२] तु केवली होंति ।
दस चेव धम्म तित्था, निद्दिट्ठा वीयरागेहिं ।४०४।
(दशष्वपि वर्षेष्वेवं, दश समेकं तु केवलिनः भवन्ति ।
दश चैव धर्मतीर्थाः, निर्दिष्टाः वीतरागैः ।)

दशों क्षेत्रों में इस प्रकार के एक साथ-एक समय में दश तीर्थंकर और दश ही धर्मतीर्थ होते हैं, यह वीतरागों ने बताया है ।४०४।

---

१ ऐरवत क्षेत्रेषूत्पन्नान् जिनानुद्दिश्यैषा गाथा प्रोक्ता ।

२ समेगं—समेकं, सार्द्धम् वा एकसमये—इत्यर्थः ।

उसभस्स पुरिमताले, बारवतीये अरिट्ठनेमिस्स ।
आसमपय उज्जाणे, मल्लिस्स मणोरमे चेव ।४०५।
(ऋषभस्य पुरिमताले, द्वारावत्यामरिष्टनेमिनः ।
आश्रमपदोद्याने, मल्ल्याः मनोरमे चैव ।)

तीर्थंकरों के कैवल्योपलब्धि के स्थल :—

भगवान् ऋषभदेव को पुरिमताल उद्यान में, अरिष्टनेमि को द्वारिका के आश्रमपद उद्यान में, मल्लिनाथ को मनोरम उद्यान में ।४०५।

नाणं च वद्धमाणस्स, उज्जुवाली नदीए तीरंमि ।
सेसाणं सव्वेसिं, जमुज्जाणेसुं निक्खंता ।४०६।
(ज्ञानं च वर्द्धमानस्य, ऋजुपालीनद्यास्तीरे ।
शेषानां सर्वेषां, येषु उद्यानेषु निष्क्रान्ताः ।)

भगवान् वर्द्धमान को ऋजुपाली नदी के तट पर और शेष तीर्थंकरों उन्हीं उद्यानों में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ जिनमें कि वे दीक्षित हुए थे ।४०६।

बत्तीसइ धणुउई, चेइयरुक्खो उ वद्धमाणस्स ।
सेसाणं पुण रुक्खा, सरीरओ बारस गुणाउ ।४०७।
(द्वात्रिंशत् धनूंषि चैत्य वृक्षस्तु वर्द्धमानस्य ।
शेषानां पुनर्वृक्षाः शरीरतः द्वादशगुणास्तु ।)

चैत्य वृक्षों की ऊचाई :—

भगवान् महावीर के चैत्य वृक्ष की ऊंचाई ३२ धनुष और शेष तीर्थंकरों के चैत्य वृक्षों की ऊंचाई उनके शरीर की ऊंचाई से बारह गुणित थी ।४०७।

नग्गोह सत्तवने साली पियए पियंगु रुक्खे य ।
छत्ताहे य सिरीसे, नागे मालू पिलक्खू य ।४०८।
(न्यग्रोधः सप्तपर्णः शालः प्रियकः प्रियंगुवृक्षश्च ।
छत्राभश्च शिरीषः नागः मालू पिलक्खुश्च ।)

तीर्थंकरों के कैवल्यवृक्ष :—

ऋषभादि महावीरान्त चौवीस तीर्थंकरो को क्रमशः निम्नलिखित वृक्षों के नीचे केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ ;—

न्यग्रोध (१), सप्तपर्ण (२), शाल (३), प्रियक अथवा प्रियाल (४), प्रियंगु (जामुन) (५), छत्राभवृक्ष (६), शिरीष (७), नाग (८), मालू (मल्लीवृक्ष) (९), पिलङ्खु (१०)---।४०८।

तिंदू य पाडलि जंबू य, आसत्थे तहय होइ दहिवण्णे ।
तत्तो नंदी रुक्खे, तिल पव्वए असोगे य ।४०९।
(तिन्दुकः पाटलः जंबुश्च, अश्वत्थस्तथा च भवति दधिपर्णः ।
ततः नान्दिवृक्षः, तिल (पिलङ्खु) पर्वतकोऽशोकश्च ।)

तिन्दुक (११), पाटली (१२), जम्बू (१३), अश्वत्थ (१४), दधिपर्ण (१५), नन्दी (१६), तिल---(पिलङ्खु) (१७), आम्र (१८), अशोक (१९)---।४०९।

चम्पग बउले वेडस, धावोडग सालतेयए चेव ।
नाणुप्पया य रुक्खे, जिणेहिं एते अणुग्गहिया ।४१०।
(चम्पकबकुले बेतस,-धावोडक[1] सालतेजकश्चैव ।
ज्ञानोत्पादाच्च वृक्षाः, जिनै एते अनुगृहीताः[2] ।)

चम्पक (२०), बकुल (बकुश) (२१), वेतस (२२), धावडक (धातकी) (२३) और शाल तेजक (२४)। इन वृक्षों के नीचे केवल ज्ञान प्राप्त कर तीर्थंकरों ने इन्हें (विश्वविख्यात बना) अनुगृहीत किया ।४१०।

नाणुप्पयाय मासा, फग्गुण पोसे य कत्तिये पोसे ।
चेत्ते२ चेत्ते२ फग्गुण२, चेत्रे य वइसाहे य ।४११।

---

१ धातकी ।

२ एतेषां वृक्षाणामधस्तात् ऋषभादिमहावीरान्तैश्चतुर्भिस्तीर्थङ्करैः केवलज्ञानमुत्पादितमत एवैतेऽनुगृहीता इत्यर्थः ।

(नाणोत्पादाश्च मासाः, फाल्गुनः पौषश्च कार्तिकः पौषः ।
चैत्रौ (२) चेत्रौ (२) फाल्गुनौ, चैत्रश्च वैशाखश्च ।)

केवलज्ञान की उत्पत्ति के मास :---

तीर्थंकरों के केवलज्ञान की उत्पत्ति के मास क्रमशः इस प्रकार हैं :---

फाल्गुन (१), पौष (२), कार्तिक (३), पौष (४), चैत्र (५), चैत्र (६), चैत्र (७), [चैत्र (८) तीसरे चैत्र के सम्मुख लिपिक द्वारा प्रमाद वश २ की संख्या लगा दी प्रतीत होती है], फाल्गुन (८), फाल्गुन (९), चैत्र (१०), वैशाख (११)---।४११।

वइसाह चैत्त वइमाह, साढ फग्गू य भद्दवये ।
चेत्ते कत्तिय मग्गसिरे य वइसाहे मग्गसिरस्सो ४१२।
(वैशाखचेत्रवैशाखाषाढाः, फाल्गुनश्च भाद्रपदः ।
चैत्रः कार्तिकः मार्गशीर्षः यो वैशाखः मार्गशीर्षः)

वैशाख (१२), चैत्र (१३), वैशाख (१४), आषाढ (१५), फाल्गुन (१६) भाद्रपद (१७), चैत्र (१८), कार्तिक (१९) मार्गशीर्ष (२०) वैशाख (२१), मार्गशीर्ष (२२)---।४१२।

चेत्ते वइसाहे य मासे, एए अधुणा पक्खे वोच्छामि ।
बहुलो जोण्हा पंचय, बहुले अट्ठेव य कमेणं ।४१३।
(चैत्रः वैशाखश्च मासा एतेऽधुना पक्षान् वक्ष्यामि ।
बहुलाः ज्योत्स्ना पंच च बहुलाअष्टावेव क्रमेण)

चैत्र (२३) और वैशाख (२४)---ये तीर्थंकरों के कैवल्योपलब्धि के मास हैं। अब इनके केवलज्ञान प्राप्ति के पक्षों का कथन करूँगा :---

केवल ज्ञानोत्पत्ति के पक्ष :—

कृष्ण (१), शुक्ल (२), शुक्ल (३), शुक्ल (४), शुक्ल (५), शुक्ल (६), कृष्ण (७), कृष्ण (८), कृष्ण (९), कृष्ण (१०), कृष्ण (११), कृष्ण (१२), कृष्ण (१३), कृष्ण (१४)—४१३।

सुद्धो बहुलो सुद्धो य, तिन्नि बहुले य सुद्ध बहुलदुगं ।
सुद्धो य पक्खा एते, एत्तो दिवसा पवक्खामि ।४१४।
(शुद्धः बहुलः शुद्धश्च, त्रयो बहुलाश्च शुद्धः बहुलद्विकम् ।
शुद्धश्च पक्षा एते, इतः दिवसान् प्रवक्ष्यामि ।)

शुक्ल (१५), कृष्ण (१६), शुक्ल (१७), कृष्ण (१८), कृष्ण (१९), कृष्ण (२०), शुक्ल (२१), कृष्ण (२२), कृष्ण (२३), और शुक्ल (२४) - ये पक्ष हैं । अब तीर्थङ्करों के केवलज्ञान लाभ की तिथियों का कथन करूंगा ।४१४।

एक्कारसि एक्कारसि, पंचमी चाउद्दसी य एक्कारसी ।
पूनिम छट्ठी पंचमि, तह सत्तमि नवमी ।४१५।
(एकादशी एकादशी, पंचमी चतुर्दशी च एकादशी ।
पूर्णिमा षष्ठी पंचमी, तथा सप्तमी नवमी ।)

एकादशी (१), एकादशी (२), पंचमी (३), चतुर्दशी (४), एकादशी (५), पूर्णिमा (६), छठ (७), पंचमी (८), सप्तमी (९), नवमी (१०)--।४१५।

बारसि सत्तमि अट्ठमी, एक्कारसी सत्तमी त (च) तियवारा ।
एक्कारसि य अट्ठमि, एक्कारसी तह य वामासा ।४१६।
(द्वादशी सप्तमी अष्टमी, एकादशी सप्तमी त्रि (चतुः) वारान् ।
एकादशी च अष्टमी, एकादशी तथा चामावस्या ।)

द्वादशी (११), सप्तमी (१२), अष्टमी (१३), एकादशी (१४), सप्तमी (१५), सप्तमी (१६), सप्तमी (१७), [इस गाथा के द्वितीय चरण के अंतिम शब्द 'तियवारा' को यदि पूरी २४ तिथियों की पूर्ति हेतु 'चतियवारा' पढा जाय तो--सप्तमी (१८),] एकादशी (१९), अष्टमी (२०), एकादशी (२१), अमावस्या (२२)---४१६।

तत्तो चउत्थि दसमी, कमेण नाणुप्पया एते ।
वेलाए काए नाणं, कस्सुपन्नं इमं सुणसु ।४१७।

(ततश्चतुर्थी दशमीः, क्रमेण ज्ञानोत्पादा एते ।
वेलायां कस्यां ज्ञानं, कस्योत्पन्नमिदं शृणुस्व ।)

चतुर्थी (२३) और दशमी (२४)---ये तीर्थङ्करों के ज्ञानोत्पत्ति की क्रमबद्ध तिथियां हैं। अब यह सुनिये किस किस वेला (समय) में किन किन तीर्थङ्करों के केवलज्ञान की उत्पत्ति हुई ।४१७।

[स्पष्टीकरण---चैत्य वृक्षों के जो नाम उपरिलिखित गाथा संख्या ४०८ से ४१० में दिये गये हैं, वे समवायांग, सूत्रकृतांग सटीक एवं सत्तरिसयठाणा के एतद्विषयक उल्लेखों से पर्याप्तरूपेण साम्य रखते हैं। किन्तु गाथा संख्या २११ से गाथा संख्या ४१७ के पूर्वार्द्ध तक जो तीर्थङ्करों की कैवल्योपलब्धि के मास, पक्ष और दिन (तिथियाँ) उल्लिखित हैं वे श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों ही परम्पराओं की एतत्सम्बन्धी प्रचलित मान्यताओं से अधिकांशतः भिन्न हैं। इसमें उल्लिखित तीर्थंकरों की कैवल्योपलब्धि के आदि के ८ एवं अंत के दो मास, आदि के २ पक्ष तथा अन्त के ५ पक्ष और आदि की ७ तिथियां एवं अंत की ४ तिथियां प्रचलित मान्यता तथा 'सत्तरिसयठाणा' से मेल खाती हैं। हस्तलिखित पुस्तकों के विशेषज्ञ विद्वानों से यह तथ्य तो छुपा नहीं कि लिपिकों के प्रमाद से अनेक प्राचीन ग्रन्थों में अशुद्धियां उपलब्ध होती हैं पर उपरिलिखित ६-७ गाथाओं में आबद्ध तथ्यों की प्रचलित मान्यता के साथ इतनी अधिक भिन्नता प्राचीन काल में रहे किसी मान्यताभेद की ओर तो संकेत नहीं करती हैं, इस प्रश्न पर शोधार्थी एवं विद्वान् विचार कर प्रकाश डालेंगे तो अत्युत्तम रहेगा ।]

उसभ जिणस्स य सेज्जस, वासुपुज्जस्स मल्लिपासाणं ।
पुव्वण्हे नाणुप्पाओ, सेसाणं पच्छिम दिणं त्ति ।४१८।
(ऋषभजिनस्य च श्रेयांस, वासुपूज्यस्य मल्लिपार्श्वयोः ।
पूर्वाह्णे ज्ञानोत्पादाः शेषाणां पश्चिम दिने - इति ।)

कैवल्योपलब्धि की वेला :---

तीर्थंकर ऋषभदेव, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, मल्लिनाथ और

पार्श्वनाथ को पूर्वाह्न में तथा शेष तीर्थंकरों को अपराह्न में केवल-ज्ञान प्रकट हुआ।४१८।

[स्पष्टीकरण---यह गाथा परिवर्तित स्वरूप में पुनः दे दी गई है। देखिये गाथा संख्या ४०२ और उसका स्पष्टीकरण]

जे चेव जम्मरिक्खा, नाणुपत्तीए होंति ते चेव ।
भणिया रिक्खा एत्तो, वोच्छामि तवं समासेण ।४१९।
(ये चैव जन्मऋक्षाः ज्ञानोत्पत्तेः भवन्ति ते चेव ।
भणिताः ऋक्षा इतः वक्ष्यामि तपो समासेन)

तीर्थंकरों के जन्मनक्षत्रों और ज्ञानोत्पत्ति के नक्षत्रों का कथन कर दिया गया अब उनके केवलज्ञानोत्पत्ति के तप का संक्षेपतः कथन करूंगा।४१९।

उसभस्स अट्ठमेणं, चउभत्तेण वासुपूज्जस्य ।
केवलनाणुप्पत्तीः, सेसाणं छट्ठभत्तेण ।४२०।
(ऋषभस्याष्टमेन, चतुर्भक्तेन वासुपूज्यस्य ।
केवलज्ञानोत्पत्तीः, शेषानां षष्ठभक्तेन ।)

तीर्थंकरों के केवलज्ञान की उत्पत्ति के समय के तप :---

भगवान् ऋषभदेव को अष्टमभक्त (तेळं) के तप में, भगवान् वासुपूज्य को चतुर्थभक्त (१ उपवास) के तप में और शेष इकवीस तीर्थंकरों को षष्ठभक्त अर्थात् वेळे के तप में केवलज्ञान की उपलब्धि हुई ।४२०।

[स्पष्टीकरण :---आवश्यक मलय और सत्तारिसय गण की एतद्विषयक यह गाथा द्रष्टव्य है :---

"अट्ठमभत्तंमि कए, नाणमुसहमल्लि नेमि पासाणं ।
वसुपुज्जस्स चउत्थे, सेसाणं छट्ठभत्ततवे ।।"

श्वेताम्बर परम्परा में तीर्थंकरों के केवलज्ञानतप के सम्बन्ध में यही मान्यता आज प्रचलित है। पूर्व में रहे यत्किंचित् मान्यताभेद

की जो आशंका हमने गाथा संख्या ४१७ के स्पष्टीकरण में व्यक्त की है, उस आशंका की इस गाथा से पुष्टि होती है।]

उप्पण्णंमि अणंते, नट्ठंमिय छउमत्थिए नाणे ।
तो देव दाणविंदा, करेंति पूयं जिणिंदाणं ।४२१।
(उत्पन्नेऽनन्ते, नष्टे च छाद्मस्थिके ज्ञाने ।
ततः देवदानवेन्द्राः, कुर्वन्ति पूजां जिनेन्द्राणाम् ।)

अनन्तज्ञान (केवलज्ञान) के उत्पन्न होने और छाद्मस्थिक ज्ञान के नष्ट हो जाने पर तीर्थंकरों की देवेन्द्र तथा दानवेन्द्र पूजा करते हैं।४२१।

भवणवई वाणवन्तर, जोइसवासी विमाणवासी य ।
सव्विड्ढीए सपरिसा, कासी नाणुप्पायमहिमं ।४२२।
(भवनपतिः वानमन्तर, ज्योतिषवासी विमानवासी च ।
सर्वर्द्ध्या सपरिषदा, अकार्षन् ज्ञानोत्पादे महिमाम् ।)

भवनपति, वानमन्तर और ज्योतिष-मण्डल एवं विमानों में निवास करने वाले देव-देवेन्द्र ने अपनी समग्र ऋद्धि और परिषदों सहित केवलज्ञान की उत्पत्ति की महिमा की।४२२।

मणि कणग-रयण चित्तं, भूमिभाग समंतओ सुरभि ।
आजोयणंतरेणं, करेंति देवा विचित्तं तु ।४२३।
(मणि-कनक-रत्नचित्रं, भूमिभागं समन्ततः सुरभिः ।
आयोजनान्तरेण, कुर्वन्ति देवाः विचित्रं तु ।)

कैवल्योपलब्धि के स्थल के चारों ओर एक योजन भूमि को देवों ने स्वर्ण, मणियों तथा रत्नों से चित्रित, सुगन्धियों से सुगन्धित और अद्भुत बना दिया।४२३।

मणिकणगरयण चित्ते, समंतओ तोरणा वि उव्विंति ।
सछत्त सालिभंजिय, मयरद्धयचिंध संठाणे ।४२४।

(मणि-कनक-रत्न चित्राणि, समन्ततः तोरणानि विकुर्वन्ति ।
सछत्र-शालिभंजिक, मकरध्वजचिह्नसंस्थानानि ।)

वे देवगण उस भूमि के चारों ओर स्थान स्थान पर छत्रों पुत्तलिकाओं तथा कामदेव की आकृतियों से युक्त, तथा स्वर्ण-मणि-रत्नों से निर्मित एवं चित्रित तोरणद्वारों की रचना करते हैं ।४२४।

विंट ठाइं सुरभिं, जलथलयं दिव्व कुसुममनीहारिं ।
पयरेंति समंतेणं, दसद्धवन्नं कुसुमवासं ।४२५।
(वृन्तस्थां सुरभिं, जलस्थलजं दिव्यकुसुमनिर्हारिम् ।
प्रकुर्वन्ति समन्ततः, दशार्द्धवर्णां कुसुमवर्षाम् ।)

वे आभियोगिक देव पाँच वर्णों के पुष्पों की वर्षा करते हुए एक योजन पर्यन्त उस समवसरण-भूमि को, जल और स्थल दोनों ही प्रकार के प्रदेशों में उत्पन्न हुए वृन्तों (डंठलों)पर पत्तों के ऊपरी भाग में स्थित (तरोताजा) परम सुगन्धित दिव्य कुसुमों की निर्हारी बना देते हैं अर्थात् दिव्य कुसुमों की अनुपम सुगन्ध से समस्त वायु-मण्डल सम्पूर्ण वातावरण को गमका (महका) देते हैं ।४२५।

तत्तोय समंतेणं, कालागुरुकुंदुरुक्कमीसेणं ।
गंधेण मणहरेणं, धूवघडीओ विउव्वंति ।४२६।
(ततश्च समन्ततः, कालागुरु-कुंदुरुकमिश्रेण ।
गन्धेन मनोहरेण, धूपघटिकाः विकुर्वन्ति ।)

तदनन्तर आभियोगिक देवगण चारों ओर कृष्णागरु एवं कुन्दुरुक्क मिश्रित मनोहर सुगन्धित गन्धचूर्णों की (प्रत्येक द्वार पर तीन तीन) धूप घटिकाओं (धूपपात्रों) को सजा उन्हें प्रदीप्त करते हैं ।४२६।

उक्किट्ठ सीहनाए, कलयलसद्दय सव्वओ सव्वं ।
तित्थगर-पायमूले, करेंति देवा निवयमाणा ।४२७।
(उत्कृष्ट सिंहनादान्, कलकल शब्दं च सर्वतः सर्वे ।
तीर्थंकर-पादमूले, कुर्वन्ति देवाः निपतमानाः ।)

तीर्थंकर भगवान् के चरण कमलों में साष्टांग प्रणाम करते हुए सभी देवसमूह हर्षविह्वल हो उत्कृष्ट सिंहनाद करते हैं और देवों के कलकल निनाद से दशों दिशाएं गूंज उठती हैं।४२७।

अब्भंतर-मज्झ-बहिं, विमाण-जोइसिय-भवणवासिकया ।
पागारा तिण्णि भवे, रयणे कणगे य रयए य ।४२८।
(आभ्यन्तर-मध्य-बहिः, विमान-ज्योतिष्क-भवनवासिकृताः ।
प्राकाराः त्रयो भवेयुः, रात्नः कानकश्च राजतश्च ।)

क्रमशः वैमानिक, ज्योतिष्क और भवनवासी देवों द्वारा निर्मित आभ्यंतर मध्यस्थित तथा बाह्य ये तीनों प्राकार (क्रमशः) रत्नमय, स्वर्णमय और रजतमय होते हैं।४२८।

मणिरयण हेमया वि य, कविसीसा सव्व रयणिया दारा ।
सव्व रयणमयाव्विय, पडागधय तोरणा विचित्ता ।४२९।
(मणि-रत्न-हैमकापि च, कपिशीर्षाः सर्वरत्निकाः द्वाराः ।
सर्वरत्नमयापि च, पताक-ध्वजतोरणाः विचित्राः ।)

उन तीनों प्राकारों के कपिशीस (बन्दरों के प्रिय प्राकाराग्र—वर्तुलाकारवृत्त प्राकार शिखर) भी मणि-रत्न-स्वर्णनिर्मित, सभी द्वार सर्वरत्नमय और स्वस्तिकादि विविध चिह्नों से शोभायमान पताकाएं, ध्वजाएं तथा तोरण—ये सभी सर्वरत्नमय होते हैं।४२९।

प्रतावेव नास्ति ४३०

[गाथा संख्या ४३० प्राप्त प्रति में नहीं है। संभव है लिपिक ने संख्या लिखने में कहीं त्रुटि की हो।]

चेइदुमपीढ छंदग, आसणछत्तं च चामराओ य ।
जं चऽण्णं करणिज्जं, करेंति तं वाणम [विं] तरिया ।४३१।
(चैत्यद्रु म-पीठ-छंदकासनछत्रं च चामराणि च ।
यच्चान्यत् करणीयं, कुर्वन्ति तत् वानमन्तरिकाः ।)

रत्नमय आभ्यन्तर प्राकार के मध्य भाग में (बीचों-बीच) चैत्यवृक्ष अर्थात् अशोकवृक्ष, उसके नीचे सर्वरत्नमय पीठ अर्थात् विशाल मंच, पीठ के ऊपर और अशोकवृक्ष के नीचे देवच्छंदक, देवच्छंदक में स्फटिक पादपीठ सहित सिंहासन, सिंहासन के ठीक ऊपर छत्रत्रयी, उसके दोनों पार्श्व में दो यक्षों के हाथों में दो चामर और धर्मचक्र आदि के अन्य जो जो करणीय कार्य हैं, उन्हें वानमन्तर (व्यन्तर) सम्पन्न करते हैं।४३१।

सूरुदय पच्छिमाए, ओगाहंतीए पुव्वओ एइ।
दोहि पउमेहिं पाया, मग्गेण य होंति सत्तन्ने।४३२।
(सूर्योदये [प्रथमायां या] पश्चिमायां [पौरुष्यां] अवगाहमानायां पूर्वत एति।
द्वयोः पद्मयोः पादौ, मार्गतश्च भवन्ति सप्तान्ये।)

देवों द्वारा समवसरण की रचना सम्पन्न होने पर सूर्योदय के पश्चात् सामान्यतः प्रथम पौरुषी और कभी विशेष स्थिति में पश्चिम पौरुषी की वेला में तीर्थंकर भगवान् देवताओं द्वारा निर्मित दो पद्मों पर अपने चरण कमल रखते हुए पूर्व द्वार से प्रवेश करते हैं। उनके पीछे सात अन्य पद्म और रहते है। भगवान् के पदन्यास क पूर्व ही अन्तिम दो पद्म देवताओं द्वारा भगवान् के चरणों के नीचे रख दिये जाते हैं।४३२।

आयाहिणपुव्वमुहो, तिदिसिं पडिरूवगाउ देवकया।
जिट्ठ गणीअण्णो वा, दाहिण पासे अदूरम्मि।४३३।
(आदक्षिणं पूर्वमुखः त्रिदिशं प्रतिरूपकास्तु देवकृताः।
ज्येष्ठगणी अन्यो वा, दक्षिण पार्श्वे अदूरे।)

तदनन्तर प्रभु अशोकवृक्ष की प्रदक्षिणा कर पूर्व की ओर मुख किये सिंहासन पर विराजमान होते हैं। शेष तीनों दिशाओं में देवों द्वारा निर्मित सिंहासनादि सहित प्रभु के प्रतिरूप प्रादुर्भूत होते हैं। भगवान् के पादपीठ के पास ही उनके ज्येष्ठ अथवा अन्य गणधर प्रभु को प्रणाम कर दक्षिण पूर्व दिग्भाग में बैठते हैं।४३३।

जे ते देवेहिं कया, तिदिसिं पडिरूवगा जिणिंदाणं ।
तेसिं पि तप्पभावा, तयाणुरूवं हवइ रूवं ।४३४।
(यानि तानि देवैः कृतानि, त्रिदिशं प्रतिरूपकाणि जिनेन्द्राणाम् ।
तेषामपि तत् प्रभावात् तदनुरूपं च भवति रूपम् ।)

तीर्थंकरों के अलौकिक प्रभाव के कारण देवों द्वारा निर्मित तीर्थंकरों के उन त्रिदिशावर्ती तीन प्रतिरूपों का भी पूर्णतः उनके अनुरूप ही रूप होता है ।४३४।

सीहासणे निसन्ना, रत्तासोगस्स हिट्ठि वीरा ।
सक्का सहेमजाले, गेण्हंति सयं तु छत्ताइं ।४३५।
[सिंहासने निषण्णाः रक्ताशोकस्याधस्ताद् वीराः ।
शक्राः सहेमजालानि, गृण्हन्ति स्वयं तु छत्राणि ।]

रक्ताशोक के नीचे सिंहासन पर धीर-वीर तीर्थंकर विराजमान होते हैं । स्वयं इन्द्र स्वर्णजाल युक्त चामर हाथों में ग्रहण करते हैं ।४३५।

दोलिंति चामराउ, सेयाउमणिमएहिं दंडेहिं।
ईसाणे चमर स'हि [ए] धरेंति ते जिणवरिंदाणं ।४३६।
(दोलयन्ति चामराणि, श्वेतानि मणिमयैर्दण्डैः ।
ईशानाश्चमर [रेन्द्र] सहिताः, धारयन्ति तानि जिनवरेन्द्राणाम् ।)

ईशानेन्द्र और चमरेन्द्र अपने हाथों में मणिमय दण्डों वाले श्वेत चँवर धारण कर उन्हें जिनेन्द्रों पर डुलाते हैं ।४३६।

तित्थाइसेयसंजय, देवी वे माणियाणउ सयणी ।
भवणवइ वाणमंतर, जोईसियाणं च देवीउ ।४३७।
(तीर्थातिशयसंजात देवी-वैमानिकानां श्रेष्ठ्यः ।
भवनपतिवाणव्यंतर-ज्योतिष्कानां च देव्यः ।)

तदनन्तर तीर्थ-अर्थात् प्रथम और शेष गणधर, अतिशेषसंयत-अर्थात् केवली, मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, चौदह पूर्वधर से ९ पूर्वधर तक, खेलौषधि आमर्षौषधि जल्लौषधि के धनी मुनी, वैमानिक देवों की देवियां, श्रमणियां, भवनपतियों व्यन्तों और ज्योतिषी देवों की देवियां--ये सब पूर्व द्वार से प्रवेश करते हैं। (ज्येष्ठ गणधर भगवान् को तीन बार प्रणाम कर उनके पास दक्षिण-पूर्वी दिशाभाग में बैठ जाते हैं। शेष गणधर भी इसी प्रकार प्रभु को वन्दन कर प्रथम गणधर के पार्श्व अथवा पीठ की ओर बैठ जाते हैं।४३७।

केवलिणो ति उण जिणे, तित्थ पणामं च मग्गओ तेसिं।
मणमाई विनमंता, वयंति सट्ठाण सट्ठाणं ।४३८।
(केवलिन इति पुनर्जिनाः, तीर्थं प्रणामं च मार्गितः तेभ्यः।
मनःपर्यवादि ज्ञानधरा अपि विनमन्तः, व्रजन्ति स्वस्थान-स्वस्थानम् ।)

केवली तीर्थंकरों की तीन बार प्रदक्षिणा और तीर्थ को प्रणाम कर गणधरों के पीछे की ओर बैठ जाते हैं। मनःपर्यवज्ञानी से लेकर साधारण संयत तक तीर्थंकरों, तीर्थ एवं अपने आगे बैठे हुए सभी विशिष्ट संयतों को क्रमशः नमस्कार कर अपने से बड़े वर्ग के पीछे अपने-अपने स्थान पर जाकर बैठ जाते हैं। वैमानिक देवों की देवियाँ तीर्थंकर से लेकर साधु तक को प्रणाम कर साधु वर्ग के पृष्ठ-भाग में खड़ी रहती हैं। श्रमणियां भी तीर्थंकर से लेकर साधुओं तक को त्रिधावन्दन कर वैमानिक देवियों के पीछे की ओर खडी रहती हैं। इसी प्रकार भवन वासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवों की देवियाँ दक्षिण द्वार से प्रवेश कर तीर्थंकर को तीन बार प्रदक्षिणा और तीन बार वन्दन कर दक्षिण और पश्चिम दिशा के बीच के नैऋत्य कोण में अनु क्रमशः भवनवासी देवियों के पीछे व्यन्तर देव जाति की तथा उनके पीछे ज्योतिष्क देवों की देवियाँ खड़ी रहती हैं।४३८।

भवणवति जोइसिया, बोधव्वा वाणमंतर सुरा यं।
वेमाणिए य मणुया, पयाहिणं जं च निस्साए ।४३९।
(भवनपति ज्योतिष्काः, बोधव्याः वानमन्तरं सुराश्च।
वैमानिकाश्च मनुजाः, प्रदक्षिणां (कृत्वा) यया निश्रया ।)

भवनपति, ज्योतिष्क और वानमन्तर (व्यन्तर) देव पश्चिमी द्वार से प्रवेश कर तीर्थंकर भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा और उन्हें तीन बार प्रणाम कर तीर्थ को नमस्कार हो, केवलियों को नमस्कार हो, अतिशयधर साधुओं को नमस्कार हो, और शेष सब साधुओं को नमस्कार हो—यह उच्चारण कर उत्तर-पश्चिम दिशा भाग में यथास्थान अर्थात आगे भवनपति, उनके पीछे ज्योतिष्क देव और उनके पीछे व्यन्तर बैठ जाते हैं। वैमानिक देव, पुरुष और महिलाएँ उत्तर द्वार से समवसरण में प्रवेश कर तीर्थंकर की तीन बार प्रदक्षिणा के पश्चात् उन्हें तीन बार नमस्कार कर नमः तीर्थाय, नमःकेवलिभ्यो, नमोऽतिशायिसंयतेभ्यः और नमः शेषसाधुभ्यः कह कर उत्तर पूर्व दिशा में बैठ जाते हैं। इनमें आगे की ओर वैमानिक देव, उनके पीछे पुरुष और पुरुषों के पीछे स्त्रियाँ बैठती हैं। इन देव-देवी-मनुष्यों के साथ उनकी निश्रा अर्थात् नेतृत्व में आये हुए शेष देव, देवी, मानव भी उनके पार्श्व अथवा पृष्ठ भाग में बैठते हैं।४३९।

पविसंति समहिंदा, उत्तरदारेण कप्पवासिसुरा ।
राया नर नारीगणा, जे वि देवा व णयराणं ।४४०।
(प्रविशन्ति समहेन्द्रा, उत्तरद्वारेण कल्पवासिसुराः ।
राजानः नरनारिगणाः, येऽपि देवा वा नगराणाम् ।)

उत्तरी द्वार से इन्द्रों सहित वैमानिक देव, नरेन्द्र और नर-नारी गण और नगरों के जो देव हैं, वे प्रवेश करते हैं।४४०।

एगयमुत्तरदारं, कप्पवइ अंगणाउ अणगारा ।
बीय पुरच्छिमिल्लेणं, पविसन्ति नाणामणिकिरणोदारेणं ।४४१ ।
(एककमुत्तरद्वारं, कल्पपत्यंगनाः अनगाराः ।
द्वितीय पुरश्चिमिल्लेन, प्रविशन्ति नानामणिकिरणो द्वारेण ।)

कल्पवासी देवों की देवियाँ भी उत्तरी द्वार से प्रवेश करती हैं। अनेक मणियों की किरणों से शोभायमान दूसरे पूर्वीय द्वार से मुनि-गण प्रवेश करते हैं।४४१।

पुव्वदारं आगच्छंति अइ सुन्दरेण दारेण दक्खिणिल्लेणं ।
भवणवइ वाणमंतर, जोइसियाणं च देवीओ ।४४२।

(पूर्वद्वारमागच्छन्ति, अतिसुन्दरेण द्वारेण दक्षिणिल्लेन।
भवनपतिवानमन्तर, ज्योतिष्कानां च देव्यः।)

भवन पति, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवों की देवियां अति-सुन्दर दक्षिणी द्वार से पूर्व द्वार की ओर आती हैं।४४२।

जे भवणवई देवा, अवरद्दारेण तेउ पविसंती।
तेणं चिय जोइसिया, देवा दइया जणसमग्गा।४४३
(ये भवनपति-देवाः, अपरद्वारेण ते तु प्रविशन्ति।
तेनैव हि ज्योतिष्काः, देवाः दयिताः जनसमग्राः।)

जो भवनपति देव हैं, वे पश्चिमी द्वार से समवसरण में प्रवेश करते हैं। उसी पश्चिमी द्वार से ज्योतिष्क देव और सभी नर-नारी-गण प्रवेश करते हैं।४४३।

एक्केकिय दिसाए, तिगं तिगं होइ संनिविट्ठं तु।
आइचरिमे विमिस्सा, थी पुरिसासेसपत्तेयं।४४४।
(एकैकस्यां दिशायां, त्रिकं त्रिकं भवति सन्निविष्टं तु।
आद्ये चरमे विमिश्राः, स्त्री पुरुषा शेष प्रत्येकम्।)

उपर्युक्त पूर्व-दक्षिण आदि चारों दिशाओं में से प्रत्येक में तीन-तीन वर्ग एकत्र होते हैं। जिस प्रकार पूर्व-दक्षिण दिशा में (१) संयतों का वर्ग, (२) वैमानिक देवियों का वर्ग तथा (३) श्रमणी वर्ग। दक्षिण-पश्चिम दिशा में—(१) भवनवासी देवों की देवियों का वर्ग, (२) ज्योतिष्क देवों की देवियों का वर्ग एवं (३) व्यन्तर देवों की देवियों का वर्ग। पश्चिमोत्तर दिशा में (१) भवनपति, (२) ज्योतिष्क तथा (३) व्यन्तर--ये तीन देवो के वर्ग और उत्तर-पूर्व दिशा में (१) वैमानिक देवों का वर्ग, (२) मनुष्यों का वर्ग तथा मनुष्यों की स्त्रियों का वर्ग। इनमें से पहले और चौथे इन दो त्रिकों में स्त्री तथा पुरुष दोनों ही होते हैं। जब कि दूसरे त्रिक में केवल स्त्रियाँ और तीसरे वर्ग में केवल पुरुष ही होत हैं।४४४।

एंतं महिड्ढियं, पणिवयंति ठियमवि वयंति पणमंता।
ण वि जंतणा, न विकहा न परोप्पर मच्छरो न भयं।४४५।

(एन्तं महर्द्धिकं प्रणिपतन्ति, स्थितमपि व्रजन्ति प्रणमन्तः ।
नापि यंत्रणा, न विकथा न परस्पर मात्सर्यं न भयम् ।)

समवसरण में पहले आकर बैठे हुए अल्प ऋद्धि सम्पन्न देव मनुष्यादि अपने से अधिक ऋद्धि संपन्न को आते हुए देख कर नमस्कार करते और जो अल्पर्द्धिक बाद में आते हैं वे समवरण में पहले से बैठे हुए महद्धिकों को प्रणाम करते हुए अपने स्थान की ओर अग्रसर होते हैं। समवसरण में उपस्थित हुए प्राणियों को परस्पर न किसी से किसी प्रकार की यंत्रणा ही होती है न किसी प्रकार का मात्सर्य और भय ही। समवसरण एकत्रित हुए देव, देवी, मनुष्य एवं स्त्री वर्ग किसी प्रकार की विकथा नहीं करते ।४४५।

बीयंमि होंति तिरिया. तइए पागारमंतरेण जाणा ।
पागार जढे तिरिया वि. हुंति पत्तेय मिस्सा वा ।४४६।
(द्वितीये भवन्ति तिर्यञ्चा, तृतीये प्रकारान्तरेण यानाः ।
प्राकारजढे[1] तिर्यञ्चापि भवन्ति प्रत्येक मिश्रा वा ।)

दूसरे प्राकार में तिर्यञ्च-पशु-पक्षी होते हैं। तीसरे प्राकार में देवों तथा मानवों के यान और प्राकार रहित अर्थात् प्राकार के बहिर्भाग में तिर्यञ्च भी होते हैं। कभी देव, मनुष्य, तिर्यञ्च सभी मिश्र रूप से और कभी केवल तिर्यञ्च, कभी केवल मनुष्य तथा कभी केवल देव ही देव रहते हैं ।४४६।

तित्थ पणामं काउं, कहेइ साहारणेण सद्देणं ।
सव्वेसि सन्नीणं, जोयण नीहारिणा भगवं ।४४७।
(तीर्थं प्रमाणं कृत्वा, कथयति साधारणेन शब्देन ।
सर्वेभ्यः संज्ञीभ्यः योजन नीहारिणा भगवान् ।)

अष्ट महा प्रातिहार्यों से युक्त तीर्थंकर भगवान् सिंहासन पर आसीन होने के पश्चात् तीर्थ को प्रणाम कर एक योजन की परिधि में सभी संज्ञी प्राणियों को सुनाई देने योग्य सहज स्वर में प्राणिमात्र के कल्याण के लिये देशना देते हैं ।४४७।

---

१ प्राकारजढे–प्राकाररहिते ।

सप्पडिकमणो धम्मो, पुरिमस्स य पच्छिमस्स जिणस्स ।
मज्झिमयाण जिणाणं, कारण जाए पडिक्कमणं ।४४८।
(सप्रतिक्रमणो धर्मः, पुरिमस्य च पश्चिमस्य जिनस्य ।
मध्यमकानां जिनानां, कारणे जाते प्रतिक्रमणम् ।)

प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव और अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर के तीर्थ में सप्रतिक्रमण धर्म था अर्थात् उन साधुओं को प्रातः और सायं दोनों समय प्रतिक्रमण करना अनिवार्य था, पर मध्यवर्ती अजितादि पार्श्वान्त २२ तीर्थंकरों के तीर्थ में कारण उपस्थित होने पर ही प्रतिक्रमण का विधान था ।४४८।

जो जाहे आवज्जइ. साहू अण्णयरगंमि ठाणंमि ।
सो ताहे पडिक्कमई, मज्झिमयाणं जिणवराणं ।४४९।
(यः यदा आपद्यते, साधुः अन्यतरके स्थाने ।
स तदा प्रतिक्रमति, मध्यमकानां जिनवराणाम् ।)

प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के मध्यवर्ती काल में हुए बावीस तीर्थंकरों के तीर्थों में जब किसी साधु द्वारा कोई ऐसा कार्य हो जाता था, जो कि साधु के किये वर्ज्य हो, तभी वह साधु गुण से विपरीत अन्यतर गुणस्थान में जाने के अपने उस दोष की आलोचना-विशुद्धि के लिए प्रतिक्रमण करता था ।४४९।

बावीसं तित्थयरा, सामाइय संजमं उवदिसंति ।
छेओवट्ठावणं पुणवयं, उ ति उसभो य वीरो य ।४५०।
(द्वाविंशतिः तीर्थंकराः, सामायिक-संजममुपदिशन्ति ।
छेदोपस्थापनं पुनर्व्रतमिति ऋषभश्च वीरश्च ।)

अजितनाथ से पार्श्वनाथ पर्यन्त बावीस तीर्थंकर पूर्णरूपेण अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह इन चार महा यमों पर आधारित चातुर्याम सामायिक संयम का उपदेश करते हैं। पुरुष के लिए स्त्री और स्त्री के लिए पुरुष की परिग्रह में गणना कर चतुर्थ महाव्रत ब्रह्मचर्य को अपरिग्रह महा यम (महाव्रत) के ही अन्तर्गत मानते हुए ब्रह्मचर्य महाव्रत का एक पृथक् महाव्रत के रूप में उपदेश नहीं करते। पर प्रथम तीर्थंकर और चौवीसवें तीर्थंकर छेदोपस्थापन धर्म का उपदेश करते हैं ।४५०।

[स्पष्टीकरण :— निश्चय नय के अनुसार ज्ञान (मति, श्रुति, अवधि आदि), दर्शन (तत्त्वरुचि), चारित्र (पाप पूर्ण सभी क्रियाओं का परित्याग) ये ही मोक्ष प्राप्ति के शाश्वत सत्य साधन हैं। चौवीसों तीर्थंकरों ने समान रूप से इन तीनों को मोक्षप्राप्ति का सच्चा साधन बताया है। वस्तुतः वेष व्यवहार नय की अपेक्षा मोक्ष का साधन है, न कि निश्चय नय की अपेक्षा। प्रथम तीर्थंकर के शासनकाल के साधु शिक्षाग्रह करने में तत्पर सरल प्रकृति के किन्तु वास्तविकता को कठिनाई से समझने वाले, अन्तिम तीर्थंकर के शासन काल के साधु सामान्यतः शिक्षा को अवधारण करने में वक्र (टेढ़ी-कुटिल) प्रकृति वाले होने के कारण जड (कदाग्रही), और मध्यवर्ती बावीस तीर्थंकरों के शासनकाल के साधु ऋजुप्रज्ञ अर्थात् सरल प्रकृति के धनी होने के कारण शिक्षा ग्रहण करने में तत्पर एवं स्वल्प में ही सब कुछ समझ जाने वाले प्रकृष्ट बुद्धिशाली होते हैं। ऋजु किन्तु जड़ प्रकृति के कारण प्रथम तीर्थंकर के साधुओं के लिये कल्प अकल्प का स्पष्टतः पृथक्-पृथक् विशद विधान होने पर ही वे अपने श्रमणाचार को विमल-दोषरहित बनाये रख सकते हैं। अधिकांशतः कुटिल एवं कदाग्रही प्रकृति के कारण वस्तुतः अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं के श्रमणाचार को विशुद्ध बनाये रखने के लिये कल्पाकल्प के सम्बन्ध में इस प्रकार के स्पष्ट एवं विशद विधान की आवश्यकता रहती है, जिसमें कि शैथिल्य एवं कुतर्क के लिये कोई स्थान न हो क्योंकि वे वक्रजड़ साधु कठोर श्रमणाचार को समझते हुए भी पालन करने में अशक्त होने की दशा में उस कष्टसाध्य श्रमणाचार से बचने के लिये कोई न कोई शैथिल्य का मार्ग ढूँढ निकालने में तत्पर रहते हैं। किन्तु मध्यवर्ती बावीस तीर्थंकरों के ऋजु-प्राज्ञ साधुओं के लिये केवल इतना कह देना ही पर्याप्त है कि साधु के लिये स्त्री और साध्वी के लिये पुरुष भी परिग्रह ही है। अतः चतुर्थ महाव्रत ब्रह्मचर्य का पंचम महाव्रत अपरिग्रह में ही समावेश हो जाता है। वस्त्र के वर्ण, मूल्य एवं प्रमाण के निर्देश के अभाव में भी उन्होंने वस्त्र को केवल लज्जा ढंकने का साधन मात्र समझा। इस विधान के अनुसार अब्रह्म को भी परिग्रह मान कर बावीस तीर्थंकरों के ऋजुप्राज्ञ साधु ब्रह्मचर्य महाव्रत को अपरिग्रह में सम्मिलित समझ अहिंसा, सत्य, अस्तेय और

अपरिग्रह रूपी चातुर्याम धर्म में ही पांचों महाव्रतों का पूर्णतः पालन करते हैं। यही कारण है कि तीर्थंकरों ने अपने-अपने शासनकाल के साधुओं की प्रकृति एवं प्रज्ञा को ध्यान में रखते हुए पंचमहाव्रत और चातुर्याम धर्म की प्ररूपणा का। प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर ब्रह्मचर्य महाव्रत का पृथकतः उपदेश नहीं करते तो प्रथम तीर्थंकर के ऋजु-जड़ प्रकृति के साधु "प्रभु ने चार महाव्रतों के पालन का ही उपदेश दिया है"—यह कह कर ब्रह्मचर्य महाव्रत का पालन नहीं करते। अन्तिम तीर्थंकर के साधु भी अपनी अऋजु और कदाग्रही प्रकृति के कारण—"यदि प्रभु को पांचों महाव्रत अभिप्रेत होते तो स्पष्टतः पृथकतः उन पाँचों का उल्लेख करते"—इस प्रकार के अनेक तर्क प्रस्तुत कर ब्रह्मचर्य महाव्रत को छोड़ केवल शेष चार महाव्रतों का ही पालन करते।

इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर अपने साधुओं को छेदोपस्थापन (पूर्व-पर्याय को छेद कर अपनी आत्मा को पंचम महाव्रत रूपी चारित्र में उपस्थापन करने) का उपदेश करते हैं। छेदोपस्थापन का स्वरूप निम्नलिखित गाथा में नपे तुले शब्दों में स्पष्टतः बताया गया है—

छेत्तूण तु परियायं, पोराणं तो उवित्ति अप्पाणं।
धम्मम्मि पंच जामे, छेओवट्ठावणे स खलु॥]

एवं नवसुवि खेत्तेसु, पुरिमपच्छिममज्झिम जिणाणं।
वोच्छं गणहरसंखं, जिणाणं नामं च पढमस्स ।४५१।
(एवं नवष्वपि क्षेत्रेषु, पुरिम-पश्चिम-मध्यम जिनानाम्।
वक्ष्ये गणधर संख्यां, जिनानां नाम च प्रथमस्य[1] ।)

इस प्रकार शेष ९ क्षत्रों में भी प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों के शासनकाल में साधुओं का छेदोपस्थापन व्रत रूप धर्म अथवा कल्प और मध्यवर्ती बावीस तीर्थंकरों के साधुओं का चातुर्याम धर्म होता है। अब मैं तीर्थंकरों के नाम, उनके गणधरों की संख्या तथा उनके प्रथम गणधरों के नाम का कथन करूँगा ।४५१।

---

१ गणधर संख्यां जिनानां नामं, तेषां प्रथम गणधरस्य नाम च वक्ष्यामीत्यर्थः।

उसभजिणे चुलसीति, गणहरा उसभसेण आही-(इ)-या ।
अजिय जिणिंदे नउति, तु सीहसेणो[1] भवे आदी ।४५२।
(ऋषभजिनस्य चतुरशीतिः गणधरा ऋषभसेनाद्याः ।
अजितजिनेन्द्रस्य नवतिः तु सिंहसेनः भवेदादिः ।)

प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव के चौरासी गणधर थे, जिनमें ऋषभसेन प्रथम अथवा मुख्य गणधर थे। दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ के ९० गणधर थे। उनके प्रमुख प्रथम गणधर प्रमुख प्रथम गणधर का नाम था सिंहसेन ।४५२।

चारु य संभव जिणे, पंचाणंउ तीय[2] गणहरा तस्स ।
पढमो य वज्जनाभो, अभिनंदण तियधिक सयं[3] तु ।४५३।
(चारुश्च संभवजिनस्य, पंचनवतिश्च गजधराः तस्य ।
प्रथमश्च वज्रनाभोऽभिनन्दनस्य त्र्यधिकशतं तु ।)

तीसरे तीर्थंकर भगवान् संभवनाथ के २५ गणधर थे। उनमें प्रमुख गणधर का नाम था चारू। चौथे जिनेश्वर अभिनन्दन के १०३ गणधर थे। उनके प्रमुख गणधर का नाम वज्रनाभ था ।४५३।

सोलसयं[4] सुमइस्सउ, चमरो चिय पढम गणहरो तस्स ।
सुज्जो य सुप्पभजिणे सयमेक्काणं गणहराणं[5] ।४५४।

---

१ समवायांग, प्रवचनसारोद्धार, सत्तरिसयद्वार-हरिवंशपुराण, आद्या-गमागमेतरेषु ग्रन्थेषु सिंहसेनेति समुल्लिखितमस्ति, तिलोयपन्नत्तौ तु केसरीसेनेति ।

२ श्वेताम्बरपरम्परायाः ग्रन्थेषु द्वयधिकशत दिगम्बरपरम्परायाः ग्रन्थेषु च पञ्चाधिक शतमेता संख्या सम्भव जिनस्य गणधराणां लिखितास्ति।

३ श्वेताम्बरपरम्पराग्रन्थेषु षोडशाधिकशतं दिगम्बरपरम्परा ग्रन्थेषु च त्र्यधिकशतमिता संख्या समुल्लिखितास्ति ।

४ श्वेताम्बरपरम्परायां १०० संख्या दिगम्बरपरंपरायां च ११६ संख्या सम्मतास्ति ।

५ प्रथम गणधरस्य नाम समवायांगे सुव्रतः प्रवचन सारोद्धारं प्रद्योत, सत्तरिसयद्वारे सुज्ज हरिवंशे वज्रचमरतिलोयपन्नत्तौ तु चमर इत्युल्लिखितमस्ति । गणधर संख्यापि श्वेताम्बरपरम्परायां १०७, दिगम्बरपरम्परायां च १११, ११० च सम्मतास्ति ।

(षोडशशतं सुमतेस्तु, चमरः किल प्रथमगणधरस्तस्य ।
सुज्जश्च सु(पदा)प्रभजिनस्य शतमेकं गणधराणाम् ।)

पांचवें तीर्थंकर सुमितनाथ के ११६ गणधर थे और उनमें प्रमुख थे चमर। छठे तीर्थंकर सुप्रभ पद्मप्रभ के १०१ गणधरों में सुज्ज प्रमुख गणधर थे ।४५४।

होइ सुपासेवियब्भो,[1] पंचाणवतीय गणहरा तस्स ।
दिण्णो य पढमसिस्सो, तेनउई होंति चंदाभे (चन्दप्पभे) ।४५५।
(भवति सुपार्श्वस्य विदर्भः, पंचनवतिश्च गणधरास्तस्य ।
दिन्नश्च[2] प्रथमशिष्यः, त्रिनवतिः भवन्ति चन्द्रप्रभे ।)

सातवें तीर्थंकर सुपार्श्व के ९५ गणधर थे, उनमें प्रमुख विदर्भ और आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ के ९३ गणधरों में प्रमुख एवं प्रथम गणधर दिन्न थे ।४५५।

सुविहिजिणे वाराहो,[3] चुलसीतिं[4] गणहरा भवे तस्स ।
नंदो य सीयलजिणे, एक्कासीति मुणेयव्वा ४५६।
(सुविधिजिनस्य वाराहः, चतुरशीतिः गणधरा भवेयुस्तस्य ।
नन्दश्च शीतलजिनस्य, एकाशीतिः मुनेतव्या ।)

९ वें तीर्थंकर सुविधिनाथ के ८४ गणधर थे, उनमें प्रथम गणधर का नाम था वराह। १० वें तीर्थंकर शीतलनाथ के ८१ गणधर और उनमें प्रथम गणधर का नाम नन्द जानना चाहिए ।४५६।

---

१ दिगम्बरपरम्परायाः हरिवंशपुराणे वली, तिलोयपन्नत्तौ च बलदत्त इति नामोल्लेखः ।

२ तिलोयपन्नत्तौ तु वेदर्भ-इत्युल्लेखोऽस्ति ।

३ तिलोय पण्णत्तौ नागः हरिवंशपुराणे च विदर्भेत्युल्लेखा श्वेताम्बर परम्पराया ग्रन्थेषु 'वराह' एव ।

४ समवायांगे षडशीतिः; किन्तु श्वेताम्बर दिगम्बर परम्परोभयोश्चान्यसर्वग्रन्थेषु सुविधेर्गणधराणां संख्या ८८ ।

सेज्जंसे सत्तत्तरि,[1] पढमो सिरसो य गोथुभो[2] होइ ।
छावट्ठी[3] य सुभूमो[4] बोधव्वो वासुपुज्जस्स ।४५७।
[श्रेयांशस्य सप्तसप्ततिः, प्रथमः शिष्यश्च गोस्तूभ भवति ।
षट्षष्टिश्च सुभूमः बोधव्यः वासुपूज्यस्य ।]

११ वें तीर्थंकर श्रेयांस के ७० गणधर थे। उनमें प्रमुख गणधर का नाम गोस्तूभ था। १२ वें तीर्थंकर वासुपूज्य के ६६ गणधर थे। उनके प्रथम गणधर का नाम सुभूम समझना चाहिए ।४५७।

विमलजिणे छप्पन्ना[5] गणधर पढमो मंदरो[6] होई ।
पण्णासाणंत[7] जिणे, पढमसिस्सो जसो नाम ।४५८।
[विमलजिने षड्पंचाशत्, गणधरः प्रथमः मन्दरो भवति ।
पंचाशत् अनंत जिनस्य, प्रथम शिष्यः यशो नामा ।]

१३ वें तीर्थंकर विमलनाथ के गणधरों की संख्या ५६ थी, उनमें प्रथम गणधर का नाम मंदर था। १४ वें तीर्थंकर अनन्तनाथ के ५० गणधरों में प्रमुख गणधर का नाम यश था ।४५८।

---

१ समवायांगे ६६, आवश्यक निर्युक्तौ ७२, प्रवचनसारोद्धारे ७६ तथा दिगम्बरपरम्पराया: हरिवंशपुराणे, तिलोयपन्नताबुत्तरपुराणे च ७७ संख्या श्रेयांसप्रभोर्गणधारीणां समुल्लिखितास्ति ।

२ समवायांगे गोस्तूभः, प्रवचनसारोद्धारे कोस्तूभः सत्तरिसयद्वारे कुच्छुभ, हरिवंशपुराणे कुंथु, तिलोयपन्नत्तौ तु 'धर्मः इति नामोल्लेखः विद्यते ।

३ समवायांगे ६२, तथोभयपरम्परान्यसर्वग्रन्थेषु ६६ संख्यास्ति ।

४ समवायांगे सुधर्मा; सत्तरिसयद्वारे सुभूमः, प्रवचनसारोद्धारे सुभोम, हरिवंशपुराणे सुधर्मस्तथा तिलोयपन्नत्तौ 'मन्दिर' इति नामोल्लेखः ।

५ समवायांगे ५६, श्वेताम्बरपरम्पराया अन्य ग्रन्थेषु ५७ तथा दिगम्बर परम्पराया तिलोयपन्नत्त्यादि ग्रन्थेषु विमलजिनस्य गणधराणां संख्या ५५ उल्लिखितास्ति ।

६ तिलोयपन्नत्तौ प्रथम गणधरस्य जय इति नाम्ना उल्लेखोऽस्ति ।

७ समवायांगे ५४ शेषेषु ५० संख्योल्लिखितास्ति । ४--तिलोयपन्नत्तौ--'अरिष्ट' हरिवंशे जय नाम्ना समुल्लेखोऽस्ति ।

एवं न वसुवि खेत्तेसु, पुरिम पच्छिम मज्झिम[1] । (?)
चक्काउधेय[2] पढमो, चत्तालीसाय[3] संति जिणे ।४५९।
(एवं नवस्वपि क्षेत्रेषु, पुरिम पश्चिम मध्यम (?) ।
चक्रायुधश्च प्रथमः चत्वारिंशच्च शान्ति जिनस्य)

(पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्म नाथ के गणधरों की संख्या तथा प्रथम गणधर के नाम का उल्लेख वाली प्रथमार्द्ध गाथा के स्थान पर लिपिक द्वारा प्रमादवशात् असंबद्ध आधी गाथा लिख दी गई है ।) सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ के ४० गणधर और उनमें प्रथम चक्रायुध थे ।४५९।

कुंथुस्स भवे संबो,[4] सत्ततीसं[5] च गणहरा तस्स ।
कुंभो[6] य अर जिणिंदे, तेतीसं[7] गणहरा तस्स ।४६०।
(कुंथोः भवेत् संबः, सप्तत्रिंशच्च गणधरास्तस्य ।
कुम्भश्च अरजिनेन्द्रस्य त्रयस्त्रिंशत् गणधरास्तस्य)

---

१ लिपिकारेणात्र धर्मनाथस्य गणधराणां संख्या प्रथम गणधरस्य च नामोल्लेखकरं प्रथमार्द्ध गाथायाः परित्यज्य प्रमादेनास्मिन् स्थलेऽसम्बद्धायाः कस्याचिदन्यायाः गाथायाः पूर्वार्द्धं लिपिबद्धं कृतमिति स्पष्टतः प्रतिभाति ।

२ शान्ति प्रभोः प्रथम शिष्यस्य नाम समवायांगे 'चक्रामः' शेषेषूभय-परम्परा ग्रन्थेषु 'चक्रायुध' एव ।

३ शान्तिनाथ तीर्थंकरस्य गणधराणां संख्या समवायांगे नवतिः शेषेषूभय-परम्परा ग्रन्थेषु षट्त्रिंशदेव लिखितास्ति ।

४ समवायांगे, हरिवंशपुराणे, तिलोयपन्नत्तौ च सयंभू (स्वयंभू), प्रवचनसारोद्धारे सत्तरिसयद्वारे च 'संब' नाम लिखितमस्ति ।

५ समवायांगे ३७ शेषेषु श्वेताम्बर दिगम्बर-परम्परयोः ग्रंथेषु पंच-त्रिंशत् संख्या लिखितास्ति ।

६ हरिवंश पुराणे कुन्थु शेषेषूपरिलिखित सर्वेषु ग्रन्थेषु कुम्भः नामैव विद्यते ।

७ श्वेताम्बरपरम्पराया ग्रन्थेषु त्रयस्त्रिंशत्तथा दिगम्बरपरम्परायाः तिलोय-पन्नत्यादि ग्रन्थेषु प्रभो अरस्य गणधराणां संख्या त्रिंशदेव लिखितास्ति ।

१७ वें तीर्थंकर भगवान् कुंथुनाथ के प्रथम गणधर का नाम सम्ब था और गणधरों की संख्या ३० थी। १८ वें तीर्थंकर अरनाथ के ३३ गणधर थे और उनमें से प्रमुख गणधर का नाम कुम्भ था।४६०।

भिसगो[1] मल्लिजिणिंदे, अट्ठावीसं च गणहरा हुंति ।
मुणि सुव्वयस्स मल्ली,[2] अट्ठायस गणहरा तस्स ।४६१।
(भिषगः मल्लिजिनेन्द्रस्य, अष्टाविंशतिश्च गणधराः भवन्ति ।
मुनि सुव्रतस्य मल्ली, अष्टादश गणधरास्तस्य ।)

१९ वें तीर्थंकर मल्लिनाथ के २८ गणधर थे। उनके प्रमुख गणधर का नाम भिषक् था। २० वें तीर्थङ्कर मुनिसुव्रत के प्रथम गणधर का नाम मल्ली था और उनके कुल १८ गणधर थे।४६१।

सुंभो[3] नमि जिण वसभे, एक्कारस[4] गणहरा चरिम-देहा ।
नेमिरस वि अट्ठारस,[5] गणहर पढमो य वरदत्तो ।४६२।
(शुंभः नमिजिनवृषभस्य, एकादश गणधराश्चरमदेहाः ।
नेमिनोऽप्यष्टादशः, गणधर प्रथमश्च वरदत्तः ।)

२१ वें नमिनाथ जिनेश्वर के चरम शरीरी ११ गणधर थे। उनके मुख्य गणधर का नाम शुम्भ था। २२ वें तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि के १८ गणधर थे। उनके प्रथम गणधर का नाम वरदत्त था।४६२।

[यहां फिर लिपिक ने गाथा संख्या लिखने में भूल की है। ४६३ गाथांक के स्थान पर ४६४ लिख दिया है।]

---

१ समवायांगे इन्द्रः, प्रवचनसारोद्धारे सत्तरिसयद्वारे च भिसय-भिसग, तिलोयपन्नत्तौ विशाख इति ।

२ समवायांगे कुम्भ शेषान्यग्रन्थेषु 'मल्ली नामैव विद्यते ।

३ तिलोयपण्णत्तौ सुप्रभः हरिवंशपुराणे च 'सोमक' नामोपलभ्यते ।

४ आवश्यक निर्युक्तौ, प्रवचनसारोद्धारे, उत्तरपुराणे, हरिवंशपुराणे; तिलोयपण्णत्तौ च नमिजिनगणधराणां संख्या सप्तदश उल्लिखितास्ति। समवायांगे तु नास्त्येतद्विषयक उल्लेखः ।

५ समवायांगे नेमिनाथस्य गणधराणामपि संख्याया उल्लेखो नास्ति । आवश्यक निर्युक्त्यादि श्वेताम्बरपरम्पराया: ग्रन्थेषु तथैव तिलोयपन्नत्यादि दिगम्बरपरम्पराया ग्रन्थेषु च नेमिनः गणधराणां संख्या दश लिखितास्ति ।

* पासस्स अज्जदिण्णो,[1] पढमो अट्ठेव[2] गणहरा सहिया ।
जिणवीरं एक्कारस, पढमो से इंदभूई उ ।४६४।
(पार्श्वस्यार्य दिन्नः, प्रथमोऽष्टावेव गणधराः सहिताः ।
जिन-वीरस्यैकादश, प्रथमः स इन्द्रभूतिस्तु ।)

२३वें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ के कुल ८ गणधर थे। उनके प्रथम गणधर का नाम आर्य दिन्न था। और २४ वें तीर्थंकर वीर (महावीर) के ११ गणधर थे। उनके प्रथम गणधर का नाम इन्द्रभूति था ।४६४।

गणहर संखा भणिया, जं नामो पढम गणहरो जस्स ।
एत्तो सिस्सिणी नामा, उसभादीणं तु वोच्छामि ।४६५।
(गणधर संख्या भणिता, यन्नामा प्रथम गणधरः यस्य ।
इतः शिष्या नामानि, ऋषभादीनान्तु वक्ष्यामि ।)

चौवीस तीर्थंकरों के गणधरों की संख्या और जिन जिन तीर्थंकरों के जिस जिस नाम के प्रथम गणधर थे उनका कथन किया गया। अब मैं ऋषभादि चौवीसों तीर्थंकरों की प्रथम शिष्याओं के नाम का कथन करूंगा ।४६५।

* उसभस्स होइ बंभी, फग्गू[3] अजियस्स सम्भवस्स सामा[4] ।
अभिनंदणस्स अजिया,[5] कासवी[6] सुमति जिणिंदस्स ।४६६।

---

* त्रिषष्ट्यधिक चतुर्शता गाथा प्रतौ नास्ति । गाथांकलेखने लिपिक-प्रमादात् त्रुटिः संजाता प्रतीयते ।

१ समवायांगे तथा श्वेताम्बरपरम्परायाः इतरग्रन्थेषु पार्श्वस्य प्रथम गणधर 'अज्ज दिन्न' (आर्यदत्तः) आसीदिति निर्विवादोल्लेखः विद्यते किन्तु दिगम्बर परम्परायाः 'हरिवंशपुराणे' तिलोयपन्नतौ च पार्श्वस्य प्रथम गणधरः 'स्वयंभुः' नाम्नाख्यातः ।

२ समवायांगे पार्श्वजिनस्य गणधराणां संख्या तावदष्ट निर्दिष्टा किन्तु श्वेताम्बर-दिगम्बरोभयपरम्परयोरितरग्रन्थेष्वेषा संख्या दशः समुल्लिखितास्ति ।

* दिगम्बरपरम्परायाः मान्य ग्रन्थेषु यथा तिलोयपन्नतौ हरिवंश-पुराणे, उत्तरपुराणे च प्रथम-षष्ठ,-द्वाविंशति-चतुर्विंशतितम जिनानां प्रथम शिष्यानामानि तान्येव समुल्लिखितानि सन्ति यानि श्वेताम्बरपरम्परायाः आगमेष्वथवा ग्रन्थेषु तथा प्रस्तुत ग्रन्थे चोपलभ्यन्ते । शेष विंशति जिनप्रमुखशिष्यानामानि तु पूर्णतः भिन्नान्येव । यथा

३ प्रकुब्जा ४ धर्मश्री वा धर्मार्या ५ मेरुषेणा–मरुषेणा वा ६ अनन्ता

(ऋषभस्य भवति ब्राह्मी, फल्गू अजितस्य सम्भवस्य श्यामा ।
अभिनन्दस्य अजिता, काश्यपी सुमति जिनेन्द्रस्य ।)

ऋषभदेव की प्रथम शिष्या ब्राह्मी, अजितनाथ की फल्गु श्री, संभवनाथ की श्यामा, अभिनन्दन की अजिता और सुमतिनाथ की काश्यपी थी ।४६६।

पउमप्पभस्स तु रती, सोमा[1] सुपासस्स पढम सिस्सीणी य ।
चन्दप्पभस्स सुमणा,[2] वारुणि[3] सुविहिस्स जेठज्जा ।४६७।
(पद्माप्रभस्य तु रतिः, सोमा सुपार्श्वस्य प्रथम शिष्या च ।
चन्द्रप्रभस्य सुमना, वारुणी सुविधेः ज्येष्ठार्या ।)

पद्मप्रभ की प्रथम शिष्या रती और सुपार्श्व की सोमा थी। चन्द्रप्रभ की सुमना और सुविधिनाथ की ज्येष्ठ शिष्या आर्या वारुणी थी ।४६७।

सीयल जिणस्स सुज (ल) सा,[4] सेज्जंसजिणस्स धारिणी[5] पढमा।
धरणी[6] य वासुपुज्जे, धरा[7] य विमलस्स जेठज्जा ।४६८।
(शीतल जिनस्य सुजसा, श्रेयांसजिनस्य धारिणी प्रथमा ।
धरणी च वासुपूज्यस्य, धरा च विमलस्य ज्येष्ठार्या ।)

शीतलनाथ तीर्थंकर की प्रथम शिष्या सुजसा और श्रेयांसनाथ की धारिणी थी। वासुपूज्य की ज्येष्ठ आर्या का नाम धरणी तथा विमलनाथ की ज्येष्ठ आर्या का नाम धरा था ।४६८।

---

१ मीना २ वरुणा ३ घोषा–दिगम्बरपरम्पराग्रन्थेषु ।
४ समवायांगे 'सुलसा', प्रवचनसारोद्धारे सत्तरिसयद्वारे च 'सुजसा'। दिसम्बरपरम्परायाग्रन्थेषु 'धरणा' ।
५ हरिवंशपुराणे तिलोयपन्नत्तौ च चारणा। उत्तरपुराणे 'धारणा'
६ हरिवंशपुराणे तिलोयपन्नत्तौ च 'वरसेना', उत्तरपुराणे तु सेना ।
७ समवायांगे धरणीधरा, प्रवचनसारे, सत्तरिसयद्वारे च धरा। दिगम्बर-परम्परायाः ग्रन्थेषु च पद्मा ।

पउमा[1] अणंतइ जिणे, सिवा[2] य धम्मे सुतीय[3] संतिस्स ।
कुंथुस्स दामिणि[4] खलु, जेठज्जा रक्खी[5] य अरस्स ।४६९।
(पद्मा अनन्त-जिनस्य, शिवा च धर्मस्य श्रुती च शान्तेः ।
कुंथोः दामिनी खलु, ज्येष्ठार्या रक्खी च अरस्य ।)

भगवान् अनन्तनाथ की प्रथम शिष्या पद्मा, भ० धर्मनाथ की शिवा, शान्तिनाथ की श्रुती, कुंथुनाथ की दामिनी और अरनाथ की रक्षी थी ।४६९।

बंधुमती[6] मल्लिस्सस, मुणिसुव्वय-जिणवरस्स पुप्फवती ।[7]
अणिला[8] य नमि जिणिंदे, जक्खिणी[9] तह रिट्ठनेमिस्स ।४७०।
(बन्धुमती मल्लेश्च, मुनिसुव्रतजिनवरस्य पुष्पवती ।
अनिला च नमिजिनेन्द्रस्य, यक्षिणी तथा अरिष्टनेमिनः ।)

मलिनाथ की प्रथम शिष्या बन्धुमती, मुनिसुव्रत की पुष्पतवी नमिनाथ की अनिला और भगवान् अरिष्टनेमि की यक्षिणी थी ।४७०।

पासस्स पुप्फचूला, वीर जिणिंदस्स चंदणज्जाउ ।
एया पढमाव्वखाया, (सव्व जिणाण) भिस्सिणीओ ।४७१।

---

१ दिगम्बरपरम्परायां सर्वश्री ।
२ दिग० पर० सुव्रता ।
३ प्रवचन सारोद्धारे 'सुहा' । दिगम्बर परम्पराया: ग्रन्थेषु 'हरिषेना' ।
४ समवायांगे 'अंजुया' प्रवचनसारोद्धारे सत्तरिसय द्वारे च दामणी-दामिणी वा । दिगम्बरपरम्पराग्रन्थेषु भाविता ।
५ 'हरिवंशपुराणे' कुंतुसेना, 'तिलोयपन्नत्तौ' कुंथुसेना तथा 'उत्तर-पुराणे' च यक्षिला ।
६ तिलोय पन्नत्तौ हरिवंशपुराणे च 'मधुसेना', उत्तरपुराणे बन्धुषेणा ।
७ ति० पन्नत्तौ, हरि० पुराणे 'पूर्वदत्ता' तथोत्तरपुराणे 'पुष्पदन्ता' ।
८ समवायांगे अमिला, प्रव. सारोद्धारे सत्त. द्वारे च 'अनिला' । दिगम्बरपरम्परायां तु मार्गिणी मंगिनी वा ।
९ समवायांगे 'यक्षिणी', प्र. सारोद्धारे, सत्ता. द्वारे च 'जक्खदिन्ना' । दिगम्बरपरम्पराग्रन्थेषु 'यक्षी:' 'यक्षिणी' वा ।

(पार्श्वस्य पुष्पचूला, वीरजिनेन्द्रस्य चन्दनार्या तु ।
एताः प्रथमा अवरुयाता (सर्व जिनानां) शिष्यास्तु ।)

भगवान् पार्श्वनाथ की पुष्पचूला और भ. वीर की आर्या चन्दना प्रथम शिष्या थी। ये चौवीसों तीर्थंकरों की प्रथम शिष्याएं प्रसिद्ध हैं ।४७१।

तित्थयराणं सीसे, वोच्छामि थूइसहस्स परिगीए ।
राया जो तंमि जुगे, अहिसि पिउमायरो अहवा ।४७२।
(तीर्थंकराणां शिष्यान्, वक्ष्यामि स्तुतिसहस्रपरिगीतान् ।
राजा यः तस्मिन् युगे आसीत् पितृमातरः अथ वा ।४७२।

अब मैं तीर्थंकरों के सहस्रों स्तुतियों द्वारा संस्तुत शिष्यो, तीर्थंकरों के समय के राजाओं तथा तीर्थंकरों के माता-पिता के सम्बन्ध में कथन करूँगा ।१७२।

चुलसीति महस्सोइं, उसभजिणिंदस्स सीसपरिवारो ।
भरहमहिवस्सथुणियं[1] मरुदेवी नाभितणयस्स ।४७३।
(चतुरशीति सहस्राणि, ऋषभजिनेन्द्रस्य शिष्यपरिवारः ।
भरतमहीपेन स्तुतस्य, मरुदेवीनाभितनयस्य ।)

मरुदेवी तथा नाभिराज के नन्दन भरत चक्री के परम पूज्य ऋषभदेव के शिष्यों की संख्या ८४ हजार थी ।४७३।

एगंतु सयसहस्सं, अजिअ जिणिंदस्स सीसपरिवारो ।
सागर महिवस्सथुणियं, विजयाजियसत्तुपुत्तस्स ।४७४।
(एकं तु शत सहस्रं, अजितजिनेन्द्रस्य शिष्यपरिवारः ।
सगरमहीपस्तुतस्य, विजयाजितशत्रुपुत्रस्य ।)

माता विजया और राजा जितशत्रु के पुत्र तथा चक्रवर्ती सगर द्वारा संस्तुत तीर्थंकर अजितनाथ के शिष्य परिवार की संख्या १ लाख थी ।४७४।

---

१ भरतमहीपेन स्तुतस्य-इत्यर्थः। "भरहमहिव-थुणियस्स"-इति पाठेन भाव्यम्।

दो चेव सयसहस्सा, सीसाणं आसि संभवजिणस्स ।
मित्तविरिय थुयस्स, सेणाए[1] जियारितण यस्स ।४७५।
(द्वौ चैव शतसहस्राणि, शिष्याणामासन् संभवजिनस्य ।
मित्रवीर्यस्तुतस्य, सेनायां-जितारितनयस्य ।)

महारानी सेना और महाराज जितारि के तनुज तथा नृपवर मित्रवीर्य द्वारा स्तुत भगवान् संभवनाथ के २,००,००० शिष्य थे ।४७५।

तिन्नेव सयसहस्सा, अभिनन्दण जिणवरस्ससीसाणं ।
सव्वरिरियथुयस्स, सिद्धत्थासंवरसुयस्स ।४७६।
(त्रीण्येव शतसहस्राणि, अभिनन्दन जिनवरस्य शिष्यानाम् ।
सर्ववीर्यस्तुतस्य, सिद्धार्था-संवरसुतस्य ।)

महारानी सिद्धार्था और महाराज संवर के सुत तथा नृपेन्द्र सर्ववीर्य द्वारा संस्तुत तीर्थंकर प्रभु अभिनन्दन के शिष्यों की संख्या ३,००,००० थी ।४७६

तिन्नेव सयसहस्सा, वीससहस्सा य आसि सुमइस्स ।
जियसेण पणमियस्स, मंगलामेहतणयस्स ।४७७।
(त्रीण्येवशतसहस्राणि विंशतिसहस्राणि चासन् सुमतेः ।
जितसेन प्रणमितस्य, मंगलामेघतनयस्स ।)

महारानी मंगला और महाराज मेघ के नन्दन तथा नरपति द्वारा स्तुत एवं प्रणत भगवान् सुमतिनाथ के शिष्य साधु परिवार की संख्या ३,२०,००० थी ।४७७।

तिन्नेव सयसहस्सा, तीस सहस्साय आसि पउमाभो ।
दाणविरियवु[थु] यस्स, सुसीम-धर[2]रायतणयस्स ।४७८।

---

१ तिलोयपन्नत्ती तथा उत्तर पुराणे सुसेना, श्वेताम्बरपरम्पराया ग्रन्थेषु हरवंश-पुराणे च मातुः 'सेना' नामोल्लेखः ।

२ दिगम्बरपरम्परायां 'धरण' इति नामोल्लेखः विद्यते ।

(त्रीण्येव शतसहस्राणि त्रिंशत्सहस्राणि चासन् पद्माभस्य ।
दानवीर्यस्तुतस्य, सुसीमा-धर राजतनयस्य ।)

महारानी सुसीमा और महाराजा धर के तनय तथा राजा दानवीर्य द्वारा स्तुत प्रभु पद्मप्रभ के ३,३०,००० शिष्य थे ।४७८।

तिन्नेव सयसहस्सा, सीसाणं आसि जिण सुपासस्स ।
धम्मविरियथुयस्स, पुहईए-पइट्ठतणयस्स ।४७९।
(त्रीण्येव शतसहस्राणि, शिष्यानामासन् जिनसुपार्श्वस्य ।
धर्मवीर्यस्तुतस्य, पृथ्व्यां प्रतिष्ठ[1]तनयस्य ।)

महारानी पृथ्वी एवं महाराजा प्रतिष्ठ के नन्दन और धर्मवीर्य नृपति द्वारा संस्तुत भगवान् सुपार्श्वनाथ के शिष्य-साधुओं की संख्या ३,००,००० (तीन लाख) थी ।४७९।

चंदप्पहस्स सीसा, अड्ढाइज्जा य सयसहस्साइं ।
महव महिवस्स थुणियं, लक्खणामहसेणतणयस्स ।४८०।
(चन्द्रप्रभस्य शिष्याः, सार्द्धद्वयशतसहस्राणि--
मघव महीपस्य थुणियं [?] लक्ष्मणा[2] -महासेनतनयस्य ।)

महारानी लक्ष्मणा और महाराज महासेन के आत्मज तथा चक्रवर्ती मघवा द्वारा संदा संस्तुत जिनेश्वर चन्द्रप्रभ के २,५०,००० (ढाई लाख) शिष्य थे । ४८०।

दो चेव सयसहस्सा, सीसाणं होंति पुप्फदंतस्स[3] ।
जुद्धवीरिय थुयस्स, रामा[4] सुग्गीवपुत्तस्स ।४८१।
(द्वौ चैव शतसहस्राणि, शिष्यानां भवन्ति पुष्पदन्तस्य ।
युद्धवीर्यस्तुतस्य, रामा-सुग्रीवपुत्रस्य ।)

---

१ दिगम्बरपरम्पराग्रन्थेषु 'सुप्रतिष्ठ' नाम लिखितमस्ति ।
२ तिलोयपन्नत्तौ तु 'लक्ष्मण' नाम विद्यते ।
३ सुविधिजिनस्यापर नाम ।
४ उत्तरपुराणे जयरामा नाम ।

महारानी वामा और महाराज सुग्रीव के पुत्र तथा युद्धवीर्य नृपतिद्वारा स्तुत तीर्थंकर पुष्पदन्त (सुविधिनाथ) के शिष्य-परिवार की संख्या २,००,००० (दो लाख) थी ।४८१।

एगं तु सयसहस्सं, सीसाणं आसिसीयलजिणस्स ।
सीमंधर महियस्सउ, नंदाए[1] दढरह सुयस्स ।४८२।
(एकं तु शतसहस्रं, शिष्यानामासीत् शीतल जिनस्य ।
सीमंधर महितस्य तु, नन्दाया दृढरथसुतस्य ।)

महारानी नन्दा और महाराज दृढरथ के नन्दन तथा राजा सीमंधर द्वारा पूजित तीर्थंकर शीतलनाथ के १,०० ००० (एक लाख) शिष्य थे ।४८२।

चुलसीति सहस्साइं, सिज्जंस जिणस्स सीसपरिवारो ।
तिविट्ठ[2] महियस्स, तहा विण्हाए विण्हु[3] पुत्तस्स ।४८३।
(चतुरशीति सहस्राणि, श्रेयांसजिनस्य शिष्यपरिवारः ।
त्रिपृष्ठ महितस्य, तथा विष्णायां-विष्णुपुत्रस्य ।)

महारानी विष्णु देवी और महाराज विष्णु के तनय तथा त्रिपृष्ठ वासुदेव द्वारा पूजित जिनराज श्रेयांसनाथ के शिष्य परिवार की संख्या ८४,००० (चौरासी हजार) थी ।४८३।

बावत्तरिं सहस्सा, सीसाणं आसि वासुपुज्जस्स ।
दुविट्ठ[4] महियस्स, तणयस्स जयाएं वसु पुज्जस्स ।४८४।
(द्विसप्ततिःसहस्राणि, शिष्यानामासीत् वासुपूज्यस्य ।
द्विपृष्ठमहितस्य तनयस्य जायायां वसुपूज्यस्य ।)

---

१ उत्तरपुराणे हरिवंशपुराणे च सुनन्दा नामोपलभ्यते ।
२ तृपृष्ठः प्रथम वासुदेव; ।
३ श्रेयांसजिनस्य जननिजनकयोरुभयोरपि नाम्नि समवायांगादौ विष्णु उल्लिखिते स्तः । तिलोयपण्णत्तौ तु मातुः नाम वेणुदेवी विद्यते ।
४ द्वितीयो वासुदेवः द्विपृष्ठः ।

महारानी जया और महाराज वसुपूज्य के सुपुत्र तथा द्विपृष्ठ वासुदेव द्वारा पूजित तीर्थंकर वसुपूज्य के ७२,००० (बहत्तर हजार) शिष्य थे ।४८४।

अट्ठसट्ठि सहस्साइं, विमल जिणिंदस्स सीसपरिवारो ।
पणियस्स सयंभु[1] निवेण, कयवम्म सामा[2] तणयस्स ।४८५।
(अष्टषष्टि सहस्राणि, विमल जिनेन्द्रस्य शिष्यपरिवारः ।
प्रणतस्य स्वयंभुनृपेण, कृतवर्मा-सामातनयस्य ।)

महाराजा कृतवर्मा और महारानी श्यामा के पुत्र तथा वासुदेव स्वयम्भु द्वारा पूजित-नमस्कृत, भगवान् विमलनाथ के शिष्य परिवार की संख्या ६८,००० (अड़सठ हजार) थी ।४८५।

छावट्ठि सहस्साइं, सीसाण आसिणंतइ जिणस्स ।
पुरिसोत्तम[3] महियस्स य, सुजसाए[4] सीहतण यस्स ।४८६।
(षट्षष्टि सहस्राणि, शिष्यानामासीदनन्त जिनस्य ।
पुरुषोत्तम महितस्य च सुयक्षा-सिंहतनयस्य ।)

महारानी सुयशा और महाराज सिंह के आत्मज तथा वासुदेव पुरुषोत्तम द्वारा पूजित चौदहवें तीर्थंकर अनन्तनाथ के ६६ ००० (छासठ हजार) शिष्य थे ।४८६।

चउसट्ठि सहस्साइं, धम्मजिणिंदस्य सीसपरिवारो ।
महियस्स पुरिससीहेण[5], सुव्वय तह भाणुतणयस्स ।४८७।
(चतुःषष्टिसहस्राणि, धर्मजिनेन्द्रस्य शिष्यपरिवारः ।
महितस्य पुरुषसिंहेन, सुव्रता तथा भानु तनयस्य ।)

---

१ स्वयम्भूः तृतीयो वासुदेवः

२ हरिवंशपुराणे शर्मा, तिलोयपण्णत्तौ च 'जयश्यामा' इत्युल्लेखोऽस्ति ।

३ चतुर्थः वासुदेवः ।

४ तिलोयपन्नत्तौ हरिवंशे च 'सर्वयशा' तथोत्तरपुराणे 'जयश्यामा' नामोल्लेखः विद्यते ।

५ पंचमः वासुदेवः

महारानी सुव्रता और महाराज भानु के पुत्र तथा अर्द्धचक्री पुरुषसिंह द्वारा पूजित पन्द्रहवें तीर्थङ्कर धर्मनाथ के शिष्य परिवार की संख्या ६४,००० (चौसठ हजार) थी ।४८७।

बावट्ठि सहस्साइं, संतिजिणिंदस्स सीसपरिवारो ।
नारायण[1] महियस्स य, अइरा[2]एवीससेण तणयस्स ।४८८।
(द्वाषष्टि सहस्राणि, शान्ति जिनेन्द्रस्य शिष्यपरिवारः ।
नारायण-महितस्य च, अचिरायां विश्वसेनतनयस्य ।)

महारानी अचिरा और महाराज विश्वसेन के नन्दन तथा नारायण नामक राजा (कोणालक नाम अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध होता है) द्वारा पूजित सोलहवें तीर्थङ्कर शान्ति के शिष्य परिवार की संख्या ६२,००० (बासठ हजार) थी ।४८८।

सट्ठिं तु सहस्साइं, कुंथुजिणिंदस्स सीसपरिवारो ।
कोणालग महियस्स य, सिरीए सूरस्स य सुयस्स ।४८९।
(षष्टिस्तु साहस्राणि, कुंथु-जिनेन्द्रस्य शिष्यपरिवारः ।
कोणालक महितस्य च श्रियां सूरस्य च सुतस्य ।)

महारानी श्री और महाराज शूर के सुपुत्र तथा कोणालक नृपति द्वारा महित (पूजित) सत्रहवें तीर्थङ्कर कुंथुनाथ के शिष्य परिवार की संख्या ६०,००० (साठ हजार) थी ।४८९।

पण्णासं तु सहस्सा, सीसाणं आसि अर जिणिंदस्स ।
पणयस्स सुभूमेणं[3], देवीए[4] सुदरिसण सुयस्स ।४९०।
(पञ्चाशत्तु सहस्राणि शिष्यानां खल्वासन अर जिनेन्द्रस्य ।
प्रणतस्य सुभूमेणं, देव्याः सुदर्शनस्य [च] सुतस्य ।)

---

१ मुनिसुव्रतनमिनाथयोरन्तरालवर्त्यष्टमवासुदेवाद्भिन्नः ।

२ तिलोयपन्नत्त्यादि दिगम्बरपरम्पराग्रन्थेषु ऐरा नामोपलभ्यते, तदपि 'अचिरा' (अइरा) शब्दस्यैव प्राकृत रूपान्तरम् ।

३ अरमल्लिजिनयोरन्तराल काले जातेनाष्टम चक्रवर्तिनः भिन्नः ।

४ दिगम्बरपरम्परायाः ग्रन्थेषु 'मित्रा' वा 'मित्रसेना' नामोपलभ्यते ।

महारानी देवी और महाराज सुदर्शन के सुत तथा राजा सुभूम (सुभूम चक्रवर्ती से भिन्न) द्वारा प्रणत अठारहवें तीर्थङ्कर अरनाथ के ५०,००० (पचास हजार) शिष्य थे ।४९०।

चत्तालीस सहस्सा, मल्लिजिणिंदस्स सीसपरिवारो ।
अजियंजिय-महियस्स, पभावतीकुंभ पुत्तस्स ४९१।
(चत्वारिंशत्सहस्राणि, मल्लि जिनेन्द्रस्य शिष्यपरिवारः ।
अजितंजित महितस्य, प्रभावती-कुम्भपुत्रस्य)

महारानी प्रभावती और महाराज कुम्भ के (की) पुत्र (पुत्री) तथा अजितंजित नरेन्द्र द्वारा पूजित उन्नीसवें तीर्थङ्कर मल्लिनाथ के शिष्य परिवार की सं० ४०,००० (चालीस हजार) थी ।४९१।

मुणिसुव्वयस्स तीसं, साहस्सीओ आसी सीसाणं ।
चिलियस्स पणमियस्स, सुमित्तपउमावइ सुयस्स ।४९२।
(मुनि सुव्रतस्य त्रिंशत्साहस्रिका आसीत् शिष्यानाम् ।
चिलितेन प्रणमितस्य, सुमित्र-पद्मावती सुतस्य ।)

महाराज सुमित्र और महारानी पद्मावती के पुत्र तथा राजा चिलित (विजयमह) द्वारा नमस्कृत बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत के ३०,००० (तीस हजार) शिष्य थे ।४९२।

वीस साहस्सीओ, सीसाणं नमिजिणिंदस्स परिवारो ।
जावगराय नयस्स, वप्पाए विजय तणयस्स ।४९३।
(विंशत्साहस्रिकः, शिष्यानां नमिजिनेन्द्रस्य परिवारः ।
यावकराज नतस्य, वप्रायां विजयतनयस्य ।)

महारानी वप्रा और महाराज विजय के पुत्र तथा यावक नरेश्वर के वन्दनीय इक्वीसमें तीर्थंकर नमिनाथ के शिष्य परिवार की सं० २०,००० बीस हजार थी ।४९३।

अट्ठारस य सहस्सा, सीसाणं आसि रिट्ठनेमिस्स ।
कण्हेण पणमियस्स य, सिवासमुद्दाण तणयस्स ।४९४।

(अष्टादश च सहस्राणि, शिष्यानामासीत् अरिष्टनेमिनः ।
कृष्णेन प्रणमितस्य, शिवासमुद्रयोः तनयस्य ।)

महारानी शिवा और महाराज समुद्रविजय के नन्दन तथा कृष्ण वासुदेव के नमस्य बावीसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि के १८,००० (अठारह हजार) शिष्य थे ।४९४।

सोलस साहस्सीओ, पास जिणिदस्स सीसपरिवारो ।
महियस्स पसेणइणा, सुयस्स वाययसेणाणं ।४९५।
(षोडश साहस्रिकः, पार्श्वजिनेन्द्रस्य शिष्यपरिवारः ।
महितस्य प्रसेनजितेन सुतस्य वामाश्वसेनयोः ।)

वामा महारानी और अश्वसेन महाराज के पुत्र तथा राजा प्रसेनजित् द्वारा पूजित तेवीसवें तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यों की संख्या १६,००० (सोलह हजार) थी ।४९५।

चोद्दस साहसीओ, सीसाणं आसि वद्धमाणस्स ।
सेणियरायनयस्स, तिसलासिद्धत्थ तणयस्स ।४९६।
(चतुर्दश साहस्रीकः, शिष्यानामासीत् वर्द्धमानस्य ।
श्रेणिक राजनतस्य, त्रिशलासिद्धार्थतनयस्य ।)

महारानी त्रिशला और महाराज सिद्धार्थ के पुत्र तथा श्रेणिक द्वारा प्रणत चौवीसवें तीर्थङ्कर भगवान् महावीर के १४००० (चौदह हजार) शिष्य थे ।४९६।

ओसप्पिणी इमीसे, जिणंतर समुट्ठिएण कालेणं ।
वोच्छामि चउव्वीसं, अरहंते भारएवासे ४९७।
(अवसर्पिण्यामस्यां, जिनान्तरं समुत्थितेन कालेन ।
वक्ष्यामि चतुर्विंशति अरिहन्तान् भारते वर्षे ।)

प्रवर्तमान इस अवसर्पिणी काल में एक तीर्थंकर के अनन्तर दूसरे तीर्थंकर के उत्पत्तिकाल के माध्यम से मैं भारतवर्ष के चौवीस तीर्थंकरों का कथन करूंगा ।४९७।

तइयसमापरिनिव्वुइ, निवास अद्धनवमासः सेसम्मि ।
उसभजिणराय खत्तिय, जिणवंस पगट्ट वणियाए[1] ।४९८।
(तृतीयसमापरिनिर्वृत्तौ, त्रिवर्षार्द्ध नवमासशेषे ।
ऋषभ जिनः राज-क्षत्रिय-जिनवंशप्रकटकः विनीतायाम् ।)

सुषम दुःषमा नामक तीसरे आरक के समाप्त होने में जब ८४ लाख पूर्व तथा तीन वर्ष और साढ़े आठ मास अवशिष्ट थे, उस समय राजवंश, क्षत्रियवंश तथा जिनवश के प्रकटयिता प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव विनीता नगरी में उत्पन्न हुए ।४९८।

उसभाओ उप्पण्णं, पाणासाकोडिसय सहस्सेहिं ।
तं सागरोवमाणं, अजियजिणंदोविणीया उ[2] ।४९९।
(ऋषभात् उत्पन्नं, पञ्चाशतकोटि शत सहस्रैः ।
तत् सागरोपमैः, अजित जिनेन्द्रः विनितायाम् ।)

ऋषभदेव से पचासलाख करोड़ सागरोपम व्यतीत हो जाने के पश्चात् विनीता नगरी में दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ उत्पन्न हुए।४९९।

तीसाए सागरोवम, कोडिसयसहस्स अन्तरुप्पण्णं ।
अजियाउ संभवजिणो, सावत्थीए वियाणा हि ।५००।
(त्रिंशत् सागरोपमकोटिशतसहस्रानन्तरमुत्पन्नः ।
अजितात् संभवजिनः, श्रावस्त्यां विजानीहि ।)

अजितनाथ से तीसलाख करोड़ सागर पश्चात् तीसरे तीर्थंकर भगवान् सभवनाथ श्रावस्ती में उत्पन्न हुए, यह जानना चाहिए ।५००।

---

१ गाथा या अस्य श्चतुर्थचरणान्तिमांशोऽस्पष्टोऽशुद्धश्च लिपिकेन लिखितोऽतोऽष्माभिः सम्यगालोच्य शोध्य च लिखितोऽस्ति । प्रतौ तु एवंविधो पाठः—'जिणचस पगट्टवणियाए ।" एतद्धि तावच्छास्त्रपरिपंथि, ग्रन्थस्यास्य सप्त-शीत्यधिक त्रिंशत संख्यकाया; गाथाया अपि विरुद्धमेव ।

२ विनीताया अपरनामानि—अयोध्या, साकेतं कोसला च ।

दसकोडिसयसहस्साइं, अंतरं जस्स उदहि नामाणं ।[1]
तं सम्भवाउ अभिनंदणं, विणीयाए उ उप्पण्णं ।५०१।
(दशकोटिशतसहस्राणि, अंतरं यस्य उदधि नाम्नाम् ।
स सम्भवात् अभिनन्दनः, विनीतायान्तु उत्पन्नः ।)

संभवनाथ से दश लाख करोड सागर पश्चात् चौथे तीर्थंकर अभिनन्दन विनीता नगरी में उत्पन्न हुए ५०१।

नवकोडिसयसहस्साइं, अन्तरं जस्स उदहि नामाणं ।
अभिनंदणाओ सुमइं, उप्पण्णऽ विणीयाए ।५०२।
(नवकोटि शत सहस्राणि, अन्तरं यस्य उदधिनाम्नाम् ।
अभिनन्दनात् सुमतिः उत्पन्नः विनीतायाम् ।)

अभिनन्दन से ९ लाख करोड सागर का जिनका अन्तर है वे पांचवें तीर्थंकर सुमतिनाथ विनीता नगरी में उत्पन्न हुए ।५०२।

नउती य सागरोवम, कोडि सहस्सेहिं जो समुप्पण्णो ।
सुमइओ पउमाभो, सो कोसंबीए नायव्वो ।५०३।
(नवतिश्च सागरोपमकोटिसहस्रैर्यः समुत्पन्नः ।
सुमतितः पद्मप्रभः सः कौशाम्ब्यां ज्ञातव्यः ।)

सुमतिनाथ से ९० हजार करोड़ सागर पश्चात् छठे तीर्थंकर पद्माभ अर्थात् पद्मप्रभ कौसाम्बी में उत्पन्न हुए ।५०३।

पउमाभाउ सुपासो, बाणारसी उत्तमं समुप्पण्णं ।
तं सागरोवमाणं कोडि सहस्सेहिं नवहिं जिणिं ।५०४।
(पद्मप्रभात् सुपार्श्व वाराणसी उत्तमः समुत्पन्नः ।
स सागरोपमानां कोटिसहस्रैर्नवभिर्यः ।)

पद्माभ अर्थात् पद्मप्रभ तीर्थंकर से ९ हजार करोड़ सागर पश्चात् सातवें तीर्थंकर सुपार्श्व वाराणसी में उत्पन्न हुए ।५०४।

---

१ सागरोपमानामित्यर्थः ।

कोडिसए हिं नवहिं, उप्पण्णं चंदपुरवरे रम्मे ।
चंदप्पभो समुद्दोवमाण[1] सिज्झे[2] सुपासाओ ।५०५।
(कोटिशतैर्नवभिः, उत्पन्नः चन्द्रपुरवरे रम्ये ।
चन्द्रप्रभः समुद्रोपमानां सिद्धे सुपार्श्वात् ।)

सुपार्श्वनाथ के पश्चात् ९०० करोड़ सागर व्यतीत हो जाने पर आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ अति सुन्दर एवं रम्य चन्द्रपुर में उत्पन्न हुए ।५०५।

चंदप्पभाउ सुविहिं, कुमुदकमलमल्लियाधवलदंतं ।
कायंदी उप्पण्णं, वियाण नउतीए कोडीहिं ।५०६।
(चन्द्रप्रभात्तु सुविधिं, कुमुदकमलमल्लिका धवलदन्तम् ।
काकन्यामुत्पन्नं, विजानीहि नवतिभिः कोटिभिः ।)

चन्द्रप्रभ से ९० करोड़ सागर पश्चात्, कुमुद, कमल एवं मल्लिका के कुसुम के समान धवल दन्तपंक्ति वाले नौवें तीर्थंकर सुविधिनाथ काकन्दी नगरी में उत्पन्न हुए जानिये ।५०६।

कोडीहिं नवएहिं, भद्दिलपुरंमि सीयलजिणं समुप्पण्णं ।
रयणायरोवमाणं,[3] वियाण तं पुप्फदंताओ ।५०७।
(कोटिभिर्नवभिः, भद्दिलपुरे शीतल जिनं समुत्पन्नम् ।
रत्नाकरोपमानं,[4] विजानीहि तं पुष्पदन्तात्तु ।)

पुष्पदन्त अर्थात् सुविधिनाथ से ९ करोड़ सागर तुल्य काल पश्चात् भद्दिलपुर में दशवें तीर्थंकर शीतलनाथ को उत्पन्न हुआ जानो ।५०७।

---

१ सागरोपमानामित्यर्थः ।
२ सिद्धे–व्यतीते ।
३ सागरोपमाणाम्—इत्यर्थः ।
४ सागरोपमाणाम्—इत्यर्थः ।

जाणाहि सीयलाओ, सेज्जंसं ऊणियाए कोडी ए ।
तं सागरोवमाणं, सएहि वासेहिय इमेहिं ।५०८।
(जानीहि शीतलात्, श्रेयांसं ऊनितायाः कोट्याः ।
तं सागर-उपमानं, शतैर्वर्षैश्च एभिः ।)

छावट्ठिसय सहस्सा, छव्वीसं खलु भवे सहस्साइं ।
एएहिं ऊणिया खलु, मग्गिल्ला कोडि सीहपुरे ।५०९।
(षड् षष्टि सहस्राणि, षड्विंशतिः खलु भवेयुः सहस्राणि ।
एतैरूनिता खल्वग्रिला कोटिः सिंहपुरे ।)

शीतलनाथ के पश्चात् १०० सागर तथा ६६,२६००० वर्ष कम एक कोटि सागरोपम काल व्यतीत हो जाने पर सिंहपुर में ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ का जन्म हुआ ।५०८-५०९।

सेज्जंसाओ वासुपुज्जं, चंपाए सगल चंद सोम-मुहं ।
चउप्पण्णा, उप्पण्णं सागरसिरिनामधेज्जाणं ।५१०।[1]
(श्रेयांसात् वासुपूज्यं, चंपायां सकलचन्द्र सौम्य मुखम् ।
चतुर्पञ्चाशत् उत्पन्नं सागरश्री नामधेयानाम्)

श्रेयांसनाथ के पश्चात् ५४ सागरोपकाल व्यतीत हो जाने पर पूर्णिमा के चन्द्र तुल्य सौम्य मुखवाले १२ वें तीर्थंकर वासुपूज्य का चम्पा नगरी में जन्म हुआ ।५१०।

विमलं च वासुपुज्जा, कम्पिल्लपुरी विलीण संसारे ।
तीसाए समुप्पन्नं, सागरसिरि नाम धेज्जाणं ।५११।
(विमलं च वासुपूज्यात्, काम्पिल्यपुरे विलीन संसारम् ।
त्रिंशत्सु उत्पन्नं, सागरश्रीनामधेयानाम् ।)

वासुपूज्य से ३० सागरोपम पश्चात् काम्पिल्यपुर में जन्म-मरण का अन्त करने वाले १३ वें तीर्थंकर विमलनाथ का जन्म हुआ ।५११।

---

१ सागरोपमाणाम्—इत्यर्थः ।

नवहिं वियाण सुनव-चंपगप्पभं सागरोवमसमुप्पण्णं ।
तमणंतमयोज्झाए, विमलाओ गतिगयं विमलं ।५१२।
(नवभिर्विजानीहि सुनव-चम्पकप्रभं सागरोपमसमुत्पन्नम् ।
तमनंतमयोध्यायां, विमलात् गतिगतं विमलाम् ।)

विमलनाथ के पश्चात् ९ सागरोपम काल बीत जाने पर चम्पक-पुष्प के समान शरीर की कान्ति वाले तथा विमल गति को प्राप्त करने वाले चौदहवें तीर्थंकर अनन्तनाथ का अयोध्या में जन्म हुआ ।५१२।

चत्तारि अणंत जिणाओ, अंतरं जस्स उदहिनामाणं ।
रयणपुरे उप्पण्णं, अप्पडि[हय]धम्मं जिणं धम्मं ।५१३।
(चत्वारि अनन्त जिनात्, अन्तरं यस्य उदधिनाम्नाम् ।
रत्नपुरे उत्पन्नं, अप्रति[हत]धर्मं जिनं धर्मं ।)

अनन्तनाथ से ४ सागरोपम काल पश्चात् अनुपम धर्म वाले पन्द्रहवें तीर्थंकर अनन्तनाथ रत्नपुर में उत्पन्न हुए ।५१३।

तिहिं सागरोवमेहिं, ऊणाहि य गयपुरंमि संति जिणं ।
धम्माओ उप्पण्णं, तिहिं चउभाग पलिएहिं ।५१४।
(त्रिभिर्सागरोपमैः, ऊनैश्च गजपुरे शान्तिजिनं ।
धर्मात् उत्पन्नं, त्रिभिश्चतुर्भाग-पल्यैः ।)

धर्मनाथ के पश्चात् पौन पल्य कम ३ सागरोपम काल के व्यतीत होने पर गजपुर में सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ का जन्म हुआ ।५१४।

पलिओवमस्स अद्धे, संति जिणाओ य अंतरं होई ।
गयपुर [म्मि] उप्पण्णस्स, कुरुकुलतिलयस्स कुंथुस्स ।५१५।
(पल्योपमस्यार्द्धे, शान्तिजिनात् च अन्तरं भवति ।
गजपुरे उत्पन्नस्य, कुरुकुलतिलकस्य कुंथोः ।)

गजपुर में उत्पन्न हुए सत्रहवें तीर्थंकर कुरुकुल तिलक कुंथुनाथ का १६ वें तीर्थंकर शान्तिनाथ से अर्द्ध पल्योपम काल का अन्तर जानना चाहिये अर्थात् शान्तिनाथ से अर्द्ध पल्य पश्चात् कुंथुनाथ का जन्म हुआ । ५१५ ॥

पलिय चउब्भागेण य, कोडि सहस्सूणएण वासाणं ।
अर जिणवरं गयपुरे, कुंथुजिणाओ समुप्पण्णं ।५१६।
(पल्य चतुर्भागेन च कोटि सहस्र-ऊनेन वर्षाणाम् ।
अर जिनवरं गजपुरे, कुंथुजिनात् समुत्पन्नं)

कुन्थुनाथ से एक हजार करोड़ वर्ष कम पाव (एक चौथाई) पल्योपम काल व्यतीत होने पर गजपुर में अठारहवें तीर्थंकर अरनाथ का जन्म हुआ ।५१६।

मल्लिजिनं मिहिलाए, अराओ एकूणवीसमरिहंतं ।
जाणाहि समुप्पण्णं, कोडिसहस्सेण वासाणं ।५१७।
(मल्लिजिनं मिथिलायां, अरात् एकोनविंशमर्हतम् ।
जानीहि समुत्पन्नं, कोटिसहस्रेण वर्षाणाम् ।)

अरनाथ से एक हजार करोड़ वर्ष व्यतीत हो जाने पर मिथिला नगरी में उन्नीसवें तीर्थंकर मल्लिनाथ का जन्म हुआ समझना चाहिए ।५१७

मल्लिजिणा उप्पण्णं, चउपण्णवासाणसय सहस्सेहिं ।
मुणिसुव्वयं मुणिवरं, हरिवंसकुलम्मि रायगिहे ।५१८।
(मल्लिजिनात् उत्पन्नं चतुर्पञ्चाशत् वर्षाणां शतसहस्रैः ।
मुनि सुव्रतं मुनिवरं, हरिवंश कुले राजगृहे ।)

मल्लि जिनवर से ५४ लाख वर्ष पश्चात् राजगृह नगर में बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत का जन्म हरिवंश में हुआ ।५१८।

मिहिलाए नमि जिणिंदं, नवनवणीय सुकुमाल सव्वंगं ।
छव्वासपयसहस्सेहिं [मुणि] सुव्वयाउ समुप्पण्णं ।५१९।

(मिथिलायां नमि जिनेन्द्रः, नवनवनीत सुकुमाल-सर्वांगः ।
षड्वर्ष शतसहस्रैः, मुनिसुव्रतात्तु समुत्पन्नः ।)

तीर्थंकर सुव्रत (मुनिसुव्रत) के छः लाख वर्ष पश्चात् अभिनव नवनीत के समान सर्वांग सुकोमल इकवीसवें तीर्थंकर नमिनाथ का मिथिला में जन्म हुआ ।५१९।

वाससयसहस्साणं, पंचण्हपुव्ववीर कुलकेउं ।
सोरिय अरिट्ठनेमिं, दसारकुलनंदणं जाणे ।५२०।
(वर्षशतसहस्राणां, पंचभिर् पूर्ववीर कुलकेतुम् ।
शौरिं अरिष्टनेमिं, दशार्ह-कुल-नन्दनं जानीतः ।)

तीर्थंकर नमिनाथ मे पाच लाख वर्ष पश्चात् उत्पन्न हुए अपूर्व वीर कुल के केतु अथवा यदुवंश कुल केतु और दशार्हकुल के नन्दन बावीसवें तीर्थंकर नेमिनाथ को जानिये ।५२०।

तेमीइ सहस्सेहिं, मएहिं अद्धट्ठमेहिं वरिसा ।
नेमीओ समुप्पण्णं, वाणारसिमंभवं पासं ।५२१।
(त्र्यशीति-सहस्रैः शतैः अर्द्धाष्टभिर्वर्षैः ।
नेमीतः समुत्पन्नं, वाराणसिसंभवं पार्श्वम् ।)

अरिष्टनेमि से ८३७५० वर्ष पश्चात् वाराणसी नगरी में उत्पन्न हुए २३ वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ को जानिये ।५२१।

वाससएहिं वियाणह, अड्ढाइज्जेहिं नायकुलकेउं ।
पासाओ समुप्पण्णं, कुंडपुरंमि महावीरं ।५२२।
(वर्षशतैः विजानीथ, सार्द्ध द्विभिर्ज्ञातकुलकेतुम् ।
पार्श्वात् समुत्पन्नं, कुंडपुरे महावीरम् ।)

पार्श्वनाथ से २५० वर्ष पश्चात् (क्षत्रिय) कुंडपुर में उत्पन्न हुए ज्ञात कुल के केतु २४ वें (अन्तिम) तीर्थंकर महावीर को जानिये ।५२२।

जाव य उसभ जिणिंदो, जावेव य वद्धमाण जिणचंदो ।
अह सागरोवमाणं, कोडा कोडी भवे कालो ।५२३।
(यावच्च वृषभजिनेन्द्र. यावदेव च वर्द्धमान जिनचन्द्रः ।
अथ सागरोपमानां कोट्याकोटिः भवेत् कालः ।)

बायालीस सहस्सेहिं, ऊणि या वच्छराणा जाणाहि ।
एक्कं कोडा कोडि, उदहिसमाणाणमाणां [जुयलं] ।५२४।
(द्विचत्वारिंशत्सहस्रैः ऊनिताः वत्सराणां जानीहि ।
एकं कोट्याकोटिं उदधिसमानानां मानानाम् ।)

जिस समय तक प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव विद्यमान थे उस समय से लेकर जब तक अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर विद्यमान थे उस समय तक अर्थात् भगवान् ऋषभदेव के निर्वाण से भगवान् महावीर के निर्वाण तक (लगभग) एक कोटा कोटि सागरोपम काल होता है (उस काल को) ।५२३।

४२,००० वर्ष कम एक कोटा कोटि सागरोपम जानिये ।५२४।

पुरिम चरिमेसु अट्ठसु, अबोच्छिण्णं जिणेसु तित्थंति[1] ।
मज्झिमए सु य सत्तसु, वुच्छेओ एत्तियं कालं ।५२५।
(प्रथमचरमेषु अष्टसु, अविच्छिन्नं जिनेषु तीर्थम् ।
मध्यमेषु च सप्तसु व्युच्छेदः एतावद् कालम् ।)

प्रथम आठ और अन्तिम आठ–इन सोलह अन्तरालों में तीर्थंकरों के धर्म तीर्थ का कहीं विच्छेद नहीं हुआ, वह अबाध गति से निरन्तर चलता रहा । किन्तु मध्यमवर्ती आठ तीर्थंकरों—(सुविधिनाथ से शान्तिनाथ) के बीच के सात अन्तरालों में इतने (निम्नलिखित) काल तक तीर्थ की व्युच्छित्ति हुई :—।५२५।

---

१ अस्याः गाथायाः द्वितीय चरणे--'अबोच्छिण्णं जिणंतरेसु तित्थ त्ति''-इति पाठेन भाव्यम् ।

चउगभाग चउभागो तिण्णि, चउभाग पलियमेगं च ।
तिण्णेव चउभागा-चउत्थभागो य चउभागो ।५२६।
(चतुर्भागः चतुर्भागः, त्रीणि चतुर्भागो पल्योपमेकस्य ।
त्रीण्येव चतुर्भागानां, चतुर्थभागः चतुर्भागः ।)

चतुर्भाग—(१) सुविधिनाथ और शीतलनाथ के अन्तर काल में एक पल्योपम का चौथा भाग चतुर्भाग—(२) शीतलनाथ और श्रेयांसनाथ के अन्तराल के अन्तिम समय में एक पल्योपम का चौथा भाग (पाव पल्य), तिण्णि (तीन)---(३) श्रेयांसनाथ और वासुपूज्य के अन्तर के अन्तिम समय में एक पल्योपम के चार भागों में से तीन भाग अर्थात् पौन पल्य तक, चउभाग पलियमेगं च---(४) वासुपूज्य और विमलनाथ के अन्तराल के चरम समय में एक पल्योपम के चतुर्थ भाग अर्थात् पाव पल्य तक, तिण्णेव चउभागा-- (५) विमलनाथ और अनन्तनाथ के अन्तराल के अन्तिम भाग में पौन पल्य तक, चउत्थभागो---(६) अनन्तनाथ और धर्मनाथ के अन्तर काल के अन्तिम भाग में पाव पल्य तक, 'य चउभागो'---(७) और धर्मनाथ तथा शान्तिनाथ के अन्तराल अन्तिम भाग में पाव पल्य तक, इस प्रकार सात अन्तरालों में सब मिलाकर पौने तीन पल्योपम काल तक साधु-साध्वी-श्रावक श्राविका रूप चतुर्विध तीर्थ का विच्छेद रहा ।५२६।

एवं तु मए भणिया जिणंतरा जिणवरिंद चंदाणं ।
एत्तो परं तु वोच्छं, सिद्धिगया जाए वेलाए ।५२७।
(एवं तु मया भणिताः, जिनान्तराः जिनवरेन्द्रचन्द्राणाम् ।
इतः परं तु वक्ष्ये, सिद्धिं गता यस्यां वेलायाम् ।)

इस प्रकार मैंने तीर्थङ्करों के अन्तर काल का वर्णन किया। अब मैं तीर्थंकरों के मोक्षगमन की वेला का कथन करूंगा ।५२७।

उसभो य भरहवासे, बाल चंदाणणो य एरवए ।
दसवि य उत्तरसाढाहिं, पुव्वसूरंमि सिद्धिगया ।४२८।

(ऋषभश्च भरतवर्षे, बाल चन्द्राननश्च एरवते ।
दशोऽपि चोत्तराषाढायां, पूर्वसूर्ये सिद्धिं गताः ।)

पांच भरत क्षेत्रों में ऋषभदेव और पांच ऐरवत क्षेत्रों में बाल-चन्द्रानन---ये दशों तीर्थंकर पूर्वाह्ण की वेला में चन्द्र का उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के साथ योग होने पर सिद्धगति को प्राप्त हुए ।५२८।

अजिओ य भरहवासे, एरवयंमि सुचंदजिणचंदो ।
रोहिणि जोगे दस विय, सिद्धि गया पुव्वसूरंमि ।५२९।
(अजितश्च भरतवर्षे, एरवते सुचन्द्र जिनचन्द्रः ।
रोहिणि योगे दशोऽपि च, सिद्धिं गताः पूर्वसूर्ये ।)

पांच भरत क्षेत्रों में तीर्थंकर अजितनाथ और पांच ऐरवत क्षेत्रों में सुचंद नाम के इन दशों ही तीर्थंकरों ने चन्द्र का रोहिणी नक्षत्र के साथ योग होने पर पूर्वाह्ण वेला में मुक्ति गमन किया ।५२९।

अभिनंदणो य भरहे, एरवए य नंदिसेण जिणचंदो ।
दसवि पुणव्वसु जोगे, सिद्धि गया पुव्वसूरंमि ।५३०।
(अभिनन्दनश्च भरते, एरवते च नन्दिषेण जिनचन्द्रः ।
दशोऽपि पुनर्वसु योगे, सिद्धिं गताः पूर्वसूर्ये ।)

पांच भरत क्षेत्रों के अभिनन्दन और पांच ऐरवत क्षेत्रों के नंदिषेण--इन दशों ही तीर्थंकरों ने चन्द्र का पुनर्वसु नक्षत्र के साथ योग होने पर पूर्वाह्ण वेला में सिद्धगति प्राप्त की ।५३०।

*सुमती य भरहवासे, इसिदिन्न जिणोअ एरवयवासे ।
दस वि जिणेउ मघाहिं, सिद्धि गया पुव्वसूरंमि ।५३२।
(सुमतिश्च भरतवर्षे, ऋषिदत्त जितश्चैरवत वर्षे ।
दशोऽपि जिनास्तु मघायां, सिद्धिं गताः पूर्वसूर्ये ।)

भरत क्षेत्र में सुमतिनाथ और ऐरवत में इसि दिन्न इन दशों

---

* गाथासंख्यालेखने लिपिकेन कपि त्रुटि कृतेति प्रतिभाति ।

तीर्थंकरों ने चन्द्र का मघा नक्षत्र के साथ योग होने पर पूर्वाह्ण की वेला में सिद्ध गति प्राप्त की ।५३२।

भरहे य सुपास जिणो, एरवए सोमचंद जिण चंदो ।
दसवि विसाहाजोगे, सिद्धि गये पुव्वसूरंमि ।५३३।
(भरते च सुपार्श्वजिन, एरवते सोमचन्द्र जिनचन्द्रः ।
दशोऽपि विषाखा योगे, सिद्धिं गताः पूर्वसूर्ये ।)

पांच भरत क्षेत्रों में सुपार्श्व और पांच ऐरवत क्षेत्रों में सोमचंद---ये दशों ही तीर्थंकर पूर्वाह्ण में चन्द्र का विशाखा नक्षत्र के साथ योग होने पर सिद्ध गति में गये ।५३३।

चंदप्पभो य भरहे, एरवए दीहसेण जिणचंदो ।
दसवि अणुराह जोगे, सिद्धि गया पुव्वसूरंमि ५३४।
(चन्द्रप्रभश्च भरते, ऐरवते दीर्घषेण जिनचन्द्रः ।
दशोऽप्यनुराधायोगे, सिद्धिं गताः पूर्वसूर्ये ।)

भरत क्षेत्र में चन्द्रप्रभ और ऐरवत क्षेत्र में दीर्घसेन---ये दशों तीर्थंकर चंद्र का अनुराधा नक्षत्र के साथ योग होने पर पूर्वाह्ण की वेला में सिद्ध गति प्राप्त की ।५३४।

भरहे य सीयल जिणो, एरवए सुव्वइ जिणवरिंदो ।
दसवि दगदेवयाएं, सिद्धि गया पुव्वसूरंमि ।५३५।
(भरते च शीतलजिनः, ऐरवते सुव्रतीजिनवरेन्द्रः ।
दशोऽपि उदक् देवतायां, सिद्धिं गताः पूर्वसूर्ये ।)

भरत क्षेत्र में शीतलनाथ और ऐरवत क्षेत्र में सुव्रती इन दशों तीर्थंकरों ने चन्द्र का उदक देवता अर्थात् पूर्वाषाढा नक्षत्र के साथ योग होने पर पर्वाह्ण वेला में सिद्धिगमन किया ।५३५।

भरहे य संभवजिणो, एरवए अग्गिसेण जिणचंदो ।
मिगसिर जोगे दसवि, सिद्धि गया अवर सूरंमि ।५३६।

(भरते च संभवजिनः, ऐरवते अग्निषेण जिनचन्द्रः ।
मृगशीर्ष योगे दशाऽपि, सिद्धिं गता अपरसूर्ये)

भरत क्षेत्र में संभवनाथ तथा ऐरवत क्षेत्र में अग्निसेन-इन दशों तीर्थंकरों ने अपराह्ण की वेला में चन्द्र का मृगशिरा नक्षत्र के साथ योग होने पर सिद्ध गति प्राप्त की ।५३६।

*पउमप्पभो य भरहे, वयधारि जिणो य एरवयवासे ।
दसवि मघा जोएणं, सिद्धि गया अवरसूरंमि ।५३७।
(पद्मप्रभश्च भरते, वयधारीजिनश्चैरवतवर्षे ।
दशाऽपि मघा योगेन, सिद्धिं गता अपरसूर्ये ।)

भरत क्षेत्र में पद्मप्रभ और ऐरवत क्षेत्र में वयधारी (वयरधारी-रवयधारी-खयधारी) इन दशों तीर्थङ्करों ने चन्द्र का मघा नक्षत्र के साथ योग होने पर अपराह्ण की वेला में मुक्ति गमन किया ।५३७।

*सुविही य भरहवासे, एरवयंमि य सयाउ जिणचंदो ।
दसवि जिणा मूलेणं, सिद्धि गया अवरसूरंमि ।५३७।
(सुविधिश्च भरतवर्षे, ऐरवते च शतायुः जिनचन्द्रः ।
दशाऽपि जिनाः मूलेन, सिद्धिं गता अपरसूर्ये ।)

भरत क्षेत्र में सुविधिनाथ और ऐरवत क्षेत्र में शतायु- ये दशों तीर्थङ्कर मूल नक्षत्र के योग में अपराह्ण की वेला में सिद्ध गति को प्राप्त हुए ।५३७।

भरहे य वासुपुज्जो, सेज्जंसि जिणो य एरवयवासे ।
दसवि जिणा समणेणं सिद्धिं गया अवरसूरम्मि ।५३८।
(भरते च वासुपूज्यः श्रेयांस जिनश्च ऐरवतवर्षे ।
दशाऽपि जिनाः श्रवणेन, सिद्धिं गता अपरसूर्ये ।)

भरत में वासुपूज्य तथा ऐरवत क्षेत्र में श्रेयांस—ये दशों

*५३१ संख्यायाः लेखने लिपिकेन या त्रुटि कृता सात्र परिमार्जितव्य ।

तीर्थङ्कर चन्द्र का श्रवण नक्षत्र के साथ योग होने पर अपराह्ण में सिद्धगति को प्राप्त हुए ।५३८।

एते चत्तालीसं, अट्ठमयठाणे निट्ठवियकम्मा ।
दससुवि वासेसेवं, सिद्धि गया अवरसूरम्मि ।५३९।
(एते चत्वारिंशत्, अष्टमदस्थाने निष्ठापितकर्माणः ।
दशष्वपि वर्षेष्वेवं, सिद्धिं गता अपरसूर्ये ।)

दशों ही क्षेत्रों में ये चालीस तीर्थंकर इस प्रकार आठों मद-स्थानों में समस्त कर्मों को समूल नष्ट कर अपराह्ण वेला में सिद्ध गति को प्राप्त हुए ।५३९।

विमलोय भरहवासे, एरवए सीहसेण जिणचंदो ।
उत्तरभद्दव दसवि, सिद्धिं गया पुव्वरत्तंमि ५४०।
(विमलश्च भरतवर्षे, ऐरवते सिंहषेण जिनचन्द्रः ।
उत्तराभाद्रपदायां दशाऽपि, सिद्धिं गताः पूर्वरात्रौ ।)

भरत क्षेत्र में विमलनाथ और ऐरवत क्षेत्र में सिंहसेन—ये दशों तीर्थंकर चन्द्र का उत्तर भाद्रपदा नक्षत्र के साथ योग होने पर पूर्वरात्रि में सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हुए ।५४०।

भरहे अणंतइ जिणो, एरवए असंजलो जिणवरिंदो ।
रेवइ जोगे दसवि, सिद्धि गया पुव्वरत्तंमि ।५४१।
(भरते अनन्त जिनः ऐरवते असंजल जिनवरेन्द्रः ।
रेवतीयोगे दशाऽपि, सिद्धिं गताः पूर्वरात्रौ ।)

भरत क्षेत्र में अनन्तनाथ और ऐरवत क्षेत्र में असंजल--ये दशों तीर्थंकर रेवती नक्षत्र के योग में पूर्वरात्रि की वेला में सिद्धगति को प्राप्त हुए ।५४१।

संती य भरहवासे, एरवए दीहासणो जिणचंदो ।
भरणीजोगे दसवि, सिद्धि गया पुव्वरत्तंमि ।५४२।

(शान्तिश्च भरतवर्षे, ऐरवते दीर्घासन-जिनचन्द्रः ।
भरणी योगे दशाऽपि, सिद्धिं गताः पूर्वरात्रौ ।)

भरत क्षेत्र में शान्तिनाथ और ऐरवत क्षेत्र में दीर्घासन---ये दश तीर्थंकर भरणी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर पूर्व-रात्रि में निर्वाण को प्राप्त हुए ।५४२।

कुंथू य भरहवासे, एरवयंमि य महाहि लोगबलो ।
कित्तिय जोगे दसवि, सिद्धि गया पुव्वरत्तंमि ।५४३।
(कुंथुश्च भरतवर्षे, ऐरवते च महा हि लोकबलः ।
कृत्तिकायोगे दशाऽपि, सिद्धिं गताः पूर्वरात्रौ ।)

भरत क्षेत्र में कुन्थुनाथ और ऐरवत क्षेत्र में महाहि लोकबल---इन दश तीर्थंकरों ने चन्द्र का कृतिका नक्षत्र के साथ योग होने पर पूर्वरात्रि में सिद्ध गति प्राप्त की ।५४३।

मल्लिजिणिंदो भरहे, मरुदेवी जिणो य एरवए वासे ।
रेवइ जोगे दसवि, सिद्धि गया पुव्वरत्तंमि ।५४४।
(मल्लिजिनेन्द्रः भरते, मरुदेवी जिनश्चैरवते वर्षे ।
रेवतीयोगे दशाऽपि, सिद्धिं गताः पूर्वरात्रौ ।)

भरत क्षेत्र में मल्लिनाथ ने और ऐरवत क्षेत्र में मरुदेवी---इन दश तीर्थंकरों ने चन्द्रमा का रेवती नक्षत्र के साथ योग होने पर रात्रि के पूर्व भाग में सिद्ध गति प्राप्त की ।५४४।

मुणि सुव्वओय भरहे, एरवयंमि य धरो [वरो] जिणवरिंदो ।
सवणेण दसजिणिंदा, सिद्धि गया पुव्वरत्तंमि ।५४५।
(मुनि सुव्रतश्च भरते ऐरवते च धरः [वरः] जिनवरेन्द्रः ।
श्रवणेन दशजिनेन्द्राः, सिद्धिं गताः पूर्वरात्रौ ।)

मुनि सुव्रत ने भरत में और धर नामक जिनेन्द्र ने ऐरवत क्षेत्र में—इस प्रकार दश तीर्थंकरों ने श्रवण नक्षत्र के योग में, पूर्व रात्रि में सिद्धि प्राप्त की ।५४५।

भरहे अरिट्ठनेमी, एरवए अग्गिसेण जिणचंदो ।
दसवि जिणा चित्ताहिं, सिद्धि गया पुव्वरत्तंमि ।५४६।
(भरते अरिष्टनेमी, ऐरवते अग्निषेण जिनचन्द्रः ।
दशाऽपि जिनाः चित्रायां, सिद्धिं गताः पूर्वरात्रौ ।)

भरत क्षेत्र में अरिष्टनेमि और ऐरवत क्षेत्र में अग्निसेन—इन दश तीर्थंकरों ने पूर्वरात्रि में चन्द्र का चित्रा नक्षत्र के साथ योग होने पर सिद्ध गति प्राप्त की ।५४६।

पासो य भरहवासे, एरवए अग्गिदत्त[उत्त]जिणचंदो ।
दसवि विसाहा जोगे, सिद्धि गया पुव्वरत्तंमि ।५४७।
(पार्श्वश्च भरतवर्षे, ऐरवते अग्निदत्त-जिनचन्द्रः ।
दशाऽपि विशाखा योगे, सिद्धिं गताः पूर्वरात्रौ ।)

भरत क्षेत्र में पार्श्वनाथ और ऐरवत क्षेत्र में अग्निदत्त—इन दश तीर्थंकरों ने पूर्व रात्रि की वेला में चन्द्र का विशाखा नक्षत्र के साथ योग होने पर सिद्धि गमन किया ।५४७

एवमसीति जिणिंदा, अट्ठमयट्ठाणनिट्ठवियकम्मा ।
दससुवि खेत्ते सेए, सिद्धि गया पुव्वरत्तंमि ।५४८।
(एवमशीतिः जिनेन्द्राः, अष्ट मदस्थान निष्ठापित कर्माणः ।
दशष्वपि क्षेत्रेष्वेते, सिद्धिं गताः पूर्वरात्रौ ।

इस प्रकार पांच भरत और पांच ऐरवत क्षेत्रों के इस अवसर्पिणी काल के ८० तीर्थंकर आठों मदस्थानों के समस्त कर्मों को निश्शेष कर पूर्व रात्रि की वेला में सिद्ध गति को प्राप्त हुए ।५४८।

धम्मो य भरहवासे, उवसंत जिणो य एरवय वासे ।
दसवि जिणा पुस्सेणं, सिद्धि गया अवररत्तंमि ।५४९।
(धर्मश्च भरतवर्षे, उपशान्तजिनश्चैरवतवर्षे ।
दशाऽपि जिनाः पुष्येण, सिद्धि गताः अपररात्रौ ।)

भरत क्षेत्र में धर्मनाथ और ऐरवत क्षेत्र में उपशान्त--ये दश तीर्थंकर चन्द्र का पुष्य नक्षत्र के साथ योग होने पर पश्चिम रात्रि में सिद्ध गति में गये ५४६।

अर जिणवरो य भरहे, अइपास जिणो य एरवयवासे ।
रेवइ जोगे दसमी, सिद्धि गया अवररत्तंमि ।५५०।
(अर जिनवरश्च भरते, अतिपार्श्व जिनश्चैरवतवर्षे ।
रेवतीयोगे दशामी, सिद्धिं गता अपररात्रौ ।)

भरत क्षेत्र में अरनाथ और ऐरवत क्षेत्र में अतिपार्श्व--ये दश तीर्थंकर चन्द्र के साथ रेवती नक्षत्र का योग होने पर अपर रात्रि के परार्द्ध में मोक्ष पधारे ।५५०।

नमि जिणचन्दो भरहे, एरवए सामकोट्ठ जिणचंदो ।
अस्सिणिजोगे दसवि, सिद्धि गया अवररत्तंमि ।५५१।
(नमिजिनचन्द्रः भरते, ऐरवते श्यामकोष्ठजिनचन्द्रः ।
अश्विनीयोगे दशाऽपि, सिद्धिं गता अपर रात्रौ)

भरत क्षेत्र में नमिनाथ और ऐरवत क्षेत्र में श्यामकोष्ठ—ये दश तीर्थंकर चन्द्र और अश्विनी नक्षत्र का योग होने पर रात्रि के परार्द्ध में सिद्ध हुए ।५५१।

भरहे य वद्धमाणो, एरवए वारिसेण जिणचंदो ।
दसवि य साती जोगे, सिद्धि गया अवररत्तंमि ।५५२।
(भरते च वर्द्धमान, ऐरवते वारिषेणजिनचन्द्रः ।
दशाऽपि च स्वातियोगे, सिद्धिं गता अपररात्रौ ।)

भरत क्षेत्र में वर्द्धमान और ऐरवत में वारिषेण—ये दश तीर्थंकर अपर रात्रि के समय चन्द्र का स्वाति नक्षत्र के साथ योग होने पर सिद्धि में गये ।५५२।

एते चत्तालीसं दससु विवासेसु खीणसंसारा ।
सव्वे ते केवलिणो, सिद्धि गया अवररत्तंमि ।५५३।

(एते चत्वारिंशत्, दशष्वपि वर्षेषु क्षीणसंसाराः ।
सर्वे ते केवलिनः, सिद्धिं गता अपररात्रौ ।)

पांच भरत और पांच ऐरवत इन दशों क्षेत्रों के इस अवसर्पिणी काल के उपरि नामोल्लिखित चालीसों जन्म-मरण मुक्त केवली-तीर्थंकर पश्चिम रात्रि की वेला में मोक्ष पधारे ।५५३।

उसभो य भरहवासे, बाल चंदाणणो य एरवए ।
दसवि निसिज्जोवगया, दससुवि खेत्तेसु सिद्धि गया ।५५४।
(ऋषभश्च भरतवर्षे, बालचन्द्राननश्च ऐरवते ।
दशाऽपि निषिद्योपगता, दशस्वपि क्षेत्रेषु सिद्धिं गताः ।)

भरत क्षेत्र में ऋषभदेव और ऐरवत क्षेत्र में बालचन्द्रानन ये दशों क्षेत्रों के दशों ही तीर्थंकर निषिद्या में विराजमान अर्थात् पर्यंकासन से सिद्ध हुए ।५५४।

भरहे अरिट्ठनेमि, एरवए अग्गिसेण जिणचन्दो ।
दसवि निसिज्जोवगया, दससुवि खेत्तेसु सिद्धिगया ।५५५।
(भरते अरिष्टनेमि, ऐरवते अग्निसेन-जिनचन्द्रः ।
दशाऽपि निषिद्योपगताः, दशस्वपि क्षेत्रेषु सिद्धिं गताः ।)

भरत क्षेत्र में अरिष्टनेमि और ऐरवत क्षेत्र में तीर्थंकर अग्निसेन—ये दशों क्षेत्रों के दशों तीर्थंकर निषिद्या में विराजमान अर्थात् पर्यंकासन से मोक्ष गये ।५५५।

भरहे य वद्धमाणो, एरवए वारिसेण जिणचन्दो ।
दसवि निसिज्जोवगया, दससुवि खेत्तेसु सिद्धि गया ।५५६।
(भरते च वर्द्धमान, ऐरवते वारिषेणजिनचन्द्रः ।
दशापि निषिद्योपगताः, दशस्वपि क्षेत्रेषु सिद्धिं गताः ।)

भरत क्षेत्र में वर्द्धमान और ऐरवत क्षेत्र में वारिषेण—दशों क्षेत्रों के ये दशों तीर्थंकर निषिद्या में विराजमान-पर्यंकासन से मोक्ष पधारे ।५५६।

[स्पष्टीकरण :—दशों क्षेत्रों के इस चौवीसी के २४० तीर्थंकरों में से इस प्रकार उपरि चर्चित ३० तीर्थंकर निषिद्या---पर्यंकासन से सिद्ध हुए।]

दोण्णि सया उ दहुत्तर, जिणवर चंदाण केवलीणं तु ।
दससु वि वासेसु सेसा, वाघारियपाणिणो सिद्धा ।५५७।
(द्वे शते तु दशोत्तर, जिनवरचन्द्राणां केवलिनां तु ।
दशस्वपि वर्षेषु शेषाः व्याधारितपाणयः सिद्धाः ।)

दशों क्षेत्रों के अवशिष्ट २१० केवलज्ञानी जिनेश्वर व्याधारित-पाणि (प्रलम्बभुज) अर्थात् कायोत्सर्ग मुद्रा में सिद्ध हुए।५५७।

चंदाणण उसभजिणो, आइगरा चोद्दसेण भत्तेण ।
एते य दसवि सिद्धा, दससु वि वासेसु जिणचंदा ।५५८।
(चन्दानंनः ऋषभजिनः आदिकराश्चतुर्दशेन भक्तेन ।
एते च दशाऽपि सिद्धा, दशस्वपि वर्षेषु जिनचन्द्राः ।)

चन्द्रानन और ऋषभ देव क्रमशः पांच ऐरवत और पांच भरत इन दशों क्षेत्रों में धर्म को आदि करने वाले ये १० तीर्थंकर दशों क्षेत्रों में चतुर्दश भक्त अर्थात् छः उपवासों की तपस्या से सिद्ध हुए।५५८। (५५९ वीं गाथा मूल प्रति में नहीं है।)

भरहे य वद्धमाणो, एरवए वारिसेण जिणचन्दो ।
छट्ठेण दसविसिद्धा, दससु विवासेसु जिणचंदा ।५६०।
(भरते च वर्द्धमानः, ऐरवते वारिषेणजिनचन्द्रः ।
षष्ठेन दशाऽपि सिद्धाः, दशस्वपि वर्षेषु जिनचन्द्राः ।)

भरत क्षेत्र में वर्द्धमान और ऐरवत क्षेत्र में वारिषेण ये दशों तीर्थंकर दशों क्षेत्रों में षष्ठ भक्त अर्थात् दो उपवासों की तपस्या से सिद्ध गति को प्राप्त हुए।५६०।

(स्पष्टी करणः--इस प्रकार ढाई द्वीप के ५ भरत और ५ ऐरवत इन दश क्षेत्रों में प्रवर्तमान अवसर्पिणी काल के २४० तीर्थंकरों में से ऋषभादि दश प्रथम तीर्थंकर ६ उपवासों की तपस्या से सिद्ध हुए।)

दोण्णिसया वीसोत्तर, तित्थयराणं तु लोगनाहाणं ।
दससुवि वासेसु सेसे, मासिय भत्तेण सिद्धि गया ।५६१।
(द्विशताः विंशोत्तराणि तीर्थंकराणां तु लोकनाथानाम् ।
दशष्वपि वर्षेषु शेषाः, मासिकभक्तेन सिद्धिं गताः ।)

दशों क्षेत्रों की १० चौबीसियों के २४० तीर्थंकरों में उपरि-वर्णित २० तीर्थङ्करों को छोड़ कर शेष २२० त्रैलोक्यनाथ तीर्थङ्कर दशों क्षेत्रों में मासोपवास के तप से सिद्ध हुए ।५६१।

अट्ठावयंमि उसभो, सिद्धिगओ भारहंमि वासंमि ।
चंदाणण एरवए, सिद्धिगया मेहकूडंमि ।५६२।
(अष्टापदे ऋषभः, सिद्धिंगतः भारते वर्षे ।
चन्द्रानन-ऐरवते, सिद्धिं गताः मेघकूटे ।)

भरत क्षेत्र में भगवान् ऋषभदेव अष्टापद पर्वत पर सिद्ध हुए और ऐरवत क्षेत्र में चन्द्रानन (प्रथम तीर्थंकर) मेघकूट पर्वत पर सिद्ध गति को प्राप्त हुए ।५६२।

संमेयंमि जिणिंदा, वीसं परिनिव्वुया भरहवासे ।
एरवए सुपइट्ठे, वीसं मुणिपुंगवा सिद्धा ।५६३।
(सम्मेते जिनेन्द्राः, विंशतिः परिनिर्वृता भरतवर्षे ।
ऐरवते सुप्रतिष्ठे, विंशति मुनिपुंगवाः सिद्धाः ।)

भरत क्षेत्र में २० तीर्थङ्कर सम्मेत गिरि पर और ऐरवत क्षेत्र में सुप्रतिष्ठ पर्वत पर बीस तीर्थंङ्कर सिद्ध गति को प्राप्त हुए ।५६३।

चंपाए वासुपुज्जो, सिद्धिं गतो भारहंमि वासंमि ।
एरवए सेज्जंसो, सिद्धिं गतो नाग नगरीए ।५६४।
(चंपायां वासुपूज्यः सिद्धिं गतः [वित्तकूटे] भारते वर्षे ।
ऐरवते श्रेयांशः, सिद्धिं गतः नाग नगर्याम् ।)

भरत क्षेत्र में भगवान् वासुपूज्य चम्पानगरी में तथा ऐरवत क्षेत्र में भगवान् श्रेयांसनाथ नाग नगरी में सिद्ध गति को प्राप्त हुए ।५६४।

हरिवर कुलनंदिकरो, उज्जंते निव्वुओ जिणो नेमी ।
एरवए अग्गिसेणो, सिद्धि गतो वित्तकूडंमि ।५६५।
(हरिवंशकुलनन्दिकरः, उज्जयन्ते निर्वृतो जिनो नेमी ।
ऐरवते अग्निषेणः, सिद्धिं गतः वित्तकूटे ।)

(भरत क्षेत्र में) श्रेष्ठ हरिवंश को आनन्दित करने वाले अरिष्टनेमि उज्जयंत पर्वत पर तथा ऐरवत क्षेत्र में तीर्थङ्कर अग्निषेण चित्रकूट पर्वत पर सिद्ध गति को प्राप्त हुए ।५६५।

पावाए वद्धमाणो, सिद्धि गतो भारहंमि वासंमि ।
एरवए वारिसेणो, सिद्धो कमलुज्जलु पुरीए ।५६६।
(पावायां[अपापायां] वर्द्धमानः, सिद्धिं गतः भारते वर्षे ।
ऐरवते वारिषेणः, सिद्धः कमलुज्वलपुर्याम् ।)

भरत क्षेत्र में भगवान् महावीर पावा में मोक्ष पधारे। ऐरवत क्षेत्र में तीर्थंकर वारिसेन कमलोज्वल पुरी में सिद्ध गति को प्राप्त हुए ।५६६।

अट्ठण्हं जणणीओ, तित्थगराणं तु होंति सिद्धाउ ।
अट्ठ य सणं कुमारे, माहिंदे अट्ठबोधव्वा ।५६७।
(अष्टानां जनन्यः, तीर्थकराणां तु भवन्ति सिद्धास्तु ।
अष्टौ च सनत्कुमारे, माहेन्द्रे अष्ट बोद्धव्याः ।)

भगवान् ऋषभदेव से चन्द्रप्रभ पर्यन्त प्रथम आठ तीर्थङ्करों की माताएं सिद्ध गति को प्राप्त हुईं। सुविधिनाथ से शान्तिनाथ तक आठ तीर्थङ्करों की माताएं सनत्कुमार नामक तृतीय लोक में तथा शेष कुन्थुनाथ से महावीर तक अन्तिम आठ तीर्थङ्करों की जननियां माहेन्द्र नामक चतुर्थ देवलोक में उत्पन्न हुईं ।५६७।

नागेसुं उसभपिया, सेसाणं सत्तण्हं ति ईसाणे ।
अट्ठ य सणंकुमारे, माहिंदे अट्ठ बोधव्वा ।५६८।
(नागेषु ऋषभपिता, शेषानां सप्तानां तु ईशाने ।
अष्टौ च सनत्कुमारे, माहेन्द्रेऽष्टौ बोधव्याः ।)

भगवान् ऋषभदेव के पिता नाभिकुलकर भवनपति देवों की नागकुमार नामक द्वितीय निकाय के देवों में, अजितनाथ से चन्द्रप्रभ तक सात तीर्थङ्करों के पिता ईशान नामक दूसरे देवलोक में सुविधिनाथ से शान्तिनाथ तक —इन आठ तीर्थंकरों के पिता सनत्कुमार नामक तृतीय देव लोक में, तथा शेष आठ (कुन्थुनाथ से महावीर तक) तीर्थंकरों के पिता माहेन्द्र नामक चतुर्थ स्वर्ग में उत्पन्न हुए—जानना चाहिये ।५६८।

(स्पष्टीकरण :--अनुयोग द्वार और त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र में अजितनाथ के पिता महाराज जित शत्रु का मोक्ष गमन मना है जब कि प्रवचन सारोद्धार आदि ग्रन्थों में इनका ईशान स्वर्ग में उत्पन्न होना माना है ।)

तित्थंकर पढमघरे, भणिया वत्तव्वया समासेणं ।
एत्तो घरंमि बीए, वोच्छं चक्कीण उद्देशं ।५६९।
(तीर्थंकर प्रथम गृहे, भणिता वक्तव्यता समासेन ।
इतः गृहे द्वितीये, वक्ष्यामि चक्रीणामुद्देशम् ।)

वाम से दक्षिण की ओर २७ घरों तथा ऊपर से नीचे पांच पंक्तियों में २७ घरों से बने उपर्युक्त तीर्थंकर चक्री और केशवों के यन्त्र में तीर्थंकरों के प्रथम घर (कोष्ठकों) की वक्तव्यता का संक्षेपतः कथन किया गया । अब चक्रवर्तियों के सम्बन्ध में कथन करूंगा ।५६९।

भरहो सगरो मघवं, सणंकुमारो य राय सद्दूलो ।
संती कुंथु य अरो, हवइ सुभूमो य कोरव्वो ।५७०।
(भरतः सगरो मघवा, सनत्कुमारश्च राजशार्दूलः ।
शान्तिः कुंथुश्च अरः, भवति सुभूमश्च कौरव्यः ।)

भरत, सगर, मघवा नृपशार्दूल सनत्कुमार, शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, कुरुवंशी सुभूम--५७०।

नवमो य महापउमो, हरिसेणो चेव राय सद्दूलो।
जय नामो य नरवती, बारसमो बंभदत्तो य ।५७१।
(नवमश्च महा पद्मः, हरिषेणश्चैव राजशार्दूलः।
जय नामा च नर पतिः, द्वादशमः ब्रह्मदत्तश्च ।)

नौवें चक्रवर्ती महापद्म, नृपशार्दूल हरिषेण नृपति जय और बारहवें चक्री ब्रह्मदत्त---ये १२ चक्रवर्ती हुए ।५७१।

उसभे भरहो अजिए, सगरो मघवं सणंकुमारो य।
धम्मस्स य संतिस्स य, जिणंतरे चक्कवट्टि दुगं ।५७२।
(ऋषभे भरतोऽजिते सगरो, मघवासनत्कुमारौ च।
धर्मस्य च शान्तेश्च, जिनान्तरे चक्रवर्ति द्विकम् ।)

प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव के समय में भरत तथा द्वितीय चक्रवर्ती सगर हुए। तीसरे चक्रवर्ती मघवा और चौथे चक्रवर्ती सनत्कुमार ये दो चक्री पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ तथा सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ के अन्तराल में हुए ।५७२।

संती कुंथू य अरो, अरहंता चेव चक्कवट्टी य।
अर मल्लि अंतरंमिउ, हवइ सुभूमो य कोरव्वो ।५७३।
(शान्तिः कुंथुश्च अरः, अर्हन्ताश्चैव चक्रवर्तिनश्च।
अरमल्लि-अंतरे तु, भवति सुभूमश्च कौरव्यः ।)

शान्तिनाथ, कुंथुनाथ और अरनाथ ये तीनों क्रमशः सोलहवें, सत्रहवें एवं अठारहवें तीर्थंकर होने के साथ साथ क्रमशः पांचवें, छट्ठे तथा सातवें चक्रवर्ती भी थे। तीर्थंकर एवं चक्री भगवान् अरनाथ और १९ वें तीर्थंकर मल्लिनाथ के अन्तर काल में आठवें चक्रवर्ती कौरव्य सुभूम हुए ।५७३।

मुणिसुव्वये महपउमो, नमिमि हरिसेण होइ बोधव्वो ।
नमि नेमि अंतरे जयो, अरिट्ठ पासंतरे बंभो ।५७४।
(मुनिसुव्रते महापद्मः, नमौ हरिषेणो-भवति बोधव्यः ।
नमिनेम्यन्तरे जय, अरिष्टपार्श्वान्तरे ब्रह्म ।)

बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत के समय में नौवें चक्रवर्ती महापद्म, इकवीसवें तीर्थंकर नमिनाथ के समय में दशवें चक्रवर्ती हरिषेण, इकवीसवें तीर्थंकर नमिनाथ तथा बावीसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि के अन्तरकाल में ग्यारहवें चक्री जय और बावीसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि तथा तेवीसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के अन्तराल में बारहवें चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त हुए ।५७४।

अट्ठेव गया मोक्खं, सुहुमो बंभो य सत्तमिं पुढविं ।
मघवं सणंकुमारो, सणंकुमारं गया कप्पं ।५७५।
(अष्टावेव गताः मोक्षं, सुभूमो ब्रह्मश्च सप्तमां पृथिवीम् ।
मघवासनत्कुमारौ, सनत्कुमारं गताः कल्पम् ।)

आठ चक्रवर्ती-- (भरत, सगर, शान्तिनाथ कुंथुनाथ, अरनाथ, महापद्म, हरिषेण और जय) मोक्ष में गये । सुभूम और ब्रह्मदत्त ये दो चक्री सातवीं पृथ्वी (नरक) में गये । मघवा और सनत्कुमार ये दो चक्रवर्ती सनत्कुमार नामक तीसरे कल्प (स्वर्ग) में गये ।५७५।

छक्खण्ड भरहसामी, बारस चक्कीउ तेउ निद्दिट्ठा ।
एत्तो परं तु वोच्छं, भरहद्धनराहिवा सव्वो ।५७६।
(षट्खण्ड भरतस्वामिनः द्वादशचक्रिणस्ते तु निर्दिष्टाः ।
इतः परं तु वक्ष्यामि, भरतार्द्ध नराधिपान् सर्वान् ।)

भरत क्षेत्र के छहों खण्डों के स्वामी बारह चक्रवर्तियों के सम्बन्ध में मैंने निर्देश किया । अब आगे मैं अर्द्ध-भरत अर्थात् भरत क्षेत्र के तीन खण्डों के नरेन्द्र ९ वासुदेवों के सम्बन्ध में कथन करूंगा ।५७६।

तिविट्ठू य दुविट्ठू य, सयंभु पुरिसुत्तमे पुरिससीहे ।
तह पुरिस-पुंडरीए, दत्ते नारायणे कण्हे ।५७७।
(त्रिपृष्ठश्च द्विपृष्ठश्च, स्वयंभूः पुरुषोत्तमः पुरुषसिंहः ।
तथा पुरुष-पुण्डरीकः, दत्तः नारायणः कृष्णः ।)

त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंभू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुष पुण्डरीक, दत्त, नारायण और कृष्ण---ये ९ वासुदेव (प्रवर्तमान अवसर्पिणी काल में) भारतवर्ष में हुए ।५७७।

अयले विजए भद्दे, सुप्पभे य सुदंसणे ।
आणंद नंदण पउमे, रामे यावि अपच्छिमे ।५७८।
(अचलः विजयः भद्रः, सुप्रभश्च सुदर्शनः ।
आनन्दः नन्दनः पद्मः, रामश्चाप्यपश्चिमः ।)

अचल, विजय, भद्र, सुप्रभ, सुदर्शन, आनन्द, नन्दन, पद्म और अन्तिम नौवें राम (बलराम)---ये ९ बलदेव हुए ।५७८।

पुत्तो पयावइस्स, मियावई कुच्छिंसि संभवो भयवं ।
नामेण विय-तिविट्ठू, आदी आसी दसाराणं ।५७९।
(पुत्रः प्रजापतेः, मृगावती कुक्षौ संभवः भगवान् ।
नाम्नापि च त्रिपृष्ठः आदिरासीत् दशार्हाणाम् ।)

महाराज प्रजापति के पुत्र, मृगावती की कुक्षि से उत्पन्न भगवान् (प्रभु महावीर का जीव होने के कारण संभवतः यहां महासम्मान सूचक भगवं शब्द का प्रयोग त्रिपृष्ठ के लिये किया गया है) नाम से भी जो त्रिपृष्ठ थे वे दशार्हों के आदि पुरुष थे ।५७९।

पुत्तो पयावतिस्स, भद्दा[या]अयलो वि कुच्छि संभूतो ।
गरुय पडिवक्ख महणा, तिविट्ठु अयलो त्ति दो विजणा ।५८०।
(पुत्रः प्रजापतेः, भद्राया अचलोऽपि कुक्षि संभूतः ।
गुरु प्रतिपक्षमथनौ, त्रिपृष्ठाचला विति द्वावपि जनौ ।)

प्रथम बलदेव अचल भी प्रजापति के ही पुत्र थे। उनका जन्म प्रजापति की बड़ी रानी भद्रा की कुक्षि से हुआ था। त्रिपृष्ठ और अचल---दोनों भाई महाबलशाली शत्रु सैन्यों का मथन करने वाले थे।५८०।

अयल तिविट्ठू दुन्निवि, संगामे अस्सग्गीव रायाणं ।
हंतूण सव्व-दाहिण, दाहिण भरहं अइ जिणंति ।५८१।
(अचल त्रिपृष्ठौ द्वावपि, संग्रामेऽश्वग्रीव राजानं ।
हत्वा सर्वदक्षिण भरतमतिजयन्ति ।)

अचल और त्रिपृष्ठ ने संग्राम में भरतार्द्ध के अधिपति प्रति वासुदेव अश्वग्रीव को मार कर सम्पूर्ण दक्षिण भरत पर विजय प्राप्त की।५८१।

उप्पण्णरयण विहवा, कोडि सिलाए बलं तुलेऊणं ।
अड्ढभरहाहिसेयं, अयलो यति विट्ठुणो पत्ता ।५८२।
(उत्पन्नरत्न विभवाः, कोटि शिलायां बलं तोलयित्वा ।
अर्द्ध भरताभिषेकं, अचलश्च त्रिपृष्ठश्च प्राप्तौ ।)

वासुदेव तथा बलदेवोचित महावैभवशाली रत्नों के उत्पन्न होने पर भरत क्षेत्र के तीनों खण्डों पर विजय वैजयन्ती फहरा कोटिक शिला पर उन्होंने अपने बल को तोला और तदनन्तर वे दोनों अर्द्ध भरताधिपति वासुदेव और बलदेव के पद पर अभिषिक्त हुए।५८२।

चक्कं सुदरिसणं से, संखोविय पंचयण नामोत्ति ।
नंदय नामो य आसी, रिवु सोणिय मंडितो आसी ।५८३।
(चक्रं सुदर्शनं तस्य; शंखोऽपि पाञ्चजन्य नामेति ।
नन्दक नामा च आसीत्, रिपुशोणित मंडित असी ।)

उस त्रिपृष्ठ वासुदेव के पास सुदर्शन चक्र, पाञ्चजन्य शंख, शत्रुओं के रक्त से रंजित नन्दक नाम की तलवार थी।५८३।

माला य वेजयंती, विचित्तरयणावसोहिया रम्मा ।
सारिक्खी जा तडियं, घणसमए इंदरायस्स ।५८४।
(माला च वैजयन्ती, विचित्ररत्नावशोभिता रम्या ।
सदृशी सा तडितया, घनसमये इन्द्रराज्ञः ।)

त्रिपृष्ठ के पास अद्भुत-अलभ्य रत्नों से मण्डित एवं सुशोभित अतीव सुन्दर वैजयन्ती माला थी जो कि वर्षाकालीन सघन घनघटा में चमकती हुई बिजली के समान देदीप्यमान थी ।५८४।

सत्तुजण भयकरं चावं दरि यारि[1] जीवउच्चावं [टं] ।
जीया[2] निघोसेणं, सयसाहस्सी पडइ जस्स ।५८५।
(शत्रुजन भयंकरं चापं दृप्तारिजीवोच्चाटम् ।
ज्या निर्घोषेण, शतसाहस्री पतति यस्य ।)

उस वासुदेव त्रिपृष्ठ के पास दर्पोन्मत्त वैरियों के मन का उच्चाटन कर देने वाला शत्रुओं के लिये काल के समान भयंकर (सार्ङ्ग) धनुष था, जिसकी प्रत्यंचा (ज्या) की टंकार मात्र से लाखों शत्रु मूर्च्छित हो गिर पड़ते थे ।५८५।

कोत्थुभ-मणी य दिव्वो, वच्छत्थल विभूसणो तिविट्ठस्स ।
लच्छी ए परिग्गहीउ, रयणुत्तमसार संगहिओ ।५८६।
(कौ स्तुभमणिश्च दिव्यो, वक्षस्थल विभूषणः त्रिपृष्ठस्य ।
लक्ष्म्याः परिगृहीतः, रत्नोत्तमसार-संगृहीतः ।)

त्रिपृष्ठ के पास लक्ष्मी द्वारा सेवित, उत्तमोत्तम रत्नों के सार से उत्पन्न दिव्य कौस्तुभ मणि था जो उसके वक्षस्थल का विभूषण था ।५८६।

---

१ दरियारि-दृप्तारिः । दरिय-दृप्त "दरियनागदप्प महणा"—दृप्तनाग दर्पमथना (प्रश्न, ४ आश्र० द्वार)

२ जीया—ज्या । धनुषो गुणे । वाच० ।

अमरे हिं परिगहियाइं, सत्तवि रयणाइ अहतिविट्ठस्स ।
अमरेसु भूसणेसु य, एयाइं अजिय पुव्वाइं ।५८७।
(अमरैः परिगृहीतानि, सप्तापि रत्नानि अथ त्रिपृष्ठस्य ।
अमरेसु भूषणेसु च. एतान्यजित पूर्वाणि ।)

त्रिपृष्ठ वासुदेव के ये सात रत्न देवों द्वारा अधिष्ठित---सेवित थे। दिव्य भूषणों में ये सदा सर्वदा अजेय माने गये हैं।५८७।

(स्पष्टीकरण---गाथाओं के पर्यालोचन से स्पष्टतः प्रतीत होता है कि इनमें ६ रत्नों का ही नामोल्लेख एवं यत्किंचित् विवरण दिया है। वासुदेव के सातवें रत्न---कौमोदकी गदा के उल्लेख वाली गाथा संभवत ताड़पत्रीय प्रति में भी संभवतः नहीं लिखी गई होगी)

वहइ हली वि हलं, जो पण य जिब्भं य तिक्ख वइर चउं ।
परवंसु समरमहा, भडविढत्त कित्तीण जीयहरं ।५८८।
(वहति हली अपि हलं, यत् पञ्च च जिह्वं च तीक्ष्ण वज्र चउ[युतं] ।
पर-वंशे-समर महा-भट विस्तृत कीर्तीनां जीवित हरम् ।)

हली अचल बलदेव भी ऐसे हल को धारण करते हैं जो पांच जिह्वाओं एवं वज्र की तीखी चउओं (धरती को चीरने वाला हल का अधो भाग) वाला और रणांगण में शत्रुओं के महाकीर्तिशाली सुभटों के प्राणों का हरण करने वाला होता है।५८८।

साणंदं वाणिंदिय, आसंकिय सत्तु मुक्कसय दलं ।
मुसलं सोभमहापुर, भंजण कुसलं वइरसारं ।५८९।
(सुनन्दं[1] वा नंदितं, आशंकित शत्रुमुत्कर्ष-दलम् ।
मुसलं सौभ[2]-महापुर-भंजन कुशलं वज्रसारम् ।)

---

१ सुनन्दं रामस्य मुसलम् । यथा—
'प्रतिजग्राह बलवान्, सुनन्देनाहनच्च तम् ।"---श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १०, अ. ६७, श्लोक १६ ।

२ विशाल नगराकारमयस्मयं गगनगामी विमानम् । यथा---
तथेति गिरिशादिष्टो, मयः पर पुरञ्जयः ।
पुरं निर्मिय शाल्वाय, प्रादात्सौभमयस्मयम् ॥७॥
(भागवत, स्कन्ध १०, अ. ७६, श्लोक ७)

सुनन्द अथवा नन्दित नामक मूसल को अचल बलदेव धारण करते हैं। अचल का वह मूसल टिड्डीदल के समान अपार एवं विशाल सेनाओं को भयभीत कर किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना देने वाला, सौभ अर्थात् लोहमय गगन विहारी नगराकार विमानों बड़े-बड़े अभेद्य नगरों को विचूर्णित करने में सिद्धहस्त और वज्र सार का बना हुआ था ॥५८९॥

सव्वोउ पंच मालं, कुसुमासव लोल छप्प (य) विउलं ।
मणिकुंडलं च वामं, कुबेरघरसारं आरामं ।५९०।
(सर्वर्तु पंचमालं, कुसुमासव लोल षट्पद विपुलम् ।
मणि कुंडलं च वामं, कुबेर गृहसार आरामम् ।)

अचल के वक्षस्थल पर सभी ऋतुओं के पांच वर्ण के फूलों की माला थी, जिस पर फूलों के रस को चूसने के लोभी चपल भ्रमर मंडराते रहते थे। अचल के कानों में धन कुबेर के धनागार के सभी आभूषणों में सारभूत मनोहर मणिकुण्डलों की जोड़ी थी ॥५९०॥

अचलस्स वि अमर परिग्गहाइं, एयाइं पवररयणाइं ।
सत्तू ण अजियाइं, समरगुण पहाणगेयाइं ।५९१।
(अचलस्यापि अमर परिग्रहाणि, एतानि प्रवररत्नानि ।
शत्रूणामजितानि, समरगुण प्रधान गेयानि ।)

अचल बलदेव के पास भी शत्रुओं द्वारा अजेय, समर के सभी प्रधान गुणों से गेय अर्थात् युक्त ये (उपरि लिखित) उत्कृष्ट रत्न थे ॥५९१॥

बद्धमउडाण निच्चं, रज्जधुरुव्वहणधीरवसभाणं ।
भोइण नरिंदाभाणं, सोलसराती सहस्साइं ।५९२।
(बद्धमुकुटानां नित्यं, राज्यधुरोद्वहनधीरवृषभाणां ।
भोगिन् नरेन्द्राभानां, षोडश राजसहस्राणि ।)

वासुदेव त्रिपृष्ठ और हलो अचल को सेवा में वृषभों के समान राज्यधुरी को वहन करने में धीर, मुकुटबद्ध एवं नागराज के समान प्रचण्ड १६,००० (सोलह हजार) राजा नित्य रहते थे ॥५९२॥

बायालीसं लक्खा, हेयाण रहगयवराण पडिपुण्णा ।
अट्ठय देवसहस्सा, अभिउग्गा सव्वकज्जेसु ।५९३।
(द्वाचत्वारिंशल्लक्षाः हेयानां रथ-गजवराणां प्रतिपूर्णाः ।
अष्टौ च देव सहस्रा, आभियोग्याः सर्वकार्येषु ।)

उनके पास सभी आवश्यक सज्जाओं से सजे हुए बयालीस लाख घोड़े, उतने ही रथ तथा उतने ही श्रेष्ठ गजराज थे। उनके अभीप्सित सभी कार्यों को सम्पन्न करने हेतु ८००० (आठ हजार) देव सदा उनकी आज्ञा का पालन करने में तत्पर रहते थे ॥५९३॥

अडयाला कोडीउ पाइक्कनराण रणसमत्थाणं ।
सोलस साहस्सीउ, सजणवयाणं पुरवराणं ५९४।
(अष्ट चत्वारिंशत् कोट्यस्तु पदातिनराणां रणसमर्थानाम् ।
षोडस साहस्रीस्तु, सजनपदानां पुरवराणाम् ।)

त्रिपृष्ठ तथा अचल की पदाति सेना में ४८ करोड़ रणकुशल-रणसमर्थ सैनिक थे। उनके शासन के अन्तर्गत १६ हजार जनपद और १६ हजार ही विशाल नगर थे ॥५९४॥

पण्णासं विज्जाहर, नगराण सजणवयाण रंमाणं ।
पव्वंतरालवासी, नागाय फणुग्गधर मउडा ।५९५।
(पञ्चाशत् विद्याधरनगराणां सजनपदानां रम्याणाम् ।
पर्वतान्तरालवासिनः नागाश्च फणोग्रधरमुकुटाः ।)

त्रिखण्डाधिपति त्रिपृष्ठ वासुदेव और अचल हलधर के अधीन विद्याधरों के जन पदों सहित ५० बड़े-बड़े नगर और पर्वत के अन्तराल में निवास करने वाले, उग्रफणयुक्त मुकुट को धारण करने वाले ५० नागराज थे ॥५९५॥

नेगाइं सहस्साइं, गामागरणगर पट्टणादीणं ।
वियड्ढदाहिणेणउ, पुव्वावर अंतरट्ठिया ।५९६।
(अनेकानि सहस्राणि, ग्रामागारनगरपत्तनादीनाम् ।
वैताढ्य दक्षिणेन तु, पूर्वापरान्तरस्थिताः ।)

इनके अतिरिक्त वैताढ्य पर्वत के दक्षिणी भाग में पूर्व तथा पश्चिम की तलहटियों में बसी दो विद्याधर श्रेणियों के अनेक सहस्र ग्राम-आगार-नगर तथा पत्तन त्रिपृष्ठ वासुदेव एवं अचल बलदेव के आधिपत्य में थे ॥५९६॥

दरियरिउमाणमहणा, अवसेवसमाणइत्तु नरवइणो ।
दाहिण भरहं सगलं, भुंजंतिविलीण पडिवक्खा ।५९७।
(दृप्त ऋपुमान मथनाः अवशान् वशमानयित्वा नरपतयः ।
दक्षिण भरतं सकलं, भुञ्जन्ति विलीन प्रतिपक्षाः ।)

दर्पोन्मित्त (दृप्त) शत्रुओं के मान का मथन (मर्दन) करने वाले त्रिपृष्ठ और अचल स्वतन्त्र राजा-महाराजाओं को अपने आज्ञानुवर्ती एवं अधीन बना कर शत्रुविहीन हो सम्पूर्ण दक्षिण भरत के निष्कण्टक राज्य का उपभोग करने लगे ।५९७।

सोलस साहस्सी तो, नरवइतणयाण रूवकलियाणं ।
तावइओविय जणवय, कल्लाणीतो तिविट्ठस्स ।५९८।
(षोडशसाहस्रीस्तु, नरपतितनयानां रूपकलितानाम् ।
तावत्योऽपि च जनपद-कल्याण्यस्तु त्रिपृष्ठस्य ।

राजाओं की अनुपम रूप-लावण्यवती १६,००० कन्याएं और उतनी ही अर्थात् १६ हजार, विभिन्न जनपदों की रूप-गुण-यौवन संपन्ना सुन्दरियां ।५९८।

इय बत्तीस सहस्सा, चारुपत्तीण ता तिविट्ठुस्स ।
धारिणि पायोक्खाणय, अट्ठसहस्सा य अयलस्स ।५९९।

(इमा द्वात्रिंश सहस्राः; चारुपत्नीनां तावत् त्रिपृष्ठस्य ।
धारिणिप्रमुखानां च, अष्टसहस्राश्च अचलस्य ।

ये त्रिपृष्ठ की धारिणी प्रमुखा ३२००० चारुहासिनी, चारु भाषिणी, चारुगामिनी, चारुदर्शिनी रानियां थीं । हल-मूसलधर अचल की भी ८००० (आठ हजार) रानियां थीं ।५९९।

ऊसिय मगरज्झयाणं, विदिण्ण वरच्छत्तबाल वियणाणं ।
सोलस गणिय सहस्सा, वसंतसेणा पहाणाणं ।६००।
(उच्छ्रितमकरध्वजानां, वितीर्ण वरच्छत्र-बालवीजनानाम् ।
षोडश गणिकासहस्राणां, वसन्तसेना-प्रधानानाम् ।)

त्रिपृष्ठ और अचल की सेवा में कामदेव की मकराङ्कित उत्तुङ्ग विजय वैजयन्ती के समान एवं राजा द्वारा प्रसाद पूर्वक प्रदत्त श्रेष्ठ छत्र और चँवरों को धारण करने वाली वसन्त सेना आदि सोलह हजार गणिकाएं थीं ।६००।

एवं तु मए भणियं, अयलितिविट्ठूण दोण्हविजणाणं ।
एतो परं तु वोच्छं. अठण्हं नवर जुयलाणं .६०१।
(एवं तु मया भणितं, अचलत्रिपृष्ठयोः द्वयोरपि जनयोः ।
इतः परं तु वक्ष्ये, अष्टानां (नवानां) नवरं युगलानाम् ।)

इस प्रकार मैंने अचल और त्रिपृष्ठ दोनों के सम्बन्ध में कथन किया । अब मैं वासुदेवों एवं बल देवों से सम्बन्धित आठ बातों का कथन करूंगा ।६०१।

पयावती य बंभे य, रुद्दे सोमे सिवेति य ।
महसीह अग्गिसीहे, दसरह नवमे य वसुदेवे ।६०२।
(प्रजापतिश्च ब्रह्मश्च, रुद्रः सोमः शिवेति च ।
महासिंहोऽग्निसिंहः, दशरथः नवमश्च वसुदेवः ।)

प्रजापति, ब्रह्म, रुद्र, सोम, शिव महासिंह, अग्निसिंह और नौवें वसुदेव—ये क्रमशः नौ बलदेवों एवं नौ ही वासुदेवों (अर्द्ध-चक्रियों) के पिता के नाम हैं।६०२।

मिगावतीउ पउमा चेव, पुहवी सीया य अम्मया।
लच्छीमती सेसवती, केकती देवती य।६०३
(मृगावती तु पद्मा चैव, पृथ्वी सीता च अम्बिका।
लक्ष्मीमती शेषवती, कैकेयी देवकी च अपि।)

(एयाउ केसव मायरो)

मृगावती, पद्मा, पृथ्वी, सीता, अम्बिका, लक्ष्मीमती, शेषवती, कैकेयी और देवकी—ये केशवों अर्थात् अर्द्धचक्रियों की माताएं हैं।६०३।

भद्दा सुभद्दा सुप्पभा, सुदंसणा विजय वेजयंती य।
जयंती अपराजिया, रोहिणी य बलदेव जणणीओ।६०४।
(भद्रा सुभद्रा सुप्रभा, सुदर्शना विजया वैजयन्ती च।
जयन्ती अपराजिता, रोहिणी च बलदेव जनन्यः।)

एयाउ बलदेवयाण मायरो (एताः बलदेवानां मातरः।)

भद्रा, सुभद्रा, सुप्रभा, सुदर्शना, विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता और रोहिणी—ये बलदेवों की माताओं के नाम हैं।६०४।

विस्सभूति पव्वयए, धणमित्त समुद्दत्त इसिवाले।
पियमित्त ललियमित्ते, पुणव्वसू गंगदत्ते य।६०५।
(विश्वभूतिः पर्वतकः, धनमित्रः समुद्रदत्त ऋषिपालः।
प्रियमित्रः ललितमित्रः, पुनर्वसुः गंगदत्तश्च)

(एयाइं वासुदेवाणं पुव्वभव नामाइं)

विश्वभूति, पर्वतक, धनमित्र, समुद्रदत्त, ऋषिपाल प्रियमित्र, ललितमित्र, पुनर्वसु और गंगदत्त-ये वासुदेवों के पूर्वभवों के नाम हैं।६०५।

विस्सनंदी सुबन्धू य, सागरदत्ते असोगललिए य ।
वाराह धम्मसेणे, अवराइय रायललिए य ।६०६।
(विश्वनन्दिः सुबन्धुश्च, सागरदत्तोऽशोकललितश्च ।
वाराहः धर्मसेनोऽपराजितः राजललितश्च ।)

(एयाइं बलदेवाण पुव्वभव नामाइं ।)

विश्वनन्दी, सुबन्धु, सागरदत्त, अशोक, ललित, वाराह, धर्म सेन, अपराजित और राजललित—ये बलदेवों के पूर्वभव के नाम हैं ।६०६।

संभूते सुभद्द सुदंसणे य, सेज्जंस कण्ह गंगे य ।
सागर समुद्दनामे, नवमे दुमसेण नामे य ।६०७।
(संभूतः सुभद्रः सुदर्शनश्च, श्रेयांसः कृष्णो गंगश्च ।
सागरः समुद्रनामा, नवमः द्रुमसेन नामा च ।)

संभूत, सुभद्र, सुदर्शन, श्रेयांस कृष्ण, गंग, सागर, समुद्र और द्रुमसेन ।६०७।

एते पुव्वायरिया, कित्तीपुरुसाण वासुदेवाणं ।
पुव्वभवे आसी य, जत्थ नियाणाइं कासी य ६०८।
(एते पूर्वाचार्याः, कीर्तिपुरुषाणां वासुदेवानाम् ।
पूर्वभवे आसन् च, यत्र निदानान्यकार्षुश्च ।)

ये कीर्तिपुरुष वासुदेवों के पूर्वभव के आचार्य थे। जहां इन वासुदेवों ने अपने पूर्व भव में निदान किये उन नगरियों के निम्न-लिखित नाम हैं ।६०८।

महुरा य कणगवत्थुं, सावत्थी पोयणं च रायगिहं ।
कोगंडी कोसंबी, महिलपुरी हत्थिणपुरं च ।६०९।

(मथुरा च कनकवस्तु, श्रावस्ती पोतनं च राजगृहम् ।
कोगंदी [काकन्दी] कौशाम्बीः, मिथिलापुरी हस्तिनापुरञ्च ।)

मथुरा, कनकवस्तु श्रावस्ती पोतनपुर, राजगृह, काकन्दी, कौशाम्बी, मिथिलापुरी और हस्तिनापुर ।६०६।

आसग्गीवे तारय, मेरय महुकेटवे निसुंभे य ।
बलिय हिराए[1] (हिरण्णे) तह, रावणे य नवमे जरासिंधू ।६१०।
(अश्वग्रीवः तारक-मेरक-मधुकैटभाः निशुम्भश्च ।
बलिश्च हिरण्य [क्षिपुः] तथा, रावणश्च नवमः जरासिन्धु [सन्धः] ।)

अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधुकैटभ, निशुम्भ, बली हिरण्य-कशिपु, रावण और जरासन्ध ।६१०।

एते खलु पडिसत्तू, कित्तिपुरिसाण वासुदेवाणं ।
सव्वे य चक्क जोहा, सव्वे वि हया सचक्केहिं ।६११।
(एते खलु प्रतिशत्रवः, कीर्तिपुरुषाणां वासुदेवानाम् ।
सर्वे च चक्रयोद्धारः, सर्वेऽपि हताः स्वचक्रैः ।)

ये कीर्तिशाली वासुदेवों के प्रतिशत्रु अर्थात् प्रतिवासुदेव थे। ये सब चक्रयोधी थे और सभी अपने ही चक्रों द्वारा मारे गये ।६११।

पंच अरहंते वंदंति, केसवा पंच आणु पुव्वीए ।
सेज्जंस-तिविट्ठादि, धम्म-पुरिससीह पेरन्ता ।६१२।
(पंच अर्हतान् वन्दन्ति, केशवा पञ्च आनुपूर्व्या ।
श्रेयांस-त्रिपृष्ठादि, धर्म-पुरुषसिंह पर्यन्ताः ।)

---

१ श्वेताम्बर परम्परा ग्रन्थेषु सप्तमो प्रतिवासुदेव; प्रहलाद नाम्ना दिगम्बर परम्परायाः तिलोयपण्णत्ती-ग्रन्थे च प्रहरण नाम्ना समुल्लिखिताऽस्ति प्रहलादस्तु परम भागवतोऽभिमतः सनातन परम्पराया पुराण ग्रन्थेषु। अनया गाथया हिरण्यक्षिपुरेव नवमो प्रतिवासुदेव आसीदित्यनुमीयते। विदूषां विमर्षणीयं विषयमेतत् प्रतिभाति ।

त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ स्वयंभू, पुरुषोत्तम और पुरुषसिंह ये प्रथम से पंचम वासुदेव (केशव) क्रमशः अपने अपने समय में हुए ग्यारहवें से पन्द्रहवें तीर्थंकर अर्थात् श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ और धर्मनाथ की सेवा में उपस्थित हो उन्हें वन्दन करते हैं।६१२।

अर-मल्लि अंतरे, दोन्नि केसवा पुरिस पुंडरीयदत्ता ।
सुव्वय नमीण मज्झंमि, अट्ठमो, कण्ह नेमिमि ।६१३।
(अर-मल्यन्तरे, द्वौ केशवौ पुरुषपुण्डरीकदत्तौ ।
सुव्रतनमयोर्मध्ये, अष्टमः कृष्णः नेमौ ।)

अठारहवें तीर्थंकर अरनाथ और १९ वें तीर्थंकर मल्लिनाथ के अन्तर काल में पुरुष पुण्डरीक और दत्त नामक छठे और सातवें ये दो वासुदेव, बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रत तथा २१ वें तीर्थंकर नमिनाथ के अन्तर काल में नारायण नामक आठवें वासुदेव और बावीसवें तीर्थंकर के समय नौवें वासुदेव श्री कृष्ण हुए।६१३।

अनियाणकडा रामा, सव्वे वि य केसवा नियाणकडा ।
उड्ढंगामी रामा, केसवसव्वे अहोगामी ६१४।
(अनिदानकृताः रामाः, सर्वेऽपि च केशवाः निदानकृताः ।
ऊर्ध्वगामिनो रामाः केशवा सर्वेऽधोगामिनः)

बलदेव पूर्वजन्म में निदान (तपस्या के प्रतिफल के रूप में ऐश्वर्य की आकांक्षा) नहीं करते जब कि सभी वासुदेव अपने पूर्वभव में निदान करते हैं। सभी बलदेव ऊर्ध्वगति अर्थात् मोक्ष अथवा स्वर्ग में तथा सभी वासुदेव अधो गति अर्थात् नरक में जाते हैं।६१४।

एक्को य सत्तमाए, पंच य छट्ठीए पंचमी एगो ।
एगो य चउत्थीए, कण्हो पुण तच्च पुढवीए ।६१५।
(एकश्च सप्तमायां, पंच च षष्ठ्यां पंचम्यामेकः ।
एकश्च चतुर्थ्यां, कृष्णः पुनः तृतीया-पृथिव्याम् ।)

एक वासुदेव पांचवीं नरक में, पाँच वासुदेव छठी नरक में, एक वासुदेव पाँचवीं नरक में, एक वासुदेव चौथी नरक में और अन्तिम वासुदेव कृष्ण तीसरी पृथ्वी में उत्पन्न हुए ।६१५।

अट्ठंतकडा रामा, एगोपुण बंभलोय कप्पंमि ।
उववन्नो तत्थ भोए, भोत्तुं अयरोवम दसाएतो ।६१६।
(अष्टान्तकृताः रामाः; एकः पुनः ब्रह्मलोक कल्पे ।
उत्पन्नस्तत्र भोगान् भुक्त्वा अजरोपमदशायास्ततः ।)

आठ बलदेवों ने आठों कर्मों का अन्त किया—अर्थात् मोक्ष प्राप्त किया । एक बलदेव (नौवें तथा अन्तिम बलराम) ब्रह्म नामक पांचवें देवलोक में उत्पन्न हुए । वहां वे दिव्य देव भोगों का उपभोग करने के पश्चात् ।६१६।

तत्तोय चइत्ताणं, इहेव उस्सप्पिणीए भरहंमि ।
भवसिद्धिओउ भयवं, सिज्झिसइ कण्ह तित्थंमि ।६१७।
(ततश्च च्युत्वा, इहैव-उत्सर्पिण्यां भरते ।
भवसिद्धिकस्तु भगवान्, सेत्स्यति कृष्णतीर्थे ।)

एक भविक वे (नौवें बलदेव का जीव) ब्रह्मदेव लोक से च्यवन कर आगामी उत्सर्पिणी काल में इसी भरत क्षेत्र में श्री कृष्ण—अर्थात् तीर्थंकर भगवान् अमम के धर्मतीर्थ काल में सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होंगे ।६१७।

तइए घरंमि एते, तिविट्ठु आदी य संठिया सव्वे ।
दुसम सुसमाए सेसे, जं होही तं निसामेह ।६१८।
(तृतीये गृहे एते, त्रिपृष्ठाद्याश्च संस्थिताः सर्वे ।
दुःषम सुषमायां शेषो, यत् भविष्यति तत् निशामयत ।)

उपरि चर्चित (वाम से दक्षिण २७ और ऊपर से नीचे ५ घरों वाले) यन्त्र की तृतीय पंक्ति में त्रिपृष्ठ आदि सब वासुदेवों का उल्लेख है । (उनका कथन किया गया) अब दुःषमा-सुषम नामक

चौथे आरे के शेष अन्तिम समय में जो होगा, हुआ है अथवा होता है, उसे सुनिये ।६१८।

अद्ध नवमा य मासा, तिण्णि य वासाइं होंति सेसाइं ।
दुसमसुसमाएत्तो, नवसुवि खेत्तेसु सिद्धिगया [जिणिंदा] ।६१९।
(अर्द्ध नवमाश्च मासा, त्रीणि च वर्षाणि भवन्ति शेषाणि ।
दुःषमसुषमायास्ततः, नवस्वपि क्षेत्रेषु सिद्धिं गताः [जिनेन्द्राः] ।)

दुःषमा सुषम नामक चतुर्थ आरक की समाप्ति में जब तीन वर्ष और साढ़ा आठ मास अवशिष्ट थे उस समय (जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र की तरह) ढाई द्वीप शेष ९ ही क्षेत्रों में अन्तिम तीर्थंकर सिद्ध हुए ।६१९।

जं रयणीं सिद्धिगओ अरहातित्थंकरो महावीरो ।
तं रयणीमवंतीए अभिसित्तो पालओ राया ।६२०।
(यस्यां रजन्यां सिद्धिगतोऽर्हत्तीर्थंकरो महावीरः ।
तस्यां रजन्यामवन्त्यामभिषिक्तः पालकः राजा)

जिस रात्रि में चौवीसवें तीर्थंकर महावीर मोक्ष पधारे उस रात्रि में अवन्ती में पालक का राज्याभिषेक हुआ ।६२०।

पालगरण्णो सट्ठी, पणपन्न सयं वियाण पंदाणं ।
मरुयाणमट्ठसयं, तीसा पुण पूसमित्ताणं ।६२१।
(पालक राज्ञः षष्टी, पंचपंचाशच् [च] शतं विजानीहि नन्दानाम् ।
मौर्याणामष्ट [च] शतं, त्रिंशत् पुनः पुष्यमित्राणाम् ।)

भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् पालक राजा का ६० वर्ष तक, नन्दों का १५५ वर्ष तक मौर्यों का १०८ वर्ष तक तथा पुष्यमित्रों का ३० वर्ष तक ।६२१।

बलमित्तभाणुमित्ता, सट्ठी चत्ता य होंति नहसेणे ।
गद्दभ सयमेगं पुण, पडिवन्नो तो सगो राया ।६२२।
(बलमित्रभानुमित्रयोः, षष्टिः चत्वारिंशच्च भवन्ति नभसेने ।
गर्दभस्य शतमेकं पुनः, प्रतिपन्नः ततः शको राजा ।)

बलमित्र-भानुमित्र का साठ, नभसेन का ४०, गर्दभिल्ल का १०० वर्ष तक क्रमशः राज्य चलने के पश्चात् शक राजा का शासन हुआ ।६२२।

पंच य मासा पंच य वासा, छच्चेव होंति वाससया ।
परिनिव्वुयस्य अरिहा, तो उप्पन्नो सगो राया ।६२३।
(पंच च मासा पंच च वर्षा, षट् चैव भवन्ति वर्षशता ।
परिनिर्वृतस्यार्हतः, तत उत्पन्नः शको राजा ।)

भगवान् महावीर के निर्वाण से ६०५ वर्ष और ५ मास व्यतीत हो जाने पर शक राजा हुआ ।६२३।

सगवंसस्सय तेरस सयाइं, तेवीसइं च होंति वासाइं ।
होही जम्मं तस्सउ कुसुमपुरे दुट्ठबुद्धिस्स ।६२४।
(शकवंशस्य त्रयोदश शतानि, त्रयोविंशतिश्च भवन्ति वर्षाणि ।
भविष्यति जन्म तस्य तु (ततस्तु) कुसुमपुरे दुष्टबुद्धेः ।)

शक वंश के १३२३ वर्ष होते हैं तब दुष्टबुद्धि का कुसुमपुर में जन्म होगा ।६२४।

पत्तो प (च) त्त कुलंमि य, चेत्ते सुद्धट्ठमीय दिवसंमि ।
रोद्दोवगए चंदे विट्ठिकरणे रविस्सुदए ।६२५।
(प्राप्तस्त्यक्तकुले च, चैत्रे शुद्धाष्टम्याश्च दिवसे ।
रौद्रोपगते चन्द्रे, वृष्टिकरणे रवेरुदये ।)

चैत्र शुक्ला अष्टमी के दिन चन्द्र के रौद्र योग में आने पर वृष्टि करण में सूर्य के उदय के समय उस (दुष्ट बुद्धि) का त्यक्त (नीच) कुल जन्म हुआ ।६२५।

जम्मोवगए सूरे, सणिच्छरे विण्हु [?] देवयागए य ।
सुक्के भोमेण हते, चंदेण हए सुरगुरुंमि ।६२६।
(जन्मोपगते सूर्ये, शनिश्चरे विष्णुदेव गते च ।
शुक्रे भौमेन हते, चन्द्रेण हते सुरगुरौ ।)

जन्म स्थान में सूर्य के विष्णुदेवता में शनिश्चर के योग के साथ शुक्र के भौम (बुध) द्वारा और बृहस्पति के चन्द्र द्वारा ग्रहत होने पर ।६२६।

ससिसूरत्थमणंमिय, समागमेतित्थ एग पक्खंमि ।
सत्तरिसय चक्क पमद्दएयधूम धूमए उ केउंमि ।६२७।
(शशि सूर्ययोरस्तमने च समागमे तिथौ [तीर्थे] एक पक्षे ।
सप्तर्षयचक्रप्रमर्दके, च धूम्र धूम्रके तु केतौ ।)

एक ही तिथि और एक ही पक्ष में चन्द्र और सूर्य--दोनों के अस्तमान के समागम में सप्तर्षि मण्डल के धूम्र धूम्रक केतु द्वारा प्रमर्दित किये जाने पर ।६२७।

(तइया भुवणस्स पडणं) तइया भुवणं पडणस्स, जम्मनगरीए नगरी रामकण्हाणं ।
घोरं जणक्खयकर, पडिबोहदिणे य चिण्हस्स ।६२८।
(तदा भवनानां पतनेन, जन्मनगर्या रामकृष्णयोः ।
घोरं जनक्षयकरं, प्रतिबोधदिने च विष्णोः ।)

तब बलराम और कृष्ण की जन्मनगरी मथुरा में विष्णु के उत्थान (देवोत्थान की कार्तिक शुक्ला एकादशी) के दिन घोर धन-जन क्षयकारी भवनों के भूमिसात् होने अर्थात् गिरने के दिन ।६२८।

बहुकोहमाणमाया, लोभपसत्थस्स तस्स जम्मंमि ।
संघं पुण हेसेही, गावीरूवेण अहिउन्हा ६२९।
(बहुक्रोध-मान-माया-लोभ प्रसक्तस्य तस्य जन्मनि ।
संघं पुनः हेसिस्यति, गौरूपेण अध्युष्णा ।)

अत्यधिक क्रोध-मान-माया और लोभ में प्रसक्त उस दुष्ट बुद्धि का जन्म होने पर कालान्तर में लोणा देवी---गौ का रूप धारण किये पथ पर खड़ी हो संघ को अपने सींगों से प्रताड़ित करेगी ।६२९।

सिज्झंति य पासंडा, चोरेहिं य जणपया विलुप्पंति ।
होहि तदाणिं गामा, केवल संपाहमेत्ताविं(केवल सण्णाह भीताविं) ६३०
(सिध्यन्ति च पाषंडाः, चौरैश्च जनपदाः विलुप्यन्ते ।
भविष्यन्ति तदानीं ग्रामाः, केवलं सण्णाह भीतापि [वै] ।)

पाखण्डी अपने आपको सिद्ध घोषित करेंगे। जनपद आये दिन चोरों द्वारा लूटे जायेंगे। गाँव लुटेरों के प्रहारों से सदा भयभीत रहेंगे ।६३०।

एत्थ किर मज्झदेसे, पविरंजमणुएसु नाम देसेसु ।
हयगय गो महिसाणं, कहिंचि किच्छाहि उवलंभो ।६३१।
(अत्र किल मध्यदेशे, पविरञ्ज मनुष्येषु नाम देशेषु ।
हय-गज-गौ-महिषीणां, कुत्रचित् कृच्छ्रैर्हि उपलम्भः ।)

यहां और मध्यवर्ती प्रदेश में लोगों के इस प्रकार प्रमर्दित (लुंठित सन्त्रस्त) किये जाने पर घोड़ें, हाथी, गायें और भैंसे कठिनता से कहीं-कहीं ही देखने में आयेंगे ।६३१।

चोरा रायकुल भयं, गंधारसा विखज्जिहिति अणुसमयं ।
दुब्भिक्खमणावुट्ठीय, नाम पलिय एव मज्झी ही ६३२।
(चौर-राजकुलभयं, गन्धाः रसाः क्षयिष्यन्त्यनुसमयम् ।
दुर्भिक्षमनावृष्टिश्च, नाम पलितमेवमधीतिः ।)

लोगों को प्रतिक्षण चोरों एवं राज्य की ओर से भय रहेगा। पृथ्वी के गन्ध-रसादि गुण निरन्तर क्षीण होते जायेंगे। अनावृष्टि से तथा दुर्भिक्षों के पड़ने से लोगों में चिन्ता व्याप्त रहेगी ।६३२।

रातीणं किर होइ य, बहुला य जणवया तइया ।
जम्मंत तस्स एते, निच्छिय भावा मुणेयव्वा ।६३३।
(राज्ञां किल भविष्यन्ति, बहुलाश्च जनपदाः तदा ।
जन्मतस्तस्यैते, निश्चिताः भावाः मुनेतव्याः ।)

उस समय राजाओं एवं जनपदों की संख्या बहुत हो जायगी। उस दुर्बुद्धि का जन्म होते ही ये सब अनिष्ट होंगे, यह निश्चित समझना चाहिए।६३३।

अट्ठारस य कुमारो, वरिसाडामरितो होति तत्तियं कालं।
अस्सेसयम्मि काले, भरहे राया अच्छंतस्स।६३४।
(अष्टादश च कुमारः, वर्षाडम्बरितः भवति तावतिकं कालम्।
अवशेषे काले, भरते राजत्वेन स्थितस्य।)

वह १८ वर्ष का होगा तब तक कुमार रहेगा। तदनतर वह अनेक वर्षों के अपने पूरे जीवन काल तक भारत का राजा रहेगा।६३४।

जं एयं वर नयरं, पाडलिपुत्तं तु विस्सुए लोए।
एत्थं होही राया, चउम्मुहो नाम नामेण।६३५।
(यदेतद् वरनगरं, पाटलिपुत्रं तु विश्रुतं लोके।
अत्र भविष्यति राजा, चतुर्मुखो नाम नाम्ना।)

यह जो जगत्प्रसिद्ध पाटलिपुत्र नामक नगर है, यहां चतुर्मुख नामक राजा होगा।६३५

सो अविणय पज्जत्तो, अण्ण नरिंदे तणमिव गणंतो।
नगरं आहिंडंतो, पेच्छी ही पंच थूभे उ ६३६।
(सोऽविनयं पर्याप्तः, अन्य नरेन्द्रान् तृणमिव गणयन्।
नगरमाहिण्डयन्, प्रेक्षिष्यति पञ्च स्तूपान् तु)

वह इतना अधिक अविनीत अर्थात् अभिमानी होगा कि दूसरे सब राजाओं को तृण तुल्य समझेगा। नगर के सभी भागों में घूमता हुआ एक दिन वह पांच स्तूपों को देखेगा।६३६।

पुट्ठा य वेंति मणुया, नंदो राया चिरं इहं आसि।
बलितो अत्थ समिद्धो, रूव समिद्धो जस समिद्धो ६३७
(पृष्टाश्च ब्रुवन्ति मनुष्याः, नन्दो राजा चिरमत्रासीत्।
बलितोऽर्थसमृद्धः, रूपसमृद्धः यशसमृद्धः।)

उन स्तूपों के सम्बन्ध में उसके द्वारा पूछताछ की जाने पर लोग उसे बतायेंगे कि बल, धन, रूप एवं यश---सभी दृष्टियों से समृद्ध नंद नामक राजा यहां बहुत समय तक शासनारूढ रहा ।६३७।

तेणउ इहं हिरण्णं, निक्खितंमि बहुबलपमत्तेणं ।
न य णं तरंति अण्णे, रायाणो दाणिं घितुं जे ।६३८।
(तेन त्विह हिरण्यं, निक्षिप्तं (अस्ति) बहुबलप्रमत्तेन ।
न च नु तरन्ति अन्ये, राजान इदानीं ग्रहीतुं ये ।)

बलाधिक्य से प्रमत्त उस नन्द राजा ने इन स्तूपों में बहुत सा स्वर्ण गाड़ा था । अब इस स्वर्ण को लेने में कोई दूसरे राजा समर्थ नहीं हैं ।६३८।

तं वयणं सोऊणं, खणेहीति समंतओ तओ थूभे ।
नंदस्स संतियं तं, पडिवज्जइ सो अहं हिरण्णं ६३९।
(तद्वचनं श्रुत्वा, खनत इति समन्तात् ततः स्तूपान् ।
नन्दस्य संचितं तत्, प्रतिपद्यते सोऽथ हिरण्यम् ।)

लोगों के उस वचन को सुन कर वह उन पांचों स्तूपों को सब ओर से खुदवायेगा और नन्द राजा द्वारा संचित उस सम्पूर्ण स्वर्ण को ग्रहण कर लेगा ।६३९।

सो अत्थपडिथद्धो, अण्ण नरिंदे तणे वि अगणिंतो ।
अह सव्वतो महंतं खणाविही पुरवरं सव्वं ।६४०
(स अर्थप्रतिस्तब्ध, अन्य नरेन्द्रान् तृणान्यप्यगणयन् ।
अथ सर्वतो महान्तम् खनापयिष्यति पुरवरं सर्वम् ।)

वह उस अपार अर्थ राशि को पा कर प्रतिस्तब्ध अर्थोन्मत्त होगा । उसकी अर्थ लोलुपता और बढ़ेगी । अब तो वह अन्य सभी राजाओं को तृणतुल्य भी न गिनता अर्थात् मानता हुआ (इस) समस्त महान् नगर को सब ओर से खुदवायेगा ।६४०।

नामेण लोण देवी, गावी रूवेण नाम अइबुच्छा ।
धरणियलाउब्भूया, दीसिही सिलामई गावी ।६४१।

(नाम्ना लोणदेवी, गौरूपेण नाम अभ्युत्था ।
धरणीतलात् उद्भूता, द्रक्ष्यते शिलामयी गावी ।)

उस नगर को खोदते समय पृथ्वीतल से खड़ी अवस्था में शिलामयी गाय के रूप में लोणा नामक देवी प्रकट हुई दृष्टिगोचर होगी ।६४१।

सा किर तइया गावी, होइणं रायमग्गमोतिण्णा ।
साहुजणं हिंडतं, पिच्छही सुस्सुयायंती ।६४२।
(सा किल तदा गावी, भूत्वा राजमार्गमवतीर्णा ।
साधुजनं हिण्डन्तं, प्रेक्षयिष्यति सुस्सुकायंती ।)

वह गाय राजमार्ग में आकर इधर-उधर आते-जाते साधुओं को देखते ही उनकी ओर सुसियायेगी (सूंसाड़ करेगी) ।६४२।

ते भिण्णभिक्ख भायण, विलोलिया भिण्णकोप्परनिडाला ।)
भिक्खं पि हु समणगणा न चयंति हु हिंडिउं नयरे ।६४३
(ते भिन्नभिक्षाभाजन-विलोलितभिन्नकूर्परललाटाः
भिक्षामपि श्रमणगणा न शक्नुवन्ति हिण्डितुं नगरे)

वह गाय भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए साधुओं को अपने सींगों के आघात से नीचे गिरा देगी जिससे उनके भिक्षा-पात्र टूट-फूट जायेंगे तथा उनकी कोनियां व ललाड़ क्षत विक्षत होंगे और इस प्रकार उस गाय के डर से साधु नगर में भिक्षार्थ भी नहीं निकल पायेंगे ।६४३।

वोच्छत्ति मयहरगो, आयरिय परंपरागयं तच्चं ।
एस अणागय दोसो, चिरदिट्ठो वद्धगाणेण ।६४४।
(वक्ष्यति च महत्तरकः आचार्यपरम्परागतं तथ्यम् ।
एष अनागत दोषश्चिरदृष्टो वर्द्धमानेन ।)

इस प्रकार की आश्चर्यजनक एवं अनिष्टकारी घटनाओं को देख कर महत्तर (आचार्य अथवा संघस्थविर) आचार्य-परम्परागत तथ्यपूर्ण श्रुति की साक्षी देते हुए कहेंगे कि त्रिकालदर्शी

तीर्थंकर प्रभु महावीर ने इस अवश्यंभावी दोष (अनिष्ट) को बहुत पहले ही (केवलज्ञान द्वारा) देख और जान लिया था ।६४४।

अण्णेवि अत्थि देसा, लहुं लहुं ताइं तो अवक्कमिमो ।
एसा वि हु अणुकंपइ, गावीरूवेण अहि उत्था ६४५
(अन्येऽपि संति देशाः, शीघं शीघं तानितोऽवक्रामामः ।
एषापि खल्वनुकम्पते, गावी रूपेणाभ्युत्था)

राजमार्गो पर गाय के रूप में उपस्थित यह (दिव्य शक्ति) हम पर अनुकम्पा कर रही है। अतः हमें शीघ्र ही इस प्रदेश को त्याग कर अन्य प्रदेशों में चले जाना चाहिए ।६४५।

गावीए उवसग्गा, जिणवर वयणं च जे सुणेहिंति ।
गच्छंति अण्ण देसं, तहवि य बहवे न गच्छंति ६४६।
गाव्या उपसर्गान्, जिनवर वचनं च ये श्रृण्वन्ति (अशृण्वन्) ।
गच्छन्त्यन्यदेशं, तथापि च बहवो न गच्छन्ति ।

गाय द्वारा उपस्थित किये गये उपसर्गों और इनकी पूर्व सूचना के रूप में पहले ही से प्रभु महावीर द्वारा कहे गये वचनों की बात सुन कर कतिपय साधु तो अन्य प्रान्तों की ओर प्रस्थान कर देंगे परन्तु अधिकांश साधु वहीं रहेंगे ।६४६।

गंगा सोणुवसगां जिणवरवयणं च जे सुणेहिंति ।
गच्छंति अण्णदेसं तहवि य बहवे न गच्छंति । ।६४७।
(गंगा सोनोपसर्गं, जिनवर वचनं च ये श्रृण्वन्ति ।
गच्छन्त्यन्यदेशं, तथापि च बहवो न गच्छंति ।

गंगा और सोन के उपसर्गों एवं तद्विषयक जिनेन्द्र देव के वचनों को जो सुनेंगे वे अन्य प्रदेशों में चले जायेंगे, किन्तु फिर भी बहुत से साधु वहां से अन्य प्रान्तों की ओर प्रयाण न कर वहीं यथावत् रहेंगे ।६४७।

किं अम्ह पलाएण, भिक्खम्म किमिच्छयाइ लब्भंते ।
एवं ति जंपमाणा, तह वि य बहुया न गच्छंति ।६४८।

(किमस्मद् पलायनेन, भिक्षायाः किमिच्छया लभ्यन्ते ।
एवमिति जल्पमानास्तथापि च बहुका न गच्छन्ति ।)

"हमें यहां यथेच्छ भिक्षा मिल रही है। ऐसी दशा में हमें पलायन से क्या प्रयोजन ?"—इस प्रकार कहते हुए बहुत से साधु उस स्थान से अन्यत्र नहीं जायेंगे ६४८।

पुव्वभव निम्मियाणं, दूरे नियडे व अलियवन्ताणं ।
कम्माण को पलायइ, कालतुला संविभत्ताणं ।६४९।
(पूर्वभवनिर्मितानां, दूरे निकटे वा अलीकवताम् ।
कर्मणां (णा) को पलायते, कालतुला संविभक्तानाम् ।)

काल की तुला द्वारा अच्छी तरह विभाजित अपने पूर्व भावों में स्वयं द्वारा उपार्जित कर्मों से कोई प्राणी दूर नहीं भाग सकता क्योंकि वे तो प्राणी के दूरातिदूर चले जाने पर भी सदा सन्निकट एवं साथ लगे रहते हैं ।६४९।

दूरं वच्चइ पुरिसो, तत्थगतो निव्वुइं लभिस्सामि ।
तत्थ वि पुव्वकयाइं, पुव्वगयाइं पडिक्खंति ।६५०।
(दूरं व्रजति पुरुषः, तत्रगतः निर्वृतिं लप्स्यामि ।
तत्रापि पूर्वकृतानि, पूर्वगतानि प्रतीक्षन्ते ।)

पुरुष यह सोच कर दूर जाता है कि वह वहां जा कर दुःखों से छुटकारा पायेगा किन्तु उसके पूर्वोपार्जित कर्म उस पुरुष के उस स्थान पर पहुंचने से पहले ही पहुँच कर उसकी प्रतीक्षा करने लगते हैं ।६५०।

अह दाणि सो नरिंदो, चउम्मुहो दुम्मुहो अधम्ममुहो ।
पासंडे पिण्डेउं, भणिही सव्वे करं देह ।६५१।
(अथेदानीं स नरेन्द्रश्चतुर्मुखः दुर्मुखोऽधर्ममुखः ।
पाषण्डान् पिण्डयित्वा, भणति-सर्वे करं दत्त ।)

स्तूपों तथा समस्त पाटलिपुत्र की खुदाई से अपार स्वर्ण राशि प्राप्त कर लेने के पश्चात् वह चतुर्मुख, दुर्मुख अथवा अधर्ममुख

नामक राजा समस्त साधु-संन्यासियों को एकत्र कर कहेगा--- "तुम सब लोग मुझे कर दो" ।६५१।

रुद्धोय समणसंघो, अच्छिहीति सेसया य पासंडा ।
सव्वे दाहिंति करं, सहिरण्णसुवण्णिया जत्था ।६५२।
(रुद्धश्च श्रमणसंघः, स्थास्यति शेषकाश्च पाषण्डा ।
सर्वे दास्यन्ति करं, सहिरण्य सुवर्णिकाः यत्र ।)

कर देना स्वीकार न करने की दशा में श्रमण संघ उस राजा द्वारा अवरुद्ध हो वहीं रुका रहेगा। अन्य धर्मों के साधु संन्यासी तथा अन्य सभी पाखण्डी उस राजा को अपने-अपने पास के स्वर्ण में से कर के रूप में स्वर्ण देंगे ।६५२।

सव्वे य कुपासंडे, मोयावेहि बला सलिंगाइं ।
अइ तिव्वलोहघत्थो, समणे वि अभिद्दवेसीय ।६५३।
(सर्वांश्च कुपासण्डान, मोचापयिष्यति बलात् स्वलिंगानि ।
अतितीव्रलोभग्रस्तः श्रमणानपि अभिद्रविष्यति च ।)

वह अन्य सब पाखण्डियों से बलपूर्वक उनका वेष उतरवा लेगा और अतीव तीव्र लोभ से अभिभूत हो वह श्रमणों को भी संताप देगा ।६५३।

वोच्छंति य मयहरगा, अम्हं दायद्व्वं म किंचित्थ ।
जं नाम तुम्हलुब्भा, करेहि तं दायसी राय ।६५४।
(वक्ष्यन्ति च महत्तरका, अस्माकं दातव्यं द्रव्यं न किंचिदत्र ।
यत्-नाम त्वं लोभात् करै आदायसि राजन् ।

इस पर महत्तर संघ-स्थविर उसे कहेंगे -' हमारे पास देने के लिये ऐसी कोई वस्तु या द्रव्य नहीं है जिसे तुम लोभ के वशीभूत हो कर द्वारा लेना चाहते हो" ।६५४।

रोसेण सूसयंतो, सो कइ वि दिणा तहेव अच्छिही ।
अह नगर देवया तं, अप्पणिया[1] भणिही राय ।६५५।

१. अप्पणिया दुरप्पा/उ. २०/

(रोषेण सुसुकायन् स कत्यपि दिनानि तथैव स्थास्यति ।
अथ नगर देवता तं, आत्मीया भणिष्यति राजन् ।)

वह कतिपय दिनों तक क्रोध से तमतमाता हुआ श्रमण संघ को अवरुद्ध कर उनके साथ इसी प्रकार का व्यवहार करता रहेगा। अन्ततोगत्वा उसके नगर का अधिष्ठाता देव उससे कहेगा--।६५५।

किं तूरसि मरीउं, जे निसंस किं बाहसे समणसंघं ।
सव्वं ते पज्जत्तं, नणु कइ दीहं पडिच्छाहि ।६५६।
(किं त्वरसे मतुं यत्, नृशंस किं बाधसे श्रमणसंघम् ।
सर्वं ते पर्याप्तं, ननु कति दिवसानि प्रतीच्छसि ।)

क्या तुम शीघ्र ही मौत के मुँह में जाना चाहते हो जो श्रमण संघ को इस प्रकार पीड़ा पहुँचा रहे हो ? तुम्हारी दुष्टता सीमा का अतिक्रमण कर चुकी है, अब तुम अधिक दिनों तक जीना नहीं चाहते ? ।६५६।

उल्लपडसाडओ सो, पडिओ पाएसु समणसंघस्स ।
कोवो दिट्ठो भयवं कुणह पसायं पसाएमि ।६५७।
(आर्द्रपटशाटकः स, पतितः पादेषु श्रमणसंघस्य ।
कोपः दृष्टः भगवन् ! कुरुत प्रसादं प्रसादयामि ।)

नगर देवता के ये वचन सुनते ही राजा चतुर्मुख भयत्रस्त हो श्रमण संघ के चरणों में गिर पड़ेगा। उसके सब वस्त्र अस्त-व्यस्त हो जायेंगे। वह गिड़गिड़ा कर कहेगा:--"भगवन् ! मैंने आपके देखा अब मुझ पर दया कीजिये। मैं आपकी प्रसन्नता का प्रार्थी हूँ' ।६५७।

किं अम्ह पसाएणं, तह वि य बहुया, तहिं न इ(अ)च्छंति ।
घोर निरंतर वासं अह दिवा राइं वासिहिती ।६५८।
(किमस्माकं प्रसादेन, तथापि च बहुकाः तत्र न इच्छन्ति (तिष्ठन्ति) ।
घोर निरन्तर वर्षा, अथ दिवारात्रं वर्षिष्यति ।)

हमारी कृपा से क्या होगा ? (यह कह कर श्रमण-संघ अपने स्थान को लौट जायगा) यह सब कुछ हो जाने पर भी बहुत से साधु वहीं (पाटलिपुत्र में ही) ठहरे रहेंगे। तदनन्तर कई दिनों और रातों तक निरन्तर घोर वर्षा होगी ।६५८।

दिव्वंतरिक्ख भोमा, तइया होहिंति नगरनासाय ।
उप्पाया उ महल्ला, सुसमण समणीण पीडकरा ।६५९।
(दिव्यान्तरिक्षभौमाः, तदा भवन्ति नगरनाशाय [भविष्यन्ति] ।
उत्पातास्तु महान्तः, सुश्रमणश्रमणीनां पीडाकराः ।)

नगर के विनाश तथा श्रमणों के लिये भावी पीड़ा के सूचक अनेक दिव्य एवं बड़े बड़े उत्पात आकाश में तथा पृथ्वी पर होंगे ।६५९।

संवच्छर पारणए, होहि असिवंति तो ततो निंति ।
सुत्तत्थं कुव्वंता, अइसयमादीहिं नाऊण ।६६०।
(संवत्सर पारणके, भविष्यति अशिवं इति तान् तत नयन्ति ।
सूत्रार्थं कुर्वन्तः अतिशयादिभिर्ज्ञात्वा ।)

संवत्सर (वर्ष) की समाप्ति पर अनेक अपशकुन होंगे। उन्हें देख कर और ज्ञानातिशय से भावी को जान कर सूत्रों को तथा सूत्रों के अर्थ (निर्युक्ति चूर्णि वृत्ति आदि) को साधु गण वहां से बाहर यत्नपूर्वक ले जाते हैं :६६०।

गंतु पि न चायंति, केइ उवगरणवसहिपडिबद्धा ।
केइ सावग निस्सा केइ पुण जं भविस्सा उ ६६१।
(गन्तुमपि न शक्नुवन्ति, केचिदुपकरणवसति प्रतिबद्धाः ।
केचित् श्रावकनिस्राः केचित्पुनः यत्भविष्यास्तु ।)

अनेक साधु उपकरणों एवं वसति के राग में आबद्ध, अनेक साधु अपने श्रावकवर्ग के मोह पाश में बधे तथा कतिपय साधु--जो होना है, वह हो कर रहेगा--यह कह कर पाटलिपुत्र को छोड़ अन्यत्र जा ही न सकेंगे ।६६१।

तं दाणि समणुबद्धं, सत्तरस राति दिवाइं वासिहिति ।
गंगा सोणापसरो, उव्वत्तइ तेण वेगेण ।६६२।
(तदिदानीं समनुबद्धं, सप्तदश रात्रिदिनानि वर्षिष्यति ।
गंगा सोणा प्रसर, उद्वर्तयति तेन वेगेन ।

निरन्तर सत्रह दिन और सत्रह रात तक निरन्तर मूसलधार वृष्टि होगी । उससे गंगा, सोणा और सर में प्रलयंकर बाढ़ आवेगी ।६६२।

गंगाए वेगेण य, सोणस्स य दुद्धरेण सोतेणं ।
तेणं अह सव्वातो, महंता बुज्झिही पुरवरं रम्मं ।६६३।
(गंगायाः वेगेन च, शोणायाश्च दुर्द्धरेण स्रोतेन ।
तेनाथ सर्वतो मथयता, बूडिष्यति पुरवरं रम्यम् ।)

गंगा के अति तीव्र तथा सोणा के प्रबल स्रोत से यह अति सुरम्य एवं विशाल नगर पूरी तरह डूब जायगा ।६६३।

आलोइय गयसल्ला, पच्चक्खाणे सु धणिय मुज्जुत्ता ।
उत्थप्पहिंति साहु, गंगाए अग्गवेगेणं ।६६४।
(आलोचित गत-शल्याः, प्रत्याख्यानेषु धणिय [अत्यन्त] मुद्युक्ताः ।
उत्थाप्स्यन्ते साधवः, गंगाया अग्रवेगेन ।)

आलोचना कर निश्शल्य बने तथा प्रत्याख्यान में पूरे यत्न के साथ संलग्न साधु-साध्वी गण गंगा के तीव्र वेग द्वारा बाढ़ से बाहर फेंक दिये जायेंगे ।६६४।

के इत्थ साहुवग्गा, उवगरणे धणिय-राग पडिबद्धा ।
कलुणाइं पलोइंता, वसही सहियाओ वुज्झंति ।६६५।
(केचिदत्र साधुवर्गाः, उपकरणे धणिय (अतिशय) राग प्रतिबद्धाः ।
करुणानि प्रलोकयन्तः, वसति सहिता वाह्यन्ते ।)

उस समय अपने उपकरणों के प्रति प्रगाढ़ राग में बंधे हुए कतिपय साधु सकरुण दृष्टि से देखते हुए वसतिसहित उस बाढ़ में बह जायेंगे ।६६५।

सामिय सणंकुमारा, सरणं ता होहि समणसंघस्स ।
इणमो वेयावच्चं, भणमाणाणं न वट्टिहिति ६६६।
(स्वामिक सनत्कुमार, शरणं तावत् भव श्रमणसंघस्य ।
इदं वैयावृत्यं, भणमाणानां न वर्तिष्यते ।)

"ओ सनत्कुमार देवलोक के स्वामी ! तुम श्रमण संघ के शरण्य बनो, यह श्रमण संघ की सेवा का अवसर है' —इस प्रकार कहते हुए श्रमण बाढ़ में नहीं बहेंगे ।६६६।

अलोइयं नीसल्ला, पच्चक्खाणेसु धणियमुज्जंता ।
उत्थप्पिहिंति समणी, गंगाए अग्गवेगेणं ।६६७।
(आलोचित निश्शल्या प्रत्याख्यानेषु धणिय (अतिशय) मुद्यच्छन्तः ।
उत्थाप्स्यन्ते श्रमण्यः, गंगाया अग्रवेगेन ।)

आलोचना कर निश्शल्य बनी हुई तथा प्रत्याख्यान करने में पूर्णतः उद्यत श्रमणियां गंगा के तीव्र वेग द्वारा पानी से बाहर पहुँचा दी जायेंगी ।६६७।

काओवि साहुणीओ, उवगरण धणिय राग पडिबद्धा ।
कलुण पलोयणि यातो, वसहि सहियातो बुज्झंति ।६६८।
(काचिदपि साध्व्य, उपकरणघनितरागप्रतिबद्धाः ।
करुण प्रलोकनिकास्ता, वसति सहितास्ततः वाह्यन्ते ।)

अपने उपकरणों के प्रति प्रगाढ अनुराग में बंधी हुई कतिपय श्रमणियां करुण दृष्टि से अपने उपकरणों को देखती हुईं वसतियों सहित उस बाढ़ में डूब जायेंगी ।६६८।

सामिय सणंकुमारा, सरणं ता होहि समणसंघस्स ।
इणमो वेयावच्चं, भणमाणीणं न वट्टिहिति ।६६९।
(स्वामिन् सनत्कुमार, शरणं तावत् भव श्रमणसंघस्य ।
इदं वैयावृत्यं, भणमानीनां न वर्तिष्यति ।)

"ओ सनत्कुमारेन्द्र ! तुम श्रमणसंघ के शरण्य बनो। यह वैयावृत्य (श्रमण श्रमणी की सेवा) का सुअवसर है"—इस प्रकार बोलती हुई साध्वियाँ बाढ़ से सुरक्षित रहेंगी।६६९।

आलोइय तिसल्ला, समणीओ पच्चक्खाइऊण उज्जुत्ता ।
उत्थिप्पिहिंति धणियं, गंगाए अग्गवेगेणं ।६७०।
आलोचितत्रिशल्याः श्रमण्यः प्रत्याख्यात्वा उद्युक्ताः ।
उत्थाप्स्यन्ते धणियं [तूर्ण], गंगाया अग्रवेगेन ।)

तीनों प्रकार के शल्यों को आलोचना की हुई प्रत्याख्यान कर पण्डितमरण के लिये उद्यत साध्वियाँ गंगा के तीव्र वेग द्वारा शीघ्र ही पानी से बाहर पहुँचा दी जायेंगी।६७०।

केई फलगविलग्गा, वच्चंति समण समणीण संघाया ।
आयरियादीय तहा, उत्तिन्ना बीय कूलंमि ।६७१।
(केचित् फलकविलग्नाः व्रजन्ति श्रमणश्रमणीनां संघाताः ।
आचार्यादयस्तथा, उत्तीर्णाः द्वितीय कूले ।)

श्रमणों एवं श्रमणियों के कतिपय समूह तथा आचार्य आदि लक्कड़ों और लकड़ी के पाटियों पर बैठ कर तट पर पानी से पार उतरे।६७१।

नगरजणो वि य बूढो, केइ लद्धूण फलग खंडाइं ।
समुत्तिन्ना बीयतडं, केइ पुणतत्थ निहण गया ।६७२।
(नगरजनोऽपि च बूहितः, केचित् लब्ध्वा फलकखण्डानि ।
समुत्तीर्णाः द्वितीय तटं, केचित्पुनस्तत्र निधनंगताः ।)

उस भयंकर बाढ में (बहुत बड़ी संख्या में) नगर-निवासी भी डूब गये। जिन लोगों के हाथ काष्ठ के पट्टे लग गये वे तो तैर कर जल-प्रवाह के दूसरे तट पर पहुँच गये किन्तु अधिकांश लोग वहीं मृत्यु के ग्रास बन गये।६७२।

रण्णो य अत्थजायं, पाडिवत्तो चेव कक्कि राया य ।
एयं हवइ हु [ण] बुड्ढं, बहुयं बूढं जलोहेण ।६७३।

(राज्ञश्च अर्थजातं, प्रातीपव्रतश्चैव कल्कि राजा च ।
एते न ब्रूडिताः बहुकं ब्रूडितं जलौघेन ।

राजा का धन, प्रातीपव्रत आचार्य और कल्की राजा—ये नहीं बहे, शेष सब कुछ प्रबल जल-प्रवाह में बह गया ।६७३।

पासंडाविय वण्हा (बहुआ), बूढा वेगेण काल संपत्ता ।
चोइवरंतिज्जे वा [?] पविरल मणुयं च संजाया [यं] ।६७४।
(पाषण्डापि च बहुकाः ब्रूडिता वेगेन कालं सम्प्राप्ताः ।
चोइवरं [?] अंतरीप इव, प्रविरल मानुष्कं च संजातम् ।)

बहुत से पाखण्डी भी उस बाढ के वेग में बह कर मर गये। समस्त क्षेत्र चोइवर (?) अन्तरीप की तरह अति स्वल्प मानव आबादी वाला बन गया ।६७४।

सो अत्थ पडित्थद्धो मज्झं होही जसो य कित्ती य ।
तंमि य नगरे बूढे, अण्णं नगरं निविसिहीति ।६७५।
(स अर्थप्रतिस्तब्धः मह्यं भविष्यति यशश्च कीर्तिश्च ।
तस्मिन् नगरे वहिते, अन्यं नगरं निवेशयिष्यति)

अपार संपत्ति के गर्व में मदोन्मत्त वह चतुर्मुख—मेरा यश और कीर्ति फैलेगी-यह विचार कर उस नगर के बह जाने पर अन्य नगर बसायेगा ।६७५।

अह सव्वतो समंता, कारेही पुरवरं महारम्मं ।
आरामुज्जाणजुयं, विरायते देवनगरं व ६७६।
(अथ सर्वतः समन्तात्, कारयिष्यति पुरवरं महारम्यम् ।
आरामोद्यानयुतं विराजते देवनगरं वा ।)

वह उद्यानों एवं आरामों से युक्त सभी प्रकार से अति सुरम्य समचतुरस्र एक श्रेष्ठ नगर बसायेगा, जो कि देवनगर के समान सुशोभित होगा ।६७६।

पुणरवि आयतणाइं, पुणरवि साहू य तत्थ विहरंति ।
सम्मं च वुट्ठिकाओ, वासीहिति संतीय वट्टिहिति ।६७७।
(पुनरपि आयतनानि, पुनरपि साधवस्तत्र विहरन्ति ।
सम्यक् च वृष्टिकायः वर्षिष्यन्ति शान्तिश्च वर्तिष्यते ।)

उस नगर में पुनः आयतनों का निर्माण होगा, पुनः साधु गण वहां विचरण करेंगे. वहां आवश्यकतानुसार अच्छी वृष्टि होगी और शान्ति का प्रसार होगा ।६७७।

पडिएण वि कुंभेणं, किणं [ण्ण] तया य तहिं न होति ।
पण्णासं वासाइं, होही य समुब्भवो कालो ।६७८।
(पतितेनापि कुम्भेन, कीर्ण तदा च तत्र न भवति ।
पञ्चाशत् वर्षाणि, भविष्यति च समुद्भवः कालः ।)

उस समय किसी कलश के गिर पड़ने पर भी शब्द नहीं होगा अर्थात् पूर्ण शान्ति का साम्राज्य होगा और वह ५० वर्ष का काल अभ्युदय--समुन्नति का समय होगा ।६७८।

पुणरवि य कुपासंडे, मेल्लाविहिति बला सलिंगाइं ।
अइ तिव्वलोह घत्थो, समणेवि अभिद्दवेसि य ।६७९।
(पुनरपि कुपासंडान् मेलापयिष्यति बलात् स्वलिंगानि ।
अतितीव्र लोभग्रस्तः, श्रमणानपि अभिद्रोष्यति च ।

तदनन्तर वह पुनः पाखण्डियों को एकत्र कर बलपूर्वक उनके वेष उतरायेगा । अति तीव्र लोभ के वशीभूत हो वह पुनः साधुओं को संताप पहुँचावेगा ।६७९।

तइया वि कप्पववहार, धारओ संजतो तवाउत्तो ।
आणा दिट्ठी समणो, भविअसुत्तो पसंत मणो ।६८०।
(तदापि च कल्पव्यवहारधारकः संयतः तपायुक्तः ।
आज्ञादृष्टिः श्रमणः, भावितसूत्रः प्रशान्तमनाः ।)

उस समय भी कल्प और व्यवहार का धारक पंच महाव्रत रूपी संयम से संयत तपस्वी, सूत्रार्थों का मर्मज्ञ और पर शान्त आज्ञादृष्टि नामक श्रमण ।६८०।

वीरेण समाइट्ठो, तित्थोगालीए जुगप्पहाणोत्ति ।
सासण उण्णति जणणो, आयरितो होहिति धीरो ।६८१
(वीरेण समादिष्टः, तीर्थोद्गाल्यां युगप्रधान इति ।
शासनोन्नतिजनकः, आचार्यो भविष्यति धीरः ।)

जिसे "तीर्थोद्गारी" में श्रमण भगवान् महावीर ने युगप्रधान बताया है, जिन-शासन की उन्नति करने वाला अति धीर आचार्य होगा ।६८१।

पाडिवतो नामेण, अणगारो तह य सुविहिया समणा ।
दुक्खपरिमोयणट्ठा, छट्ठट्ठम तवे काहिंति ।६८२।
(प्रातीपव्रतः नाम्ना, अणगारस्तथा च सुविहिताः श्रमणाः ।
दुःखपरि मोचनार्थं, षष्टाष्टम तपांसि करिष्यन्ति ।)

प्रातिपद नामक एक अनगार तथा सुविहित परम्परा के श्रमण होंगे। वे जन्म-मरण के दुःख से मुक्त होने के लिये षष्ठम (बेला) और अष्टम (तेला) आदि तप करेंगे ।६८२।

रोसेण मिसिमिसंतो, सो कइ दीहं तहेव अच्छीय ।
अह नगरदेवयाउ, अप्पिणिया बेत्ति वेसीया ।६८३।
(रोषेण मिसमिसायन् स कति [चित्] दिवसान् तथैव आस्थितः ।
अथ नगरदेवता तु, आत्मीया ब्रुवति आवेशिता ।)

क्रोधातिरेक से दांतों को किटकिटाता हुआ वह कतिपय दिनों तक उसी प्रकार श्रमण संघ को संताप देता रहेगा। इस पर नगर की अधिष्ठात्री देवी आवेश भरे स्वर में कहेगी—।६८३।

किं तूरसि मरिउं, जे निस्संसं किं बाहसे समणसंघं ।
सव्वं तं पज्जत्तं, नणु कइ दीहं पडिच्छाहि ।६८४।

(किं त्वरसि मर्तुं, रे नृशंस किं बाधसे श्रमणसंघम् ।
सर्वं तत् पर्याप्तं, ननु कति दिवसान् प्रतीच्छसि ।)

"श्रमण संघ को पीड़ा पहुँचा कर तू क्यों शीघ्र ही मरना चाहता है। बस, तू पर्याप्त दुष्टता कर चुका, बोल अब तू कितने दिन जीना चाहता है ? ।६८४।

तासिंपि य असुणंतो, छट्ठं भिक्खस्स मग्गए भागं ।
काउसग्गं चिट्ठिय, सक्कस्साराहणट्ठाए ।६८५।
(तासामपि च [वचनं] अशृण्वन् षष्ठं भिक्षायाः मृग्यते भागम् ।
कायोत्सर्गं स्थिताः, शक्रस्याराधनार्थाय ।)

देववाणी को अनसुनी करते हुए वह श्रमणों से भिक्षा का छट्ठा भाग मांगने लगा। श्रमण वर्ग शक्र की आराधनार्थ कायोत्सर्ग कर निश्चल खड़ा हो गया ।६८५।

गोवाडंमि निरुद्धा, समणा रोसेण मिसमिसायंता ।
अंबा जक्खो य भणंति, राय कट्ठेहिं सप्पं [व्वं] त्ति
[राय मा बाधेह संघंत्ति] ।६८६।
(गोवाटके निरुद्धाः श्रमणा रोषेण मिसमिसायन्तः ।
अम्बा यक्षश्च भणतः, राजन् मा बाधय संघ मिति ।)

श्रमण संघ द्वारा भिक्षा का छट्ठा भाग कर के रूप में देना स्वीकार न किये जाने की दशा में क्रोधातिरेक से दांतों को पीसते हुए कल्की ने श्रमण संघ को गायों को गवाड़ में बन्द कर दिया। यह देख अम्बा और यक्ष उससे कहते हैं--"राजन् ! अब बस करो, श्रमणों को बहुत कष्ट दे चुके हो।" ।६८६।

काउसग्गठिएसुं, सक्कस्साकंपियं तओ ठाणं ।
आभोइय ओहीए, खिप्पं तिदसाहिवो एइ ।६८७।
(कायोत्सर्ग-स्थितेषु, शक्रस्य आकम्पितं ततः स्थानम् ।
आभोग्य अवधिना, क्षिप्रं त्रिदशाधिपः एति ।)

कायोत्सर्ग की मुद्रा में स्थित साधुओं के चित्त की एकाग्रता से शक्र का सिंहासन प्रकम्पित हुआ। अवधिज्ञान के उपयोग से सब स्थिति को जान कर देवेन्द्र शक्र तत्काल वहां आता है।६८७।

सो दाहिण लोगपती, धम्माणुमती अहम्मबुड्ढमतिं ।
जिणवयण (सासण) पडिकुट्ठं, नासीहिति खिप्पमेव तयं ।६८८।
(स दक्षिण लोकपतिः, धर्मानुमतिः अधर्म वृद्धमतिम् ।
जिनशासन प्रतिक्रुष्टं नाशयिष्यति क्षिप्रमेव तकम् ।)

धर्म के अनुकूल मति वाला वह दक्षिण लोक का स्वामी देवराज अधर्मपूर्ण आचरण करने वाले, जिन शासन के द्रोही उस कल्की राज का तत्काल नाश करेगा।६८८।

छासीतीउ समाओ उग्गो उग्गाए दंडनीतीए ।
भोत्तुं गच्छइ निहणं, निव्वाण सहस्स दो पुण्णे।६८९।
(षडसीतिस्तु समाः, उग्र उग्रया दण्डनीत्या ।
भुक्त्वा गच्छति निधनं, निर्वाण सहस्र द्वे पूर्णे ।)

निर्वाण पश्चात् दो हजार वर्ष पूर्ण होने पर ८६ वर्षों तक अति कठोर दंडनीति द्वारा अत्युग्र राजतन्त्र का उपभोग करने के पश्चात् (वीर) निर्वाण के दो हजार (२०००) वर्ष पूर्ण होने पर वह चतुर्मुख कल्की मृत्यु के मुख में चला गया।६८९।

---

१ चतुर्विंशत्यधिक षट्सत संख्यकाया: गाथाया उल्लेखानुसारेण १३२३ तमे वीर निर्वाण संवत्सरे कल्किन: जन्म, चतुस्त्रिंशत्षट्शत संख्यकायां गाथायां च १३४१ तम: वीर निर्वाण संवत्सरस्तस्य राज्याभिषेककाल: समुल्लिखित: । तथाहि एकोननवत्यधिक षट्शत संख्यकाया: गाथाया उल्लेखानुसारतश्च कल्किन: शासनकाल: षटसीति वर्षमितो निर्दिष्ट: । एवं हि तावत् १३२३ + १८ + ८६, एतासां संख्यानां योगत: वीर निर्वाण संवत्सर: १४२७ तम एव कल्किन: निधनकाल: सुनिश्चितो भवति । तथ्यानामेतेषां पर्यालोचने गाथायामस्य कल्किन: निधनकाल: यदि २००० तम: वीर निर्वाण संवत्सर: निर्दिष्टस्तद्धि तावत् त्रुटिपूर्णोऽसमीचीनश्च स्पष्टत प्रतिभाति ।

तस्स य पुत्तं दत्तं, इंदो अणुसासिऊण जणमज्झे ।
काऊण पाडिहेरं, गच्छइ समणे पणामि ऊणं ।६९०।
(तस्य च पुत्रं दत्तं, इन्द्रोऽनुशासयित्वा जनमध्ये ।
कृत्वा प्रातिहार्यं, गच्छति श्रमणान् प्रणमयित्वा ।)

इन्द्र समस्त जन समूह के समक्ष मृत कल्की के पुत्र दत्त को आवश्यक निर्देश देकर राज्य का अधिकारी बनायेगा। तदनन्तर इन्द्र श्रमणसंघ को प्रणाम कर सुर लोक की ओर लौट जायगा ।६९०।

भद्दं धीतिवेला परिगयस्स, सज्झाय सलिलपुन्नस्स ।
अक्खोब्भस्स भगवओ, संघसमुद्दस्स रुंदस्स ।६९१।
(भद्रं धृतिवेला-परिगतस्य,स्वाध्यायसलिलपूर्णस्य ।
अक्षोभस्य भगवतः, संघसमुद्रस्य रुंदस्य ।)

धैर्य की अनतिक्रमणीय वेला (मर्यादा-सीमा) में विराजमान स्वाध्याय रूपी अपार जलराशि से पूर्ण, किसी भी दशा में कभी क्षुब्ध न होने वाले भगवत्स्वरूप महान् संघ समुद्र का कल्याण हो ।६९१।

इंदभुया पव्वइयं, इंदाणुमयं सधम्मजणियं च ।
सव्वंमि भरहवासे, होही समणाण सक्कारो ।६९२।
(इन्द्रभुजा-प्रवर्तितं, इन्द्रानुमतं सद्धर्मजनितं च ।
सर्वस्मिन् भारतवर्षे, भविष्यति श्रमणानां सत्कारः ।)

इन्द्र की भुजाओं द्वारा प्रवर्तित अर्थात् श्रमणों को हाथ जोड़ कर प्रमाण करते हुए इन्द्र को देख कर, इस प्रकार इन्द्र द्वारा अनुमत सद्धर्म की प्रतिष्ठा के फलस्वरूप सम्पूर्ण भारतवर्ष में श्रमणों का सत्कार होगा ।६९२।

देवोव्वसमणसंघो, पुज्जिही सव्वनगरगामेसु ।
ऊणा वीस सहस्सा, अणोवमा होहीति सक्कारो ।६९३।

(देव इव श्रमणसंघः, पूजिष्यते सर्वनगरग्रामेषु ।
ऊनाः विंशति सहस्राः अनुपमः भविष्यति सत्कारः ।)

सभी नगरों एवं ग्रामों में देवोपम श्रमणसंघ की पूजा होगी । कुछ ही न्यून बीस हजार वर्षों तक श्रमण संघ का अपूर्व सत्कार होगा ।६९३।

एवं चिय वासेसुं, नवसुवि होहींति सक्काउ राया ।
एगसमएण दसवि सक्कीसाणाओ काहिंति ।६९४।
(एवं चैव वर्षेसु, नवस्वपि भविष्यन्ति शकाः राजानः ।
एक समयेन दशाऽपि शकेशा आज्ञां करिष्यन्ति ।)

इसी प्रकार ढाई द्वीप के शेष चार भरत और पांच ऐरवत--इन नौ ही क्षत्रों में शक राजा होंगे । ये दशों ही शक राजा एक ही समय में अपनी राजाज्ञा चलायेंगे अर्थात् शासन करेंगे ।६९४।

दत्तो वि महाराया, जिणाययण मंडियं वसुमतिं तु ।
कारेहि सो सिग्घं, दिवसे दिवसे य सक्कारं ६९५।
(दत्तोऽपि महाराजा, जिनायतन-मंडितं वसुमतीं तु ।
कारयिष्यति स शीघ्रं, दिवसे दिवसे च सत्कारम् ।)

महाराजा दत्त भी शीघ्र ही पृथ्वी को जिनायतनों (जिनालयों) से मण्डित कर श्रमण संघ का दिन प्रतिदिन सत्कार करेगा ।६९५।

तस्स सुओ जिय सत्तू, तस्सवि य सुतो उ मेघघोसोत्ति ।
अन्नोन्नरायवंसा, जाव विमलवाहणो राया ।६९६।
(तस्य सुतः जितशत्रुः, तस्यापि च सुतस्तु मेघघोष इति ।
अन्योऽन्यराजवंशाः, यावत्-विमलवाहनः राजा ।)

राजा दत्त का पुत्र होगा राजा जितशत्रु और जिनशत्रु का पुत्र राजा मेघघोष । इस प्रकार राजा विमलवाहन तक अन्यान्य राजवंश होंगे ।६९६।

एवं तु मए भणिओ, रातीणं वंससंभवो जाव ।
जावउ दुप्पसहो विय, एत्तो वोच्छामि सुयहाणिं ६९७
(एवं तु मया भणितः, राज्ञां वंशसंभवः यावत् ।
यावत्तु दुःप्रसहोऽपि च, इतः वक्ष्यामि श्रुत हानिम् ।)

इस प्रकार मैंने (नये) राजन्य वंश के उद्भव के सम्बन्ध में कहा। अब मैं इस अवसर्पिणी काल के अन्ति आचार्य दुःप्रसह तक होने वाली श्रुत शास्त्र की हानि का उल्लेख करूंगा।६९७।

चउसट्ठी वरिसेहिं, णिव्वाण गयस्स जिणवरिंदस्स ।
साहूण केवलीणं, वोच्छित्ति जंबुणामंमि ।६९८।
(चतुष्षष्टिवर्षैः, निर्वाणगतस्य जिनवरेन्द्रस्य ।
साधूनां केवलीनां, व्युच्छित्तिः जम्बुनाम्नि)

भगवान् महावीर के निर्वाणानन्तर ६४ वर्ष व्यतीत हो जाने पर जम्बू नामक केवली के मोक्षगमन के साथ ही केवलज्ञानी साधुओं का लोप हो जायगा---अर्थात् केवलज्ञान भरतादि दश क्षेत्रों में विलुप्त हो जायगा।६९८।

मणपरमोहि पुलाए, आहारग खवग उवसमेकप्पे ।
संजमतिय-केवली-सिज्झणा य, जंबुंमि वोच्छिन्ना ।६९९।
(मनः परमावधि पुलाकाः, आहारक क्षपक उपशमेकल्पाः ।
संयमत्रिक-केवलिनः सिद्धना च, जम्बुनि व्युत्छिन्नाः ।)

मनःपर्यवज्ञान. परमावधिज्ञान, पुलाकलब्धि, आहारक शरीर, क्षपक श्रेणी उपशमश्रेणी, जिनकल्प, संयमत्रिक---अर्थात् परिहार-विशुद्धि, सूक्ष्म संपराय और यथाख्यात नामक तीन प्रकार के चारित्र, केवली अर्थात् केवलज्ञान और मुक्तिगमन--इन दश विशिष्ट आध्यात्मिक शक्तियों का जम्बू के निर्वाण के साथ ही विच्छेद हो गया।६९९।

नवसुविवासे सेवं, मण परमोही पुलागमादीणं ।
समकालं वोछओ, तित्थोगालीए निद्दिट्ठो ।७००।

(नवस्वपि वर्षेस्वेवं, मनः परमावधि पुलाकादीनाम् ।
समकाले व्युच्छेदः, तीर्थोद्गाल्यां निर्दिष्टः ।)

इस प्रकार शेष ६ क्षेत्रों में भी मनःपर्यवज्ञान, परमावधि, पुलाकलब्धि आदि १० विशिष्ट आध्यात्मिक शक्तियों का एक साथ एक ही समय में विच्छेद होना "तीर्थोगाली" (तीर्थ---ओगाली--तीर्थ प्रवाह) में बताया गया है ।७००।

चोद्दस पुव्वच्छेदो, वरिससतेसत्तरे विणिद्दिट्ठो ।
साहुम्मि थूल भद्दे, अन्ने य इमे भवे भावा ।७०१।
(चतुर्दशपूर्वच्छेदः[1] वर्ष शते [च] सप्ततौ विनिर्दिष्टः ।
साधौ स्थूल-भद्रे, अन्ये च इमे भवेयुः भावाः ।)

(श्रुतकेवली भद्रबाहु के स्वर्गगमन के पश्चात्) वीर निर्वाण वर्ष १७० में साधु स्थूलभद्र में चतुर्दश पूर्वों का छेद अर्थात् ह्रास बताया गया है। अन्य भी ये (निम्नलिखित) घटनाएं घटित होने का निर्देश किया गया है ।७०१।

कोवीकय सज्झातो, समणो समण गुण निउण चिंतइ उं ।
पुच्छइ मणिं सुविहियं, अइसयनाणिं महासत्तं ।७०२।
(कोऽपि कृतस्वाध्यायः, श्रमणः श्रमणगुणनिपुणचिन्तकः ।
पृच्छति गणिनं सुविहितं, अतिशय ज्ञानिनं महासत्त्वम् ।)

श्रमण के गुणों में निपुण एवं चिन्तक एक साधु स्वाध्याय करने के पश्चात् सुविहित परम्परा के अतिशय ज्ञानी एवं महासत्व-शाली गणाचार्य से पूछता है ।७०२।

भगवं कह पुव्वाओ, नट्ठाओ उवरियाइं चत्तारि ।
एयं जहा विदिट्ठं, इच्छह सब्भावतो कहिउं ।७०३।
(भगवन् कथं पूर्वाणि नष्टानि उपरिमानि चत्वारि ।
एतद् यथा विदृष्टं, इच्छथ सद्भावतः कथितुं ।)

---

१ पूर्वतर चतुर्पूर्वाणां विच्छेदात् चतुर्दशपूर्वह्रासं-हानिरित्यर्थः । छेदशब्दोऽत्र ह्रास द्योतक एव न तु विलुप्ति द्योतकः ।

"भगवन् ! ऊपर के चार पूर्व (ग्यारहवें पूर्व से चौदहवें तक) किस प्रकार नष्ट हो गये ? यह आपने जिस प्रकार देखा (ज्ञानातिशय से देखा, जाना अथवा सुना) है उसी प्रकार कहने की कृपा कीजिये।" ।७०३।

जह पाडलस्स गुणपायडस्सवि परंपरागओ गंधो ।
संसग्गी संकंतो अहिययरं पायडो होइ ।७०४।
(यथा पाटलस्य गुण प्रकटस्यापि परम्परागतः गंधः ।
संसर्गी संक्रान्त अधिकतरं प्रकटीभवति ।)

आचार्य ने श्रमण के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा -'जिस प्रकार सर्वविदित गुणों वाले पाटल अर्थात् गुलाब के पुष्प की परम्परागत सुगन्ध अच्छे गांधी के संसर्ग से और अधिक विकसित हो प्रकट होती है ।७०४।

एवं सुयधर पडिपुच्छतो, नरो परम मंदमेहावी ।
घोवडि पुच्छतो पुण, जस पाय दुगंधतो होई ।७०५।
(एवं श्रुतधर प्रतिपृच्छातः, नरो परममंद मेधावी ।
घोटिका पुच्छतः पुनः, यथा प्राय दुर्गन्धितः भवति ।

उसी प्रकार परम मन्द मनुष्य भी श्रुतधर से श्रुतसम्बन्धी प्रश्न पूछ-पूछ कर मेधावी बन जाता है। उसी पाटल पुष्प को घोड़ी की पूंछ से धि देने पर वह दुर्गन्धपूर्ण हो जाता है ।७०५।

स्पष्टीकरणम्—यथा सौगन्धिकस्य प्रयासेन पाटल पुष्पस्य सुगन्धी बहुगुणा संजायते तथैव श्रुतधर गणिनः सकाशात् प्रतिपृच्छया ज्ञानमवाप्नुवतः मेधाविनः साधोः गुणानि भूरिशो वृद्धिमवाप्य प्रकटाभवन्ति । किन्तु तथैव प्रतिपृच्छया मंदमते अधमनरस्य यत्किंचित्कं ज्ञानं तद्वत् दूषितमसुखकरं च भवति यद्वत् बडवायाः पुच्छ आबद्ध पाटल पुष्पं प्रायः मूत्र पूरीषादि संयोगात् दूषितं भवति ।

विण्णाणं जिणवयणं, कयावि न वि दिज्जए अधन्नस्स ।
धण्णस्स दिज्जए पुणो, सद्दहमाणस्स भावेणं ।७०६।

(विज्ञानं जिन वचनं, कदापि नापि दीयते अधन्यस्य ।
धन्यस्य दीयते पुनः, श्रद्दधानस्य भावेन ।)

जिन वाणी एवं विशिष्ट ज्ञान कभी किसी अधन्य अर्थात् हीन अथवा अधम पुरुष को नहीं देना चाहिये। वह केवल आन्तरिक श्रद्धाशील उत्तम पुरुष को ही देना चाहिए ७०६।

अम्हं आयरियाणं, सुतीए कण्णाहडं वा सोउं ।
जे तित्थोगालीएयं, एगमणा से निसामेह ।७०७।
(अस्माकं आचार्याणां श्रुत्या कर्णाहृतं वा श्रुत्वा ।
यत् तीर्थोद्गालिकायां, एकमनसा तत् निशामयतः ।

मैंने अपने आचार्यों के मुख से अथवा परम्परागत श्रुति के आधार से तीर्थोगाली अर्थात् तीर्थों के प्रवाह के सम्बन्ध में सुन कर जो जाना है. उसे तुम एकाग्रचित्त हो सुनो ७०७।

तिण्णि य वासा मासद्ध अट्ठ बावत्तरिय सेसाइं ।
सेसाए चउत्थीए, तो जातो वद्दमाण रिसी ।७०८।
(त्रयश्च वर्षाः मासार्द्धष्ट द्वासप्ततिश्च शेषाणि ।
शेषायां चतुर्थ्यां, ततः जातो वर्द्धमानर्षिः ।)

चतुर्थ आरक की समाप्ति में जब पचहत्तर (७५) वर्ष और साढा आठ मास शेष रहे तब महर्षि भगवान् महावीर का जन्म हुआ ।७०८।

अद्ध य सट्ठामासा, निन्नेव हवन्ति तह य वासाइं ।
सेसाए चउत्थीए, तो कालगतो महावीरो ।७०९।
(अर्द्धश्च साष्टामासाः त्रय एव भवन्ति तथा च वर्षाः ।
शेषायां चतुर्थ्यां, ततः कालगतो महावीरः ।)

जब चतुर्थ आरक की समाप्ति में तीन वर्ष और साढा आठ मास अवशिष्ट थे, तब भगवान् महावीर मोक्ष पधारे ।७०९।

तंमि गए य गय रागे, वोच्छिन्न पुणुब्भवे जिणवरिंदे ।
तित्थोगालि समासं, एगमणा मे निसामेह ।७१०।
(तस्मिन् गते च गतरागे, व्युच्छिन्नं पुनर्भवे जिनवरेन्द्रे ।)
तीर्थोद्गालिसमासं एकमना मे निशामयतः ।)

उन वीतराग प्रभु महावीर के निर्वाण तथा आगामी चौवीसी की उत्पत्ति तक तीर्थंकरों को इस क्षेत्र में व्युच्छित्ति के पश्चात् तीर्थ प्रवाह का मैं जो संक्षेपतः कथन कर रहा हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो ।७१०

नाणुत्तमस्स धम्मुत्तमस्स, धंमिल्ल जणोवएसगस्स ।
आसि सुधम्मो सीसो, वायरधम्मो य उरधम्मो ।७११।
ज्ञानोत्तमस्य सूत्तम संधमितजनोपदेशस्य ।
आसीत् सुधर्मः शिष्यः, बहिधर्मा च उरधर्मा ।)

उत्तम ज्ञान और उत्तम धर्म वाले तथा धर्मरुचि जनों को उपदेश देने वाले उन भगवान् महावीर के शिष्य आर्य सुधर्मा थे जिनका कि बहिरंग और अन्तरंग धर्म के रंग में रंगा हुआ था ।७११।

तस्स वि य जंबुणामो, जंबुणयरासि तवियसमवण्णो ।
तस्त वि प्पभवो सीसो, तस्स वि सेज्जंभवो सीसो ।७१२।
(तस्यापि च जंबुनामा, जाम्बुनदराशितप्तसमवर्णः ।
तस्यापि प्रभवः शिष्यः, तस्यापि शय्यंभवः शिष्यः ।

आर्य सुधर्मा के शिष्य थे आर्य जम्बू जिनका कि वर्ण तपाई हुई जाम्बुनद स्वर्ण की राशि के समान था । आर्य जम्बू के शिष्य प्रभव और आर्य प्रभव के शिष्य शय्यंभव थे ।७१२।

सेज्जंभवस्स सीसो, जसभद्दोनाम आसि गुणरासी ।
सुन्दर कुलप्पसूतो, संभूतो नाम तस्सावि ।७१३।
(शय्यंभवस्य शिष्यः, यशोभद्रनामा आसीत् गुणराशिः ।
सुन्दरकुलप्रसूतः, सम्भूत नामा तस्यापि ।

आर्य शय्यंभव के शिष्य का नाम यशोभद्र था। वे गुणों की राशि थे। आर्य यशोभद्र के शिष्य अति यशस्वी कुल में उत्पन्न हुए आर्य संभूत थे।७१३।

सत्तमतो थिरबाहू, जाणु य सीसुपडिच्छय सुबाहू ।
नामेण भद्दबाहू, अवि हि साधम्म भद्दोत्ति ७१४।
(सप्तमतः स्थिरबाहु, जानु च शीश प्रतिच्छद सुबाहुः ।
नाम्ना भद्रबाहुः, अपि हि स्वधर्मभद्र इति ।)

भगवान् महावीर के सातवें पट्टधर आजानु सुन्दर एवं सुदृढ़ भुजाओं वाले भद्रबाहु थे जिनका कि दूसरा नाम स्वधर्मभद्र भी था।७१४।

सो पुण चौद्दस पुव्वी, बारसवासाइं जोग पडिवन्नो ।
सुत्तत्थेण निबंधइ, अत्थं अज्झयण बन्धस्स ।७१५।
(स पुनः चतुर्दश पूर्वी, द्वादशवर्षान् योगप्रतिपन्नः ।
सूत्रार्थेन निबध्नाति, अर्थमध्ययनबन्धस्य ।)

वे आचार्य भद्रबाहु चौदह पूर्वों के धारक थे। वे बारह वर्ष तक योग (महा प्राण ध्यान) की साधना में निरत रहे। उन्होंने छेद सूत्रों की रचना की।७१५।

पलिया च अणावुट्ठी, तइया आसी य मज्झदेसंमि ।
दुब्भिक्ख विप्पणट्ठा, अण्णं विसयं गता साहू ७१६।
(पलिता च अनावृष्टिः, तदा आसीत् मध्यदेशे ।
दुर्भिक्ष विप्रणष्टाः, अन्यं विषयं गताः साधवः ।)

उनके समय में मध्य प्रदेश में अनावृष्टि के कारण भयंकर दुष्काल पड़ा। दुर्भिक्ष में अनेक लोग नष्ट हो गए और साधु गण अन्य प्रदेशों में चले गये।७१६।

कइवि विराहणा भीरूएहिं, अइभीरुएहिं कम्माणं ।
समणेहिं संकिलिट्ठं, पच्चक्खायाइं भत्ताइं ।७१७।

(कत्यपि विराधनाभीरुभिरतिभीरुभिः कर्मणाम् ।
श्रमणैः संश्लिष्टानि, प्रत्याख्यातानि भक्तानि ।)

अनेक धर्मभीरु साधुओं ने इस डर से कि कहीं उनके विशुद्ध संयम में किसी प्रकार का दोष न लग जाय अथवा कर्मबन्ध न हो जाय, अशनपानादि का प्रत्याख्यान कर अति कठोर आजीवन अनशन का व्रत ग्रहण कर लिया ।७१७।

वेयड्ढकंदरासु य नदीसु सेढीसमुद्दकूलेसु ।
इहलोग अपडिबद्धाय, तत्थ जयणाए वट्टंति ।७१८।
(वैताढ्यकंदरासु च नदीसुश्रेणि समुद्रकूलेषु ।
इहलोके अप्रतिबद्धाश्च, तत्र यत्नया वर्तन्ते ।)

कतिपय साधु वैताढ्य की कन्दराओं में, कतिपय महा नदियों के तटवर्ती प्रदेशों में, कतिपय साधु पर्वत श्रेणियों की तलहटियों में तथा अनेक साधु समुद्र के तटवर्ती प्रदेशों में चले गये । इस लोक तथा अपने शरीर तक से निस्पृह निर्लिप्त एवं उदासीन हो उन क्षेत्रों में बड़ी सावधानी और यतना पूर्वक विचरण करने लगे ।७१८।

ते आगया सुकाले, सग्गगमण सेसया ततो साहू ।
बहुयाणं वासाणं, मगहा विसयं अणुपत्ता ।७१९।
(ते आगताः सुकाले, स्वर्गगमनावशेषकाः ततः साधवः ।
बहुभिर्वर्षैः, मगध विषयमनुप्राप्ताः ।)

अनेक वर्षों पश्चात् सुकाल होने पर स्वर्गगमन से शेष बचे जो साधु थे वे मगध प्रदेश में पुनः आये ।७१९।

ते दाइं एक्कमेक्कं, मय सेसा चिरं य दट्ठूणं ।
परलोगगमण पच्चागयव्व, मण्णंति अप्पाणं ।७२०।
(ते इदानीं एकमेकं, मृतशेषाश्चिराच्च दृष्ट्वा ।
परलोकगमनप्रत्यागता इव मन्यन्ते आत्मानम् ।)

मृत्यु से बचे हुए शेष साधु सुदीर्घ काल के पश्चात् उस समय एक दूसरे को देख कर यह अनुभव करने लगे मानो वे परलोक में जा कर पुनः जीवित हो लौटे हों ।७२०।

ते बिंति एक्कमेक्कं, सज्झाउ कस्स कित्तउ धरति ।
हंदि हु दुक्कालेणं, अम्हं नट्ठो हु सज्झातो ।७२१।
(ते ब्रुवन्ति एकमेकं, स्वाध्यायः कस्य कियान् धरति ।
हंत ! इह तु दुष्कालेन, अस्माकं नष्टो हि स्वाध्यायः ।)

वे परस्पर एक दूसरे से पूछते हैं कि किस किस को कितना-कितना आगम पाठ कण्ठस्थ है। हा ! दुष्काल के कारण हमें तो स्वाध्याय-अर्थात् आगम-पाठ विस्मृत हो गया है ।७२१।

जं जस्स धरइ कंठे, तं तं परि यट्टिऊण सव्वेसिं ।
तीणेहिं पिंडिताइं, तहियं एक्कार संगाइं ।७२२।
(यद् यस्य धरति कण्ठे, तत्तत् परावर्तयित्वा सर्वेषाम् ।
तैः पिण्डितानि, तत्र एकादशांगानि ।)

जिस जिस साधु को जितना जितना पाठ कण्ठस्थ था, उस उस पाठ को सुन कर सब के आगम पाठों का परावर्तन किया गया और इस प्रकार उन्होंने (ज्ञान स्थविरों ने) वहां ग्यारह अंगों का पाठ यथावत् क्रमबद्ध, सुनिश्चित, सुव्यवस्थित कर प्रत्येक अंग को पूर्णतः एकत्रित किया ।७२२।

ते बिंति सव्व सारस्स, दिट्ठिवायस्स नत्थि पडिसारे ।
कह पुव्वगएण विणा य, पवयणं सारं धरेहामो ।७२३।
(ते ब्रुवन्ति सर्वसारस्य, दृष्टिवादस्य नास्ति प्रतिसार [प्रतिस्मारः]
कथं पूर्वगतेन विना च, प्रवचनसारं धरिष्यामः ।)

एकादशांगी को सुव्यवस्थित करने के पश्चात् वे श्रमण कहते हैं—"सम्पूर्ण ज्ञान का सारभूत दृष्टिवाद तो किसी को स्मरण नहीं है। पूर्वगत ज्ञान के बिना हम सब प्रवचन के सार को किस प्रकार धारण कर सकेंगे ? ।७२३।

समणस्स (सम्मस्स) भद्दबाहुस्स, नवरि चोद्दसवि अपरिसेसाइं ।
पुव्वाइं अण्णत्थय उ, न कहिंचिवि अत्थि पडिसारो ।७२४।
(श्रमणस्य भद्रबाहोः, नवरं चतुर्दशापि अपरिशेषाः ।
पूर्वाणि अन्यत्रं च तु, न कुत्रचिदपि अस्ति प्रतिसारः ।)

समभावनिष्ठ भद्रबाहु को सम्पूर्ण चौदह पूर्वों का ज्ञान हृदयंगम एवं कण्ठस्थ है। अन्यत्र कहीं किसी की स्मृति में पूर्वों का ज्ञान नहीं है ।७२४।

सो वि य चोद्दस पुव्वी, बारसवासाइं जोग पडिवन्नो ।
दिज्ज न वि दिज्ज वा, वायणं ति वाहिप्पउ ताव ।७२५।
(सोऽपिच चतुर्दशपूर्वी, द्वादशवर्षान् योगप्रतिपन्नः ।
दद्यात् न वा दद्यात् वा, वाचनामिति व्याजिगिप्यतु तावत् ।

किन्तु वे चतुर्दश पूर्वधर भद्रबाहु बारह वर्ष की योग साधना में संलग्न हैं। ऐसी स्थिति में वे पूर्वगत की वाचना दें या न दें—इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। तथापि उन्हें विज्ञप्त तो कर ही देना चाहिए ।७२५।

संघाडएण गंतूणं, आणत्तो समणसंघवयणेणं ।
सो संघथेरपमुहेहिं, गणसमूहेहिं आभट्ठो ।७२६।
(संघाटकेन गत्वा, आज्ञप्तः श्रमणसंघवचनेन ।
स संघस्थविरप्रमुखैः, गण समूहैरापृष्टः ।)

साधुओं के एक संघाटक ने भद्रबाहु के पास पहुँच कर उन्हें श्रमण संघ के वचनों में ही आज्ञप्त किया। गण समूहों के अग्रणी संघ स्थविरों ने भद्रबाहु से कहा—।७२६।

तं अज्जकालिय जिणवरसंघो तं जायए सव्वो ।
पुव्वसुयकम्मधारय ! पुव्वाणं वायणं देहि ।७२७।
(तद् अद्यकालिकः जिनवरसंघः त्वं याचते सर्वः ।
पूर्व श्रुतक्रमधारक ! पूर्वाणां वाचनां देहि ।)

"पूर्वश्रुतक्रमधर ! भगवान् महावीर का वर्तमानकालिक समस्त संघ आपसे प्रार्थना करता है—याचना करता है कि आप पूर्वों की वाचना दें" ।७२७।

सो भणति एव भणिए, अतिद्ढ किलिट्ठएण वायणाणं ।
न हु ता अहं समत्थो, इण्हि मे वायणं दाउं ।७२८।
(स भणति एवं भणिते, अतिऋद्ध-क्लिष्टत्वात् वाचनानाम् ।
न खलु तावदहं समर्थः, एतासां भो वाचनां दातुम् ।

संघाटक के इस कथन को सुन कर भद्रबाहु ने कहा—"पूर्वों की वाचनाएं गहन-गम्भीर, गूढार्थपूर्ण और नितान्त क्लिष्ट हैं अतः मैं इनकी वाचनाएं देने में समर्थ नहीं हूँ ।७२८।

अप्पट्ठे आउत्तस्स, मज्झ किं वायणाए कायव्वं ।
एवं च भणियमेत्ता, रोसस्सवसं गया साहू ७२९।
(आत्मार्थे आयुक्तस्य, मम किं वाचनया कर्तव्यम् (करणीयम्) ।
एवं च भणितमात्रा, रोषस्यवशं गताः साधवः ।)

आत्मकल्याण में संलग्न मुझे वाचनाओं से क्या करना है। भद्रबाहु इतना ही कह पाये थे कि संघातक के साधु रोष के वशीभूत हो गये ।७२९।

अह विण्णविंति साहू, हंतेवं पसिणपुच्छणं अम्हं ।
एवं भणंतस्स तुहं, को दंडो होइ तं भणसु ।७३०।
(अथ विज्ञपयन्ति साधवः, हंत ! एवं प्रश्न पृच्छनमस्माकम् ।
एवं भणतस्य तव, को दंडः भवति तद् भण ।)

तदनन्तर वे साधु भद्रबाहु को विज्ञप्त करते हुए कहते हैं—"हमें दुःख के साथ आप से एक प्रश्न पूछना पड़ रहा है कि इस प्रकार की बात कहते हुए आप किस दण्ड के भागी होते हैं ? आप हमें यह बता दीजिये ।७३०।

सो भणति एव भणिए, अविसन्नो वीरवयणे नियमेण ।
वज्जेयव्वो सुयनिण्हवोत्ति, अह सव्व साहूहिं ।७३१।

(स भणति एवं भणिते, अविषण्णः वीरवचननियमेन ।
वर्जयितव्यः श्रुतनिन्हव इति अथ सर्वसाधुभिः ।)

साधु संघाटक के इस कथन पर भद्रबाहु ने प्रभु महावीर के वचनों के नियमानुसार सहज स्वर में कहा--"सब साधुओं द्वारा ऐसे श्रुतनिह्नव का परित्याग कर दिया जाना चाहिए ।७३१।

तं एवं जाणमाणो, नेच्छसि णे पाडिपुच्छयं दाउं ।
तं ठाणं पत्तं ते, कहं तं पासे ठवेहामो ? ।७३२।
(तदेवं जान्यमानः, न इच्छसि नः प्रतिपृच्छां दातुम् ।
तत्स्थानं प्राप्तं तव, कथं तत् पार्श्वे स्थास्यामः ।)

संघाटक के साधुओं ने कहा--' आप यह सब कुछ जानते हुए भी प्रतिपृच्छा--वाचना देना नहीं चाहते ? आप (आप द्वारा बताये गये) उस (त्याज्य निह्नव के) स्थान को प्राप्त हो चुके हैं। अब हम आपको अपने साथ अथवा अपने पास कैसे रख सकते हैं ।७३२।

बारसविह संभोगे, वज्जए ते समं समण संघो ।
जन्ने जाइज्जंतो, न वि इच्छसि वायणं दाउं ।७३३।
(द्वादशविधसंभोगान् वर्जयते तव समं श्रमणसंघः ।
यद् ने[1] याच्यमानः नापि इच्छसि वाचनां दातुम् ।)

आप प्रार्थना की जाने पर भी वाचना देना नहीं चाहते अतः श्रमण संघ आपके साथ बारह प्रकार के संभोगों का विच्छेद करता है ।७३३।

सो भणति एवं भणिय जसभरितो अयसभीरुतो धीरो ।
एक्केण कारणेणं, इच्छं मे वायणं दाउं ।७३४।
(स भणति एवं भणिते, यशभृतः अयशभीरुकः धीरः ।
एकेन कारणेन, इच्छामि भवतां वाचनां दातुम् ।)

---

१ नः अस्माभिरित्यर्थः ।

श्रमण संघाटक के इस कथन पर अपयशभीरु, यशस्वी एवं धैर्यशाली भद्रबाहु ने कहा--"मैं एक स्थिति में अर्थात् एक शर्त पर वाचना देना चाहता हूं--।७३४।

अप्पट्ठे आउत्तो, परमट्ठे सुट्ठु दाणि उज्जुत्तो ।
न विं हं वाहरियव्वो, अहं पि न विवाहरिस्सामि ।७३५।
(आत्मार्थे आयुक्तः, परमार्थे सुष्ठु इदानीं उद्युक्तः ।
नाप्यहं व्याहर्त्तव्यः अहमपि न विव्याहरिष्यामि ।)

आत्मकल्याण में संलग्न तथा परमार्थ में इस समय अच्छी तरह उद्यत मुझे न तो कोई अन्य कुछ कहे और न मैं ही किसी को कुछ कहूंगा ।७३५।

पारिय काउसग्गो, भत्तट्ठितो व अहव सज्झाए[1] ।
निंतो व आइंतो वा, एवं भे वायणं दाहं ७३६।
(पारित कायोत्सर्गः, भक्तास्थितो वाथवा स्वाध्याये (शय्यायाम्) ।
गच्छन वा आगच्छन् वा एवं भवतां वाचनां दास्यामि ।)

कायोत्सर्ग के पारण के पश्चात् भोजनार्थ बैठा हुआ, अथवा स्वाध्याय में निरत, कहीं जाता हुआ अथवा कहीं आता हुआ--मैं वाचनाएं दूंगा ।७३६।

बाढं त्ति समणसंघो, अम्हे अणुमन्तिमो तुहं छंदं ।
देहि य धम्मो वाहं, तुम्हं छंदेण हिच्चामो ।७३७।
(बाढं ! इति श्रमणसंघः, वयमनुमन्यामहे तव छंदम् ।
देहि य धर्मे वाहं त्वां छन्देन जहिमः ।

श्रमण संघ के प्रतिनिधि संघाटक ने कहा--'बिल्कुल ठीक है, हम आपके इस छंद (शर्त) को स्वीकार करते हैं। आप धर्म को प्रवाह दीजिये अर्थात् वाचनाएं दीजिये। हम आपको सब प्रकार के छंद (शर्त) से मुक्त करते हैं ।७३७।

---

२ सेज्जाए—(शय्यायां) इति पाठान्तरमप्युपलभ्यते ।

जे आसी मेहावी, उज्जुत्ता गहण धारण समत्था ।
ताणं पंचसयाइं, सिक्खगसाहूण गहियाइं ।७३८।
(ये आसन् मेधाविनः उद्युक्ताः, ग्रहणधारणसमर्थाः ।
तेषां पञ्चशतानि, शैक्षक साधूनां गृहीतानि ।

जो पूर्वगत ज्ञान को ग्रहण एवं धारण करने में समर्थ तथा पूर्वों का अभ्यास करने के लिये लालायित थे ऐसे ५०० मेधावी शिक्षार्थी श्रमणों को पूर्वों के ज्ञान की वाचना ग्रहण करने के लिये चुना गया ।७३८।

वेयावच्चगरा से एक्केक्कस्सुवट्ठविया दो दो ।
भिक्खंमि अपडिबद्धा, दिया य रत्तिं च सिक्खंति ।७३९।
वैयावृत्यकरास्तेषां एकैकस्य उपस्थापिता द्वौ द्वौ ।
भिक्षायाम प्रतिबद्धाः दिवा च रात्रं च शिक्षन्ते ।)

उन ५०० श्रमणों में से प्रत्येक की वैयावृत्य अर्थात् सेवा के लिये दो-दो श्रमणों को नियुक्त किया गया। भिक्षाटन आदि कार्यों से विनिर्मुक्त वे ५०० शिक्षार्थी साधु रात और दिन पूर्वों का ज्ञान सीखने लगे ७३९।

ते एग, संघ साहू, वायण परिपुच्छणाए परितंता ।
वाहारं अलहंता, तत्थ य जं किंचि अमुणन्ता ।७४०।
ते एकसंधाः साधवः, वाचन परिपृच्छनया परित्रान्ताः ।
व्याहारं अलभमानाः, तत्र च यत्किंचित् अमुणन्तः ।)

एक जुट्ट अथवा एक ही संघ के शिक्षार्थी साधु वाचना तथा परिपृच्छा अर्थात् बार-बार की पूछताछ से हतप्रभ हो एवं गहन-गभीर पूर्वगत ज्ञान की यथेप्सित विस्तृत व्याख्या प्राप्त होने की दशा में पूरी तरह उसे न समझ पाने कारण—।८४०।

उज्जुत्ता मेहावी, सिट्ठा उ वायणं अलभमाणा ।
अह ते थोवा थोवा, सव्वे समणा विनिस्सरिया ।७४१।

(उज्युक्ताः मेधाविनः, अवशिष्टास्तु वाचनां अलभमानाः ।
अथ ते स्तोकाः स्तोकाः, सर्वे श्रमणाः विनिस्सृताः ।)

शिक्षा ग्रहण करने के लिये समुद्यत शेष मेधावी शिक्षार्थी साधु यथेप्सित वाचनाओं के न मिलने के कारण वहां से थोड़ी संख्या में निकलने लगे। इस प्रकार सभी शिक्षार्थी श्रमण नेपाल छोड़ कर निकल आये ।७४१।

एको नवरि न मुंचति, सकडाल कुलस्स जसकरो धीरो ।
नामेण थूलभद्दो, अविहिंसा-धम्मभद्दो त्ति ।७४२।
(एको नवरं न मुंचति, सकडाल कुलस्य यशकरः धीरो ।
नाम्ना स्थूलभद्र, अविहिंसा-धर्मभद्रः इति ।)

केवल एक--शकडाल कुल का यश बढ़ाने वाले धीर अहिंसा रूपी आत्म धर्म में जागरूक स्थूलभद्र नामक साधु श्रुतकेवली भद्रबाहु के सान्निध्य को नहीं छोड़ता है अर्थात् पूर्वगत की वाचनाएं ग्रहण करता रहता है ।७४२।

सो नवरि अपरितंतो, पयमद्धपयं च तत्थ सिक्खंतो ।
अन्तेइ भद्दबाहुं, थिरबाहुं अट्ठवरिसाइं ।७४३।
स नवरं अपरित्रान्तः, पदमर्द्धपदं च तत्र शैक्ष्यन् ।
अन्ते एति [अन्तेवसति] भद्रबाहुं, स्थिरबाहुं अष्ट-वर्षाणि)

बिना किसी प्रकार की निराशा एवं संताप के वह बड़े धैर्य के साथ प्रतिदिन एक पद अथवा आधा पद सीखता हुआ दृढ़ बाहुओं वाले भद्रबाहु को सेवा में आठ (८) वर्षों तक रहता है ।७४३।

सुन्दर अट्ठपयाइं, अट्ठहिं वासेहिं अट्ठमं पुव्वं ।
भिंदति अभिण्णहियतो, आमेलेउं अह पवत्तो ।७४४।
(सुन्दरार्थपदानि, अष्टभिर्वर्षैरष्टमं पूर्वम् ।
भिनत्ति अभिन्नहृदये, आमेलयितुमथप्रवृत्तः ।)

स्थूलभद्र एकाग्रचित्त हो पूर्वगत के सुन्दर गूढार्थ भरे गहन-गम्भीर अर्थ पदों एवं आठ वर्षों में आठवें पूर्व का अवगाहन करता हुआ उन्हें हृदयंगम करने में प्रवृत्त रहा ।७४४।

तस्स वि दाइं समत्तो, तवनियमो एव भद्दबाहुस्स ।
सो पारित तवनियमो, वाहरिउं जे अह पवत्तो ।७४५।
(तस्यापि इदानीं समाप्तः, तपनियम एवं भद्रबाहोः ।
स पारित-तपनियमः व्याहर्तुं यत् अथ प्रवृत्तः ।)*

उधर अब भद्रबाहु का भी तप-नियम सम्पन्न हुआ। तप-नियम को पारित कर भद्रबाहु अपने शिक्षार्थी शिष्य स्थूलभद्र को पूर्वों की अधिकाधिक वाचनाएँ देने में प्रवृत्त हुए ।७४५।
(७४६ की संख्या लिपिक ने छोड़ दी है)

अह भणइ भद्दबाहू, पढमं ता अट्ठमस्स वासस्स ।
अणगार न हु किलिस्ससि, भिक्खे सज्झाय-जोगे य ।७४७।
(अथ भणति भद्रबाहू, प्रथमं तावत् अष्टमस्य वर्षस्य ।
अनगार ! न खलु क्लिष्यसि, भिक्षायां स्वाध्याय-योगे च ।)

आचार्य भद्रबाहु आठवें वर्ष के प्रारम्भ में शिष्य से पूछते हैं--"अनगार ! तुम्हें भिक्षा एवं स्वाध्याय के योग में किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं हो रहा है ? ७४७

सो अट्ठमस्स वासस्स, तेण पढमिल्लुयं समापट्ठो ।
कीस य परितं मीहं, धम्मावाए अहिज्जंतो ।७४८।
(स अष्टमस्य वर्षस्य, तेन प्रथमिल्ले समापृष्टः ।
कीदृशं च पलितं मह्यं, धर्मवादान् अधीयानस्य ।)

आठवें वर्ष के प्रारम्भ में भद्रबाहु द्वारा पूछे गये उक्त प्रश्न के उत्तर में स्थूलभद्र ने कहा---"भगवन् ! धर्मवाद का अध्ययन करते

---

*उपलब्ध प्रतौ ७४६ तमा संख्या लिखितैव नास्ति ।

समय मुझे किसी भी प्रकार का कष्ट कैसे हो सकता है. अर्थात् मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं है ।७४८।

एक्कं तो मे पुच्छं, केत्तियमेत्तं मि सिक्खतो होज्जा ।
कत्तियमेत्तं च गयं, अट्ठहिं वासेहिं ता किं लद्धं ।७४९।
(एकं तु भवन्तं पृच्छामि, कियन्मात्र मया शिक्षितं भवेत् ।
कियन्मात्रं च गतं, अष्टभिर्वर्षैस्तावत् किं लब्धम् ।)

हाँ, मैं एक बात आपसे जानना चाहता हूँ कि मुझे कुल कितना सीखना था, उसमें से कितना सीख चुका हूँ---इन (विगत) आठ वर्षों में मैंने क्या (कितना) प्राप्त कर लिया है ? ७४९।

मंदर गिरिस्स पासंमि, सरिसवं निक्खिवेज्ज जो पुरिसो ।
सरिसव मेत्तं ति गयं, मंदरमेत्तं च ते सेसं ।७५०।
(मन्दरगिरेः पार्श्वे, सर्षपं निक्षिपेत यः पुरुषः ।
सर्षपमात्रं ते गतं, मंदरमितं च ते शेषम् ।)

गिरिराज मन्दराचल के पार्श्व में कोई पुरुष सरसों का एक दाना रख दे और फिर तुम्हारे द्वारा सीखे हुए ज्ञान और अब सीखने के लिये अवशिष्ट रहे ज्ञान की तुलना की जाय तो वस्तुतः मन्दराचल के पार्श्व में पड़े सरसों के एक दाने जितना ज्ञान तुमने सीखा है तथा मंदराचल जितना ज्ञान सीखने के लिये अवशिष्ट रहा है ।७५०।

सो भणइ एवं भणिए, भीतो व वि ताअहं समत्थोमि ।
अप्पं च मइं आउ, बहुसुय मन्दरो सेसो ।७५१।
(स भणति एवं भणिते, भीतो नापि तावदहं समर्थोऽस्मि ।
अल्पं च मम आयुः, बहुश्रुतमन्दरः शेषः ।)

भद्रबाहु के इस कथन को सुन कर श्रमण स्थूलभद्र ने भय विह्वल स्वर में कहा---"तो मैं तो इसे सीखने में समर्थ नहीं हूँ क्योंकि आयु तो मेरी थोड़ी है और श्रुत शास्त्र का इतना सुविशाल मन्दराचल तुल्य भाग सीखना शेष है" ।७५१।

मा भाहि निट्ठविहिसि, अप्पतरेण वीर कालेण ।
मज्झ नियमो समत्तो, पुच्छाहि दिवा य रत्तं च ।७५२।
(मा भैसिः निष्ठापयिष्यसि, अल्पतरेण वीर ! कालेन ।
मम नियमः समाप्तः, पृच्छ दिवा च रात्रिं च ।)

स्थूलभद्र को आश्वस्त करते हुए भद्रबाहु ने कहा--"वीर ! डरो नहीं। तुम थोड़े से ही समय में इसे समाप्त कर दोगे। मेरा नियम समाप्त हो गया है। अतः अब तुम रात दिन पृच्छाएं करते हुए पूर्वों का अध्ययन करो" ।७५२।

सो सिक्खिउं पयत्तो, दट्ठत्थो सुट्ठ दिट्ठिवायंमि ।)
पुव्वक्खतोव[1] समियं, पुव्वगतं पुव्व-निद्दिट्ठं ।७५३।
(स शिक्षितुं प्रवृत्तः, दृष्टार्थः सुष्ठु दृष्टिवादे ।
पूर्वक्षयोपशमिकं, पूर्वगतं पूर्वनिर्दिष्टम् ।)

इस से प्रोत्साहित हो दृष्टिवाद में समीचीनतया सार देख कर मुनि स्थूलभद्र पूर्व क्षयोपशम के फलस्वरूप पूर्व निर्दिष्ट पूर्वगत को सीखने में और अधिक प्रयत्नशील हुए ।७५३।

संपति एक्कारसमं पुव्वं अतिवयति वणगओ चेव ।
जंति तओ भगिणीतो, सुट्ठुमणा वंदण निमित्तं ७५४।
(संप्रति एकादशमं पूर्वं, अतिवदति वनगतश्चैव ।
यान्ति ततः भगिन्यः, सुष्ठुमनसः वन्दननिमित्तम् ।)

अब स्थूलभद्र एकान्त वन में बैठ कर ग्यारहवें अंग का पाठ याद करने लगे। उस समय उनकी बहिनें हर्ष के साथ उन्हें वन्दन करने गईं ।७५४।

जक्खा य जक्खदिन्ना, भूया तह हवति भूयदिन्नाय ।
सेणा वेणा रेणा, भगिणीतो थूलभद्दस्स ।७५५।

---

१ पुव्वक्खयोवसमियं'-इत्यपि संभाव्यते ।

(यक्षा च यक्षदिन्ना, भूता तथा भवति भूतदिन्ना च ।
सेना वेना रेना, भगिन्यः स्थूलभद्रस्य ।)

यक्षा, यक्षदिन्ना, भूता, भूतदिन्ना, सेणा, वेणा और रेणा--- ये स्थूलभद्र की सात बहिनें थीं ।७५५।

एया सत्तजणीओ, बहुस्सुया नाणचरणसंपन्ना ।
सगडालबालियातो, भाउं अवलोइउं एंति ।७५६।

(एताः सप्तजनाः बहुश्रुताः ज्ञानचरणसम्पन्नाः ।
शकटालबालिकाः भ्रातरमवलोकितुं आयान्ति ।)

ज्ञान और चरण अर्थात् क्रिया से सम्पन्ना तथा बहुश्रुता ये शकडाल की सातों पुत्रियां अपने भाई स्थूलभद्र को देखने के लिये उद्यान में पहुंचती हैं ।७५६।

ता वंदिऊण पाएसु, भद्दबाहुस्स दीहबाहुस्स ।
पुच्छंति य भाउ णे, कत्थगओ थूलभद्दोत्ति ।७५७।

(ताः वन्दित्वा पादयोः, भद्रबाहोः दीर्घबाहोः ।
पृच्छन्ति च भ्राता नः, कुत्र गतः स्थूलभद्र इति ।)

वे सातों साध्वियां प्रलम्बभुज भद्रबाहु के चरणों में नमन कर उनसे पूछती हैं---"भगवन् ! हमारे भ्राता स्थूलभद्र कहां गये हैं ?" ।७५७।

अह भणइ भद्रबाहू, सो परियट्टेति शिवघरे[1] अंतो ।
वच्चह तहिं विदच्छिह, सज्झायज्झाण उज्जुत्तं ।७५८।
(अथ भणति भद्रबाहुः, स परिवर्तयति शिवगृह अन्तः ।
व्रजत तत्र विद्रक्ष्यथ, स्वाध्यायध्यान उद्युक्तम् ।)

---

१ शिवघरे--शून्यमृहे-इत्यर्थः ।

उत्तर में भद्रबाहु कहते हैं--"वह शिवगृह-शून्य घर के अन्दर अपने पाठ का परावर्तन कर रहा है। आप वहां जाइये। वहीं आप उसे स्वाध्याय-ध्यान में निरत देखेंगी" ।७५८।

इयरो वि य भयणीओ, दट्ठूण तत्थ थूलभद्दरिसी ।
चिंतेइ गारवयाए, सुयइड्ढिं ताव दाहेमि ।७५९।
(इतरोऽपि च भगिन्यः, दृष्ट्वा तत्र स्थूलभद्रर्षिः ।
चिन्तयति गारवतया, श्रुतर्द्धिं तावत् दर्शयामि ।)

ऋषि स्थूलभद्र ने वहां (आती हुई) अपनी बहिनों को देख कर गर्व के साथ उन्हें अपनी श्रुतऋद्धि का चमत्कार दिखाने का विचार किया ।७५९।

सोधवल वसभमेत्तो, जातो विक्किण्ण केसर जडालो ।
पुण्णसुक्क ससि सरिच्छो, कुंजरकुलभीसणो सीहो ।७६०।
(स धवलवृषभ मात्रः जातो विकीर्ण केसर जटालः ।
पूर्ण शुक्ल शशि सदृशः, कुञ्जरकुल भीषणः सिंहः ।)

स्थूलभद्र ने अपनी विद्या के बल से बिखरी हुई जटाजूट केसर वाले श्वेत वृषभ तुल्य, शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा के चन्द्र के समान प्रकाशपूर्ण और हाथियों के कुछ के लिये भयोत्पादक सिंह का रूप धारण कर लिया ।७६०।

तं सीहं दट्ठूणं, भीयाउ शिवघरा विनिस्सरिया ।
भणितो य ताहिं गुरु, एत्थ हु सीहो अतिगतो त्ति ।७६१।
(तं सिंहं दृष्ट्वा, भीताः शिवगृहात् विनिस्सृताः ।
भणितश्च ताभिर्गुरु, अत्र खलु सिंहोऽतिगत इति ।)

उस सिंह को देख कर वे सातों बहिनें डरीं और उस शून्य घर से बाहर निकल गईं। उन्होंने भद्रबाहु के पास जाकर कहा कि वहां तो सिंह है ।७६१।

नत्थीत्थ को वि सीहो, सो चेव य एस भाउओतुब्भं ।
इड्ढी पत्तो जातो, सुयस्स इड्ढिं पयंसेइ ।७६२।

(नास्त्यत्र कोऽपि सिंहः, स चैव चैषः भ्रातृकः युष्माकम् ।
ऋद्धिपात्रो जातः, श्रुतस्य ऋद्धिं प्रदर्शयति ।)

भद्रबाहु ने कहा---'यहां कोई सिंह नहीं है, वह तुम्हारा भाई ही है। वह ऋद्धियों का पात्र अर्थात् ऋद्धि धर बन गया है और श्रुत-ऋद्धि का प्रदर्शन कर रहा है ।७६२।

तं वयणं सोऊणं, तातो अंचियतणुरुहसरीरा ।
संपत्तिया उ तत्तो, जत्तो सो थूलभदरिसी ।७६३।
(तद् वचनं श्रुत्वा, तास्तु अंचिततनुरुहशरीराः ।
सम्प्राप्तास्ततः यत्र स स्थूलभद्र ऋषिः ।)

भद्रबाहु के वचन सुनते ही हर्षवशात् रोमांचित हुई वे सातों साध्वियां उस स्थान पर पहुँची जहां स्थूलभद्र ऋषि थे ।७६३।

जह सागरोव्व उव्वल मतिगतो पडिगतो सयं ठाणं ।
स पलियंक निसन्नो, धम्मझाणं पुणो झाइ ७६४।
(यथा सागरो वा उद्वेल मतिगतः प्रतिगतः स्वकं स्थानम् ।
स पर्यंकनिषण्णः, धर्मध्यानं पुनः ध्याति ।)

उद्वेलित समुद्र जिस प्रकार उद्वेलन के पश्चात् पुनः अपने स्थान पर चला जाता है ठीक उसी प्रकार स्थूलभद्र भी सिंह के रूप से पुनः निज स्वरूप में आकर पर्यंकासन से बैठ कर पुनः धर्म ध्यान में संलग्न हुए ।७६४।

दुपुट्ठमहुकंठ, सो परियट्टेइ ताव पाढमयं ।
भणियं च ताहिं भाउम, सीहं दट्ठूण ते भीया ।७६५।
(द्रुत पुष्ट मधुरकण्ठेन स परावर्तयति तावत्पाठमयम् ।
भणितं च ताभिर्भ्रात्रक ! सिंह दृष्ट्वा तव भीताः)

वे मधुर स्वर में द्रुत गति से अपने पाठ का परावर्तन करने लगे। बहिनों ने कहा---'भैय्या ! हम तो आपके सिंह को देख कर डर गई थीं ।७६५।

सो वि य पागडदंतं, दक्खिय सियकमल सप्पहं हसिउं ।
भणइय गारवयाए, सुय इड्ढी दरिसीया य मए ।७६६।
(सोऽपि च प्रकटदन्तं, दृक्ष्य सितकमल सप्रभं हसित्वा ।
भणति च गारवतया, श्रुतर्द्धिः दर्शिता च मया ।)

स्थूलभद्र ने हंस कर श्वेत कमल के समान प्रभा वाले अपने दांतों को दिखाते हुए गर्व के साथ कहा -- वह तो मैंने श्रुत ऋद्धि प्रदर्शित की थी ।७६६।

तं वयणं सोऊणं, तातो अंचिय तणूरुहसरीरा ।
पुच्छंति पंजलिय उडा, वागरणत्थे सुणिऊणत्थे ।७६७।
(तद्वचनं श्रुत्वा. तास्तु अंचिततनूरुहशरीराः ।
पृच्छन्ति प्राञ्जलिक पुटाः व्याकरणार्थान् सुनिपुणार्थान् ।)

अपने भाई के वचनों को सुन कर हर्षातिरेक से उनके शरीर के रोंगटे खड़े हो गए। तदनन्तर वे सातों साध्वियां हाथ जोड़ कर स्थूलभद्र से व्याकरण (प्रश्न व्याकरण सूत्र) के अति सुन्दर गूढार्थ पूछने लगीं ।७६७।

इयरोविय भगिणीओ, विसज्जिऊण थूलेभद्द रिसी ।
उचियंमि देसकाले, सज्झायमुवट्ठिओ काउं ।७६८।
(इतरोऽपि च भगिन्यः, विसर्जयित्वा स्थूलभद्र ऋषिः ।
उचिते देशकाले, स्वाध्यायमुपस्थितः कर्तुम् ।)

तदनन्तर स्थूलभद्र ऋषि अपनी बहिनों को विदा कर समुचित समय पर वाचना ग्रहण करने भद्रबहु की सेवा में उपस्थित हुए ।७६८।

अह भणइ भद्दबाहु, अणगार अलाहि एत्तियं तुब्भं ।
परियट्टंतो अच्छसु, एत्तियमेत्तं वियत्तं भे ।७६९।
(अथ भणति भद्रबाहू, अनगार ! अलं हि इयत् तुभ्यम् ।
परावर्तयम् आस्व, इयत् मात्रं व्यक्तं भो ।)

स्थूलभद्र को वाचना लेने हेतु उपस्थित देख भद्रबाहु ने कहा- "अणगार ! तुम्हारे लिये इतना पूर्वज्ञान ही पर्याप्त है। अब इन्हीं का परावर्तन करते हुए और स्पष्टतः इन्हें हृदयंगम करते रहो" ।७६९।

अह भणइ थूलभद्दो, पच्छायावेण तावियसरीरो ।
इड्ढीगारवयाए, सुयविसयं जेण अवरद्धं ।७७०।
(अथ भणति स्थूलभद्रः, पश्चात्तापेन तापित शरीरः ।
ऋद्धिगारवतया, श्रुतविषयं येन अपराद्धं ।)

ऋद्धि के गर्व के वशीभूत हो जिन्होंने श्रुत विषयक अपराध किया था, उन स्थूल भद्र का शरीर (तन-मन) पश्चात्ताप की अग्नि में जलने लगा। उन्होंने भद्रबाहु की सेवा में निवेदन किया--।७७०।

न वि ताव मज्झ मणुं, जह मे ण समाणियाइं पुव्वाइं ।
अप्पा हु मए अवराहितो त्ति, पलियं खु मे मणुं ।७७१।
(नापि तावत् मह्यं मन्युः, यथा मया न समानितानि पूर्वाणि ।
आत्मा खलु मया अपराद्ध इति, पलितं खलु मे मन्युः ।)

मुझे इस बात का उतना दुःख नहीं है कि मैंने सम्पूर्ण पूर्वों का ज्ञान प्राप्त नहीं कि किन्तु मुझे इस बात का घोर दुःख है कि मैंने अपनी आत्मा के साथ अपराध किया है ।७७१।

एतेहिं नासियव्वं, मए विणा वि जह सासणे भणियं ।
जं पुण मे अवरद्धं, एयं पुण डहति सव्वंगं ।७७२।
(एतैः नाशितव्यं, मया विनापि, यथा शासने भणितम् ।
यत् पुनः मया अपराद्धं एतत् पुनर्दहति सर्वाङ्गम् ।)

जैसा कि जिनशासन में कहा गया है, मेरे बिना भी इनका नाश अवश्यंभावी है। पर जो मैंने अपराध किया है, वह मेरे अंग प्रत्यंग को जला रहा हैं ।७७२।

वोच्छंति य मयहरगा, अणागया जे य संपतिकाले ।
गारविय थूलभद्दम्मि, नाम नट्ठाइं पुव्वाइं ।७७३।

(वक्ष्यन्ति च महत्तरका, अनागताः ये च सम्प्रति काले ।
गारविक स्थूलभद्रे, नाम नष्टानि पूर्वाणि ।)

भविष्यत् काल और वर्तमान काल के महत्तर (आचार्य आदि) यही कहेंगे गर्वीले स्थूलभद्र में (चार) पूर्व नष्ट हुए ।७७३।

अह विण्णविंति साहू, सगच्छया करिय अंजलिं सीसे ।
भद्दस्स ता पसीयह, इमस्स एक्कावराहस्स ।७७४।
(अथ विज्ञपयन्ति साधवः, स्वगच्छकाः कृत्वा अंजलिं शीर्षे ।
भद्रस्य तावत् प्रसीद, अस्य एकापराधस्य ।)

उस गच्छ के साधु साञ्जलि शीश झुका कर भद्रबाहु से प्रार्थना करते हैं—'स्थूलभद्र के एक मात्र इस अपराध को क्षमा कर उस पर आप प्रसन्न हों ।७७४।

रागेण व दोसेण व, जं च पमाएण किंचि अवरद्धं ।
तं भे स उत्तरगुणं, अवुणकारं खमावेति ।७७५।
(रागेण वा दोषेण वा, यच्च प्रमादेन किंचिदपराद्धम् ।
तत् भवतां स उत्तरगुणं, अपुनःकारं क्षमापयति ।)

रागवश, दोषवश अथवा प्रमादवश हो स्थूलभद्र ने जो भी अपराध किया है, श्रमणत्व के उत्तरगुण के उस अपराध की—फिर कभी इस प्रकार का अपराध नहीं करेगा—इस प्रतिज्ञा के साथ क्षमा मांगता है ।७७५।

अह सुरकरिकर उवमाणबाहुणा भद्दबाहुणा भणियं ।
मा गच्छह निव्वेतं, कारणमेगं निसामेह ।७७६।
अथ सुरकरि-करोपमान-बाहुना भद्रबाहुना भणितम् ।
मा गच्छत निर्वेदं, कारणमेकं निशामयत ।)

अपने गच्छ के साधुओं की प्रार्थना सुन कर एरावत की सूंड के समान बाहु युगल वाले भद्रबाहु ने कहा—'आप लोग दुःखित न हों। आगे के पूर्वों की वाचना न देने के पीछे एक कारण है, उसे आप सुनिये ।७७६।

रायकुल सरिसभूते, सगडाल कुलम्मि एस संभूतो ।
गेह गओ चेव पुणो, निप्हातो सव्व सत्थेसु ।७७७।
(राजकुल सदृश भूते, शकटालकुले एषः सम्भूतः ।
गेह गतश्चैव पुनः, निष्णातः सर्वशास्त्रेषु ।)

राजकुल के समान महान् शकडाल कुल में इसका (स्थूलभद्र का) जन्म हुआ है। गृहस्थावस्था में ही यह सब शास्त्रों में निष्णात हो गया था ।७७७।

कोसा नामं गणिया, समिद्धकोसा य विउल कोसा य ।
जीए घरे उवइट्ठो, (उवरिट्ठो) रति संविसेसम्मि वेसम्मि ।७७८।
(कोशा नामा गणिका, समृद्धकोशा च विपुलकोशा च ।
यस्या गृहे उपदिष्टः [उपरिष्ठः] रति-सविशेषे वेश्मनि ।)

यह अति समृद्ध एवं विपुल कोश की स्वामिनी कोशा नामक गणिका के---रति के प्रासाद से भी विशिष्ट भवन में यह रहा है ७७८।

बारस वासाइं उत्थो [उसिओ] कोसए घरम्मि सिरिघर समम्मि ।
सोऊण य पिउ मरणं, रण्णो वयणं नि गिज्झीय ।७७९।
(द्वादशवर्षान् च उषितः, कोशायाः गृहे श्रीगृह-समे ।
श्रुत्वा च पितुः मरणं, राज्ञः वचनं च निगृह्य ।)

लक्ष्मी के प्रासाद के समान कोशा के घर में यह बारह वर्षों तक रहा। पिता के मरण की बात सुन कर तथा नंदराज के बुलाने के आदेश को प्राप्त कर- ।७७९।

तिगिच्छि सरिस वण्णं [?] कोसं आपुच्छए तयं धणियं ।
खिप्पं खु एह सामिय, अहयं न हु चाय ए सहं ।७८०।
तडित् [?] सदृशवर्णा, कोशामापृच्छति तदा त्वरितम् ।
क्षिप्रं खलु एहि स्वामिन्. अहं न खलु शक्नोमि सोढुम् ।)

—स्थूलभद्र ने विद्युत् के समान वर्ण वाली कोशा से पूछा। कोशा ने कहा—"स्वामिन्! राजभवन से आप शीघ्र ही लौटें। मैं आपके विछोह को क्षण भर भी सहन करने में समर्थ नहीं हूँ।७८०।

भवणा रोह विमुक्को, छज्जइ चंदो व्व सोमगंभीरो।
परिमलसिरि वहंतो, जोण्हा निवहं ससी चेव।७८१।
(भवनारोह विमुक्तः, छाजते चन्द्र इव सोमगम्भीरः।
परिमलश्रियं वहन्, ज्योत्स्नानिवहं शशी चैव।)

भवन की सोढ़ियों से उतरता हुआ परिमल की शोभा को धारण किये हुए यह ज्योत्स्ना पुंज रजनीश के समान तथा अमृत के संसर्ग से गम्भीर बने चन्द्र की तरह सुशोभित हो रहा था ७८१।

भवणाउ निग्गओ सो, सारंगे परियणेण वुड्ढितो।
मत्तवर वारणगओ, इह पत्तो राउलं दारं ७८२।
(भवनात् निर्गतः स, सारंगे परिजनेन वार्द्धापितः।
मत्तवरवारणगत, इह प्राप्तः राजकुलद्वारम्।)

कोशा-भवन से बाहर आने के पश्चात् राजपथ पर परिजनों द्वारा वार्द्धापित किया जाता हुआ मदोन्मत्त गजराज की सी गति से चलता हुआ राजभवन में पहुँचा।७८२।

अंते उरं अइगतो, विणीय विणओ परित्त संसारो।
काऊण य जय सद्दो, रण्णो पुरओ ठिओ आसी।७८३।
(अंतेपुरं अतिगतः, विनीत विनयः प्ररित्त संसारः।
कृत्वा च जय शब्दं, राज्ञः पुरतः स्थित आसीत्।)

संसार के आकर्षणों के प्रति उदासीन यह बड़े विनय के साथ नन्दराज के अंतेपुर में पहुंचा। "जय" शब्द का उच्चारण कर यह राजा के सम्मुख बैठा।७८३।

अह भणइ नंदराया, मंति पयं गिण्ह थूलभद्द महं।
पडिवज्जसु तेवट्ठाइं, तिण्णि नगरागरसयाइं।७८४।

(अथ भणति नंदराजा, मंत्रिपदं गृहाण स्थूलभद्र ! मम ।
प्रतिपद्यस्व त्रिषष्टिः त्रीणि नगराकरशतानि ।)

नन्दराज ने इसे सम्बोधित करते हुए कहा—"स्थूलभद्र ! मेरे महामात्य पद को ग्रहण कर त्रेसठ (६३) सौ नगरों और तीन सौ कोशागारों की व्यवस्था का भार अपने हाथों में लो ।७८४।

रायकुल सरिसभूए, सगडाल कुलम्मि तंसि संभूओ ।
सत्थेसु य निम्मा [ण्हा] तो, गिण्हसु पिउसंतियं एयं ।७८५।
(राजकुल सदृशभूते, शकटालकुले त्वमसि सम्भूतः ।
शास्त्रेषु च निर्मातः [निष्णातः] गृहाण पितृ सत्कमेतद् ।

राजकुल के समान प्रतिष्ठित शकडाल कुल में तुम उत्पन्न हुए हो। तुम शास्त्रों में भी निष्णात हो। अपने इस पैत्रिक पद को ग्रहण करो" ।७८५।

अह भणइ थूलभद्दो, गणिया परिमलसमप्पिय सरीरो ।
सामी कयसामत्थो, पुणो अ भे विण्णविस्सामि ।७८६।
(अथ भणति स्थूलभद्रः, गणिका परिमल समर्पित-शरीरः ।
स्वामिन् कृतसामर्थ्यः पुनश्च त्वयि विज्ञपयिष्यामि ।)

कोशा गणिका द्वारा लगाये गये अंगराग से सुशोभित एवं सुगन्धित शरीर वाले स्थूलभद्र ने नन्दराज को उत्तर में कहा—"स्वामिन् ! अपने सामर्थ्य के सम्बन्ध में मैं विचार कर पुनः आपकी सेवा में निवेदन करूंगा ।७८६।

अह भणति नंद राया, केण समं दाइं तुज्झ सामत्थं ।
को अण्णो वरतरओ, निहुणातो सव्वसत्थेसु ।७८७।
(अथ भणति नन्द राजा, केन समं इदानीं तव सामर्थ्यम् ।
कोऽन्यो वरतरकः, निष्णातः सर्वशास्त्रेषु ।)

इस पर राजा नन्द ने कहा—"इस समय तुम्हारे सामर्थ्य की तुलना करने वाला कौन है ? सब शास्त्रों में निष्णात तुम से श्रेष्ठ दूसरा और कौन है ?" ।७८७।

कंबल रयणेय तओ, अप्पाणं सुट्ठु संवरित्ता णं ।
अंसूणि निण्हयंतो, असोग वणियं अह पविट्ठो ।७८८।
(कम्बल रत्नेन तत, आत्मानं सुष्ठु संवरित्वा ननु ।
अश्रूणि निस्सारयन्, अशोकवनिकां अथ प्रविष्टः ।)

कम्बलरत्न (रत्नकम्बल) से अपने शरीर को अच्छी तरह संवरित (ढक) कर आंसू बहाता हुआ स्थूलभद्र राजभवन की अशोकवाटिका में प्रविष्ट हुआ ।७८८।

जेत्तियमेत्तं दिण्णं, तेतियमेत्तं इमंमि भुत्त त्ति ।
एत्तो नवरि पडामो, झसोव्व मीणाउल घरम्मि ।७८९।
(यावन्मात्रं दत्तं[1] तावन्मात्रं अस्मिन्[2] भुक्तमिति ।
इतः[3] नवरं पतामः, झष इव मीनाकुलगृहे ।)

अशोकवाटिका में बैठ कर स्थूलभद्र चिन्तन करने लगा—"पूर्वभव में जितना दिया उतना इस भव में उपभोग किया। अब आगे मगरमच्छों से संकुल समुद्र में मछली के गिरने के समान मुझे दुःखाकुल संसार सागर में नहीं गिरना चाहिए ।७८९।

आणा रज्जं भोगा, रण्णो पासंमि आसणं पढमं ।
सुब्भत्थ इमं न खमं, खमं तु अप्पखमं काउं ।७९०।
(आज्ञा राज्यं भोगाः, राज्ञः पार्श्वे आसनं प्रथमम् ।
शुभार्थं इदं न क्षमं, क्षमं तु आत्मक्षमं कर्तुम् ।)

अनुलंघ्य आज्ञा, राज्य, भोग और राजा के पास ही उच्च प्रथम आसन—ये सब शुभ अर्थात् आत्मकल्याण करने में समर्थ नहीं। वस्तुतः अपने आपको आत्मजयी बनाना ही शुभ प्राप्ति का समर्थ साधन है ।७९०।

केसे परिचिंतंतो, रायकुलाओ य जे परिकिलेसे ।
निरयेसु य जे केसे, ता लुंचति अप्पणो केसे ।७९१।

---

१ पूर्व भवे इति शेषः । २ 'भवे' इत्यध्याहारेण वाच्यम् ।
३ इतः परमित्यर्थः ।

(क्लेशान् परिचिन्तयन् राजकुलाच्च ये परिक्लेशाः ।
नरकेषु च ये क्लेशाः, तावत् लुञ्चति आत्मनः केशान्)

संसार के अनेक प्रकार के असह्य कष्टों राजकुल से प्राप्त होने वाले विविध क्लेशों और नारकीय भीषण क्लेशों का चिन्तन करते-करते स्थूलभद्र ने अपने केशों का स्वयं ही लुञ्चन कर लिया ।७९१।

तंविय परिहिय वत्थं छेत्तूणं कुणइ अग्गतो आरं ।
कंबलरयणो गुंठिकाउं, रण्णो ठियं पुरतो ।७९२।
(तमपि च परिहितवस्त्रं, छित्वा करोति अग्रहारम् ।
कम्बलरत्ने ग्रन्थि कृत्वा, राज्ञः स्थितः पुरतः)

अपने पहने हुए वस्त्र को उतार तथा फाड़ कर उसका अग्रहार (कटि प्रदेश पर रखने का वस्त्र खण्ड) बना लिया। रत्न कम्बल में गांठें लगा (उसका ओघा बना) स्थूलभद्र (साधुवेष) में राजा नन्द के सम्मुख आ खड़ा हुआ ।७९२।

एयं मे सामत्थं, भणइ अवणेहि मत्थतो गुट्ठिं ।
तो णं केसविहूणं, केसेहिं विणा पलोएति ।७९३।
एतत् मे सामर्थ्यम्, भणति अपनय मस्तकात् ग्रन्थिम् ।
ततः ननु केशविहीनं, क्लेशैर्विना प्रलोकयति ।)

राजा नंद को सम्बोधित कर स्थूलभद्र ने कहा- "मेरा यह सामर्थ्य है। मेरे सिर के भार को दूर कीजिये ।" केश-विहीन (मुण्डित) स्थूलभद्र को सब प्रकार के क्लेशों से रहित अर्थात् प्रसन्न देख कर राजा नन्द विस्मित हो उनकी ओर देखता ही रह गया ।७९३।

अह भणइ नंद राया, लाभेति धीर नत्थि रोहियणं [रोहणयं] ।
बाढं चि भणिऊणं, अह सो संपत्थितो तत्तो ७९४।
(अथ भणति नन्दराजा, 'लाभ' इति धीर नास्ति रोधनकम् ।
बाढम् ! इति भणित्वा, अथ स संप्रस्थितस्ततः ।)

नन्दराज ने कहा -"धीर ! आपको अपने अभीप्सित का लाभ हो। अब आप के मार्ग में कोई अवरोध नहीं है " तदनन्तर स्थूलभद्र "बाढम्" -कह कर राजभवन से प्रस्थान कर गया ।७९४।

(यह गाथा आहोर नगरस्थ राजेन्द्रसूरि ग्रन्थ भण्डार' से उपलब्ध प्राचीन प्रति में उल्लिखित नहीं है)

अह भणइ नंदराया, वच्चइ गणियाघरं जइ कहिंचि ।
तो तं असच्चवादीं, तीसे पुरतो विवाएमि ।७९५।
(अथ भणति नन्दराजा, व्रजति गणिका गृहं यदि कथंचित् ।
ततः तं असत्यवादीं, तस्याः पुरतः व्यापादयामि ।)

स्थलभद्र के चले जाने के पश्चात् मगध सम्राट् नन्द ने कहा--- 'यदि यह कदाचित् गणिका के घर की ओर जाता है तो मैं इस असत्यवादी को उस गणिका के सम्मुख ही मार डालूंगा ।७९५।

सो कुलघरस्स सिद्धिं, गणियघर संतियं च सामिद्धिं ।
पाएण पणोल्लेउं, णातिणगरा अणवयक्खो । ७९६।
(स कुलगृहस्य सिद्धिं, गणिकागृह संचितां च समृद्धिम् ।
पादेन प्रणोद्य याति नगरात् अनपेक्षः ।)

स्थूलभद्र अपनी कुलपरम्परागत सिद्धि और कोशा गणिका के घर में संचित समृद्धि को पैरों से ठुकरा कर निस्पृह-निरपेक्ष भाव से नगर से बाहर चला जाता है ।७९६।

जो एवं पव्वइओ, एवं सज्झाय झाणउज्जुत्तो ।
गारवकरणेण हिओ, सीलभरुव्वहणधोरेओ ।७९७।
(य एवं प्रव्रजित, एवं स्वाध्यायध्यान उद्युक्तः ।
गारवकरणेन हितः, शीलभरोद्वहनधौरेयः ।

जो इस प्रकार प्रव्रजित हुआ और इस प्रकार स्वाध्याय एवं ध्यान में उद्यत रहा, वही शील के भार को वहन करने में अग्रणी स्थूलभद्र गारव करने के कारण श्रुत के प्रति अपराध कर हानि में रहा ।७९७।

जह जह एहि कालो तह तह अप्पावराह संरद्धा ।
अणगारा पडिणीते, निसंसयं उ वट्टवेहिंति ।७९८।
(यथा यथा आगमिष्यति कालः तथा तथा अल्पापराधसंरब्धाः ।
अनगाराः प्रत्यनीकाः, निःशंसयं तु वर्तयिष्यन्ति ।)

अब आगे ज्यों ज्यों काल व्यतीत होगा त्यों त्यों निःशंसय छोटे से छोटे अपराध पर भी प्रक्रुद्ध होने वाले अविनीत अणगार होंगे ।७९८।

उप्पायणीहि अवरे, केइ विज्जा य उप्पइत्ताणं ।
चउरूव्विहि विज्जाहिं, दाइं काहिंति उड्डाहं ।७९९।
(उत्पादनीभिरपरे, केचित् विद्या च उत्पादयित्वा ।
चतुःरूपाभिविद्याभि, तदानीं करिष्यन्ति (उड्डाहम्) ।)

उस समय कतिपय अणगार उत्पादनियों से अनेक प्रकार की विद्याएं उत्पन्न कर चार प्रकार की विद्याओं से लोगों का उड्डाह अर्थात् उच्चाटन अथवा उत्पीडन करेंगे ।७९९।

मंतेहि य चुण्णेहि य, कुच्छिय विज्जाहिं तह निमित्तेणं ।
काउण उवग्घायं, भमिहिंति अणंत संसारे ।८००।
(मन्त्रैश्च चूर्णैश्च, कुत्सितविद्याभिस्तथा निमित्तेन ।
कृत्वा उपघातं, भ्रमिष्यन्त्यनन्त संसारे ।)

मन्त्रों, चूर्णों, कुत्सित विद्याओं तथा निमित्तों द्वारा मानवों का उपघात कर अनन्त काल तक संसार में भटकते रहेंगे ।८००।

अह भणइ थूलभद्दो, अण्णं रूवं न किंचि काहामो ।)
इच्छामि जाणिउं जे, अहयं चत्तारि पुव्वाइं ।८०१।
(अथ भणति स्थूलभद्र, अन्यं रूपं न किञ्चित्कथयिष्यामः ।
इच्छामि ज्ञातुं यत्, अहं चत्वारि पूर्वाणि ।)

भद्रबाहु के इस कथन को सुन कर स्थूलभद्र ने कहा--' अन्य तो मैं कुछ नहीं कहूंगा । मैं तो केवल उपरिम चार पूर्वों को जानना चाहता हूँ ।८०१।

नाहिसि तं पुव्वाइं, सुयमेत्ताइं वि भुग्गहाहिंति ।
दस पुण ते अणुजाणे, जाणपणट्ठाइं चत्तारि[1] ।८०२।
(ज्ञास्यसि त्वं पूर्वाणि, सूत्रमात्राण्यपि भूग्रसितानीति ।
दश पुनः ते अनुजानामि, जानीहि प्रणष्टानि चत्वारि ।

भद्रबाहु ने कहा--'तुम उन चार पूर्वों के सूत्र मात्र अर्थात् व्याख्या रहित मूल मात्र को जान लोगे; पर इनके सम्बन्ध में भी तुम समझ लेना कि इन्हें पृथ्वी ने ग्रस लिया है, किसी अन्य को इनका ज्ञान न देना। दश पूर्वों का ज्ञान अन्य श्रमणों को देने की मैं तुम्हें अनुज्ञा देता हूँ। शेष चार पूर्वों को नष्ट हुआ ही समझना ।८०२।

(इस गाथा का प्रथम चरण "राजेन्द्र सूरि शास्त्र भण्डार"—आहोर, से प्राप्त प्राचीन प्रति में नहीं है। शेष ३ चरण हमारे पास की प्रति के समान ही हैं।)

एतेण कारणेण उ, पुरिसजुगे अट्ठमम्मि वीरस्स ।
सयराहेण पणट्ठाइं, जाणचत्तारि पुव्वाइं ।८०३।
(एतेन कारणेन तु पुरुषयुगे अष्टमे वीरस्य ।
स्वापराधेन प्रणष्टानि, जानीहि चत्वारि पूर्वाणि ।)

इस प्रकार भगवान् महावीर के आठवें पट्टधर स्थूलभद्र में उनके स्वयं के अपराध से उपरिम चार पूर्व नष्ट हुए जानो ।८०३।

अणवट्ठप्पो य तवो, तव पारंची य दो वि वोच्छिन्ना ।
चउद्दस पुव्व धरंमि धरंति, सेसाउ जा तित्थं ।८०४।
(अनवष्ठपश्च तपः, तपः पाराञ्चिकश्च द्वावपि व्युत्च्छिन्नौः ।
चतुर्दश पूर्वधरे धृयन्ते, शेषास्तु यावत्तीर्थम् ।)

अनवष्टप तप और पारंचित तप---ये दोनों तप भी स्थूलभद्र

---

१ गाथायाः भावार्थमेवं प्रतीयते--शेषाणां चतुर्णां पूर्वाणां केवलं सूत्रमात्रां वाचनां ते ददामि । तानि त्वं एकसूत्रमितान्यपि नाध्यापयिष्यसि कमप्यन्यम्, भुवा ग्रस्तान्येतानीति प्रणष्टानि चेति मत्वा । दशपूर्वाणां वाचनां त्वं तव शिष्येभ्यः दातुं शक्नोसीत्यहं त्वामनुजानामि ।

में नष्ट हो गये। क्यों कि ये दोनों तप केवल चतुर्दश पूर्वधर ही कर सकते हैं। शेष तप चतुर्विध तीर्थ की विद्यमानता तक विद्यमान रहेंगे।८०४।

तं एवमंगवंसो य, नंदवंसो मरुयवंसो य।
सवराहेण पणट्ठा, समयं सज्झायवंसेण।८०५।
(तद् एवं अंगवंशश्च, नन्दवंशः मरुतवंशश्च।
स्वापराधेन प्रणष्टाः, समं स्वाध्यायवंशेन)

तो इस प्रकार सज्झाय वंश के साथ-साथ अंग वंश, नन्द वंश और मरुत (मौर्य ?) वंश अपने अपराध से नष्ट हुए।८०५।

पढमो दस पुव्वीणं, सयडालकुलस्स जसकरो धीरो।
नामेण थूलभद्दो, अविहिंसाधम्म-भद्दो त्ति।८०६।
(प्रथमः दश पूर्वाणां. शकटालकुलस्य यशस्करः धीरः।
नाम्ना स्थूलभद्रः, अविहिंसा धर्मभद्र इति।)

दशपूर्वधारियों में प्रथम शकटार कुल का यशोवर्द्धक स्वधर्म-भद्र धैर्यशाली स्थूलभद्र होगा।८०६।

नामेण सच्चमित्तो, समणो समणगुण निउण चिंतीउ।
हो ही अपच्छिमो किर, दस पुव्वी धारओ वीरो।८०७।
(नाम्ना सत्यमित्रः, श्रमणः श्रमणगुणनिपुणचिन्तकस्तु।
भविष्यति अपश्चिमः किल, दशपूर्वी[1] धारकः वीरः।)

श्रमणगुणों में निपुण और श्रमणगुणों का चिन्तक सत्य-मित्र नामक वीर श्रमण अन्तिम दश पूर्वधर होगा।८०७।

एयस्स पुव्वसुयसायरस्स, उदहिव्व अपरिमेयस्स।
सुणसु जह अथकाले, परिहाणी दीसते पच्छा।८०८।
(एतस्य पूर्वश्रुतसागरस्य, उदधिरिव अपरिमेयस्य।
शृणुस्व यथा अथकाले, परिहानिः दृश्यते पश्चात्।)

---

१ दशानांपूर्वाणां समाहारः—इति दशपूर्वी।

समुद्र के समान अपरिमेय इस पूर्वश्रुत--सागर की कालान्तर में उत्तरोत्तर जिस प्रकार हानि दिखाई देती है उसे सुनो ।८०८।

पुव्व सुय तेल्ल-भरिय विज्झाए सच्चमित्त दीवंमि ।
धम्मावाय निमित्तो, होही लोगो सुयनिमित्तो ८०९।
(पूर्वश्रुत तैल भरिते. विध्याते सत्यमित्र-दीपे ।
धर्मवाद निभृतः, भविष्यति लोकः श्रुत निभृतः[1])

पूर्वश्रुत रूपी तैल से भरे सत्यमित्र रूपी दीपक के बुझ जाने पर धर्मवाद अर्थात् दृष्टिवाद पर निर्भर लोक अर्थात् श्रमण वर्ग श्रुत का आश्रित हो जायगा ।८०९।

वोलीणम्मि सहस्से, वरिसाणं वीरमोक्ख गमणाओ ।
उत्तरवायगवसभे, पुव्वगयस्स भवेच्छेदो ।८१०।
(विलीने सहस्रे, वर्षाणां वीरमोक्षगमनात् ।
उत्तरवाचकवृषभे, पूर्वगतस्य भवेच्छेदः ।)

भगवान् महावीर के मोक्षगमन के पश्चात् एक हजार (१०००) वर्ष व्यतीत हो जाने पर अन्तिम अथवा उत्तर बलि स्सह के वाचक वंश में उत्पन्न वाचक श्रेष्ठ (देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण) में पूवगत का विच्छेद हो जायगा ।८१०।

वरिससहस्सेण पुणो. तित्थोगालीए वद्धमाणस्स ।
नासिही पुव्वगतं, अणुपरिवाडीए जं जस्स ८११।
(वर्षसहस्रेण पुनः, तीर्थोद्गालिके वर्द्धमानस्य ।
नंक्ष्यति पूर्वगतं, अनुपरिपाट्या यद् यस्य ।)

तीर्थ ओगाली अर्थात् तीर्थ -प्रवाह में भगवान् वर्द्धमान के निर्वाणानन्तर एक हजार वर्ष पूर्ण होने पर परिपाटी के अनुसार जिसके पास जितना पूर्वगत ज्ञान होगा, वह नष्ट हो जायगा ।८११।

पण्णासा वरिसेहिं य बारस वरिस सएहिं वोच्छेदो ।
दिण्णगणि पूसमित्तो, सविवाहाणं छलंगाणं ।८१२।

---

१ धर्मवादो दृष्टिवादः तन्निर्भरः लोको श्रुतनिर्भरः भविष्यतीत्यर्थः ।

(पञ्चाशत् वर्षैश्च, द्वादशवर्षशतैर्व्यवच्छेदः ।
दिन्न [दत्त] गणि पूष्यमित्रैः, सविवाहानां षडंगानाम् ।)

वीर निर्वाण के १२५० वर्ष पश्चात् दिन्न गणि पुष्यमित्र में वियाहपण्णत्ति सहित छः अंगों का व्यवच्छेद हो जायगा ।८१२।

नामेण पूसमित्तो. समणोसमणगुण निउण चिंवतिओ ।
होही अपच्छिमो किर, वियाह सुयधारको वीरो ।८१३।
(नाम्ना पुष्यमित्रः, श्रमणः श्रमणगुणनिपुणचिन्तयिता ।
भविष्यति अपश्चिमः किल, वियाहश्रुतधारकः वीरः ।)

श्रमण गुणों का चिन्तक एवं श्रमण गुणों में निपुण पुष्यमित्र नामक वीर श्रमण पूर्ण वियाह-पण्णत्ति (व्याख्या-प्रज्ञप्ति) सूत्र का धारक होगा ।८१३।

तम्मिय वियाहरुक्खे, चुलसीति पयसहस्सगुणकलिओ [ए] ।
सहसंच्चिए संभंतो, होही गुण निप्फलो लोगो ८१४।
(तस्मिन् व्याख्या वृक्षे [व्याख्याप्रज्ञप्तौ] चतुरसीति, पदसहस्र-
गुणकलिते ।
सहसा अंचिते [संकुचिते] सम्भ्रान्तः, भविष्यति गुण निष्फलो लोकः।)

उस ८४०.०० (चौरासी हजार) पदों वाले गुणों से भरे व्याख्या-प्रज्ञप्ति अंग रूपी कल्प वृक्ष का ह्रास होने पर गुण रूपी फल से वंचित हुए लोग सहसा संभ्रान्त हो जायेंगे ।८१४।

समवाय-ववच्छेदो, तेरसहिं सतेहिं होहिति वासाणं ।
माढर गोत्तस्स इहं, संभूतजतिस्स मरणम्मि ।८१५।
(समवाय व्यवच्छेदः त्रयोदशभिर्शतैः भविष्यति वर्षाणाम् ।
माढर गोत्रस्य इह, सम्भूत यतेर्मरणे ।)

वीर निर्वाण के १३०० वर्ष पश्चात् माढरगोत्रीय संभूत नामक यति (श्रमण) के मरणोपरान्त चतुर्थ अंग समवायांग सूत्र का व्यवच्छेद अर्थात् ह्रास होगा ।८१५।

तेरस वरिस सतेहिं, पण्णास समहिएहिं वोच्छेदो ।
अज्जव जतिस्स मरणे, ठाणस्स जिणेहिं निद्दिट्ठो ।८१६।
(त्रयोदशवर्षशतैः, पञ्चाशतसमधिकैर्व्यवच्छेदः ।
आर्जव यतेः मरणे, स्थानस्य [स्थानांगस्य] जिनैर्निर्दिष्टः ।)

वीर निर्वाण के १३५० (तेरह सौ पचास) वर्ष पश्चात् आर्जव यति के मरने पर स्थानांग सूत्र का व्यवच्छेद अर्थात् ह्रास जिनेश्वर ने बताया ।८१६।

चोद्दस वरिस सतेहिं, वोच्छेदो जिट्ठभूति समणंमि ।
कासवगुत्ते णेओ, कप्प ववहार सुत्तस्स ८१७
(चतुर्दश वर्ष शतैः, व्यवच्छेदः ज्येष्ठभूतिश्रमणे ।
काश्यपगोत्रे ज्ञेयः, कल्पव्यवहारसूत्रस्य ।)

वीर निर्वाण के चौदह सौ (१४००) वर्ष पश्चात् काश्यप गोत्रीय ज्येष्ठभूति नामक श्रमण में कल्पव्यवहारसूत्र का ह्रास होगा, यह जानना चाहिए ।८१७।

भणिदो दसाण छेदो, पनरस सएहि होइ वरिसाणं ।
समणम्मि फग्गुमित्ते, गोयमगोत्ते महासत्ते ८१८।
(भणितः दशानां छेदः पञ्चदशशतैर्भवति वर्षाणाम् ।
श्रमणे फल्गुमित्रे, गौतम गोत्रे महासत्त्वे ।)

वीर निर्वाण के पन्द्रह सौ (१५००) वर्ष पश्चात् गौतम गोत्रीय महासत्त्वशाली श्रमण फल्गुमित्र के निधन पर दशाश्रुत स्कन्ध का विच्छेद (ह्रास) बताया गया है ।८१८।

भारद्दायसगोत्ते, सूयगडंगं महासमण-नामे ।
अगुणव्वीससतेहिं, जाही वरिसाण वोच्छित्ति ।८१९।
भारद्वाज-सगोत्रे, सूत्रकृताङ्गस्य महाश्रमण नाम्नि ।
एकोनविंशशतैः, यास्यति वर्षैर्व्यवच्छित्तिः ।)

वीर निर्वाण सं० उन्नीस सौ (१९००) में भारद्वाज गोत्रीय महाश्रमण नाम से विख्यात श्रमण के निधन पर सूत्रकृताङ्ग का विच्छेद (ह्रास) होगा ।८१९।

वरिस सहस्सेहि इहं दोहि, विसाहे मुणिम्मि वोच्छेदो ।
वीर जिण धम्मतित्थे, दोहि तिन्नि सहस्स निद्दिट्ठो[1] ।८२०।
वर्ष सहस्रैरिह द्वाभिः विशाखे मुनौ व्यवच्छेदः ।
वीरजिन धर्मतीर्थे, द्वि त्रि सहस्रे निर्दिष्टः ।)

वीर निर्वाण सं० दो हजार (२०००) में तथा वीर निर्वाण पश्चात् दो हजार से तीन हजार वर्षों के बीच भी भगवान् महावीर के धर्म तीर्थ में कतिपय सूत्रों के व्यवच्छेद (ह्रास) का निर्देश किया गया है ।८२०।

विण्हु मुणिम्मि मरंते, हारित गोत्तम्मि होति वीसाए ।
वरिसाण सहस्सेहिं, आयारंगस्स वोच्छेदो ।८२१।
(विष्णु मुनौ मृते, हारित गोत्रे भवति विंशतिभिः ।
वर्षाणां सहस्रैः, आचाराङ्गस्य विच्छेदः ।)

वीर निर्वाण सं० २०,००० (बीस हजार) में हारित गोत्रीय विष्णु नामक मुनि का निधन होते ही आचारांग का व्यवच्छेद (ह्रास) हो जायगा ।८२१।

अह दुसमाए सेसे, होही नामेण दुप्पसह समणो ।
अणगारो गुणगारो, खमागारो तवागारो ।८२२।
(अथ दुःषमायां शेषे, भविष्यति नाम्ना दुःप्रसहः श्रमणः ।
अनगारः गुणागारः, क्षमागार तपागारः)

तदनन्तर दुःषमा नामक पंचम आरक का थोड़ा सा समय अवशिष्ट रहने पर क्षमा, तप तथा गुणों के भण्डार दुःप्रसह नामक अणगार होंगे ।८२२।

---

१ अस्यां गाथायां विच्छिन्नमानस्य न कस्यचिदप्यंगस्य नामोल्लेखः कृतः । अतोऽनुमीयते यत् समुच्चयरूपेण कतिपयाङ्गानां ह्रासस्यैवात्रोल्लेखः कृतोऽस्ति ।

सो किर आयारधरो, अपच्छिमो होहीति भरहवासे ।
तेण समं आयारो नस्सिही समं चरित्तेणं ।८२२।
(स किल आचारधर, अपश्चिमः भविष्यति भारतवर्षे ।
तेन समं आचार, नक्ष्यति समं चारित्रेण ।)

वे भरत क्षेत्र में अन्तिम आचारांगधर होंगे उनके निधन के साथ ही चारित्र सहित आचारांग पूर्णतः नष्ट हो जायगा ।८२३।

अणुओगच्छिण्णायारो, अह समणगणस्स दीविवायारो ।
आयारम्मि पणट्ठे, होहीति तइया अणायारो ।८२४।
(अनुयोगच्छिन्नाचार, अथ श्रमणगणस्य दीपेवाचारः ।
आचारे प्रणष्टे, भविष्यति तदा अनाचारः)

अनुयोग सहित आचारांग ही श्रमण गण को प्रदीप के समान आचार का बोध कराने वाला है अतः आचारांग के प्रणष्ट हो जाने पर भरत क्षेत्र में सर्वत्र अनाचार का साम्राज्य व्याप्त हो जायगा ।८२४।

चंकमिउं वरतरं, तिमिसगुहाए तमंधकाराए ।
न य तइया समणाणं, आयार-सुत्ते पणट्ठंमि ८२५।
(चंक्रम्य परतरं, तमिस्रगुहायां तमोऽन्धकारायां ।
न च तदा श्रमणानां, आचारसूत्रे प्रणष्टे)

तदनन्तर आगे चल कर सब लोग घोर अन्धकारपूर्ण तमिस्र गुफा में ही रहेंगे । आचारांग सूत्र के नष्ट हो जाने पर श्रमणों का नाममात्र भी अवशिष्ट नहीं रहेगा ।८२५।

निज्झीणा पासंडा, चोरेहिंजणो विलुंप्पते अहियं ।
होहिंति तया गामा, केवल नामाव सेसाउ ।८२६।
(निर्झीणाः पाषण्डा, चौरैर्जनः विलुम्प्यते अधिकम् ।
भविष्यन्ति तदा ग्रामाः केवलं नामावशेषास्तु ।)

उस समय में लोग निर्लज्ज और पाखण्डी होंगे। चोरों द्वारा लोग आये दिन लूटे जायेंगे। उस समय ग्राम नाममात्र ही शेष रहेंगे।८२६।

वीसाए सहस्सेहिं, पंचहिं सएहिं होइ वरिसाणं।
पूसे वच्छ सगोत्ते, वोच्छेदो उत्तरज्झाए।८२७।
(विंशत्याः सहस्रैः पञ्चभिर्शतैः भवति वर्षाणाम्।
पुष्ये वत्स-सगोत्रे, व्यवच्छेद उत्तराध्ययनस्य।)

वीर निर्वाण से बीस हजार पांच सौ (२०,५००) वर्ष पश्चात् वत्स गोत्रीय पुष्य मुनि के अनन्तर उत्तराध्ययन का विच्छेद हो जायेगा।८२७।

वीसाए सहस्सेहिं वरिस सएहिं नवहिं वोच्छेदो।
दसवेतालिय सुत्तस्स, दिण्ण साहुम्मि बोधव्वो।८२८।
(विंशति सहस्रैः वर्षशतैर्नवभिर्व्यवच्छेदः।
दशवैकालिक सूत्रस्य, दिन्न साधौ बौद्धव्यः।)

वीर निर्वाण सं० २०,९०० (बीस हजार नौ सौ) में दिन्न नामक साधु के पश्चात् दश-वैकालिक सूत्र का व्युच्छेद होगा, यह जानना चाहिए।८२८।

पविरल गामं जाणवदं, पविरल मणुएसु नाम देसेसु।
नामेण नाइलो नाम, गणहरो होहीइ महप्पा ८२९।
प्रविरल ग्रामं जनपदं, प्रविरलमनुष्येषु नाम देशेषु।
नाम्ना नाइल नामा, गणधरो भविष्यति महात्मा।)

कालान्तर में प्रदेशों में नाम मात्र के लिये विरले ग्राम, विरले जनपद और अति स्वल्प संख्यक विरले ही मनुष्य अवशिष्ट रह जायेंगे। उस समय नाइल नामक एक महात्मा गणधर होंगे।८२९।

धम्मंमि निरालोए, जिणमत दुस्सदृहंमि लोगम्मि।
पव्वावेही सीसं, दुप्पसहं नाम नामेणं।८३०

(धर्मे निरालोके, जिनमतदुःश्रद्धाने लोके ।
प्रव्राजयिष्यति शिष्यं, दुप्रसहं नाम नाम्ना)

वे नाइल नामक आचार्य, जिस समय लोगों में धर्म का प्रकाश धूमिल हो जायगा और लोग बड़ी ही कठिनाई से जिन मत में श्रद्धा करेंगे उस समय दुःप्रसह नामक व्यक्ति को अपने शिष्य के रूप में श्रमण धर्म की दीक्षा देंगे ।८३०।

सो पुण संपतिकाले कामालोए सु देवलोगेसु ।
लोगहीति [लोहीतम्मि ?] विमाणे, अच्छति य विमाणितो देवो ।८३१।

(स पुनः सम्प्रतिकाले, कर्म्मालोकेषु देवलोकेषु ।
लोहित्यके विमाने अच्छति च वैमानिकः देवः ।)

वह, भावी दुःप्रसह आचार्य का जीव वर्तमान काल में (भ० महावीर की विद्यमानता के समय में) दिव्य काम-भोग पूर्ण देवलोकों के लोकहिती (लोहित ?) नामक विमान में वैमानिक देव के रूप में रह रहा है ।८३१।

सो सागर गंभीरो, देवाउं सागरोवमं तस्स ।
तत्तो चुओ विमाणा, आयाही मज्झ देसम्मि ।८३२।
(स सागरगम्भीरः देवायुः सागरोपमं तस्य ।
ततः च्युतः विमानात्, आगमिष्यति मध्यदेशे ।)

वह देव समुद्र के समान गम्भीर तथा उसकी देवायु एक सागरोपम की है। देवायु पूर्ण होने पर वह देवलोक से च्यवन कर भरत क्षेत्र के मध्य देश में जन्म ग्रहण करेगा ।८३२।

सो जाय अट्ठवासो, दियलोय सुहं सुयं अणुगणंतो ।
पव्वज्जिहि दुप्पसहो, अणुसट्ठो नाइलज्जेणं ।८३३।
(स जात-अष्टवर्षः, देवलोकसुखं श्रुतं अनुगणयन् ।
प्रव्रजिष्यति दुःप्रसहः, अनुशिष्ट नाइलार्येण ।)

आठ वर्ष की अवस्था में वह दुःप्रसह, आचार्य नाइल से देवलोकों के सुखों के सम्बन्ध में सुन कर, उन पर चिन्तन करता हुआ आचार्य नाइल के पास श्रमण धर्म में प्रव्रजित हो जायगा ।८३३।

सो पव्वइतो संतो, महया जोगेण सुंदरुज्जोगो ।
कम्मक्खतोवसमियं, सिक्खिही सुतं दसवेतालं ८३४
(स प्रव्रजितः सन् महता योगेन सुन्दरोद्योगः ।
कर्मक्षयोपशमिकं, शिक्षिष्यति सूत्रं [श्रुतं] दशवैकालिकम् ।)

श्रमण धर्म में दीक्षित होने के पश्चात् श्रमण दुःप्रसह बड़ी तन्मयता के साथ अहर्निश परिश्रम कर ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के फलस्वरूप दशवैकालिक सूत्र का अध्ययन करेगा उसे कण्ठस्थ करेगा ।८३४।

दसवेतालियधारी, पुज्जिही जणेण जहव दसपुव्वी ।
सो पुण सुट्ठुतरागं, पुज्जिही समण संघेणं ८३५।
(दशवैकालिकधारीः पूजयिष्यते जनेन यथैव दशपूर्वी ।
स पुनः सुष्ठुतया, पूजयिष्यते श्रमणसंघेन ।)

उस समय दशवैकालिक सूत्र को कण्ठस्थ करने वाला श्रमण लोगों द्वारा दश-पूर्वधर के समान पूजित— सम्मानित होगा । श्रमण-संघ भी दश वैकालिकधारी मुनि का भलीभांति पूजा--सम्मान करेगा ।८३५।

अउणा वीससहस्सो, सामाणिओ होहिति सक्कयालोए ।
दुस्सह दूसमकाले, खीणे अप्पावसेसजुगे ।८३६।
(अऊन [अन्यून] विंशतिसहस्रः, सामानिकः भविष्यति शक्रस्य लोके ।
दुस्सहे दुःषमाकाले, क्षीणे अल्पावशेष युगे ।)

दुःसह्य कष्ट पूर्ण दुःषम नामक पांचवें आरक की समाप्ति में जब कुछ ही घड़ियां शेष रह जायेंगी, उस समय दुःप्रसह आचार्य शक्रलोक अर्थात् सौधर्म कल्प नामक प्रथम देवलोक में अन्यून बीस हजार देव परिवार वाले सामानिक देव के रूप में उत्पन्न होगा ।८३६।

धम्मो जिणाणुमत्तो, राया य जणस्स लोगमज्जायाइं
ते हवंति खीणा, जं सेसं तं निसामेह ।८३७।
(धर्मः जिनानुमतः, राजा च जनस्य लोकमर्यादाः ।
ते भवन्ति क्षीणाः, यत् शेषं तत् निशामयत ।

जिनेन्द्र प्रभु द्वारा अनुमोदित धर्म, राजा और मानव समाज की लोकमर्यादाएं - ये तीनों ही बातें उस समय क्षीण हो जायेंगी। अन्त में जो शेष भावी घटनाक्रम है, उसे सुनिये ।८३७।

सावग मिहुणं समणो, समणी राया तह अमच्चो य ।)
एते हवंति सेसं, अण्णो जणो बहुतरातो ।८३८।
(श्रावकमिथुनं श्रमणः, श्रमणी राजा तथा अमात्यश्च ।
एते भवन्ति शेषा, अन्यो जनः-बहुतरकः ।)

दुःषम काल के अंत मे एक श्रावक मिथुन अर्थात् एक श्रावक और एक ही श्राविका, एक श्रमण, एक श्रमणी, एक राजा, एक राजामात्य---ये ६ विशिष्ट मानव होते हैं, शेष बहुत से अन्य जन अर्थात् प्रजाजन होते हैं ।८३८।

ओसप्पिणी इमीसे, चत्तारि अपच्छिमाइं संघस्स ।
अंतम्मि दूसमाए, दससु वि वासेसु एवं तु ।८३९।
(अवसर्पिण्यामस्यां, चत्वारि अपश्चिमानि संघस्य ।
अन्ते दुःषमायां, दशस्वपि वर्षेषु एवं तु ।)

इस अवसर्पिणी काल के दुःषम नामक पंचम आरक के अंत में पांच भरत तथा पांच ऐरवत---इन दशों ही क्षेत्रों में प्रत्येक अन्तिम तीर्थंकर के धर्मसंघ में एक साधु, एक साध्वी, एक श्रावक और एक श्राविका ये चार ही अंतिम सदस्य होते हैं ।८३९।

दुप्पसभो अणगारो, नामेण अपच्छिमो पवयणस्स ।
फग्गुसिरी समणीणं, साविय समणी अपच्छिमिया ८४०।

(दुःप्रसभोऽणगारः, नाम्ना अपश्चिमः प्रवचनस्य ।
फल्गुश्रीः श्रमणीनां, सापि च श्रमणी अपश्चिमा ।)

प्रवचन अर्थात् जिन शासन का अन्तिम अणगार दुःप्रसभ नामक श्रमण और जिन शासन की अन्तिम श्रमणी फल्गुश्री नाम की श्रमणी होगी ।८४०।

विग्गहवती वियदया, कमल विहूणा सिरिव्व पच्चक्खा ।
होहीति तया समणी, फग्गुसिरी नाम नामेण ८४१।
(विग्रहवती अपि च दया,[1] कमलविहीना श्रीव प्रत्यक्षा ।
भविष्यति तदा श्रमणी, फल्गुश्री नाम नाम्ना ।)

उस समय (दुःषम नामक आरक के अन्त में), साक्षात् सदेहा दया और प्रत्यक्ष कमल विहीना लक्ष्मी तुल्या वह फल्गुश्री नाम की श्रमणी होगी ।८४१।

तम्मि य नगरे सेट्ठी, होही नामेण नाइलो नाम ।
सो सव्वसावगाणं, होही तइया अपच्छिमिओ ।८४२।
(तस्मिन् च नगरे श्रेष्ठीः, भविष्यति नाम्ना नाइलो नाम ।
स सर्व श्रावकाणां, भविष्यति तदा अपश्चिमकः ।)

उसी नगर में नाइल नामक एक श्रेष्ठी होगा जो भगवान् महावीर के शासन के श्रावकों में सब से अन्तिम श्रावक होगा ।८४२।

सेट्ठी य नाइलो नाम, गिहवई सावगाणंपच्छिमो ।
सव्वसिरी साधियाणं, सा वि य तया अपच्छिमिया ।८४३।
(श्रेष्ठी च नाइलः नामा, गृहपतिः श्रावकाणां अपश्चिमः ।
सर्वश्री श्राविकानां, सापि च तदा अपश्चिमका ।)

---

१ सशरीरा दया-इत्यर्थः ।
"विग्गहवती वावदूया" (विग्रहवती वावदूका)---इति पाठे सति सशरीरा सरस्वतीत्यर्थः ।

श्रावकों में अन्तिम श्रावक गाथापति श्रेष्ठी नाइल और श्राविकाओं में अन्तिम श्राविका सर्वश्री होगी ।८४३।

अभिगय जीवाजीवा, सा या किर साविया अपच्छिमिया ।
धम्मंमि निच्छितमती, सव्वसिरी नाम नामेणं ।८४४।
(अभिगत जीव-अजीवा, सा या किल श्राविका अपश्चिमका ।
धर्मे निश्चितमतिः, सर्वश्री नामा नाम्ना ।)

सर्वश्री नाम की वह अन्तिम श्राविका जीव तथा अजीव तत्त्व की अभिज्ञा तथा धर्म के प्रति दृढ़ आस्थावती होगी ।८४४।

राया य विमलवाहणो, सुमुहो नामेण तस्स य अमच्चो ।
इय दुसमाए काले, रायामच्चो अपच्छिमिगो ।८४५।
(राजा च विमलवाहनः, सुमुखो नाम्ना तस्य च अमात्यः ।
अस्या दुःषमायाः काले, राजामात्यौ अपश्चिमकः)

इस अवसर्पिणी के दुःषम आरक के अन्त में विमलवाहन नाम का अन्तिम राजा और उसका सुमुख नामक अमात्य अन्तिम राजामात्य होगा ।८४५।

दुप्पसहो फग्गुसिरी सव्वसिरी नाइलो य राया य ।
इय दुस्सम चरिमंते, वीसतिवासाउया एते ।८४६।
(दुःप्रसभः फल्गुश्रीः, सर्वश्री नाइलश्च राजा च ।
अस्य दुःषमस्यांते चरिमान्ते, ते विंशतिवर्षायुष्या एते ।)

इस दुःषम काल के अन्त में दुःप्रसह, फल्गुश्री, सर्वश्री, नाइल और राजा ये सब बीस-बीस वर्ष की आयु वाले होंगे ।८४६।

छट्ठ चउत्थं च तया, होही उक्कोसयं तवोकम्मं ।
दुप्पसहो आयरियो, काही किर अट्ठमं भत्तं ।८४७।
(षष्ठ चतुर्थं च तदा, भविष्यति उत्कृष्टकं तपःकर्म ।
दुःप्रसभ आचार्यः, करिष्यति किल अष्टमं भक्तम् ।)

उस समय में चतुर्थ भक्त (उपवास) और षष्ठ भक्त (बेला) ये उत्कृष्ट तप होंगे। आचार्य दुःप्रसह अष्टम भक्त (तेला) का तप करेंगे।८४७।

सो दाहिण लोगवती, इंदो धम्माणुराग रत्तो य।
आगंतूणं तइया, पुणो पुणो वंदते संघं।८४८।
(स दक्षिणलोकपतिः, इन्द्रः धर्मानुरागरतश्च।
आगत्वा तदा, पुनःपुनः वन्दते संघं)

दक्षिण लोक का स्वामी सौधर्मेन्द्र धर्मानुराग में अनुरक्त हो वहां आकर बारम्बार संघ को वन्दन करता है---।८४८।

गुणभवण गहण सुयरयणभरिय, दंसणविसुद्धरच्छागा।
संघ नगर! भद्दं ते, अखंड चारित्तपागारा।८४९।
(गुणभवनगहन! श्रुतरत्नभृत! दर्शन विशुद्ध रथ्याकः!।
संघनगर! भद्रं ते, अखंड चारित्र प्राकार!)

पिण्ड विशुद्धि आदि अमित उत्तरगुणरूपी भवनों की विद्यमानता के कारण अति गहन! आचाराङ्गादि अनेक सुखदाई श्रुतरत्नों से परिपूर्ण! मिथ्यात्वादि कूड़ेकर्कट से रहित विशुद्ध दर्शन रूपी रथ्याओं वाले! और अखण्ड चारित्र के प्राकार (परकोटे) से सदा सुरक्षित! ओ संघ-नगर! तुम्हारा कल्याण हो।८४९।

भद्दं सील पडागूसियस्स, तव नियम-तुरय जुत्तस्स।
संघरहस्स भगवतो, सज्झाय सुनंदि घोसस्स।
(भद्रं शीलोच्छ्रित पताकस्य[1], तपोनियम तुरगयुक्तस्य।
संघ-रथस्य भगवतः, स्वाध्याय सुनन्दि घोषस्य।)

शील रूपी उत्तुंग पताका वाले, तप और संयम रूपी आशुगामी अश्वों से युक्त अर्थात् जुते हुए और स्वाध्याय के सुमधुर स्वर रूपी सुन्दर नन्दी घोष वाले हे भगवत्स्वरूप संघ-रथ! तुम्हारा कल्याण हो।८५०।

---

१ प्राकृतशैल्याऽन्यथोपन्यासः।

संजमतव तुंबारयस्स, नमो सम्मत्त-पारियल्लस्स ।
अप्पडिचक्कस्स जओ, होउसया संघचक्कस्स ।८५१।
(संयम तपस्तुम्बारकस्य, नमः सम्यक्त्व परियल्लस्य[1] ।
अप्रतिचक्रस्य जयः, भवतु सदा संघचक्रस्य ।)

सत्रह प्रकार के संयम तथा बारह प्रकार के (छह प्रकार के बाह्य एवं ६ प्रकार के आभ्यन्तर) तप रूपी तुम्ब एवं अरक वाले, सम्यक्त्व रूपी बाह्य, परिकर वाले और संसार में अपने प्रतिद्वन्द्वी चक्र से रहित ओ संघचक्र ! तुम्हें नमस्कार है, तुम्हारी सदा जय हो ।८५१।

कम्मरय-जलोह-विणिग्गयस्स, सुयरयण दीहनालस्स ।
पंचमहव्वय-थिरकन्नियस्य, गुणकेसरालस्स ।८५२।
(कर्मरजोजलौघविनिर्गतस्य, श्रुतरत्न दीर्घनालस्य ।
पंच महाव्रत-स्थिर कर्णिकस्य, गुणकेसरालस्य ।)

ज्ञानावरणादि आठ कर्म रूपी रजोपूर्ण जलौघ से विनिर्गत अर्थात् प्रकट हुए, श्रुतरत्न रूपी दीर्घ नाल वाले, प्राणातिपात विरमण आदि पांच महाव्रत रूपी सुदृढ़ कर्णिका (मध्य गण्डिका) वाले, उत्तर गुण रूपी केसर वाले—।८५२।

सावगजण-महुयरि-परिवुडस्स, जिण-सूर-तेय बुद्धस्स ।
संघ पउमस्स भद्दं, समण गण सहस्स पत्तस्स ।८५३।
(श्रावकजन-मधुकर परिवृतस्य, जिन-सूर्य-तेजो बुद्धस्य ।
संघ-पद्मस्य भद्रं, श्रमणगण सहस्रपत्रस्य ।)

श्रावक जन रूपी भ्रमरों से घिरे हुए, जिनेन्द्र भगवान् के केवल ज्ञान रूपी सूर्य के प्रकाश से प्रबुद्ध (खिले) और श्रमणगण रूपी सहस्र पत्रों वाले हे संघ-पद्म तुम्हारा कल्याण हो ।८५३।

नवसुवि वासेसेवं, इंदो थोऊण समण संघं तु ।
ईसाणो वि तहत्ति य, खणेण अमरालयं पत्तो ।८५४।

---

१ पारियल्लं – बाह्यपुष्ठकस्य बाह्या भ्रमिरुच्यते ।

(नवस्वपि वर्षेष्वेवं, इन्द्रः स्तुत्वा श्रमण संघं तु ।
ईशानोऽपि तथैव च, क्षणेन अमरालयं प्राप्तः ।)

शेष ६ क्षेत्रों में भी सौधर्मेन्द्र तथा ईशानेन्द्र इसी प्रकार श्रमण संघ की स्तुति कर अपने-अपने सुरलोक को लौट गये ।८५४।

दसवेतालिय अत्थस्स, धारतो संजउ तवाउत्तो ।
समणेहिं विप्पहीणो, विहरिही एककगो धीरो ।८५५।
(दशवैकालिक अर्थस्य, धारकः संयतः तपायुक्तः ।
श्रमणैर्विप्रहीणः, विहरिष्यति-एककः धीरः ।)

दश-वैकालिक सूत्र के अर्थ को धारण करने वाला संयम और तप में उद्यत वह धीर दुःप्रसह आचार्य श्रमणों से विहीन एकाकी ही विचरण करेगा ।८५५।

अट्ठेव य गिहवासो, बारसवरिसाइं तस्स परियातो ।
एवं वीसति वासा, दुप्पसहो होहिंही वीरो ।८५६।
(अष्टावेव च गृहवासः, द्वादशवर्षाणि तस्य [श्रमण] पर्यायः ।
एवं विंशतिवर्ष्यः, दुःप्रसभः भविष्यति वीरः ।)

दुःप्रसह आचार्य आठ वर्ष तक गृहवास में और १२ वर्ष तक श्रमण पर्याय में रहेगा । इस प्रकार वह २० वर्ष की आयु वाला होगा ।८५६।

छज्जीवकाय हियतो, सो समणो संजमे तवाउत्तो ।
भत्तो पच्चक्खाते, गच्छिही अमरालयं वीरो ।८५७।
(षड्जीवकाय हितकः स श्रमणः संयमे तपसि आयुक्तः ।
भक्तं प्रत्याख्याते, गमिष्यति अमरालयं वीरः ।)

षड्जीव निकाय का हितैषी वह वीर आचार्य दुःप्रसह संयम तथा तप में निरत रहता हुआ अन्त में अनशन कर सुरलोक को प्रयाण करेगा ।८५७।

अट्ठवरिसगिहवासो, बारसवरिसाइं होइ परियाउ ।
कालं काही य तइया, अट्ठम भत्तेण दुप्पसहो ।८५८।
(अष्टवर्ष गृहवासः द्वादशवर्षाणि भवति [संयम] पर्यायः ।
कालं करिष्यति च तदा, अष्टमभक्तेन दुःप्रसभः ।)

दुःप्रसह आचार्य ८ वर्ष गृहवास में और १२ वर्ष तक श्रमण पर्याय में रहेगा। और अन्ततोगत्वा तेले की तपस्या से पण्डित मरण द्वारा इह लीला को समाप्त करेगा ।८५८।

सोहम्मे उववातो, दुप्पसह जइस्स होइ नायव्वो ।
तस्स य सरीरमहिमा, काहिही लोगपाले हिं ।८५९।
(सौधर्मे उपपातः, दुःप्रसभयतेः भविष्यति, ज्ञातव्यः ।
तस्य च शरीरमहिमा, करिष्यते लोकपालैः ।

दुःप्रसह यति मरणोपरान्त सौधर्म कल्प में उत्पन्न होगा और उसके पार्थिव शरीर को लोकपालों द्वारा महिमापूर्वक अन्तिम क्रियाएं की जायेंगी ।८५९।

काउं मुणिस्स महिमं, नियया वासेसु तो गता तियसा ।
दससुवि वासेसेवं, होई महिमा उ तित्थस्स ।८६०।
(कृत्वा मुनेर्महिमां, निजकावासेषु ततः गताः त्रिदशाः ।
दशस्वपि वर्षेष्वेवं, भवति महिमा तु तीर्थस्य ।)

दुःप्रसह मुनि की महिमा कर देवगण अपने-अपने सुरालय को लौटेंगे। दशों ही क्षेत्रों में इस प्रकार तीर्थ की महिमा होगी ।८६०।

उववज्जिही विमाणे, सागर नामंमि सो य सोहम्मे ।
तत्तो य चइत्ताणं, सिज्जिही नीरजो धीरो ।८६१।
(उत्पत्स्यति विमाने, सागर नाम्नि स च सौधर्मे ।
तत्तश्च च्युत्वा ननु, सेत्स्यति नीरजः धीरः ।)

दुःप्रसह आचार्य सौधर्म कल्प के सागर नामक विमान में उत्पन्न होगा और वहां से च्यवन कर वह धीर वीर आठों कर्मों की रज को दूर कर सिद्धगति को प्राप्त करेगा ।८६१।

पढमाए पुढवीए, उप्पणो विमलवाहणो राया ।
सोहम्मे उववण्णं, सावगमि हुणं च समणी य ।८६२।
(प्रथमायां पृथिव्यां, उत्पन्नः विमलवाहनो राजा ।
सौधर्मे उत्पन्नं, श्रावकमिथुनं च श्रमणी च ।)

राजा विमलवाहन प्रथम नरक में उत्पन्न होगा। फल्गु श्री साध्वी, नाइल श्रावक और सर्वश्री श्राविका---ये तीनों सौधर्म कल्प में उत्पन्न होंगे ।८६२।

वासाण सहस्सेहि य, एकवीसाए इहं भरहवासे ।
दसवेतालिय अत्थो, दुप्पसह जइम्मि नासिहिति ।८६३।
(वर्षाणां सहस्रैश्चैकविंशत्या इह भारतवर्षे ।
दशवैकालिकार्थः, दुःप्रसभ यत्यौ नंक्ष्यति ।)

इकवीस हजार (२१,०००) वर्ष के इस दुःषम नामक पंचम आरक के अन्त में दुःप्रसह यति के स्वर्गगमन के साथ ही यहां भरत-क्षेत्र में अर्थ सहित दश-वैकालिक सूत्र नष्ट हो जायेगा ।८६३।

पुव्वाए संझाए, वोच्छेदो होइ धम्मचरणस्स ।
मज्झण्हे रातीणं, अवरण्हे जायते जस्स ।८६४।
(पूर्वायां संध्यायां, व्युच्छेदः भविष्यति धर्मचरणस्य ।
मध्याह्ने राज्ञां, अपराह्ने जाततेजसः)

पंचम आरक की समाप्ति की पूर्व संध्या में धर्माचरण का, मध्याह्न बेला में राजाओं (अमात्य सहित राजा) अर्थात् राजसत्ता का और अपराह्न की बेला में अग्नि का अन्त होगा ।८६४।

रायाणादंडधरो, उसही अग्गी य संजया चेव ।
चरम दिवसावसाणे, अणु सज्जित्ता न हो हत्ति ।८६५।

(राजाज्ञा-दंडधर, औषधिअग्निश्च संयता चैव ।
चरमदिवसावसाने, अनुसज्जिता न भविष्यन्ति ।)

राजाज्ञा का पालन कराने वाला, वनस्पति, अग्नि और संयम-यम-नियम आदि के पालक-ये पंचम आरक के अन्तिम दिवस की अवसान वेला में भरत क्षेत्र में विद्यमान नहीं रहेंगे ।८६५।

पुव्वाए संझाए, वोच्छेदो इगवीस सहस्साइं वासाणं ।
वीरमोक्ख गमणाओ, अवोच्छिन्नं होही अवस्सगं जाव तित्थं तु ।८६६।

(पूर्वायां संध्यायां, विच्छेद एकविंशतिः सहस्राणि वर्षाणाम् ।
वीरमोक्षगमनात्, अव्युच्छिन्नं भविष्यति आवश्यकं यावत् तीर्थं तु।)

आवश्यक सूत्र भगवान् महावीर के धर्म तीर्थ की विद्यमानता पर्यन्त विद्यमान रहेगा। वीर निर्वाण के इकवीस हजार (और ३ वर्ष एवं साढ़े आठ मास) वर्ष पश्चात् आवश्यक सूत्र का व्युच्छेद होगा ।८६६।

[आहोर नगरस्थ "श्री राजेन्द्र सूरि शास्त्र भण्डार" से प्राप्त प्रति में यह गाथा उल्लिखित नहीं है ।]

इगवीस सहस्साइं, वासाणं वीरमोक्ख गमणाओ ।
अणुओगदार नंदी, अवोच्छिन्ना उ जा तित्थं ।८६७।
(एक विंशतिसहस्राणि, वर्षाणां वीरमोक्षगमनात् ।
अनुयोगद्वार नन्दी, अव्युच्छिन्नाः तु यावत्तीर्थम् ।)

तीर्थ की विद्यमानता तक अनुयोग द्वार और नन्दिसूत्र अविच्छिन्न रहेंगे। भगवान महावीर के निर्वाण से इकवीस हजार वर्ष (तीन वर्ष और साढ़े आठ मास इनमें और मिलाने चाहिए) पश्चात् इनका विच्छेद होगा ।८६७।

सामाइयत्थ पढमं, छेदोवट्ठावणं भवे बीयं ।
एते दोन्नि चरित्ता, होहिंति जाव तित्थं तु ।८६८।

(सामायिकमत्र प्रथमं, छेदोपस्थापनं भवेत् द्वितीयम् ।
एतौ द्वावपि चारित्रौ, भविष्यतः यावत् तीर्थं तु ।)

प्रथम सामायिक चारित्र और दूसरा छेदोपस्थापनीय चारित्र—ये दोनों तीर्थ के अन्तिम दिन तक विद्यमान रहेंगे ।८६८।

जो भणति नत्थि धम्मो, न य सामाइयं न चेव य वयाइं ।
सो समणसंघ वज्जो, कायव्वो समण संघेण ।८६९।
(यो भणति नास्ति धर्मः, न च सामायिकं न चैव च व्रतानि ।
स श्रमणसंघवर्ज्यः, कर्त्तव्यः श्रमणसंघेन ।)

जो व्यक्ति (साधु) यह कहता है कि धर्म नहीं है, सामायिक नहीं है और व्रत भी नहीं हैं श्रमण संघ को चाहिए कि ऐसे व्यक्ति को श्रमण संघ से निष्कासित कर दिया जाय ।८६९।

जइ जिण मतं पवज्जह, ता मा ववहार दंसणं मुयह ।
ववहारस्स उछेदे, तित्थच्छेदो जओवस्सं ८७०।
(यदि जिनमतं प्रव्रजथ, तर्हि मा व्यवहारदर्शनं मुञ्चथ ।
व्यवहारस्य तु छेदे, तीर्थच्छेदो यतोऽवश्यम् ।)

यदि जिनमत में दीक्षित होते हो अथवा जिनमत को अंगीकार करते हो तो व्यवहार-दर्शन का परित्याग मत करो । क्योंकि व्यवहार का विच्छेद होने पर तीर्थ का विच्छेद सुनिश्चित है ।८७०।

[हमारा अनुमान है कि गाथा संख्या ८६९ और ८७० पूर्व-काल में उत्पन्न हुए क्रिया सम्बन्धी मतभेद अथवा शिथिलाचार की ओर संकेत करती हैं ।]

इच्चेयं गणिपिडगं, निच्चं दव्वट्ठयाए नायव्वं ।
पज्जाएण अणिच्चं, निच्चानिच्चं सिय वादे ।८७१।
(इत्येतद् गणिपिटकं, नित्यं द्रव्यार्थतया ज्ञातव्यम् ।
पर्यायेण अनित्यं, नित्यानित्यं स्याद्वादे ।)

इस गणिपिटक (द्वादशांगी) को द्रव्य की दृष्टि से नित्य (अविनश्वर) और पर्याय की दृष्टि से अनित्य (नश्वर) समझना चाहिये क्योंकि स्याद्वाद में इसे नित्य एवं अनित्य-दोनों रूपों में माना गया है ।८७१।

जो सियवायं भासति, पमाणनय पेसलं गुणाधारं ।
भावेइ मणेण सया, सो हु पमाणं पवयणस्स ।८७२।
(यः स्याद्वादं भाषति, प्रमाणनयपेशलं गुणाधारम् ।
भावयति मनसा सदा, स खलु प्रमाणं प्रवचनस्य ।)

जो पुष्ट प्रमाणों, नयों एवं गुणों के आधारभूत स्याद्वाद की बात कहता तथा उसका अन्तर्मन से सदा चिन्तन मनन करता है, वह वस्तुतः प्रवचन का प्रमाण अर्थात् प्रवचनानुसार प्रामाणिक है ।८७२।

जो सियवायं निंदति, पमाणनय पेसलं गुणाधारं ।
भावेइ दुट्ठ भावा, न सो पमाणं पवयणस्स ।८७३।
(यः स्याद्वादं निन्दति, प्रमाणनयपेशलं गुणाधारम् ।
भावयति दुष्ट भावान्, न स प्रमाणं प्रवचनस्य ।

जो पुष्ट प्रमाण, नय एवं गुणों के आधारभूत स्याद्वाद की निन्दा करता और मन में भी इस प्रकार की दुष्ट भावना का चिन्तन मनन करता रहता है, वह प्रवचन का प्रमाण अर्थात् प्रवचनानुसार प्रामाणिक नहीं है ।८७३।

ओसप्पिणी इमीसे, चत्तारि अपच्छिमाइं इह भरहे ।
अत्थंमि दूसमाए, [अत्थं] संघस्स चउ विहस्सावि ।८७४।
(अवसर्पिण्यामस्यां, चत्वारि अपश्चिमानि इह भरते ।
अस्तमितायां दुष्षमायां, [अस्तं] संघस्य चतुर्विधस्यापि ।)

इस अवसर्पिणी काल में भरत क्षेत्र में दुःप्रसह आचार्य, फल्गुश्री साध्वी, नाइल श्रावक और सर्वश्री श्राविका--ये चार व्यक्ति

धमतीर्थ के अन्तिम सदस्य होंगे। दुःषम आरक के अस्तंगत होते ही चतुर्विध तीर्थ का भी अस्तमन हो जायेगा ।८७४।

तेसु य काल गतेसुं, तद्दिवसं चेव होही अधम्मो ।
इय दूसमाए काले, वच्चंते पाव भूइट्ठे ।८७५।
(तेषु[1] च काल गतेषु, तद्दिवसे चैव भविष्यति अधर्मः ।
अस्या दुष्षमायाः काले, व्यतीते पापभूयिष्ठो ।)

इसपाप प्रधान अथवा पापाधिक दुःषम नामक पंचम आरक के जाते (समाप्त होते) समय साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका-उन चारों के दिवंगत होते ही, उसी दिन से भरत क्षेत्र में अधर्म का आधिपत्य हो जायेगा ।८७५।

सामाइय समणाणं, महाणुभावाण चेइयायारो ।
सव्वाय गंधजुत्ती दोसुवि, सज्झाएसु [दससुवि खेत्तेसु] नासिहिति ।८७६।
(सामायिकं श्रमणानां, महानुभावानां चैत्याचारः ।
सर्वा च गंधयुक्तिः दशस्वपि क्षेत्रेषु नश्ययिष्यति ।)

श्रमणों की सामायिक, महानुभावों (श्रद्धालुओं) का चैत्याचार, और सब प्रकार की गन्ध युक्ति दशों ही क्षेत्रों में नष्ट हो जायेगी ।८७६।

चंकमिउं नरतरयं नरतिरियं, तिमिसगुहाए तमंधयाराए ।
न य तइया मणुयाणं, जिणवरतित्थे पणट्ठम्मि ।८७७। [युग्मम्]
(चंकमितु नरतिर्यंचं तमिस्रगुहायां तमोऽन्धकारायाम् ।
न च तदा मनुष्याणां[2], जिनवर तीर्थे प्रणष्टे ।)

मानव और तिर्यंच अन्धकार पूर्ण तमिस्र गुफा में रहने लगेंगे उस समय जिनेन्द्र भगवान् के तीर्थ का व्युच्छेद हो जाने के कारण मनुष्यों में उपर्युल्लिखित सामायिक आदि धर्माचार नहीं होंगे ।८७७।

---

१ तेषु—दुःप्रसहादिषुचतुर्षु—इत्यर्थः ।
२ सामायिकादि इति शेषः ।

पावा पावायारा, निद्धम्मा धम्मबुद्धि परिहीणा ।
रोद्दा कुणिमाहारा, नरा य नारी य होहिंति ।८७८।
(पापाः पापाचाराः, निर्धर्माः धर्मबुद्धि-परिहीनाः ।
रौद्राः कुणिमाहाराः, नराश्च नार्यश्च भविष्यन्ति ।

ज्यों-ज्यों काल व्यतीत होता जायेगा त्यों-त्यों नर-नारीगण पापबुद्धि, पापाचारी, धर्मबुद्धि से हीन अधर्मी, रौद्र रूप एवं स्वभाव वाले और कुत्सितभोजी होंगे ।८७८।

जह जह सिज्झइ कालो, तह तह सज्झाएज्झाण करणाइं ।
सिज्झंति जाव तित्थं, भणियं सज्झाय वंसो य ।८७९।
(यथा यथा सिद्धयति कालः, तथा तथा स्वाध्यायध्यानकरणानि ।
सिद्धयन्ति, यावत् तीर्थं, भणितः स्वाध्यायवंशश्च ।)

ज्यों-ज्यों समय बीतता जायेगा त्यों-त्यों स्वाध्याय-ध्यान आदि क्रियाएं तीर्थ की विद्यमानता तक निरन्तर क्षीण होती जायेंगी । यह स्वाध्याय-वंश का कथन समाप्त हुआ ।८७९।

जिणवयणव्व संपत्ते सज्झाय रायवंस आहारे [आयारे] ।
सुव्वउ जिणवर भणियं, तित्थोगालीए संखेवं ।८८०।
(जिनवचनमिव सम्प्राप्ताः, सज्झाय-राजवंश-आहाराः ।
शृणोतु जिनवर भणितं, तीर्थोद्गालिके संक्षेपम् ।)

स्वाध्यायवंश, राजवंश और आहार अथवा आचार आदि सब कुछ जिन-वचनों के अनुसार ही आज तक चला आ रहा है । तीर्थ—ओगाली में तीर्थंकर प्रभु ने इनके सम्बन्ध में जो कहा है, उसे संक्षिप्त रूप में सुनिये ।८८०।

रिद्धित्थिमियसमिद्धं, भारहवासं जिणिंदकालम्मि ।
बहु अइसय संपण्णं, सुरलोगसमंगुण समिद्धं ।८८१।
(ऋद्धिस्तिमित समृद्धं, भारतवर्षं जिनेन्द्रकाले ।
बह्वतिशयसम्पन्नं, सुरलोक समं गुणसमृद्धम् ।)

तीर्थंकर काल में भारत वर्ष ऋद्धि से भरपूर—समृद्ध, अनेक अतिशयों से सम्पन्न, देवलोक के समान और गुणों से भरा पूरा था ।८८१।

गामानगरब्भूया, नगराणि य देवलोय सरिसाणि ।
रायसमा य कुटुंबी, वेसमण समा य रायाणो ।८८२।
(ग्रामाः नगरभूताः, नगराणि च देवलोकसदृशानि ।
राजसमाश्च कुटुम्बिनः, वैश्रवणसमाश्च राजानः ।)

उस समय भारत के ग्राम नगरों के तुल्य; नगर देवलोक के समान, गृहस्थ राजा के समान और राजागण वैश्रवण के समान सर्वतः सम्पन्न थे ।८८२।

चंद समा आयरिया, अम्मापियरो य देवत समाणा ।
मायसमाविय साहू, ससुराविय पितिसमा आसी ।८८३।
(चन्द्रसमा आचार्या, अम्बापितरौ च दैवतसमानाः ।
मातासमापि च श्वश्रूः, श्वशुरा अपि च पितृसमा आसन् ।)

आचार्य गण चन्द्रमा के समान सौम्य-शीतल एवं ज्ञान का प्रकाश करने वाले, माता-पिता देव-दम्पती तुल्य, सासें माताओं के समान और श्वसुर पिता के समान थे ।८८३।

धम्मा धम्मविहिन्नू, विणयण्णू सच्चसोय संपण्णो ।
गुरुसाहूपूयणरतो, सदारनिरतो जणो तइया ।८८४।
(धर्माधर्मविधिज्ञाः, विनयज्ञः सत्यशौचसंपन्नः ।
गुरुसाधुपूजनरतः, स्वदारनिरतः जनस्तदा ।)

उस समय के मनुष्य धर्म तथा अधर्म की विधि के ज्ञाता, विनीत, सत्य-शौच सम्पन्न, गुरु एवं साधु की पूजा सत्कार में सदा तत्पर और स्वदार-संतोषी होते थे ८८४।

अच्छइय सविण्णाणो, धम्मे य जणस्स आयरो तइया ।
विज्जा पुरिसा पुज्जा, धरिज्जइ कुलं च सीलं च ।८८५।

(अच्छति च सविज्ञानः, धर्मे च जनस्य आदरः तदा ।
विद्यापुरुषाः पूज्या, धार्यते कुलं च शीलं च ।

उस समय के लोग विशिष्ट ज्ञान से सम्पन्न होते हैं। धर्म के प्रति जनमानस में बड़ा आदर होता है। वे लोग विद्या सम्पन्न गुणी पुरुषों की पूजा-सत्कार-सम्मान, कुल की मर्यादाओं और शील-सदाचार का पूर्ण रूपेण पालन करते हैं।८८५।

भंगत्तास विरहिओ, डमरुल्लोलभयदंडरहिओ य ।
दुब्भिक्खं ईति तक्कर, करभरविवज्जिओ लोगो ।८८६।
(भंगत्रास विरहितः, डमरोल्लोल-भय-दण्डरहितश्च ।
दुर्भिक्ष-ईति-तस्कर, करभरविवर्जितः लोकः ।)

उस समय के लोग भंग (फूट) त्रास, विप्लव को किल्लोलों, भय तथा दण्ड से दूर (रहित) तथा दुर्भिक्ष, ईति-भीति, चोर-लुटेरों से रहित और कर भार से मुक्त होते हैं।८८६।

रिद्धित्थिमियसमिद्धं, भारहवासं जिणिंद कालम्मि ।
बहुयच्छेर पपुण्णं, उसभातो जाव वीरजिणो ।८८७।
(ऋद्धिस्तिमितसमृद्धं, भारतवर्षं जिनेन्द्रकाले ।
बह्वाश्चर्यप्रपूर्णं, ऋषभात् यावत् वीर-जिनः ।)

प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से लेकर अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर तक के तीर्थंकर-काल में भारतवर्ष समस्त ऋद्धियों से भरापूरा-समुन्नत और समृद्ध बहुत से आश्चर्यों से परिपूर्ण था।८८७।

दससुवि वासेसेवं, दस दस अच्छेरगाइं जायाइं ।
ओसप्पिणीए एवं, तित्थोगालीए भणियाइं ।८८८
(दशस्वपि वर्षेष्वेवं, दश दश आश्चर्यकानि जातानि ।
अवसर्पिण्यामेवं, तीर्थोद्गालिके भणितानि ।)

ढाई द्वीप के ५ भरत तथा ५ ऐरवत-इन दशों क्षेत्रों में प्रवर्तमान अवसर्पिणी काल में निम्न दश-दश आश्चर्य हुए ऐसा तीर्थोगाली में बताया गया है।८८८।

उवसग्ग गब्भहरणं, इत्थितित्थं अभाविया-परिसा ।
कण्हस्स अवरकंका, उत्तरणं चंद-सूराणं ।८८९।
(उपसर्ग-गर्भहरणं, स्त्रीतीर्थं अभावितापरिषद् ।
कृष्णस्य अपरकंका, उत्तरणं चन्द्रसूर्ययोः ।)

उपसर्ग (१), गर्भापहार (२), स्त्री तीर्थंकर (३), अभाविता परिषद (४), कृष्ण का अपर कंका गमन (५), चन्द्र-सूर्य का उतरना (६)--।८८९।

हरिवंसकुलुप्पत्ती, चमरुप्पाओ य अट्ठसयसिद्धा ।
अस्संजयाण पूया, दसवि अणंतेण कालेणं ।८९०।
(हरिवंश कुलोत्पत्तिः, चमरोत्पातश्च अष्टशतसिद्धाः ।
असंयतानां पूजा, दश अपि अनन्तेन कालेन ।)

हरिवंशकुलोत्पत्ति (७), चमरेन्द्र का उत्पात (८), उत्कृष्ट अवगाहना के १०८ सिद्ध (९) और असंयत-पूजा (१०)--ये दश आश्चर्य अनन्त काल पश्चात् होते हैं ।८९०।

लोगुत्तम पुरिसेहिं, चउप्पणाए इहं अतीएहिं ।
सुबहुहिं केवलिहि य, मणपज्जव उहिनाणेहिं ।८९१।
(लोकोत्तमपुरुषैः, चतुष्पंचाशता इह अतीतैः ।
सुबहुभिः केवलिभिश्च, मनःपर्यवावधिज्ञानिभिः ।)

यहां चौवन लोकोत्तम (महान्) पुरुषों के हो चुकने के पश्चात् । बहुत से केवलियों, मनःपर्यवज्ञानियों एवं अवधिज्ञानियों ।८९१।

बहुरिद्धी पतेहि य, मइ सुयनाणेहि वुहिय सारेहिं ।
काल गतेहिं वुहेहिं मोक्खविण्णाणरासीहिं ।८९२।
बहुऋद्धिपात्रैश्च मतिश्रुतज्ञानीभिः व्यूढसारैः ।
कालगतै बुधैः मोक्षविज्ञानराशीभिः ।)

अनेकों ऋद्धियों एवं लब्धियों के पात्रों, मति और श्रुतज्ञान के द्वारा सर्वसारभूत ज्ञान को वहन करने वालों और मोक्षविज्ञान के अतुल भण्डार उत्तम बुद्धिनिधानों के परलोक चले जाने पर ।८९२।

तेहिय समतीहिं, भरहेवासम्मिगय दोसेहिं ।
अव्वोधत्तो व्व वप्पो, जातो संभिण्णमज्जादो ।८९३।
(तैश्च समतीतौ भारतेवर्षे गतदोषै ।
अवध्वस्त वप्रेव (लोकः), जातः संभिन्नमर्यादः ।)

अर्थात् भरतक्षेत्र में इन दोष रहित महापुरुषों के अवसान के पश्चात् टूटे परकोटे वाले नगर के नागरिकों के समान लोग मर्यादा-विहीन हो गये ।८९३।

जह जह वच्चइ कालो, तह तह कुलं सीलदाण परिहीणो ।
अहियं अहम्मसीलो, सच्चवयण दुल्लहो लोगो ।८९४।
(यथा यथा व्यत्येति कालः, तथा तथा कुलशीलदानपरिहीनः ।
अधिकं अधर्मशीलः, सत्यवचन दुर्लभो लोकः ।)

ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है त्यों-त्यों लोग कुल, शील तथा दान से उत्तरोत्तर हीन और अधिकाधिक अधर्मशील होते चले जाते हैं। सत्यवादी लोग दुर्लभ होते जाते हैं ।८९४।

णवरीय लोगधम्मे, परिहायंते पणट्ठमज्जाए ।
सक्कार दाणगिदा, कुहम्म पासंडिणो जाता ।८९५।
(नवरं च लोकधर्मे, परिहीयमाणे प्रणष्टमर्यादे ।
सत्कारदानगृद्धाः, कुधर्मपाषंडिनः जाताः ।)

और इस प्रकार लोकधर्म के उत्तरोत्तर दूषित होने तथा मर्यादाओं के नष्ट हो जाने पर सत्कार लोलुप एवं दानगृद्ध पाखण्डियों का प्रादुर्भाव हुआ ।८९५।

होहिंति य पासंडा, मंतक्खर कुहग संपउत्ताय ।
मंडलि मुद्दाजोगा, वस उच्चाडणपरा य दढं ।८९६।

(भविष्यन्ति च पाखण्डा, मंत्राक्षरकुहकसंप्रयुक्ताश्च ।
मण्डलं मुद्रायोगाः, वशोच्चाटनपराश्च दृढम् ।)

मन्त्र, यन्त्र, इन्द्रजाल आदि कौतुक विद्या एवं मण्डल मुद्रायोग आदि के द्वारा वशीकरण, उच्चाटन आदि हीन क्रियाओं में अहर्निश तत्पर रहने वाले पाखण्डियों का उस काल में बाहुल्य होगा ।८९६।

तेहिं मुसिज्जमाणो, लोगो सच्छंद रइय कव्वेहिं ।
अवमन्निय सब्भावो, जातो अलितो य पलितो य ।८९७।
(ते मुष्यमानः लोकःस्वच्छन्दरचितकाव्यैः ।
अवमान्य सद्भावं[1], जातोऽलितश्च पलितश्च ।)

उन पाखण्डियों के द्वारा ठगे और लुटे जाते हुए उस समय के लोग स्वच्छन्दतापूर्वक रचित मनमाने काव्यों द्वारा वीतराग द्वारा उपदिष्ट आगमों की अवमानना करते हुए अलित-पलित हो जायेंगे ।८९७।

होहिंति साहुणो वि य, सप्पक्खनिरवेक्खनिंदया धणियं ।
समणगुण मुक्क जोगा, केइ संसारछेत्तारो ।८९८।
(भविष्यन्ति साधवोऽपि च, स्वपक्षनिरपेक्षनिन्दका आधिक्येन ।
श्रमणगुणमुक्तयोगा, केचित् संसार-छेत्तारः ।)

साधु भी अधिकांशतः स्वपक्ष की अवहेलना करने वाले, बड़े निर्दय और श्रमण गुणों एवं योग से हीन होंगे। कोई विरले ही साधु संसार के बंधनों को काटने वाले होंगे ।८९८।

होहीति गुरुकुलवासे, मंदा य मंदमतीय समण धम्मंमि ।
एयं तं संपत्तं, बहुमुंडे अप्पसमणे य ।८९९।
(भविष्यन्ति गुरुकुलवासे, मन्दाश्च मन्दमतयश्च श्रमणधर्मे ।
एतत् तत् सम्प्राप्तं, बहुमुण्डा अल्पश्रमणाश्च ।)

---

१ सद्भावं–गणिपिटकमित्यर्थ ।

उस समय के साधु गुरुकुलवास (गुरु की आज्ञा में रहने) एवं श्रमण धर्म के पालन में मन्दरुचि तथा मन्दबुद्धि होंगे। यह वह काल होगा जिसमें मुण्डितों की संख्या अधिक पर सच्चे साधुओं की संख्या अति स्वल्प होगी।८९९।

रहगावि जास सत्थो, गोयमादीण वीर कहियो उ।
कप्पद्रुम सीहा वि य, तित्थोगालीए दिट्ठंता।९००।
(रथगौ[1] येषां शास्त्रः, गौतमादीनां वीरकथितस्तु।
कल्पद्रुम सिंहावपि च, तीर्थोद्गालिके दृष्टान्तौ।)

भगवान् महावीर ने गौतम आदि गणधरों को शास्त्र और साधु का सम्बन्ध रथ एवं वृषभ तुल्य बताया है। तीर्थोद्गारी में साधु को कल्पवृक्ष और सिंह की उपमा दी गई है।९००।

लुद्धाय साहुवग्गा, संपतिओप्पालमूयगा बहुगा।
अलिय वयणं च पउरं धम्मो य जितो अहम्मेण।९०१।
(लुब्धाश्च साधुवर्गाः, संप्रति वप्रालमोचकाः बहुकाः।
अलीकवचनं च प्रचुरं, धर्मश्च जितोऽधर्मेण।)

उस समय में साधु लोभी और श्रमण मर्यादा को तोड़ने अथवा छोड़ने वाले बड़ी संख्या में होंगे। उस समय सर्वत्र असत्य वचन का प्राचुर्य होगा और अधर्म द्वारा धर्म को जीत लिया जायेगा।९०१।

सुद्दा य पुहविपाला, पयति ओप्पाल्लमूयगा बहुला।
अलियवयणं च पउरं, धम्मो य जितो अहम्मेण।९०२।
(शूद्राश्च पृथ्विपालाः, प्रकृति वप्रालमोचकाः बहुलाः।
अलीकवचनं च प्रचुरं, धर्मश्च जितोऽधर्मेण।)

उस समय शूद्र राजा होंगे और प्रकृति अर्थात् प्रजा वप्राल अर्थात् मर्यादाओं के प्राकार (पाल) को तोडने वाली होगी। असत्य भाषण का प्राचुर्य होगा और धर्म का स्थान अधर्म ग्रहण कर लेगा।९०२।

---

१ रथगौ-रथ-वृषभतुल्यो सम्बन्धः द्वादशांग्या साद्धं गणीनाम्।

गामा मसाण भूया, नयराणि य पेयलोय-सरिसाणि ।
दास समाय कुडुंबी, जमदंडसमा य रायाणो ।९०३।
(ग्रामाः श्मशानभूताः, नगराणि च प्रेतलोक सदृशानि ।
दास समाश्च कुटुम्बिनः, यमदण्डसमाश्च राजानः ।)

उस समय के ग्राम श्मशान के समान और नगर प्रेतलोक के समान भयावह, गृहस्थ दास के समान दीन और राजा लोग साक्षात् यमदण्ड के समान उत्पीड़क होंगे ।९०३।

रायामच्चे भिजाया, भिच्चा जणवएसु य रायाणो ।
खायंति एक्कमेक्कं, मच्छा इव दुब्बले बलिया ।९०४।
(राजामात्याभिजाताः, भृत्याः जनपदेसु च राजानः ।
खादन्ति एकमेकं, मत्स्या इव दुर्बलान् बलिनः ।)

उस समय जनपदों में राजामात्य, अभिजार कुल के लोग राजभृत्य और राजा परस्पर एक दूसरे को इस प्रकार खायेंग जिस प्रकार कि बलवान् मच्छ अपने से दुर्बल मत्स्यों को खाते हैं ।९०४।

जे अंता ते मज्झा, मज्झा य कमेण होत्ति णं चत्ता ।
अपडागा इव नावा, डोल्लंति समंततो देसा ।९०५।
(येअन्त्याः[अन्त्यजाः]तेमध्याः, मध्याश्च क्रमेण भवन्ति ननु त्यक्ताः।
अपताका इव नौः, दोलयन्ति समन्ततः देशे ।)

जो लोग अन्त्य अर्थात् सब से हीन हैं वे मध्यम वर्ग के होंगे और जो मध्यम वर्ग के हैं वे क्रमशः परित्यक्त होंगे । समुद्र में पड़ो बिना पाल की नाव के समान लोग देश में इधर से उधर भटकते रहेंगे ।९०५।

पगलित गो महिसाणं, उत्तच्छाणं पलायमाणाणं ।
अजहन्निया पवित्ती, उक्कक्खाणं जणवयाणं ।९०६।
प्रगलित गौ महिषाणां, उत्त्रस्तानां पलायमानानाम् ।
अजघन्या प्रवृत्तिः, उत्कक्षानां जनपदानाम् ।

दुर्बल एवं क्षीण त्रस्त तथा इधर उधर भागती हुई गायों एवं भैंसों वाले, उखड़ी हुई कक्षा वाले अर्थात् उखड़े हुए जनपदों की यह दयनीय प्रवृत्ति पर्याप्त लम्बे समय तक चलती रहेगी ।९०६।

संपत्ता य जणवदा, पणट्ठसोभा य णिरभिरामा ।
तियदार सावएज्जा [१] चोराउल दुग्गमा देसा ।९०७।
सम्प्राप्ताश्च जनपदाः, प्रणष्टशोभा च अनभिरामाः ।
[१], चोराकुल दुर्गमाः देशा ।

आज जो ये जनपद हैं, इनकी शोभा उस समय नष्ट हो जायेगी और ये बड़े असुन्दर हो जायेंगे ।....प्रदेश चोरों से आकुल व्याकुल और दुर्गम होंगे ९०७

चोरे हणंति देसे, राया करपीडियाइं रट्ठाइं ।
अइ रोद्दज्झवसाया, भिच्चा य हणंति रायाणो ।९०८।
चौरा घ्नन्ति देशान्, राजा करपीडितानि राष्ट्राणि ।
अति रौद्र-अध्यवसायाः, भृत्याश्च घ्नन्ति राजानः ।

उस समय प्रदेश चोरों को मार से मरे के समान और राष्ट्र राजा द्वारा लगाये गये करों से पीड़ित रहेंगे। बड़े ही क्रूर अध्यवसायों वाले भृत्य (दास) राजाओं को मारेंगे ।९०८।

धण-धण्णे अवि तण्हो, भिक्खावलिदाण धम्मपरिहीणो ।
पावो मोहमतीओ गुरुजणंमि परंमुहो लोगो ।
(धन-धान्ये अपि [अति] तृष्णः, भिक्षा बलिदान धर्मपरिहीनः ।
पापः मोहमतिकः गुरुजने पराङ्मुखो लोकः ।

उस समय का लोक समूह धन-धान्य में अति गृद्ध, भिक्षा, बलिदान और धर्म से नितान्त रहित पापी, मोह के कारण मदान्ध और गुरुजनों से सदा पराङ् मुख होगा ।९०९।

सीसा वि न पूइंति, आयरिए दूसमाणु भावेणं ।
आयरिया सुमणसा, न दिंति उवदेसरयणाइं ।९१०।

(शिष्या अपि न पूजयन्ति, आचार्यान् दुःषमानुभावेन ।
आचार्या सुमनसा, न ददति उपदेशरत्नानि ।)

दुःषम काल के प्रभाववशात् शिष्य अपने आचार्यों की सत्कार-सम्मान आदि से पूजा नहीं करेंगे और आचार्य भी अन्तर्मन से उन्हें उपदेश नहीं देंगे ।९१०।

समणाणं गोयर तो, नासिहिति दुःसमप्पभावेणं ।
सावगधम्मो वि तहा, अज्जाणं पण्णवी सावि [?] ।९११।
(श्रमणानां गोचरं ततः, नाशयिष्यति दुःषमाप्रभावेन ।
श्रावक धर्मोऽपि तथा, आर्यिकाणां प्रज्ञप्ति सापि ।)

दुःषम आरक के प्रभाव से आगे चल कर श्रमणों की मधुकरी, श्रावक धर्म और साध्वियों का आचार भी धीरे-धीरे नाश को प्राप्त होगा ।९११।

देवा न देंति दरिसणं, धम्मे य मती जणस्स पम्हुट्ठा ।
सत्ताकुला य पुहवी, बहुअं किण्णा य पासंडा ।९१२।
(देवा न ददति दर्शनं, धर्मे च मतिः जनस्य प्रमुष्टा ।
सत्वाकुला च पृथ्वी, बहुकं कीर्णाश्च पाषण्डाः ।)

देवता मनुष्यों को दर्शन नहीं देंगे । मानव समाज की धर्म बुद्धि नष्ट हो जायेगी । अपना-अपना प्रभुत्व जमाने की मानव-मानव में होड के कारण पृथ्वी सत्ताकुल हो जायेगी और अधिकांशतः सर्वत्र पाखण्डियों का प्रसार होगा ।९१२।

सयणे निच्च विरुद्धो, निसोहिय साहिवासमित्तोहिं ।
चण्डो दुराणुयत्तो, लज्जारहितो जणो जातो ।९१३।
(स्वजनेनित्यविरुद्धः, निशोधित साधिवास मित्रैः ।
चण्डः दुरानुवृत्तो, लज्जारहितः जनो जातः ।)

उस समय में लोग सदा साथ रहने वाले मित्रों एवं स्वजनों के साथ विरोध रखने वाले, बड़े क्रोधी दुष्टतापूर्ण कार्यों में प्रवृत्त और लज्जारहित होंगे ।९१३।

पुत्ता अम्मापियरो, अवमणंति कटुयाइ भासंति ।
सुन्हा य जंतसमिया, सासूविय किण्हसप्पसमा ।९१४।
(पुत्रा अम्बापितरौ, अवमन्यन्ते कटुकानि भाषन्ति ।
स्नुषा च यन्त्रशमिता, श्वश्रपि च कृष्णसर्पसमा ।)

पुत्र अपने माता-पिता का तिरस्कार करेंगे और उन्हें कटु वचन कहेंगे। पुत्रवधु जन्त्री (मोटे तार को पतले से पतला बना देने वाली छोटे बड़े अनेक छिद्रों वाली लोहे की पट्टी) के समान सास काली नागिन के समान होगी ।९१४।

सह पं [पुं] सुक्कीलियाता, अणवरयं गुरुयनेह पडिबद्धा ।
मित्तदार हसिएहिं लुब्भंति वयंस सब्भासु ।९१५।
(सहपांशुक्रीडितास्ताः अनवरतं गुरुकस्नेह प्रतिबद्धाः ।
मित्रदारहसितैः, लुभ्यन्ति वयस्य सभासु ।)

बाल्यकाल में धूलि में साथ खेले हुए समवयस्क युवकों के साथ उस समय की कुल वधुएँ प्रगाढ़-स्नेह में आबद्ध रहेंगी। युवक भी अपने मित्र की पत्नी की मधुर मुस्कान से साथियों की पत्नियों में लुब्ध रहेंगे ।९१५।

हसितेहि जंपिएहिय, अच्छिविकारेहिं नट्ठलज्जातो ।
सविलास नियच्छेहि य, पहुवा सिक्खंति वेसाणं ।९१६।
हसितैः जल्पितैश्च, अक्षिविकारैर्नष्टलज्जाः ।
सविलास निजाक्षैश्च प्रभूता शिक्षयन्ति वेश्यानाम् ।)

उस समय की कुलवधुएं निर्लज्ज हो हास्य, प्रेमालाप, भ्रूभङ्ग और सविलास कटाक्ष आदि वेश्याओं के बहुत से लक्षणों को सीखेंगी ।९१६।

सावग साविग हाणी, भावण तवसीलदाण परिहीणं ।
समणाणं समणीणं असंख डाइणि थेवेति ।९१७।
(श्रावक श्राविकाहानिः, भावनातपः शील दानं परिहीनम् ।
श्रमणानां श्रमणीनां च, संघाटकानि स्तोकानि ।)

उस समय में श्रावक-श्राविकाओं, दान, शील, तप और भावनाओं तथा श्रमण श्रमणियों के संघाटकों की निरन्तर हानि होगी ।९१७।

विज्जाणय परिहाणी, पुप्फफलाणं च ओसहीणं च ।
आउय सुहरिद्धीणं, सड्ढाणुव्वत्त धम्माणं ।९१८।
(विद्यानां च परिहानिः, पुष्पफलानां च औषधीनां च ।
आयुश्च सुखर्द्धीनां, श्रद्धा अणुव्रत धर्माणाम् ।)

उस समय में विद्याओं, पुष्पों, फलों, औषधियों, आयु, सुख, ऋद्धि और श्रावक अणुव्रत धर्मों की हानि होगी ।९१८।

केवलि वयणं सव्वं, तित्थोगालीए भाणियं एयं ।
ताव न छिज्जइ तित्थं, जाव [सग्ग] मपत्तं तु दुप्पसहं ।९१९।
(केवलिवचनं सर्वं, तीर्थोद्गालिके भणितं एतत् ।
तावत् न क्षीयते तीर्थं, यावत् स्वर्गमप्राप्तं तु दुःप्रसभम् ।)

तीर्थ-ओगालो में इन सब के वलिभाषित बानों का कथन किया गया है। तीर्थ तब तक व्युच्छिन्न नहीं होगा जब तक कि आचार्य दुःप्रसह स्वर्गस्थ नहीं होंगे ९१९।

विज्जाण य परिहाणी, रोहिणी पमुहाण सोलसण्हं पि ।
मंडलमुद्दादीणं, जह भणिया वीयरागेण ।९२०।
(विद्यानां च परिहानिः, रोहिणी प्रमुखानां षोडशानामपि ।
मण्डल मुद्रादीनां, यथा भणिता वीतरागेण ।)

दुःषम काल में प्रभाव से रोहिणी आदि सोलह (१६) विद्याओं एवं मंडल मुद्रादि को वीतराग के कथनानुसार हानि होगी ।९२०।

चुण्णंजणाण हाणी, पायप्पलेवाण ओसहीणं च ।
अंतज्झाण वसीकरणाण, खग्ग [?] गोरोयणादीणं ।९२१।
(चूर्णाञ्जनानां हानिः, पादप्रलेपानां औषधीनां च ।
अन्तर्धान वशीकरणानां, खग्र [?] गौरोचनादीनाम् ।)

चूर्णों, अंजनों, पांवों में किये जाने वाले लेपों को औषधियों, अन्तर्धान, वशीकरण खङ्ग (?) गोरोचन आदि की हानि होगी ।९२१।

मंताण य परिहाणी, पसिणावच्छलमणो जोगाणं ।
कलहभक्खाणाणं, वुड्ढी एवं जिणा वेंति ।९२२।
(मन्त्राणां च परिहानिः, प्रश्नावत्सलमनो (?) योगानाम् ।
कलहाभ्याख्यानानां, वृद्धिः एवं जिनाः वदन्ति) .

मन्त्रों एवं वन्सल (प्रिय) मनोयोगों सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर देने की विद्या का ह्रास होगा । कलह और अभ्याख्यानों (परस्पर एक दूसरे को बुरा बताने) की वृद्धि होगी, ऐसा सर्वज्ञ जिनेश्वर कहते हैं ।९२२।

कलहकरा डमरकरा, असमाहिकरा अनिव्वुइकरा य ।
होहिंति एत्थ समणा, नवसुवि खेत्तेसु एमेव ।९२३।
(कलहकराः डमरकरा, असमाधिकरा अनिवृतिकराश्च ।
भविष्यन्ति अत्र श्रमणाः, नवस्वपि क्षेत्रेषु एवमेव ।)

इस भरत क्षेत्र की तरह शेष ९ क्षेत्रों में भी उस समय के श्रमण कलह, विप्लव, अशान्ति एवं आरम्भ समारम्भ करने वाले होंगे ।९२३।

दूसम काले होही, एवं एयंजिणा परिकहंति ।
एगंत दुस्समाए, पाव तरगं अतो बिंति ।९२४।
(दुःषमाकाले भविष्यति एवं एतद् जिनाः परिकथयन्ति ।
एकान्त दुःषमायां, पापतरकं अतः ब्रुवन्ति ।)

दुष्षम नामक पंचम आरक में ये सब बातें होंगी ऐसा जिनेश्वर कहते हैं । इसके पश्चात् एकान्त दुष्षम अर्थात् दुष्ष दुष्षमा नामक (अवसर्पिणी के षष्ठम तथा उत्सर्पिणी के प्रथम) आरक में जिनेश्वर ने पाप की पराकाष्ठा बताई है ।९२४।

एवं परिहीयमाणे, लोगे चंदोव्वकाल पक्खम्मि ।
जे धम्मिया मणुस्सा, सुजीवियं जीवियं तेसिं ।९२५।
(एवं परिहीयमाने, लोके चन्द्र इव कृष्णपक्षे ।
ये धार्मिकाः मनुष्याः, सुजीवितं जीवितं तेषाम् ।)

इस प्रकार कृष्ण पक्ष के चन्द्र की तरह निरन्तर क्षीण होते हुए लोक (काल) में जो मनुष्य धर्माचरण करने वाले होंगे उन्हीं का जीवन वस्तुतः अच्छा जीवन कहा जायेगा ।९२५।

दुस्सम सुस्समकालो, महाविदेहेण आसि परितुल्लो ।
सोउ चउत्थोकालो, वीरे परिनिव्वुते छिन्नो ।९२६।
(दुःषम सुषमकालः, महाविदेहेन आसीत् परितुल्यः ।
स तु चतुर्थः कालः, वीरे परिनिर्वृते छिन्नः ।)

दुःषम सुष्षम काल (जो भरत ऐरवत आदि दक्ष क्षेत्रों में था, वह), महाविदेह क्षेत्र में सदा एक ही समान रूप में प्रवर्तमान काल के तुल्य था। वह इस अवसर्पिणी काल का चतुर्थ आरक भगवान् के निर्वाण के (निम्नलिखित काल के) पश्चात् समाप्त हुआ ।९२६।

तिहिं वासेहिं गतेहिं, गएहिं मासेहिं अद्धनवमेहिं ।
एवं परिहायंते, दूसमकालो इमो जातो ।९२७।
(त्रिभिर्वर्षैर्गतैः, गतैः मासैरर्द्ध नवमैः ।
एवं परिहीयमाने, दुःषम काल इमो जातः ।

भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् तीन वर्ष और साढ़े आठ मास व्यतीत होने पर यह दुष्षम नामक पंचम आरक प्रारम्भ हुआ ।९२७।

एयम्मि अइक्कंते, वाससहस्सेहि एककवीसाए ।
फिट्टिहिति लोग धम्मो, अग्गिमग्गो जिणक्खातो ।९२८।
(एतस्मिन्नति क्रान्ते, वर्ष सहस्रैः एकविंशत्या ।
स्फोटिष्यति लोकधर्मः, अग्निमार्गः जिनाख्यातः ।)

इकवीस हजार वर्ष पश्चात् इस दुष्षम नामक पंचम आरक के समाप्त होते ही जिनेन्द्र प्रभु के कथनानुसार (भरतादि १० क्षेत्रों में) लोक धर्म और अग्नि का विच्छेद हो जायेगा ।९२८।

होही हाहाभूतो, दुक्खभूतो य पावभूतो य ।
काले इमाइ पत्ते, गोधम्मसमो जणो पच्छा ।९२९।
(भविष्यति हाहाभूतः, दुःखभूतश्च पापभूतश्च ।
काले एतस्मिन् प्राप्ते, गोधर्मसमः जनो पश्चात् ।)

दुःषम-दुःषम नामक आरक के आने पर भरत, ऐरवत आदि दश क्षेत्रों में सर्वत्र हाहाकार, दारुण दुःख और घोर पाप का साम्राज्य हो जायेगा । तदनन्तर मानव पशुतुल्य हो जायेंगे ।९२९।

खरफरुस धूलि पउरा, अणिद्धफासा समंततो वाया ।
वाहिंति भयकरा वि य, दुव्विसहा सव्वजीवाणं ।९३०।
(खर-परुष-धूलि प्रचुरा, अनिद्ध स्पर्शाः समन्ततः वाताः ।
वाहिष्यन्ति भयंकरा अपि च, दुर्विषहाः सर्वजीवानाम् ।)

उस छट्ठे आरक में चारों ओर सर्वत्र प्राणिमात्र के लिये असह्य, तीखी, कठोर, प्रचुर धूलि भरी और दुःखद स्पर्श वाली आंधियां चलेंगी ।९३०।

धूमायंति दिसाओ, रओसिला पंक रेणु बहुला उ ।
भीमा भय जणणीओ, समंततो अंतकालम्मि ।९३१।
धूम्रायन्ते दिशाः, रजो-शिला-पंक-रेणुबहुलास्तु ।
भीमाः भयजनन्यः, समन्तात् अन्तकाले ।)

रज, शिला, कीचड़ और रेणु बजरी कण-मय धूलि से भरी दशों दिशाएं पंचम आरक के अन्त में सब ओर घने धूम से धूमायमान (काली) प्रतीत होंगी ।९३१।

अह दूसमाए तीसे, वितिकंताए चरम समयम्मि ।
वासीहि सव्व [सत्त] रत्तिंसु महंत निरंतरं वासं ।९३२।

(अथ दुःषमायां तस्यां, व्यतिक्रान्तायां चरम समये ।
वर्षिष्यति सप्त रात्रिषु, महत् निरन्तरं वर्षम् ।)

उस दुष्षम आरक की समाप्ति की अन्तिम वेला में सात रात (रात दिन) निरन्तर घोर वर्षा बरसेगी ।९३२।

तेण हरिया य रुक्खा, तण गुम्मलया वणप्फतीओ य ।
अग्गिस्स य किर जोणी, तमहोरत्तं पडिसिसहिति[1] ।९३३।
(तेन हरिताश्च वृक्षाः, तृणगुल्मलता वनस्पतयश्च ।
अग्नेश्च किल योनिः, तस्मिन् अहोरात्रे प्रतिसेत्स्यति ।)

उस घोर वर्षा से हरे वृक्ष, तृण, गुल्म, लता, वनस्पति और अग्नि की योनि उसी अहोरात्र (एक दिन तथा एक रात) में नष्ट हो जायेगी ।९३३।

एते सणियं सणियं, सव्वे विय पव्वेया न होहिंति ।
वेयड्ढो रयणड्ढो, नवरं किच्छाए दीसिहिति ।९३४।
(एते शनैः शनैः, सर्वेऽपि च पर्वता न भविष्यन्ति ।
वैताढ्यः रत्नाढ्यः नवरं कृच्छ्रया द्रक्ष्यन्ति ।)

ये सब पर्वत भी धीरे-धीरे नहीं रहेंगे । रत्नभण्डार वैताढ्य पर्वत भी बड़ा छोटा दिखाई देगा ।९३४।

चंदा मुच्चिहिंति हिमं, अहियं य सूरिया तविहिंति ।
जेण इहं नर तिरिया, सीउण्हहया किलिस्संति ।९३५।
(चन्द्राः मुंचिष्यन्ति हिमं, अधिकं च सूर्याः तप्स्यन्ति ।
येन इह नरतिर्यञ्चा, शीतोष्णहताः क्लिशिष्यन्ति ।)

चन्द्र हिमवर्षा करेंगे और सूर्य बड़ी तीव्रता से तपेंगे जिससे कि इन दश क्षत्रों के मनुष्य एवं तिर्यञ्च शीत और घाम के मारे असह्य कष्ट पायेंगे ।९३५।

---

१ निर्वृत्तिमवाप्स्यति-लुप्ता भविष्नीयर्थः ।

अहियं होही सीतं, अहियं उण्हो वि होहीति सततं ।
हो ही तइया लोगो, मुम्मुर निकरेण सारिच्छो ।९३६।
(अधिकं भविष्यति शीतं, अधिकं उष्णोऽपि भविष्यति सततम् ।
भविष्यति तदा लोकः, मुर्मुरनिकरेण सदृशः ।)

अत्यधिक शीत पड़ेगा और तपन भी निरन्तर अधिकाधिक होती जायेगी। उस समय लोक आग की चिन्गारियों के पुंज के समान हो जायेगा ।९३६।

होही मुम्मिरा भूमी, पडंत इंगाल मुम्मुरसरिच्छा ।
अग्गी हरियतणाणि य, नवरं नासीही न होही ।९३७।
(भविष्यति मुर्मुरा भूमिः, पतत्-अंगार-मुर्मुर सदृशाः ।
अग्निः हरित तृणानि च, नवरं नाशयिष्यति न भविष्यति ।)

भूमि गिरते हुए अंगारों की चिन्गारियों के समान तपी हुई हो जायेगी। अग्नि और हरे तृण पूर्णतः नष्ट हो जायेंगे ।९३७।

उदएणं वूढो सोउजणो, पुप्फफलपत्त परिहीणो ।
कलुण किविणो वराओ, होहिति उ दुल्लहो दट्ठुं ।९३८।
(उदकेन वाहितः स तु जनः, पुष्पफलपत्र परिहीणः ।
करुणकृपणो वराकः, भविष्यति तु दुर्लभः द्रष्टुम् ।)

जल-प्रवाह द्वारा बहाये हुए फल और पत्र तक न पाकर करुण दीन-हीन बने हुए लोग दिखने तक दुर्लभ हो जायेंगे अर्थात् बीजमात्र अवशिष्ट रहेंगे ।९३८।

विक्कल्ल कालिया उ, विक्कल्ल पिसाइया महिला उ ।
ववगत नियंसणाउ, नवरं के सेहिं पडिबद्धा ।९३९।
(विकराल कालिकास्तु, विकराल पिशाचिकाः महिलास्तु ।
व्यपगत निदर्शनास्तु, नवरं केशैः प्रतिबद्धाः ।)

उस समय में महिलाएँ विकराल कालिका अथवा विकराल पिशाचिनी के तुल्य बीभत्स, लज्जाविहीन और केशों अथवा क्लेशों से आबद्ध होंगी ।९३९।

भसुंडिय रूवगणा, विवण्णदेह-छवि-निरभिरामा ।
नग्गा वि गया भरणा, वीभच्छा दीह रोमनहा ।९४०।
(भूसुण्डित रूपगणाः, विवर्णदेहछवि निरभिरामाः ।
नग्नाः विगताभरणाः, वीभत्साः दीर्घरोमनखाः ।)

उस समय लोग ग्रामशूकरों के समान विवर्ण एवं घृणास्पद देह वाले, नग्न, वस्त्र रहित, लम्बे-लम्बे केशों एवं नखों वाले तथा बड़े ही वीभत्स होंगे ।९४०।

कुणिम सिरीसिव कद्दम, मुत्त पुरीसासिणो मडहदेहा ।
हणभिंदछिंद पवरा, दोग्गतिगामी य होहिंति ।९४१।
(कुणिमा सरीसृपकर्दम, मूत्रपुरीषासिनः मृतकदेहाः ।
हन भेदय छेदयप्रवराः दुर्गतिगामिनश्च भविष्यन्ति ।)

वे लोग कुबड़े, सर्प, कीचड़, मूत्र और पुरीष (विष्टा) खाने वाले, मुर्दे के समान देह वाले, मारो, काटो, छेद डालो—इस प्रकार के दुष्ट वचन बोलने वाले एवं मृत्यु के पश्चात् दुर्गतिगामी होंगे ।९४१।

पुणरवि अभिक्खभिक्खं, अरसं विरसं य खार खट्टं च ।
अग्गिविस असणि सहियं, मुंचहिंति मेहा जलमणिट्ठं ९४२।
(पुनरपि अभिक्षभिक्षं, अरसं विरसं च क्षारमम्लं च ।
अग्नि-विष-अशनिसहितं, मुंचिष्यन्ति मेघा जलमनिष्टम् ।)

बार-बार भीषण दुष्काल पड़ेंगे। उस समय बादल अरस, विरस, कडवा, खट्टा, अग्नि, विष एवं वज्र सहित अनिष्ट करें जल बरसायेंगे ।९४२।

जेण इहं मणुयाणं, कासो सासो भगंदरं कोट्ठो ।
होहिंती एवमाई, रोगा अण्णे अणेग विहा ।९४३।
(येन इह मनुष्यानां, कासः श्वासो भगंदरं कुष्ठः ।
भविष्यन्ति एवमादयः रोगा अन्ये अनेक विधाः ।)

जिससे यहां मनुष्यों को खांसी, श्वास, भगंदर, कुष्ठ आदि तथा अन्य अनेक प्रकार के भयंकर रोग घेरे रहेंगे ।९४३।

होहिइ तिरिएय दुहा, जल थलणभ चारिणो य तिविहेवि ।
नासीहिति रुक्खादी, कूव तड़ागाणदी ओ य ।९४४।
(भविष्यन्ति तिर्यञ्च दुःखिनः, जलथलनभचारिणश्च त्रिविधापि ।
नाशयिष्यन्ति वृक्षादयः कूप-तड़ागानद्यश्च ।)

जल स्थल और आकाश में विचरण करने वाले तीनों प्रकार के प्राणी तथा पशु-पक्षी आदि तिर्यंच बड़े दुःखी हो जायेंगे । वृक्ष, कूए, तालाब और नदियां ये सब नष्ट हो जायेंगे ।९४४।

दससुवि खेत्तेसु एवं, नर नारी हवंति नग्गाइं ।
गोधम्मसमाणाइं, तेसिं मणुयाण सुक्खाइं ।९४५।
(दशस्वपि क्षेत्रेष्वेवं, नरनार्यः भवन्ति नग्नाः ।
गोधर्मसमानानि, तेषां मनुजानां सुखानि ।)

भरत-ऐरवत आदि दशों क्षेत्रों में उस समय नर-नारी नग्न रहते हैं । पशुधर्मा उन मनुष्यों के सुख पशुओं के सुख तुल्य होते हैं ।९४५।

जह किर दार्णि महिला, पुत्ते जंपंति जीव वाससयं ।
वोछिंति (तह) तया महिला, सोलसवासाउयो होह ।९४६।
(यथा किलेदानीं महिलाः, पुत्रान् जल्पन्ति जीव वर्षशतम् ।
वक्ष्यन्ति (तथा) तदा महिलाः, षोडशेवर्षायुषो भव ।)

आज के समय में जिस प्रकार महिलाएं अपने पुत्र को आशीर्वाद के रूप में कहती हैं— "सौ बरसों तक जीवो" उस प्रकार उस काल की माताएँ अपने पुत्रों को आशीर्वाद देती हुई कहेंगी—"सोलह वर्षों तक जीते रहो ।९४६।

सोलस वासामणुए, तया मया नत्तुयपण मुहे दीच्छिति ।
ऊणग छव्वरिसाउ, तया पयाहिंति महिलाओ ।

(षोडशवर्षीयाः मनुष्या, तदा मृता नप्तृपंचमुखानि द्रक्ष्यन्ति ।
ऊन षड्वर्ष्यास्तु तदा प्रजायिष्यन्ति महिलाः ।)

सोलह वर्ष की उस समय को पूर्ण आयु भोग कर मरते समय उस समय अपने पांच दोहित्रों के मुख देख लेंगे । छह वर्ष से कुछ कम अवस्था में ही महिलाएं पुत्र पुत्रियों को जन्म देंगी ।९४७।

छव्वरिसी गब्भधरी, होही नारीओ दुक्ख बीभच्छा ।
दच्छिति पुत्तनत्तु यदस, सोलसवासिया थेरा ।९४८।
(षड्वर्षीयाः गर्भधराः, भविष्यन्ति नार्यः दुःखबीभत्साः ।
द्रक्ष्यन्ति पुत्रनप्तृंश्च दश, षोडशवर्षीयाः स्थविराः ।)

छह वर्ष की अवस्था में ही गर्भ धारण कर लेने वाली नारियां जब सोलह वर्ष की उम्र में स्थविरा (पूर्ण वृद्धा) होंगी तब वे दश पौत्र-दोहित्रों को देख लेंगी ।९४८।

सोलसवासा महिला, पण सुए नत्तु ए य दच्छिति ।
एगंत दूसमाए, पुत्तपउत्तेहिं परिकिण्णा ।९४९।
(षोडशवर्षीयाः महिलाः, पञ्च सुतान् नप्तृंश्च द्रक्ष्यन्ति ।
एकान्त दुःषमायां पुत्रपौत्रैः परिकीर्णाः ।)

दुष्षमादुष्षम नामक आरक में १६ वर्ष की महिला पांच पौत्र और पांच दोहित्रों को देखेंगी और वे पुत्र-पौत्रों से घिरी रहेंगी ।९४९।

भसुंडिय रूवगुणा, सव्वे तवनियम सोय परिहीणा ।
उक्कोस रयणिमित्ता, मेत्तीरहिया य होहिंति ।९५०।
(भसुंडित रूपगुणाः, सर्वे तपनियशौच्य परिहीनाः ।
उत्कृष्ट (तः) रत्निमिताः, मैत्रीरहिताश्च भविष्यन्ति ।)

ग्राम शूकर तुल्य रूप और गुण वाले उस समय के वे सभी नर-नारी तप, नियम और शौच से रहित मैत्री भाव से परिहीन और एक मुण्ड हाथ की लम्बाई के शरीर वाले होंगे ।९५०।

होहीति सममणूण य, वैयड्ढ महानदीओ मोत्तूण ।
मोत्तूण उसभकूडे, वे (चे) इयकूडे य सेसंतु ।९५१।
(भविष्यति समं अन्यूनं च, वैताढ्यं महानदीः मुक्त्वा ।
मुक्त्वा ऋषभकूटं, चैत्य कूटं च शेषं तु ।)

उस समय में इन दश क्षेत्रों की धरती वैताढ्य पर्वत, महानदियों (गंगा-सिन्धु), ऋषभकूट और चैत्यकूट को छोड़ कर सर्वत्र समान रूप से पूर्णतः समतल हो जायेगी ।९५१।

इंगाल मुम्मुरसमा, च्छार भूया भविस्सइ धरणी ।
तत्तकविल्लग भूता, तत्तायस जोइ भूया य ।९५२।
(अंगार मुर्मुर समा, क्षारभूता भविष्यति धरणी ।
तप्त कवेलकभूताः, तप्तायःज्योति-भूता च ।)

यह धरती अग्नि स्फुलिंगों के समान, प्रतप्त कवेलक (केलु) तथा तपाये हुए लोहे की ज्योति के समान एवं क्षारभूत हो जायेगी ।९५२।

धूली रेणू बहुला, घण चिक्कण कद्दमाउलाधरणी ।
चंकमणे य असहा, सव्वेसिं मणुयजातीणं ।९५३।
(धूली रेणु बहुला, घनचिक्कन कर्दमाकुला धरणिः ।
चङ्क्रमणे च असह्या, सर्वाषां मनुष्यजातीनाम् ।)

उस समय धरती अत्यधिक धूलि और रेणुमयी, घने चिकने कीचड़ से भरी रहेगी । उस पर मानवमात्र के लिये चलना असह्य अर्थात् अत्यन्त कठिन होगा ।९५३।

मणुया खरफरुसनहा, उब्भडघड-मुहाविगडनाभा ।
वण्णादीहि गुणेहि य सुनिट्ठुरतरा भवे सव्वे ।९५४।
(मनुष्याः खरपरुषनखा उद्भटघटमुखा विकटनाभयः ।
वर्णादिभिर्गुणैश्च सुनिष्ठुरतराः भवेयुः सर्वे ।)

उस समय के मनुष्य बड़े तीक्ष्ण एवं कठोर नखों वाले, अनघड़ घड़े के समान मुख तथा बोलने में अति विकट अटपटे नामों वाले होंगे वे सब के सब वर्ण आदि सब गुणों से अति कर्कश और निष्ठुरातिनिष्ठुर स्वभाव वाले होंगे ।९५४।

रयणी पमाणमेत्ता, उक्कोसेणं तू बीस सोलाउ ।
बहुपुत्त न त्तु सहिया, निल्लज्जा विणय परिहीणा ।
(रत्निप्रमाणमात्रा, उत्कृष्टतस्तु विंशतिः षोडशायुष्काः ।९५५।
बहुपुत्र नप्तृसहिता, निर्लज्जाः विनय परिहीनाः ।)

उन मनुष्यों के शरीर की ऊंचाई एक मुण्ड हाथ की, उनकी उत्कृष्ट आयु २० अथवा १६ वर्ष की होगी। वे बहुत से पुत्रों पौत्रों और दोहित्रों के परिवार वाले, नितान्त निर्लज्ज एव अविनीत होंगे ।९५५।

नट्ठगिहा मक्कर, भोइणो, सूरपक्कमंसासी ।
अणु गंगा सिंधु, पव्वय बिलवासी क्रूरकम्माय ।९५६।
(नष्ट गृहा मकर भोजिनः, सूर्यपक्व मांसाशिनः ।
अनु गंगा सिंधु,-पर्वतबिलवासिनः क्रूर कर्माणश्च ।)

वे गृहविहीन नरनारी मत्स्य मकरभोजी सूर्य की गरमी से पके मांस को खाने वाले गंगा एवं सिन्धु नदियों के तटों के पास की वैताढ्य पर्वत की गुफाओं में रहने वाले और बड़े ही क्रूरकर्मा होंगे ।९५६।

होहिति य बिलवासी, बावत्तरि ते बिलाउ वेयड्ढे ।
उभतो तडे णदीणं, नव नव एक्केक्ए कूले ।९५७।
(भविष्यन्ति च बिलवासिनः, द्वासप्तति ते बिलास्तु वैताढ्ये ।
उभयतो तटे नदीनां, नव नव एकैकके कूले ।)

वे लोग बिलवासी (गुहावसो) होंगे। वे बहत्तर (७२) बिल वैताढ्य पर्वत में नदियों के दोनों तटों पर होंगे। प्रत्येक तट पर नौ-नौ बिल होंगे ।९५७।

सेसं तु बीयगेत्तं, हो हो सव्वेसु जीव जातीसु ।
कुणिमाहारा सव्वे, नीसाए संझ कालस्स ९५८।
(शेषं तु बीजमात्रं, भविष्यति सर्वेषु जीव जातीषु
कुणिमाहाराः सर्वे, निशायाः संधिकालयोः ।)

उस समय सब जीवों की जातियों का बीजमात्र अवशिष्ट रहेगा। वे सब प्राणी रात्रि के दोनों संध्याकाल में मत्स्य-मकरादि के मांस का आहार करेंगे ।९५८।

रह पह मेत्तं तु जलं, हो ही बहु मच्छ कच्छ वाइण्णं ।
तम्मि समए नदीणं, गंगादीणं दसण्हं वि ।९५९।
(रथपथमात्रं तु जलं, भविष्यति बहुमत्स्यकच्छपाकीर्णम् ।
तस्मिन् समये नदीनां, गंगादीनां दशानामपि ।)

उस समय दशों क्षेत्रों की गंगा आदि नदियों में रथ-पथ के बराबर भाग में जल होगा, जो मछलियों, कछुओं आदि से संकुल रहेगा ।९५९।

अह मायसूर भीरू, निसाचरा बिल गया य दिवसम्मि ।
गंगा सिन्धु नदीणं, काहिंति ततो थले मच्छा ।९६०।
(अथ मायाशूराः भीरवः, निशाचराः बिलगताश्च दिवसे ।
गंगा सिन्धु नद्योः, करिष्यन्ति ततः स्थले गत्स्यान् ।

वे कपट-शूर, डरपोक, निशाचर मनुष्य दिन भर बिलों में दबे पड़े रहेंगे। वे दिन और रात के दोनों संधियों की वेला में बिलों से निकल कर मत्स्यों और कछुओं आदि जलजन्तुओं को गंगा-सिन्धु नदियों के तटों पर धूलि में दबा देंगे ।९६०।

गंगा सिन्धू य नदी, वेयड्ढ गिरि य भरह वासम्मि ।
एयाइं नवरि तिन्निवि, होहिंति न होहिति सेसाइं ।९६१।
(गंगा सिन्धु च नद्यौ, वैताढ्य गिरिश्च भरतवर्षे ।
एतानि नवरं त्रीण्यपि, भविष्यन्ति, न भविष्यन्ति शेषाणि ।)

भरत क्षेत्र में गंगा एवं सिन्धु नदियां और वैताढय पर्वत, केवल ये तीन ही बचे रहेंगे. शेष कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहेगा ।९६१।

इगवीस [वास] सहस्साइं, भणिया अति दूसमा उवीरेणं ।
रायगिहे गुण सिलए, गोयममादीण सिस्साणं ।९६२।
(एकविंशति (वर्ष) सहस्राणि, भणिता अति दुःषमाः तु वीरेण ।
राजगृहे गुणशीलके, गौतमादीनां शिष्याणाम् ।)

राजगृह नगर के गुणशील चैत्य में भगवान् महावीर ने गौतम आदि गणधरों को दुष्षम-दुष्षम नामक आरक की स्थिति २१००० (इकवीस हजार) वर्ष बताई है ।९६२।

ओसप्पिणी उ एसा, कोडा कोडी उ होइ दस चेव ।
अवरोह अरगाण नियय, अरगा छच्चेव विक्खाया ।९६३।
(अवसर्पिणीतु एषा कोट्याकोट्यस्तु भवन्ति दश चैव ।
अवरोहो आरकाणां नियतः, आरकाः षड् चैव विख्याताः ।)

यह अवसर्पिणी काल दश कोट्या कोटि सागर प्रमाण स्थिति वाला होता है । इसमें छह आरक विख्यात हैं । उन छहों आरकों का अवरोह (क्रमशः होयमान उतार) अर्थात् अपसर्पण नियत है ।९६३।

एत्तो परं तु वोच्छं, उस्सप्पिणीए किंचि उद्देसं ।
इगवीस सहस्साणं, अई दूसम होइ वासाणं ।९६४।
(इतः परं तु वक्ष्ये, उत्सर्पिण्याः किंचिदुद्देशम् ।
एक विंशतिः सहस्राणां, अति दुःषमः भवति वर्षाणाम् ।)

अब मैं उत्सर्पिणी काल के सम्बन्ध में थोड़ा कथन करूँगा । इसका दुष्षम दुष्षम नामक प्रथम आरक २१००० (इकवीस हजार) वर्ष का होता है ।९६४।

दससु वि वासेसेसा, काहिति दुक्खाइं मणुय तिरियाणं ।
होही सुस्सिरा भूमी, मुम्मुर इंगाल समतावा ।९६५।

(दशस्वपि वर्षेष्वेषा, करिष्यति दुःखानि मनुष्यतिर्यञ्चानाम् ।
भविष्यति सुस्सिरा [?] भूमिः मुर्मुर अंगारसमतापा ।)

यह दुष्षम-दुष्षमा ढाई द्वीप के ५ भरत और ५ ऐरवत, इन दशों क्षेत्रों में मनुष्यों और तिर्यञ्चों के लिये दारुण दुःखपूर्णा होगी। इस काल में भूमि अंगारों की चिन्गारियों के समान ताप वाली धुक-धुकायमान होगी ।९६५।

सीउण्हं बिलवासी, गमेति कह कहवि दुक्खसंतत्ता ।
वसण विहूणा मणुया, इत्थीओ विगयबलाओ ९६६।
(शीतोष्णं बिलवासिनः, गमयन्ति कथं कथमपि दुःख संतप्ताः ।
वसनविहीनाः मनुजाः स्त्रियः विगतबलाः ।)

ठिठुरा देने वाले शीत और झुलसाकर पिघला देने वाले आतप को दुःख से संतप्त बिलवासी येन केन प्रकारेण सहते अवश हो सहते हुए समय को व्यतीत करेंगे। वे बिलवासी वस्त्र विहीन-नग्न रहेंगे। स्त्रियां बड़ी निर्बल होंगी ।९६६।

कुणिमाहारा सव्वे, निसायरा विगलिए रत्ति दिवसंमि ।
गंगा दीहर मोत्ता, काहिंति ततो थले मीना ।९६७।
(कुणिमाहाराः सर्वे, निशाचराः विगलितयोः रात्रि दिवसयोः ।
गंगा द्रहान् मुक्त्वा, करिष्यन्ति ततः स्थले मीनान् ।)

वे सब कुत्सित आहार अर्थात् मत्स्यादि जलचरों के मांस को खाने वाले होंगे। दिन तथा रात का अवसान होने पर वे लोग बिलों से निकल मछलियों को नदियों में से पकड़ कर दोनों नदियों के तटों पर रेती में दबा देंगे ।९६७।

मेत्ती रहिया मणुया, विंसति वासाउया दुहत्थ उच्चा पढमं ।
अंताम्मि सोल वासाउ, हत्थुच्चा चेव होहिंति ।९६८।
(मैत्रीरहिता मनुष्याः, विंशति वर्षायुष्याः द्विहस्तोच्चाः प्रथमं ।
अन्ते षोडशवर्षायुष्याः, हस्तोच्चाश्चैव भविष्यन्ति ।)

वे नर-नारी दुष्षम दुष्षमा के प्रारम्भ में बीस वर्ष की आयु और शरीर को दो हाथ ऊँचाई वाले होंगे। इस आरक के अन्त में उनकी आयु १६ वर्ष और शरीर की ऊँचाई एक मुण्ड हाथ होगी।१६८।

जिय पक्खिवग्ग सीह, चउपया पंच इंदिया जे य
गय गो महिस खरोट्ठ पसूय विविहा य पाणिगणो।९६९।
(यावन्तः पक्षिवर्ग सिंहचतुष्पदाः पंचेन्द्रियाः ये च।
गज गो महिष खरोष्ट्रपशवश्च विविधश्च प्राणिगणः।)

जितने पक्षिवर्ग के सभी जाति के पक्षी, सिंह, हाथी, गौ, महिष, गधे, ऊंट आदि पंचेन्द्रिय चतुष्पद पशुवर्ग और अन्य विविध प्राणिवर्ग हैं, वे सब--।१६९।

आगमियाए उस्सप्पिणीए, होहिंति बीय मेत्ताइं।
बावत्तरि जुयलाइं, नराणतत्तोय सवण्णाउ।९७०।
(आगामिन्यां उत्सर्पिण्यां, भविष्यन्ति बीजमात्राणि।
द्वासप्ततिः युगलानि, नराणां ततश्च सवर्णानि।)

आगामी उत्सर्पिणी काल (के प्रथम आरक) में बीज मात्र होंगे। उस समय में मानव वर्ग के बहत्तर (७२) सवर्ण अर्थात् सहोदर नर-नारी-युगल होंगे।१७०।

होहिंति बिलावासी, बावत्तरि ते बिलाउ वेयड्ढे।
उभतो तडे नईणं, नव नव एक्के क्कए कूले ९७१।
(भविष्यन्ति बिला आवासिनः, द्वासप्ततिः ते बिलास्तु वैताढ्ये।
उभयतोः तटयोः नदीनां, नव नव एक्कैकके कूले।)

वैताढ्य पर्वत में वे ७२ बिल होंगे। नदियों के दोनों तटों पर, प्रत्येक तट पर नौ, नौ बिलों के हिसाब से होंगे।१७१।

सेसं तु बीजमेत्तं, होहिं सव्वेसिं-जीवजातीणं।
कुणिमाहारा सव्वे, निसाए संज्झ कालस्स।९७२।

(शेषं तु बीजमात्रं, भविष्यति सर्वाणां जीवजातीनाम् ।
कुणिमाहाराः सर्वे, निश्रयां संध्या कालस्य ।)

सभी जीव जातियों का बीज मात्र शेष रहेगा। वे सब रात्रि के दोनों संधिकालों में निकृष्ट आहार करने वाले होंगे ।६७२।

रहपहमेत्तं तु जलं, होही बहुमच्छकच्छभाइण्णं ।
तम्मि समए नदीणं, गंगादीणं दसण्हं पि ।६७३।
(रथपथमात्रं तु जलं, भविष्यति बहुमत्स्यकच्छपाकीर्णम् ।
तस्मिन् समये नदीनां, गंगादीनां दशानामपि ।)

उस समय दश गंगा और दश सिन्धु नदियों में रथ के मार्ग तुल्य प्रवाह में मछलियों और कछुओं से भरा पानी होगा ।६७३।

विसग्गिखार-पांणि य, वरिसहि मेघा य घोर वरिसा य ।
एक्केक्क सत्तराइं, होहिंति भरहेरवत्तंमि ६७४।
(विषाग्नि क्षार पानीयं, वर्षिष्यन्ति मेघाश्च घोर वर्षाश्च ।
एकैक सप्त रात्राणि, भविष्यन्ति भरतैरव योः ।)

उस समय भरत क्षेत्र में बादल सात-सात रात दिन तक क्रमशः विष, अग्नि और क्षार मिश्रित जल की घोर वर्षा करेंगे ।६७४।

चुण्णिय सेलं भिण्णसलिलं, गंभीर विसम भूमितलं ।
उदही जहा समतलं होही भरहं निरभिरामं ६७५।
(चूर्णित शैलं भिन्नसलिलं, गम्भीर विसम-भूमितलम् ।
उदधिः यथा [वत्] समतलं, भविष्यति भरतं निरभिरामम्)

सात-सात अहोरात्रों की उन तीन घोर वृष्टियों के जल प्रवाह से पर्वत विचूर्णित और विषम स्थल पूर्णतः समतल हो जायेंगे। इस प्रकार समस्त भरत क्षेत्र समुद्र के समान समतल हो जायगा ।६७५।

उस्सप्पिणीए तीसे, वितिकंताए चरमसमयम्मि ।
तो आगमेसियाए, ओसप्पिणी ए तहव्वुवठवणा ६७६।

(उत्सर्पिण्यां तस्यां, व्यतिक्रान्तायां चरम समये ।
ततो आगामिन्यां, अवसर्पिण्यां तथैवोपस्थापना ।)

उस उत्सर्पिणी काल के प्रारम्भ से अन्त तक जो स्थिति होगी, वही सब स्थिति उसके पश्चात् आने वाले अवसर्पिणी काल में भी व्यतिक्रम अर्थात् उल्टे क्रम से होगी, इस प्रकार की उपस्थापना कर लेनी चाहिए ।६७६।

ओसप्पिणी इमाए, जो होही [एगंत] दुस्समाए अणुभावो ।
सो चेव अणुभावो, उस्सप्पिणीए ठवण गम्मि ६७७।
(अवसर्पिण्यामस्यां, यो भविष्यति [ए न्त] दुःषमायां अनुभावः ।
स चैव अनुभावः, उत्सर्पिण्याः स्थापनके)

इस अवसर्पिणी काल के एकान्त दुष्षम अर्थात् दुष्षमदुष्षमा नामक आरक में जिस जिस प्रकार के अनुभाव (स्थिति अथवा घटना चक्र) होंगे वे ही अनुभाव आगामी उत्सर्पिणी काल की स्थापना के समय अर्थात् प्रारम्भ काल में होंगे ।६७७।

[स्पष्टीकरण--इस गाथा के द्वितीय चरण में प्रयुक्त—'दुस्समाए' शब्द के स्थान पर 'एगंत दुस्समाए' होना चाहिए। संभवतः 'तित्थोगाली पइन्नाकार ने एकांत दुष्षम के अर्थ में ही 'दुस्समाए' शब्द का प्रयोग किया होगा। अन्यथा शास्त्रीय मान्यता ही नहीं अपितु प्रस्तुत ग्रंथ में उल्लिखित मान्यता से भी यह गाथा विपरीत हो जाती है।]

सी उण्ह पगलिएहिं, वित्ती तेसिं तु होइ मच्छेहिं ।
इगवीस सहस्साइं, वासाणं णिरवसेसा उ ।६७८।
(शीतोष्ण प्रगलितैः, वृत्ति-तेषां तु भवति मत्स्यैः ।
एकविंशतिः सहस्राणि, वर्षाणां निरवशेषास्तु ।)

तीव्र शीत और गर्मी से गले मत्स्यों के मांस से उन बिलवासी (गुहावासी) मनुष्यों की पूरे इकवीस हजार वर्षों तक उदर पूर्ति होती रहेगी ।६७८।

सीउण्ह पगलिएहिं, वित्ती तेसिं तु होई मच्छेहिं ।
बायालीस सहस्सा, वासाणं निरवसेसाउ ।९७९।
(शीतोष्ण प्रगलितैः, वृत्तिस्तेषां तु भवति मत्स्यैः ।
द्वाचत्वारिंशत् सहस्राः, वर्षाणां निरवशेषास्तु ।)

इस प्रकार अवसर्पिणी काल के अन्तिम इकवीस हजार वर्ष के दुष्षमदुष्षमा नामक षष्ठम आरक और उत्सर्पिणी काल के उतनी ही स्थिति वाले दुष्षमदुष्षमा नामक प्रथम आरक में कुल मिला कर पूरे ४२००० (बयालीस हजार) वर्षों तक बिलवासी मनुष्यों की वृत्ति (आजीविका-अथवा उदरपूर्ति) शीत तथा उष्णता से गले मत्स्यों के मांस से चलती रहेगी ।९७९।

ओसप्पिणीए अद्धं, [तह] अद्धं उस्सप्पिणीए तं होई ।
एयम्मि गए काले, होइंति पंच मेहा उ ९८०।
(अवसर्पिण्यां अर्द्धं, [तथा] अर्द्धं उत्सर्पिण्यां तद् भवति ।
एतस्मिन् गते काले, भवन्ति पंच मेघास्तु ।)

उन बयालीस हजार वर्षों का आधा काल अर्थात् २१ हजार वर्ष का काल अवसर्पिणी में और शेष २१ हजार वर्ष का आधा काल उत्सर्पिणी में होगा। इस ४२,००० वर्ष के दो दुष्षमादुष्षम आरकों के काल के व्यतीत हो जाने के पश्चात् आकाश में क्रमशः निम्नलिखित पांच प्रकार के मेघ प्रकट होंगे ।९८०।

पुक्खल संवट्टोविय, खीरो घयतोय अमयमेहो य ।
पंचमओ रसमेघो, सव्वे वरिसिंहि दससुवि खेत्तेसु ।९८१।
(पुष्करसंवर्तोऽपि च, क्षीरः घृततोय-अमृत मेघश्च ।
पंचमकः रसमेघः, सर्वे वर्षिष्यन्ति दशस्वपि क्षेत्रेषु ।)

पुष्कर संवर्त मेघ, क्षीरमेघ घृततोय मेघ, अमृत मेघ और पांचवाँ रस मेघ—ये पांचों मेघ उपर्युक्त दशों क्षेत्रों में क्रमशः बरसेंगे ।९८१।

एक्केक्को अणुबद्धं, वासीहिति सत्त सत्त दिवसाइं ।
पंचत्तीसं दिवसे, बद्दलिया होहिंति सोमा [उ] ९८२।
(एकैकोऽनुबद्धः, वर्षिष्यति सप्त सप्त दिवसानि ।
पञ्चत्रिंशद्दिवसे, बलाहकाः भविष्यन्ति सोमाः ।)

इन पांचों में से अनुक्रमशः प्रत्येक मेघ एक के पश्चात् एक निरन्तर सात सात दिन तक वर्षा करेंगे। पैंतीसवें दिन में बादल सौम्य होंगे।९८२।

पढमो उण्हां निवत्तेहिति, धन्नं बीओकरेहि मेहोय ।
तइयो नेहं [सणेहं] जणयिहि, ओसहि आइं चउत्थो य ।९८३
(प्रथम उष्णतां निवर्तयिष्यति, धान्यं द्वितीयः करिष्यति मेघश्च ।
तृतीयः स्नेहः जनयिष्यति, औषधिकानि चतुर्थश्च ।)

प्रथम पुष्कर संवर्त मेघ पृथ्वी के ताप का हरण करेगा। दूसरा और मेघ धान्य उत्पन्न करेगा। तीसरा घृततोय मेघ पृथ्वी में स्नेह अर्थात् चिकनाहट और चौथा अमृत मेघ औषधियां उत्पन्न करेगा।९८३।

पंचमओ रसमेहा, ते सिंचिहि पुढवि-रुक्ख-आदीण ।
एवं कमेणजाया, वण्णाइ गुणेहिं उवोवेया ९८४।
(पंचमकः रसमेघाः, तेषां चेह पृथ्वीवृक्षादीनां ।
एवं क्रमेण जाता, वर्णादिगुणैः उपपेताः ।)

पांचवें रसमेघ पृथ्वी, वृक्ष लता, गुल्मादि को सिंचित करेंगे। इस प्रकार पृथ्वी वर्ण, गन्ध रूप रसादि से युक्त एवं क्रमशः समृद्ध होगी।९८४।

उस्सप्पिणी [परम]-दुस्समाए, पत्ताइं चरम रातीए ।
वासिहिति सव्वराई, महत्तरनिरंतरं वासं ।९८५।
(उत्सर्पिण्याः परम दुष्षम दुष्षमायां प्राप्तायां चरम रात्रौ ।
वर्षिष्यति सर्वरात्रं, महत्तर निरन्तरं वर्षम् ।)

उत्सर्पिणी काल के दुष्षमदुष्षमा नामक प्रथम आरक की अन्तिम रात्रि के आते ही रात भर निरन्तर अति घोर वृष्टि होगी ।६८५।

तेण हरिया य रुक्खा, तणगुम्मलया वणप्फतीउ ।
अभियस्स किरणजोणी, पंचतीसं अहोरत्ता ।९८६।
(तेन हरिताश्च वृक्षाः, तृण गुल्मलतावनस्पतयः ।
अमृतस्य किरणयोनि [?], पंचत्रिंशत् अहो रात्रा ।)

उस वर्षा के फलस्वरूप अमृतरस के उद्गम स्रोत हरे भरे वृक्ष, तृण, गुल्म, लता आदि वनस्पति वर्ग उत्पन्न हुए। पैंतीस अहोरात्र पर्यन्त—।३५६।

धारावलि धवलाहि य, अहते धाराइ आहया संता ।
आसत्था मणुयगणा, चिंतेउं ते अह पवत्ता ।९८७।
(धारावलि धवलाहि च, अथ ते धारया आहता सन्तः ।
आश्वस्ताः मनुजगणाः, चिन्तयितुं ते अथ प्रवृत्ताः ।)

मेघों से जल की धवल धारावली निरन्तर बरसती रही। तदनन्तर जलधाराओं से आहत एवं आश्वस्त हुए वे बिलवासी लोग चिन्तन करने लगे--।६८७।

अच्छेरयं महल्लं, अज्जतो पडइ सीयलं उदयं ।
किं दाइं इण्हि काही ? अण्णं एत्तो य परमतरं ।९८८।
(आश्चर्यं महत् अद्यतः पतति शीतलं उदकम् ।
किमिदानीं एभिः करिष्ये, अन्यं एतेभ्यश्च परमतरम् ।)

अहो ! महान् आश्चर्य ! आज तो शीतल जल बरस रहा है। अब इन मत्स्यादि के मांस से क्या प्रयोजन, जब कि इससे परम श्रेष्ठ और स्वादिष्ट कन्द, मूल, पुष्प, फल, धान्यादि अन्य बहुत सी खाद्य वस्तुएं हमें उपलब्ध हैं ।६८८।

तो ते बिलवासि नरा, पासित्तान्नं महंत सामिद्धिं ।
काहिंति इमं सव्वं, सव्वे वि समागता संता ।९८९।

(ततः ते बिलवासिनः नराः, दृष्ट्वा अन्नं महतीं समृद्धिम् ।
करिष्यन्ति इदं सर्वं, सर्वेऽपि समागताः सन्तः ।)

तदनन्तर वे सभी बिलवासी मानव बिलों से बाहर आ एक स्थान पर एकत्रित हो अन्न और पृथ्वी की उस विशाल समृद्धि को देख कर सर्वसम्मत रूप में इस प्रकार का निर्णय करेंगे-- ६८६।

जातं खु सुह विहारं, कुसुम समिद्धं इह भरहवासं ।
तो जो कुणिमं खाही, अम्हं सो वज्जणिज्जोउ ।९९०।
(जातं खलु सुख विहारं, कुसुम समृद्धमिदं भरतवर्षम् ।
ततः यः कुणिमं खादिष्यति, अस्मामिः स वर्जनीयस्तु ।)

यह भारतवर्ष कुसुम आदि से समृद्ध एवं सुखपूर्वक विचरण करने योग्य बन गया है। अतः भविष्य में यदि कोई व्यक्ति मांस खायगा, तो वह हम लोगों से पृथक् बहिष्कृत कर दिया जायेगा ।६६०।

(नवसुवि वासेसेवं, भणियं वीरेण आयमे संतु ।
रायगिहे गुणसिलए, गोयममादीण सेसाणं ।)
नवस्वपि वर्षेष्वेवं, भणितं वीरेण आगमे एतत्तु ।
राज गृहे गुणशीलके, गौतमादीन् शेषान् ९९१।

'शेष ६ क्षेत्रों में भी सब कुछ इसी प्रकार होगा"—यह भगवान महावीर ने राजगृह नगर के गुणशील उद्यान में अपने गौतम आदि शिष्यों को कहा था ।६६१।

एवं कमेण पुणरवि, दससु वि वासेसु दुस्समा एसा ।
इगवीस सहस्सइं, वासाणं वट्टए जाव ।९९२।
(एवं क्रमेण पुनरपि, दशस्वपि वर्षेषु दुःषमा एषा ।
एकविंशति सहस्राणि, वर्षाणां वर्तते यावत् ।)

इस प्रकार क्रमशः २१,००० वर्ष की स्थिति वाला यह दुःषम नामक आरक दशों क्षेत्रों में पुनः प्रवर्तित होगा ।६६२।

एवं संघयणाइं, बलवीरियाइं तहेव आउं च ।
सद्दरस रूव गंधा, फासा अहियं पवड्ढंति ।९९३।
(एवं संहननानि, बलवीर्यादि तथैव आयुश्च ।
शब्दरसरूपगन्धाः, स्पर्शा अधिकं प्रवर्द्धन्ते ।)

इस प्रकार दसों क्षेत्रों में संहनन, बल, वीर्य, आयु, शब्द, रस, रूप, गन्ध और स्पर्श आदि की उत्तरोत्तर उन्नति एवं अभिवृद्धि होगी ।९९३।

पीति पणओ नेहो, सब्भावो सोहियं च विणओ य ।
लज्जा य पुरिसकारो, ज सोय कित्तीय वड्ढंति ।९९४।
(प्रीतिः प्रणयः स्नेहः सद्भावः शोभिकं च विनयश्च ।
लज्जा च पुरुषकारः यशश्च कीर्तिश्च वर्द्धन्ते ।)

इस प्रकार मनुष्यों में प्रीति प्रणय, स्नेह, शुद्धभाव, विनय, लज्जा पौरुष-पराक्रम, यश और कीर्ति की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होगी ।९९४।

जहजह वट्टइ कालो, तहातहा रूवसील परिबुड्ढी ।
दो रयणीओ मणुया, आरम्भे अंत छच्चेव ।९९५।
(यथा यथा वर्तते कालः, तथा तथा रूपशीलपरिवृद्धिः ।
द्वौ रत्निकाः मनुजाः आरम्भे अन्ते षड् चैव ।)

ज्यों-ज्यों काल व्यतीत होता जायेगा, त्यों-त्यों रूप, शील आदि की वृद्धि होती जायेगी और मनुष्यों के देह की ऊंचाई जो आरम्भ में दो मुण्ड हाथ होगी वह क्रमशः बढ़ते-बढ़ते ६ मुण्ड हाथ हो जायेगी ।९९५।

एवं परिवड्ढमाणे, लोए चंदेव धवल पक्खम्मि ।
तेसिं मणुयाण तया, सहसच्चिय होई मणसुद्धी ।९९६।
(एवं परिवर्तमाने, लोके, चंद्रोव धवल पक्षे ।
तेषां मनुजानां तदा, सहसा चिद् भवति मनःशुद्धिः ।)

इस प्रकार धवल पक्ष के चन्द्रमा की तरह वृद्धि की ओर अग्रसर लोक एवं काल में उस समय के मनुष्यों की सहसा ही मनःशुद्धि होती है ।९९६।

विज्जाण य परिवुड्ढी, पुप्फ फलाणं च ओहीणं च ।
आउय सुह रिद्धीणं, संटाणुच्चत्त धम्माणं ।९९७।
(विद्यानां च परिवृद्धिः, पुष्पफलानां चौषधीनां च ।
आयुश्च सुखऋद्धीणः, संस्थान-उच्चत्व-धर्माणाम् ।)

विद्याओं, पुष्प-फलों, औषधियोंः आयु, सुख, समृद्धि, संस्थान, उत्सेध (ऊंचाई) और धर्म—इन सब की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होगी ।९९७।

दूसमकालो होही, एवं एयं जिणो परिकहेइ ।
दूस्समसुस्सुमकाले, पवड्ढमाणं अतो वेंति ।९९८।
दुःषमकालेः भविष्यति, एवं एतत् जिनः परिकथयति ।
दुःषम सुष्षम कालं प्रवर्द्धमानं अतः ब्रुवन्ति ।)

इस प्रकार का दुष्षम काल होगा—ऐसा जिनेश्वर कहते हैं। दुष्षमसुषम काल को इसी लिये प्रवर्द्धमान काल कहा जाता है ।९९८।

पव्वयनदीण वुड्ढी, वुड्ढी विन्नाण नाण सोक्खाणं ।
छण्ह वि रिऊण वुड्ढी, दससु वि वासेसु बोधव्वा ।९९९।
(पर्वतनदीनां वृद्धिः, वृद्धिर्विज्ञानज्ञानसौख्यानाम् ।
षण्णामपि ऋतूनां वृद्धिः, दशस्वपि वर्षेषु बोद्धव्या)

उत्सर्पिणी काल के उस दुःषम-सुषम आरक में दशों ही क्षेत्रों में पर्वतों तथा नदियों की वृद्धि होगी। विज्ञान, ज्ञान एवं सौख्य की वृद्धि होगी। छहों ऋतुओं के प्रभाव गुण आदि में भी अभिवृद्धि होगी ।९९९।

धण सत्तरसंवण्णं, फलाइं मूलाइं सव्वरुक्खाणं ।
खज्जूर दक्ख दाडिम, फणसा तउसा य वड्ढंति ।१०००।

(धान्यं सप्तदशवर्णं, फलानि मूलानि सर्ववृक्षाणाम् ।
खर्जूर द्राक्षा दाडिम, फणसा, त्रपुषी* च वर्द्धन्ते ।)

सत्रह प्रकार के धान्य, सब प्रकार के वृक्षों के फल एवं मूल खजूर द्राक्षा, दाडिम, फनस एवं कर्कटी आदि की भी वृद्धि होती है ।१००।

विहरंति भरहवासं, नरनारीउ जहिच्छियं रम्मं ।
दससु वि खेत्तेसेवं, चउप्पया पक्खिणो चेव ।१००१।
(विहरन्ति भरतवर्षं, नरनार्यः यथेच्छं रम्यम् ।
दशस्वपि क्षेत्रेष्वेवं, चतुष्पदाः पक्षिणश्चैव ।)

उस समय सुन्दर भरत क्षेत्र में नर-नारीगण यथेच्छ विहार करते हैं। इस प्रकार दसों (नवों) क्षेत्रों में नर-नारीगण, चतुष्पद और पक्षिगण अपनी इच्छानुसार विचरण करते हैं ।१००१।

वासेंति अमय मेहा, चंदाइच्चा य सीय उण्ह सुहा ।
वासा देसा य सोमा, भूमी उदगं च महुराइं ।१००२।
(वर्षन्ति अमृतं मेघाः, चन्द्रादित्याश्च शीतोष्ण सुखाः ।
वर्षाः देशाश्च सोमाः, भूमिरुदकं च मधुरम् ।)

बादल अमृत की वर्षा करेंगे, चन्द्र सुखद शीतलता एवं सूर्य सुहानी ऊष्मा पहुँचायेंगे । वर्ष (आवर्त क्षेत्र) और देश-प्रदेश बड़े ही सौम्य तथा भूमि एवं पानी मधुर आस्वाद वाले होंगे ।१००२।

पुणरवि अ (सु) भिक्खभिक्खं, अमियरसरसोवमं महावासं ।
जेण इहं मणुयाणं, होहिंति न रोगसंघाया ।१००३।
(पुनरपि सुभिक्षभिक्षं, अमृतरसरसोपमं महत् वर्षाम् ।
येनेह मनुजानां, भविष्यन्ति न रोगसंघाताः ।)

---

* कर्कटी इत्यर्थः ।

पुनः यथा समय अमृत के समान सरस जल की अच्छी वर्षाएं होंगी जिससे कि मानव वर्ग में किसी प्रकार के रोग संघात उत्पन्न नहीं होंगे।१००३।

अह दुसमाए तीसे, सत्तण्हं कुलगराण उप्पत्ती ।
कायव्वा आणुपुव्वी, जह परिवाडीए सव्वेसिं ।१००४।
(अथ दुःषमायां तस्यां सप्तानां कुलकराणां उत्पत्तिः ।
कर्त्तव्या आनुपूर्वीः, यथा परिपाट्या सर्वेणाम् ।)

उत्सर्पिणी काल के उस दुःषम नामक द्वितीय आरक में सात कुलकर उत्पन्न होंगे। उन सब का परिपाटी के अनुसार आनुपूर्वी कर लेनी चाहिए।१००४।

पढमेत्थ विमलवाहण, सुदाम संगम सुपास नामे य ।
दत्तो सुनहे तसु मं, इय सत्तेव निद्दिट्ठा ।१००५।
(प्रथमोऽत्र विमलवाहनः, सुदाम संगम सुपार्श्व नामा च ।
दत्तः सुनखः तसुमं, इति सप्तैव निर्दिष्टाः ।)

प्रथम कुलकर का नाव विमलवाहन, द्वितीय सुदाम, तीसरे संगम, चौथे सुपार्श्व नामक, पांचवें दत्त, छट्ठे सुनख और सातवे तसुमं होगा। इस प्रकार ये सात कुलकर बताये गये हैं।१००५।

उस्सप्पिणी इमीसे, बिनियाए समाए य गंग सिंधूणं ।
एत्थ बहुमज्झ देसे, उप्पण्णा कुलगरा सत्त ।१००६।
उत्सर्पिण्याः इमायाः, द्वितीयायां समायां च गंगासिन्ध्वोः ।
अत्र बहुमध्य देशे, उत्पन्ना कुलकराः सप्तः ।)

उस आगामी उत्सर्पिणी की दूसरी समा अर्थात् द्वितीय आरक में गंगा और सिन्धु के मध्यवर्ती प्रदेश में सात कुलकर उत्पन्न होंगे ।१००६।

[स्पष्टीकरणः--समवायांग सूत्र में आगामी उत्सर्पिणीकाल के द्वितीय आरक में भरत क्षेत्र के भावी सात कुलकरों के नाम इस प्रकार उल्लिखित हैं:—

"जंबूद्दीवेणं दीवे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए भारहे वासे सत्त कुलगरा भविसंति, तं जहाः--

मियवाहणे सुभूमे य, सुप्पभे य सयंपभे।
दत्ते सुहुमे सुबंधू या आगमिस्साण होक्खति ॥"]

एरावयम्मि सत्तेव, कुलगरा विमलवाहणो पढमो।
बीउ हु विउलवाहण, नय समग्ग विसारदो धीरो।१००७।
(एरावते सप्तैव, कुलकरा, विमलवाहन प्रथमः।
पीउहु विपुलवाहन नय समग्र विषादरः धीरः।)

ऐरवत क्षेत्र में भी उस समय क्रमशः सात कुलकर उत्पन्न होंगे जिनमें विमलवाहन प्रथम समस्त नयों का विशारद धीर कुलकर विपुलवाहन द्वितीयः--।१००७।

दढधणु दसधणुगो विय तत्तोसय धणु पडि सुई चेव।
संमुत्ती सत्तम गो विय, गामनगर पट्टणा इगरा।१००८।
(दशधनुः दशधानुष्कोऽपिच, ततः शतधनुः प्रतिषेधी चैव।
संमुत्ती सप्तमकोऽपिच ग्रामनगरपत्तनादिकराः।)

तीसरा दृढ़धनु, चौथा दशधनुक, पांचवां शतधनु, छठ्ठा प्रतिश्रुति और सातवां संमुत्ती। ये ग्राम-नगर-पत्तन आदि का निर्माण कराने वाले होंगे।१००८।

[समवायांग और स्थानांग में उल्लेख है कि आगामी उत्सर्पिणी में ऐरवत क्षेत्र में १० कुलकर होंगे।]

उस्सप्पिणी इमीसे, बीति समाए य उत्तरंतीए।
तत्थ बहुमज्झ देसे, उप्पण्णा कुलगरा सत्त।१००९।
(उत्सर्पिण्या इमायाः, द्वितीयायां समायां च उत्तरन्त्याम्।
तत्र बहुमध्यदेशे, उत्पन्ना कुलकरा सप्तः।)

उत्सर्पिणी की दूसरी दुःषमा नाम की समा के ढलते समय में भरत क्षेत्र के गहरे मध्य भाग में सात कुलकर उत्पन्न होंगे।१००९।

चउ सु वि एरवए सु, एवं चउसुवि य भरहवासे सु ।
एक्केक्कम्मि उ, होहिंति कुलगरा सत्त ।१०१०।
(चतसृष्वपि ऐरवतेषु, एवं चतुष्वपि च भरतवर्षेषु ।
एकैकके तु, भविष्यन्ति कुलकराः सप्तः ।)

इसी प्रकार शेष चारों ही ऐरवत क्षेत्रों तथा चारों भरत क्षेत्रों में, प्रत्येक में सात-सात कुलकर होंगे ।१०१०।

गाम नगरागराणं, गोउल संबाह संनिवेसाणं ।
कुलनीति रायनीतीण, कारगा कुलगरा तइया ।१०११।
(ग्रामनगराकराणं, गोकुल संवाह सन्निवेषाणाम् ।
कुल नीतिः राजनीत्योः, कारका कुलकराः तदा ।)

उस समय के वे कुलकर ग्राम, नगर, आकर, गोकुल, संवाह एवं सन्निवेशों तथा कुल नीति एवं राजनीति के निर्माता होंगे ।१०११।

आसा हत्थी गावो, गहियाइं रज्ज संगह निमित्तं ।
ववहारो लेहवणं, होही सामाइ एसिं तु ।१०१२।
(अश्वाः हस्तिनः गावः गृहीतानि राज्यसंग्रहनिमित्तम् ।
व्यवहारः लेखापनं, भविष्यति सामादि एषां तु ।)

उन कुलकरों द्वारा घोड़ों, हाथियों, गायों आदि को राज्य संग्रह के लिये पकड़ा जायेगा। व्यवहार अर्थात् आदान-प्रदान, लेखन और साम आदि दण्ड नीतियों का भी इन्हीं के समय में प्रचलन होगा ।१०१२।

उग्गा भोगा राइण्ण, खंत्तिया संगहो भवे च उहा ।
उप्पण्णे अगणिंमिय, रंधणमातीणी काहिंति ।१०१३।
(उग्राः भोगा (जाः) राजन्याः, क्षत्रियाः संग्रहः भवेत् चतुर्धा ।
उत्पन्ने अग्नौ च, रन्धनादीनि करिष्यन्ति ।)

उग्र, भोग राजन्य और क्षत्रिय---यह चार प्रकार का संग्रह भी राज्य चलाने के लिये किया जायेगा। अग्नि के उत्पन्न होने पर लोग रंधन--पाकादि भी इन कुलकरों के समय में करेंगे।१०१३।

जह जह वट्टति कालो, तह तह वड्ढंति रूव सो भग्गा।
जस कित्ती सील लज्जा, नरनारी गणाण रिदी ओ।१०१४।
(यथा यथा वर्तते कालः, तथा तथा वर्द्धन्ते रूप सौभाग्याः।
यशः कीर्ति-शील-लज्जा, नरनारिगणानां ऋद्धयःतु।)

ज्यों-ज्यों काल व्यतीत होता जायेगा, त्यों-त्यों नरनारीगण के रूप, सौभाग्य, यश, कीर्ति, शील, लज्जा और ऋद्धियों की अभिवृद्धि होती जायेगी।१०१४।

हल करिसण कम्मत्ता, सुवण्णमणिरयण कंस दूसावि।
भोउण गंध विहीउ, वड्ढेंति नरगणाण चिरं।१०१५।
(हलकर्षणकर्मता (कर्मकारिता), स्वर्ण मणिरत्न कांस्य दूष्यान्यपि।
भोजनगन्ध विधयः, वर्द्धन्ते नरगणानां चिरम्।)

उस समय के लोगों के हल, कृषि कार्य, कर्मकारिता, स्वर्ण, मणि, रत्न, कांसी, वस्त्र, भोजन, गन्ध विधि आदि की भी उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होगी।१०१५।

दुद्धदहीणवणीयं, घयं च तेल्लं च होहिती रम्मं।
महुमज्ज भोइ(य)णाइं, वड्ढंती नरगणाण चिरं।१०१६।
(दुग्धदधिनवनीतं, घृतं च तेलं च भविष्यति रम्यम्।
मधु-मद्य भोजनादिनि, वर्द्धन्ते नरगणानां चिरम्।)

दूध, दही, मक्खन, घृत और तैल आदि सुस्वादु होंगे। उस समय के लोगों के पास मधु, मद्य एवं भोज्य पदार्थों की भी अभिवृद्धि होगी।१०१६।

पढमो उ कुल गराणं, नामेणं विमलवाहणोतइया।
जातीसरो उ राया, काही कुल रायधम्मो उ।१०१७।

पढमस्तु कुलकराणां, नाम्ना विमलवाहनस्तदा ।
जातिस्मरस्तु राजा, करिष्यति कुलराजधर्मान् तु ।)

उस समय का विमलवाहन नाम का प्रथम कुलकर जाति-स्मर ज्ञान का धारक और राजा होगा। वह कुल धर्म और राज धर्म की संस्थापना करेगा ।१०१७।

एवं सव्वे काहिंति, सुम्मनी* कुलगरो उ सत्तमतो ।
वेयड्ढगिरि समीवे, पुंडम्मि य जणवदे रम्मे ।१०१८।
(एवं सर्वे करिष्यन्ति, सुमतिः कुलकरस्तु सप्तमकः ।
वैताढ्यगिरेः समीपे, पुण्ड्रे च जनपदे रम्ये ।)

इसी प्रकार विमलवाहन के पश्चाद्वर्ती कुलकर भी राज्य का संचालन करने के साथ-साथ कुलनीति का संचालन करेंगे। सुम्मती नामका सातवां कुलकर वैताढ्य गिरि के पास पुण्ड्र नामक सुरम्य जनपद में- ।१०१८।

नगरम्मि सयद्दुवारे, होही राया उ सुमती नामो ।
सव्व कलाणं निहि सो, सव्व पयाणं च पुट्ठिकरो ।१०१९।
(नगरे शतद्वारे, भविष्यति राजा तु सुमतिः नामा ।
सर्वकलानां निधिः स, सर्व प्रजानां च पुष्टिकरः ।)

शतद्वार नामक नगर में सुम्मती (सुमति) नामक राजा होगा। वह सब कलाओं का भण्डार और सब प्रजाओं का भली भांति पोषण करने वाला होगा ।१०१९।

हय-गय-रह-जोहजुत्तो, हेला विद्दविय दरिय पडिवक्खो ।
गरुय परक्कमपयडो, वेसमणसमाणविभवो य ।१०२०।
(हय-गज-रथ-योध युक्तः, हेलाविद्रवितदरितप्रतिपक्षः ।
गुरुक पराक्रमप्रकटः, वैश्रवणसमानविभवश्च ।)

---

* स्थानाङ्गे तु भावी सप्तम कुलकरस्य नाम सुबन्धू इति समुल्लिखितमस्ति ।

वह अश्वारोही, गजारोही और रथारोही योद्धाओं से सन्नद्ध, सहज ही हाकल मात्र से प्रतिपक्षी शत्रुओं का विदारण कर उन्हें रण से भगा देने वाला, प्रसिद्ध महा पराक्रमी और वैश्रवण के समान वैभवशाली होगा ।१०२०।

उत्तमरूवसरूवो, उत्तम विण्णाण णाण संपन्नो ।
वज्ज रिसभसंघयणो, इंदीवरलोयणो राया ।१०२१।
(उत्तम रूपस्वरूप, उत्तमविज्ञान-ज्ञान सम्पन्नः ।
वज्रर्षभ संहननः, इन्दीवरलोचनः राजा ।)

कमल के विकसित फूलों के समान विशाल लोचनों वाला वह राजा वज्र ऋषभनाराच-संहनन का धनी, उत्तम रूप स्वरूप एवं उत्तम ज्ञान तथा विज्ञान से सम्पन्न होगा ।१०२१।

होही भद्दा पत्ती, सुवण्णवण्णा वराणणा सुभगा ।
पढ मिल्ले संघयणे, चउसट्ठिकलाण गहियव्वा ।१०२२।
(भविष्यति भद्रा पत्नी, सुवर्णवर्णा वरानना सुभगा ।
प्रथमक संहननाः, चतुःषष्टि कलानां गृहीतव्या ।)

उस सुमति नामक कुलकगर के स्वर्ण के समान वर्ण वाली, सुमुखी सुभगा, वज्रऋषभ नाराच संहनन की धारिका और चौसठ कलाओं की निधान भद्रा नाम की पत्नी होगी ।१०२२।

उस्सप्पिणी इमीसे, बीति समाए उ वण्णियं किंचि ।
इगवीस सहस्साइं, बीओ अरगो य नायव्वो ।१०२३।
(उत्सर्पिण्यां अस्यां, द्वितीय समायाः तु वर्णितं किञ्चित् ।
एक विंशतिः सहस्राणि, द्वितीयः आरकश्च ज्ञातव्यः ।)

आगामी उत्सर्पिणी काल के द्वितीय आरक के सम्बन्ध में कुछ वर्णन किया गया । वह द्वितीय आरक २१,००० वर्ष की स्थिति वाला जानना चाहिए ।१०२३।

दूसम सुस्सम कालो, उदही समाणाण कोडी कोडीओ ।
जिण चक्कि दसाराणं(वासुदेवाणं), किंवि समासं पवक्खामि ।१०२४।
(दुःषमसुषमाकाल, उदधि समानानां (सागरोपम) कोट्या कोटिकः ।
जिनचक्रि वासुदेवानां, किमपि समासेन प्रवक्ष्यामि ।)

उत्सर्पिणी का दुःषम सुष्षम काल एक कोटा कोटि सागरोपम-(४२,००० वर्ष कम-इस प्रकार का उल्लेख होना चाहिए पर इस गाथा में ऐसा उल्लेख नहीं है)—का होगा। अब मैं जिन (तीर्थंकर), चक्रवर्ती और दशार्हों के सम्बन्ध में संक्षेपतः कुछ कहूँगा।१०२४।

नगरम्मि सत दुवारे, सुमइ रायस्स भारिया भद्दा ।
सयणिज्जे सुह सुत्ता, चोद्दस सुमिणे उ पेच्छिहिति ।१०२५।
(नगरे शतद्वारे, सुमति राज्ञः भार्या भद्रा ।
शयनीये सुखसुप्ता, चतुर्दश स्वप्नानि तु प्रेक्षयिष्यति ।)

शतद्वार नामक नगर में राजा सुमति की रानी भद्रा शय्या पर सुख पूर्वक सोती हुई (निम्नलिखित) चौदह स्वप्न देखेगी।१०२५।

गय-उसभ-सीह-अभिसेय-दाम-ससि-दिणयरं झयं कुंभं ।
पउमसर-सागर-विमाण भवण* रयणुच्चय-सिहिं च ।१०२६।
(गज-वृषभ-सिंह-अभिषेक-दाम-शशि-दिनकरं-झसं-कुम्भम् ।
पद्मसर-सागर-विमान भवन-रत्नोच्चय-शिखिं च ।)

गज, वृषभ, सिंह, अभिषेक, दाम शशि, सूर्य, मत्स्य, कुंभ-कलश, पद्मसर, सागर, भवन (विमान नहीं), रत्नराशि और निर्धूमाग्नि।१०२६।

एते चउद्दस सुमिणे, पासइ भद्दा सुहेण पस्सुत्ता ।
जं रयणिं उववण्णो, कुच्छिंसि महायसो पउमो ।१०२७।

---

* यदा तीर्थंकरजीवः देवलोकात् गर्भे च्यवति तदा तीर्थंकरमाता द्वादशमे स्वप्ने विमानं पश्यति। तीर्थंकर जीवस्य नरकात् गर्भे च्यवनावस्थायां तु माता भवनं पश्यति।

(एतानि चतुर्दश स्वप्नानि, पश्यति भद्रा सुखेन प्रसुप्ता ।
यस्या रजन्यां उत्पन्नः, कुक्षौ महायशाः पद्मः ।)

जिस रात्रि में उत्सर्पिणी काल के महान् यशस्वी प्रथम तीर्थंकर पद्म रानी भद्रा की कुक्षि में उपपन्न होंगे उस रात्रि में सुखपूर्वक सोती हुई भद्रा रानी ये चौदह स्वप्न देखेगी ।१२७।

एरवते वि य एवं, समुइ (सुमइ) रायस्स भारिया भद्दा ।
सयणिज्जे सुह सुत्ता, चउद्दस सुमिणे य दिच्छिहिति ।१०२८।
(ऐरवतेऽपि च एवं, सुमतिराज्ञः भार्या भद्रा ।
शयनीये सुखसुप्ता, चतुर्दश स्वप्नानि च द्रक्ष्यति ।)

ऐरवत क्षेत्र में भी सुमति नामक राजा की रानी भद्रा शैया पर सुखपूर्वक सोती हुई चौदह स्वप्न देखेगी ।१०२८।

—गय उसभ गाहा

(गज, वृषभ आदि चतुर्दश स्वप्नों की वही उपरिलिखित गाथा ।)

एते चउद्दस सुमिणे पासइ भद्दा सुहेण पासुत्ता ।
जं रयणिं उववण्णो, कुच्छिसि सिद्धत्थ तित्थयरो ।१०२९।
(एतानि चतुर्दश स्वप्नानि, पश्यति भद्रा सुखेन प्रसुप्ता ।
यस्यां रजन्यां उपपन्नः कुक्षौ सिद्धार्थ तीर्थंकरः ।)

जिस रात्रि में ऐरवत क्षेत्र के प्रथम तीर्थंकर सिद्धार्थ भद्रा रानी के गर्भ में आये उस रात्रि में सुख पूर्वक सोती हुई भद्रा ये चौदह स्वप्न देखेगी ।१०२९।

चउसुवि एरवए सु, एवं चउसु वि य भरहवासे सु ।
उववण्णा तित्थयरा, हत्थुत्तर जोग जुत्तेणं ।१०३०।
(चतुःष्वपि ऐरवतेषु, एवं चतुःष्वपि च भरतवर्षेषु ।
उपपन्ना तीर्थंकराः, हस्तोत्तरायोग युक्तेन ।)

इसी प्रकार शेष चारों ऐरवत और चारों भरत क्षेत्रों में, चन्द्र का हस्तोत्तरा नक्षत्र के साथ योग होने पर आठ तीर्थंकर अपनी अपनी माता की कुक्षि में उत्पन्न होंगे ।१०३०।

जो सो सेणियराया, कालं काऊण काल मासम्मि ।
रयणप्पभाए तीसे, उव्वहित्ता य इहयम्मि ।१०३१।
(यः स श्रेणिकराजा, कालं कृत्वा कालमासे ।
रत्न प्रभायां तस्यां, उद्वर्त्य च इहके ।)
सीमंत नरगाओ उ, आउं परिपालिऊण तो भगवं ।
चउरासीति सहस्साणं, वासाणं सो महापउमो ।१०३२।
(सीमंत नरकात्तु, आयुः परिपाल्य ततः भगवान् ।
चतुरसीति सहस्राणां, वर्षाणां स महापद्मः ।)

भगवान् महावीर का परम भक्त राजा श्रेणिक था, वह अपनी आयु पूर्ण होने पर काल धर्म को प्राप्त हो रत्नप्रभा नाम की में उत्पन्न हो वहां सीमन्त नरक की अपनी ८४,००० वर्ष की आयु पूर्णकर वह भगवान महापद्म के रूप में रानी भद्रा की कुक्षि में गर्भ रूप से उत्पन्न होंगे ।१०३१।--१०३२।

चेत्तस्स सुद्ध तेरसि, चंदे हत्थुत्तरेण जोगेणं ।
सिद्धत्थ महा पउमा, जाया दस एकसमएणं ।१०३३।
(चैत्रस्य शुक्ल त्रयोदश्यां, चन्द्रस्य हस्तोत्तरेण योगेन ।
सिद्धार्थ महापद्माः, जाता दश एक समयेन ।)

चैत्र शुक्ला चतुर्दशी को चन्द्र का हस्तोत्तरा के साथ योग होने पर सिद्धार्थ और महापद्म १० तीर्थंकर (दश क्षेत्रों में) एक ही समय में उत्पन्न होंगे ।१०३३।

नाणा रयणा विचित्ता, वसुधारा निवडिया कलकलेंती ।
गंभीर मधुर सद्दो य, दुंदुभिताडियो गयणे ।१०३४।
(नाना रत्न विचित्रा, वसुधारा निपतिता कल कलन्ती ।
गम्भीरमधुर शब्दश्च दुंदुभिताडितः गगने ।)

विविध रत्नों की कलकल करती हुई वसुधारा की वृष्टि हुई और गगनमण्डल में देवताओं द्वारा प्रताडित दुन्दुभियों का मधुर-गम्भीर घोष गुंजरित हो उठेगा ।१०३४।

जाण विमाणारूढा, अह एंति तहिं दिसा कुमारीउ ।
उड्ढमहोलोगम्मि य, वत्थव्वा तिरिय लोगे य ।१०३५।
(यान्ना विमानारूढा, अथ यन्ति तत्र दिशाकुमार्यः ।
उर्ध्वं अधोलोके च, वास्तव्याः तिर्यक् लोके च ।)

तदनन्तर उर्ध्व, अधः और तिर्यक् लोक में रहने वाली दिशा कुमारियां यान-विमानों पर आरूढ़ हो वहां आवेगी ।१०३५।

जाण विमाण पभाए, रयणी आसि य सा दिवस भूया ।
सुर-कण्णा हि समहियं, सन्निय नगरे वि एरिच्छा ।१०३६।
(यान-विमान प्रभाभिः, रजनी आसीत् सा दिवसभूता ।
सुरकन्याभिः समधिकाः, सर्वास्मिन् नगरेऽपि इदृशा ।)

यान-विमानों के दिव्य प्रकाश के कारण वह रात्रि दिवस के समान प्रकाशमान होगी । समस्त शतद्वारा नगरी प्रकाश से जगमगा उठेगी । जिन-जन्मभवन में जहां कि दिक्कुमारिकाएँ स्वयं उपस्थित होंगी वहां विशेष प्रकाश व्याप्त होगा ।१०३६।

दसमुवि वासेसेवं, उप्पण्णा जिणवरा य दसचेव ।
जम्मण महो य सव्वो, नेयव्वो जाव घोसणयं ।१०३७।
(दशस्वपि वर्षेष्वेवं, उत्पन्ना जिणवरा च दश चैव ।
जन्म महश्च सर्वः, ज्ञातव्यः यावत् घोषणकम् ।)

इसी प्रकार दशों क्षेत्रों में दश तीर्थंकर (एक ही समय में) उत्पन्न होंगे । उनके जन्म महोत्सव का वर्णन ऋषभादि के जन्मावसर पर दिशा कुमारिकाओं के आगमन से लेकर देवेन्द्रों द्वारा की गई घोषणा तक उसी प्रकार समझना चाहिए, जैसा कि पहले उल्लेख कर दिया गया है ।१०३७।

अद्ध नवमा य मासा, वासा तिन्नेव होंति वोक्कंता ।
दूसमसुस्सम काले, तो उप्पण्णो महा पउमो ।१०३८।
(अर्द्ध नवमा च मासा, वर्षाणि त्रीण्येव भवन्ति व्युत्क्रान्ता ।
दुःषम सुषमा काले, तत उत्पन्नो महा पद्मः ।)

आगामी उत्सर्पिणी काल के दुष्षम सुषम नामक तृतीय आरक के तीन वर्ष और साढ़े आठ मास व्यतीत होने पर महापद्म तीर्थंकर का जन्म होगा ।१०३८।

चुलसीति सहस्साइं, वासा सत्तेव पंच मासा य ।
वीर महा पउमाणं, अंतरमेयं तु विन्नेयं ।१०३९।
(चतुरसीति सहस्राणि वर्षाणि सप्तैव पंच मासाश्च ।
वीर महापद्मयोरंतरमेत त्तु विज्ञेयम् ।)

भगवान् महावीर और महापद्म इन दोनों के बीच के काल का अन्तर ८४,००७ वर्ष और पांच मास समझना चाहिए ।१०३९।

तुट्ठा उ देवीओ, देवा आणंदिया सपरिसग्गा ।
भयवंमि महापउमे, तइलोक्क सुहावहे जाते १०४०।
(तुष्टास्तु देव्यः, देवा आनन्दिताः सपरि षतकाः ।
भगवति महापद्मे, त्रैलोक्यसुखावहे जाते ।)

त्रैलोक्य को सुख प्रदान करने वाले तीर्थंकर भगवान् महापद्म के उत्पन्न होने पर देवियां बड़ी प्रसन्न होंगी और अपनी परिषदों सहित देव-देवेन्द्र आनन्द का अनुभव करेंगे ।१०४०।

जायंमि महापउमे, पउम मणि कणगवर वासं ।
मुंचंति देवसंघा, हरिसवसुल्ल सियरोमंचा ।१०४१।
(जाते महापद्मे, पद्ममणि-रत्न-कनकवरवर्षम् ।
मुंचन्ति देवसंघाः, हर्षवशोल्लसित रोमाञ्चाः ।)

भगवान् महापद्म का जन्म होने पर हर्षातिरेक से पुलकित हो देवों के समूह पद्ममणियों, रत्नों और स्वर्णमुद्राओं की बड़ी सुन्दर वर्षा करेंगे ।१०४१।

जम्हा अम्हं नगरे, जायं जंमे इमस्स पुत्तस्स ।
पउमेहिं महावासं, नामं से तो महा पउमो ।१०४२।
(यस्मात् अस्माकं नगरे, जातं जन्मनि अस्य पुत्रस्य ।
पद्मैः महद्वर्षं, नाम अस्य अतो महापद्मः ।)

महाराज सुमति नामकरण के समय अपने परिजनों के समक्ष कहेंगे--"जिस समय हमारे नगर में इस पुत्र का जन्म हुआ उस समय पद्म मणियों की वर्षा हुई अतः इसका नाम महापद्म रखा जाता है ।१०४२।

रिद्धित्थिमिय समिद्धं, भारहवासं जिणिंदकालम्मि ।
बहु अतिसय संपण्णं, सुरलोगनिभं गुणसमिद्धं ।१०४३।
(ऋद्धिस्तिमित समृद्धं, भारतवर्षं जिनेन्द्रकाले ।
बह्वतिशयसंपन्नं सुरलोकनिभं गुणसमृद्धम्)

जिनेन्द्रों (तीर्थंकरों) के समय में भरत क्षेत्र समस्त ऋद्धियों से भरपूर अत्यन्त समृद्ध, अनेक अतिशयों से सम्पन्न, गुणों का भण्डार और देवलोक के समान होगा ।१०४३।

गामानगरभूया, नगराणि य देवलोग सरिसाणि ।
रायसमा य कुटुम्बी, वेसमण सम्माय रायाणो ।१०४४।
(ग्रामा नगरभूताः, नगराणि च देवलोकसदृशानि ।
राजसमाः च कुटुम्बिनः, वैश्रवण समाः च राजानः ।)

उस उसम के ग्राम नगरों के समान, नगर देवलोक के समान, कुटुम्बी राजा के समान और राजा वैश्रवण के समान होंगे ।१०४४।

भंगत्तासविरहितो, डमरुल्लोल भय डंडरहितो य ।
परचक्क ईति तक्कर अ, करभर विवज्जितो लोगो ।१०४५।
(भंग त्रास विरहितः, डमर* लोल्य-भय-दण्डरहितश्च ।
परचक्र-ईति-तस्कर च करभार विवर्जितः लोकः ।)

---

* डमर—विप्लवः

उस समय लोग पारस्परिक द्वेष तथा त्रास से रहित, विप्लव, उथल-पुथल, भय, दण्ड, आतताई के आक्रमण, ईति-भीति (महामारी), और चोर लुटेरों के भय से विहीन तथा कर भार से उन्मुक्त होंगे ।१०४५।

अह वड्ढति सो भगवं, सुमतिरायस्स संगतो धीरो ।
दासीदास परिवुडो, परिकिण्णो पीढमद्देहिं ।१०४६।
अथ वर्द्धते स भगवान्, सुमतिराज्ञः संगतः धीरः ।
दासीदासपरिवृतः, परिकीर्णः पीठमर्द्दैः ।)

सुमति नृपति के आनन्दवर्द्धक वे धैर्यशाली प्रभु महापद्म दास-दासियों से घिरे हुए एवं सुखासनों पीठमर्द आदि पर सुशोभित हो बढ़ने लगेंगे ।१०४६।

असित सिरतो सुनयणो, बिंबोट्ठो धवलदंती पंतीओ ।
वरपउमगब्भगोरो, फुल्लुप्पल गंधनीसासो ।१०४७।
(असित शिरजः सुनयनः, बिम्बोष्ठः धवलदन्तपंक्तीकः ।
वरपद्मगर्भगौरः, फुल्लोत्पलगन्धनिःश्वासः ।)

भगवान् महापद्म भ्रमर सन्निभ काली केश राशि, अति सुन्दर विशाल लोचन युगल बिम्ब फल तुल्य लाल-लाल ओष्ट-पुट, स्वच्छ धवल दन्त-पंक्तियों वाले, श्रेष्ठ पद्म के गर्भ के समान गौर वर्ण और प्रफुल्लित नीलकमल के फूल की गन्ध के समान सुगन्धित श्वास निःश्वास वाले होंगे ।१०४७।

जातीसरो उ भयवं, अप्परि वडिएहिं तिहि उ नाणेहिं ।
कंतीहि य पुट्ठीहि य, अब्भहितो तेहिं मणुएहिं ।१०४८।
(जातिस्मरस्तु भगवान्, अप्रतिपतितैस्त्रिभिस्तु ज्ञानैः ।
कान्तिभिश्च पुष्टिभिश्च, अभ्यधिकः तेभ्यः मनुजेभ्यः ।)

वे प्रभु महापद्म जातिस्मर ज्ञान तथा कभी क्षीण न होने वाले मति-श्रुति-अवधि-इन तीन ज्ञान से युक्त तथा उस समय के सभी मनुष्यों की अपेक्षा अत्यधिक कान्ति एवं पुष्टि वाले होंगे ।१०४८।

अह तो अम्बा पितरो, जाणित्ता अहिय अट्ठवासागं ।
कय कोउगलंकारं, लेहायरियस्स उवणेंति ।१०४९।
(अथ तौ अम्बापितरौ, ज्ञात्वा अधिक अष्टवर्षाकम् ।
कृतकौतुकालङ्कारं, लेखाचार्यस्य उपनयतः ।)

तदनन्तर भगवान् महापद्म को माता-पिता आठ वर्ष से अधिक वय के जान कर कौतुकालङ्कारों से अलंकृत कर लेखाचार्य के पास ले जायेंगे ।१०४९।

सक्को य तस्समक्खं, भयवंतमासणे निवेसित्ता ।
सद्दस्स लक्खणं पुच्छे, वागरणं अवयवा (ण) इंदं ।१०५०।
(शक्रश्च तस्य समक्षं, भगवन्तं आसने निवेशयित्वा ।
शब्दस्य लक्षणं पृच्छेत् (प्रक्ष्यति), व्याकरणं अवयवादीनां इन्द्रं ।)

देवराज शक्र लेखाचार्य के समक्ष ही भगवान् महापद्म को उच्च आसन पर आसीन कर उनसे शब्द का स्वरूप पूछेगा। तीन ज्ञान के धारक बालक महापद्म इन्द्र को शब्द के लक्षण, अवयव आदि की विस्तार पूर्वक व्याख्या कर व्याकरण के गूढ रहस्य बतायेंगे ।१०५०।

अह तं अंमापितरो, जाणित्ता अहिग अट्ठ वासागं ।
कय कोउगलंकारं, रायभिसेगं तु काहिंति ।१०५१।
(अथ तं अम्बापितरौ, ज्ञात्वा अधिक अष्टवर्षाकम् ।
कृत कौतुकालंकारं (रस्य), राज्याभिषेकं तु करिष्यन्ति ।)

तदनन्तर माता-पिता भगवान् महापद्म को आठ वर्ष से अधिक आयु का जानकर कौतुकालंकार करने के पश्चात् उनका राज्याभिषेक करेंगे ।१०५१।

तिहि करणंमि पसत्थे, महंत सामंतकुल पसूयाए ।
कारिंति पाणिगहणं, जसोयवर रायकण्णाए ।१०५२।
(तिथि-करणे प्रशस्ते, महत् सामन्तकुलप्रसूतायाः ।
कारयन्ति पाणिग्रहणं, यशोदावरराजकन्यायाः ।)

तत्पश्चात् माता-पिता शुभ तिथि और शुभ करण में महापद्म का बड़े सामन्त कुल में उत्पन्न हुई यशोदा नामक एक सुन्दर राज-कुमारी के साथ विवाह करेंगे ।१०५२।

भर हंमि पढम राया, हय-गयरह-जोह संकुलं सेणं ।
तो माणि भद्द देवो, काहिति पुण्णभद्दो य १०५३।
(भरते प्रथमो राजा, हय गज रथ योध संकुलं सैन्यम् ।
ततः मणिभद्रदेवः करिष्यति पूर्णभद्रश्च ।)

महापद्म आगामी उत्सर्पिणी काल में भरत क्षेत्र के प्रथम राजा होंगे। मणिभद्र और पूर्णभद्र देव उन राजा महापद्म के लिये अश्व-गज एवं रथारोही योद्धाओं की एक अति विशाल सेना संगठित करेंगे ।१०५३।

जम्हा देवा सेणं, पडियग्गंति उ पुव्व संगइया ।
तम्हा उ देवसेणो, देवासुर पूजितो नामं ।१०५४।
(यस्मात् देवाः सैन्यं, प्रत्यग्रन्ति तु पूर्व संगतिकाः ।
तस्मात् तु देवसेनः, देवासुरपूजितः नाम)

पूर्व भव के मित्र देवों द्वारा सेना के संगठित किये जाने के कारण महापद्म का दूसरा नाम देवासुर पूजित देवसेन भी प्रसिद्ध होगा ।१०५४।

धवलं गयं महंतं, सत्तंग पइट्ठितं चउद्दंतं ।
वाहेति विमल जसो, नामं तो विमलवाहणोत्ति १०५५।
(धवलं गजं महान्तं, सप्तांगप्रतिष्ठितं चतुर्दन्तम् ।
वाहयति विमलयशः, नाम अतः विमलवाहन इति ।)

विमल यश के भागी राजा महापद्म सर्वांग सुन्दर चतुर्दन्त नामक एक महान् एवं श्वेत रंग के हाथी पर आरोहण करेंगे इस लिये उनका तीसरा नाम विमलवाहन भी प्रसिद्ध होगा ।१०५५।

सो देव-पतिग्गहीओ, तीसं वासाइं वसति गिहवासे ।
अंमापितीहिं भगवं, देवत्ति गतेहि पव्वइत्तो ।१०५६।

(स देव प्रतिगृहीतः, त्रिंशत् वर्षाणि वसति गृहवासे ।
अम्बापितृभ्यां भगवान् देवगतिं गताभ्यां प्रव्रजितः ।)

देवों द्वारा परिसेवित वे भगवान् महापद्म ३० वर्ष तक गृहवास में रहेंगे और मातापिता के स्वर्गस्थ होने पर वे प्रव्रजित होंगे ।१०५६।

संवच्छरेण होही, अभिनिक्खमणं तु जिणवरिंदाणं ।
तो अत्थ संपयाणं, दाणं पव्वत्तइ पढम सूरंमि ।१०५७।
(संवत्सरेण भविष्यति, अभिनिष्क्रमणं तु जिनवरेन्द्राणाम् ।
(तु) ततः अर्थसम्पदानां, दानं प्रवर्तते प्रथमसूर्ये ।)

प्रव्रजित होने से पहले एक वर्ष तक प्रतिदिन सूर्योदय के पश्चात् एक प्रहर तक स्वर्ण-मुद्राओं का वर्षीदान देंगे और इस प्रकार लोकान्तिक देवों द्वारा किये गये निवेदन से एक वर्ष पश्चात् भगवान् महापद्म का अभिनिष्क्रमण होगा ।१०५७।

सिंघाडग तिग चउक्क, चच्चर* चउमुह महापह पहेसु ।
दारेसु पुरवराणं, रत्थामुह-मज्झयारेसु ।१०५८।
(शृंगाटक-त्रिक-चतुष्क, चत्वर-चतुर्मुख महापथ-पथेषु ।
द्वारेसु पुरवराणां, रथ्यामुख-मध्यकारेषु ।)

सिंघाड़े के आकार के त्रिपथों (तिराहों), चतुष्पथों (चौराहों), जिस स्थान से बहुत सी गलियों में आने जाने के मार्ग हों; जिन स्थानों से चारों दिशाओं में जाया जा सके, राजपथों, श्रेष्ठ नगरों की प्रतोलिकाओं (घुमाव वाले द्वारों), गलियों के मुहानों एवं मध्यवर्ती भागों में--।१०५८।

---

* चच्चर—चत्वर=बहुरथ्यापातस्थानम् ।

वरवरिया♣ घोसिज्जइ, किमिच्छियं0 दिज्जए बहुविहीए ।
सुर असुर देव दाणव-नरिंदमहियाण निक्खमणे ।१०५९।
(वरवरिका घोष्यते, किमिच्छिकं दीयते बहुविधिभिः ।
सुरासुर देवदानवनरेन्द्रमहितानां निष्क्रमणे ।

"वर मांगो--वर मांगो, सुरों असुरों, देवों, दानवों और नरेन्द्रों द्वारा पूजित जिनेश्वरों के महाभिनिष्क्रमण के अवसर पर यथेप्सित अनेक प्रकार से (का) दान दिया जा रहा है"—इस प्रकार की निरन्तर बार-बार घोषणाएं की जाती हैं (जायेंगी) ।१०५९।

एगा हिरण्ण कोडी, अट्ठेव अणूणगा सयसहस्सा ।
सूरोदयमाईयं, दिज्जइ जा पायरासाओ ।१०६०।
(एका हिरण्य कोटी, अष्टौ चैव अन्यूनानि शतसहस्राणि ।
सूर्योदयादि दीयते यावत् प्रातराशात् ।)

जिनेश्वरों द्वारा प्रतिदिन सूर्योदय से लेकर प्रात:कालीन भोजन वेला तक एक करोड़ आठ लाख (१०८०००००) स्वर्णमुद्राओं का दान दिया जाता है ।१०६०।

तिण्णेव य कोडिसया, अट्ठासीयंत्ति होंति कोडीओ ।
असिइं च सयसहस्सा, एयं संवच्छरे दिण्णं ।१०६१।
(त्रीण्येव कोटि शतानि, अष्टाशीति इति भवन्ति कोटयः ।
अशीतिश्च शतसहस्राणि, एतावत् संवत्सरे दत्तम् ।)

एक वर्ष तक प्रतिदिन तीर्थंकर भगवान् द्वारा जो दान दिया जाता है, उसमें कुल मिला कर (वर्ष भर में) तीन अरब, अठ्यासी करोड़ और अस्सी लाख (३८८८०००००) स्वर्ण मुद्राओं का दान दिया जाता है ।१०६१।

♣ वरवरिया—वरवरिका = वरं याचध्वं, वरं याचध्वमित्येवं घोषणा समय परिभाषया वरवरिकोच्यते ।

0 किमिच्छियं--किमिच्छिकं = क: किमिच्छति ? यो यदिच्छति तस्य तद्दानं समय परिभाषयैव किमिच्छिकमुच्यते ।

एवं नवसु वि खेत्तेसु, तित्थयरा दाउं संवच्छरं दाणं ।
हत्थुत्तराहिं नव वि, निक्खिंता खाय कित्तीया ।१०६२।
(एवं नवस्वपि क्षेत्रेषु, तीर्थंकरा दत्वा संवत्सरं दानम् ।
हस्तोत्तरायां नव अपि, निष्क्रान्ताः ख्यात कीर्तयः ।)

इसी प्रकार शेष ९ क्षेत्रों में भी प्रसिद्ध कीर्तिशाली तीर्थंकर एक वर्ष तक दान देकर चन्द्र का हस्तोत्तरा नक्षत्र के साथ योग होने पर अभिनिष्क्रमण करेंगे ।१०६२।

हत्थुत्तराहिं भगवं, सयदारे खत्तियो महासत्तो ।
वज्ज रिसह संघयणो, भवियण विबोहे तो पउमो ।१०६३।
(हस्तोत्तरायां भगवान्, शतद्वारे क्षत्रियः महासत्त्वः ।
वज्रर्षभ-संहननः, भविकजन विबोधकः पद्मः ।)

महासत्त्वशाली क्षत्रिय, वज्र ऋषभ नाराच संहनन धारी, भव्य जीवों को प्रतिबोध देने वाले भगवान् महापद्म को हस्तोत्तरा नक्षत्र में शतद्वार नगर में—।१०६३।

सारस्सयमाइच्चा वण्ही, वरुणा य गद्दतोया य ।
तुसिता अव्वाबाहा, अगिज्जा चेव रिट्ठा य ।१०६४।
सारस्वन आदित्या वह्निः, वरुणा च गर्दतोया च ।
तुसिता अव्याबाधा, अग्राह्या चैव अरिष्टा च ।)

सारस्वत, आदित्य, वह्नि, वरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, अग्राह्य और अरिष्ट—।१०६४।

एते देव निकाया य, भगवं बोहिंति जिणवरिंदं तु ।
सव्व जग जीव हियय, भगवं तित्थं पवत्तेहि ।१०६५।
(एते देवनिकायाश्च, भगवन्तं बोधयन्ति जिनवरेन्द्रं तु ।
सर्वजगजीवहितकं, भगवन् तीर्थं प्रवर्तय ।)

ये नौ देवनिकाय (लोकान्तिक देव) समस्त संसार के प्राणियों का हित करने वाले भगवान् महापद्म को (बोधयन्ति-विज्ञापयन्ति)

विज्ञापित करते हैं—"भगवन्! तीर्थ का प्रवर्तन कीजिये' ।१०६५।

एवं अभिथुणन्तो, बुद्धो फुल्लारविंद सरिसमुहो ।
लोगंतिय देवेहिं, सयदारंमि य महा पउमो ।१०६६।
(एवं अभिस्तूयमानः, बुद्धः फुल्लारविन्द सदृशमुखः ।
लोकान्तिक देवैः, शतद्वारे च महापद्मः ।)

लोकान्तिक देवों द्वारा शतद्वार नगर में इस प्रकार की स्तुति की जाने पर कमल के खिले पुष्प के समान नेत्रों वाले भगवान् महापद्म बुद्ध—(विज्ञप्त) हुए अर्थात् प्रभु को तीर्थ—प्रवर्तन का ध्यान आयेगा ।१०६६।

मणपरिणामो य कतो, अभिनिक्खमणंमि जिणवरिंदेण ।
देवेहिं य देवीहिं य, समंतओ उच्छुयं गयणं ।१०६७।
(मन परिणामश्च कृतः, अभिनिष्क्रमणे जिनवरेन्द्रेण ।
देवैश्च देवीभिश्च, समन्ततः उत्सृतं गगनम् ।)

भगवान् महापद्म अपने मन में अभिनिष्क्रमण का दृढ़ निश्चय करेंगे और देवों तथा देवियों द्वारा आकाश दिव्य घोषों से गुंजरित कर दिया जायेगा ।१०६७।

भवणवइ वाणमंतर, जोइसवासी विमाणवासी य ।
धरणियले गयणयले, विज्जुज्जो ओ क ओ खिप्पं ।१०६८।
(भवनपतिः वाणव्यन्तर, ज्योतिषवासी विमानवासीभिश्च ।
धरणितले, गगनतले, विद्युदुद्योतः कृतः क्षिप्रम् ।)

भवनपति, वाणमन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव तत्क्षण पृथ्वीतल पर और आकाश में बिजली का प्रकाश करेंगे ।१०६८।

जेट्ठं नलिणिकुमारं, रज्जेठवित्तुं तं महापउमो ।
उत्तत्तकणगवण्णो, मगसिर बहुलस्स दसमीए ।१०६९।
(ज्येष्ठं नलिनिकुमारं, राज्ये स्थापयित्वातं महापद्मः ।
उत्तप्त कनकवर्णः, मार्गशीर्ष बहुलस्य दशम्याम् ।)

प्रतप्त स्वर्ण के समान वर्ण वाले भगवान् महापद्म अपने ज्येष्ठ पुत्र नलिनीकुमार को राज्य सम्हला कर मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी के दिन—।१०६९।

(१०७० तथा १०७१ संख्याके द्वे गाथे प्रतौ न स्तः)

[स्पष्टीकरणः—इससे आगे की गाथा के आगे हमारे भण्डार की प्रति में १०७२ संख्या लिखी हुई है। हमें आशंका थी कि कहीं लिपिक द्वारा २ गाथायें छोड़ तो नहीं दी गई हैं पर आहोर स्थित श्री राजेन्द्रसूरी जी महाराज के भण्डार से उपलब्ध प्राचीन प्रति को देखने से हमारी वह आशंका निर्मूल सिद्ध हुई। इस गाथा के पश्चात् हमारे भण्डार की प्रति में जो गाथा उल्लिखित है वही गाथा आहोर भण्डार की प्रति पें भी है और उस पर गाथा संख्या अनुक्रमशः ठीक और सही है। वस्तुतः एक भी गाथा लिखने में छूटी नहीं है।]

पाईण गामिणीए, अभिणि विट्ठाए पोरिसि छायाए ।
विजएण मुहुत्तेणं, सो उत्तर फग्गुणी जोगे ।१०७२।
(प्राचीनगामिन्यां, अभिनिविष्टायां पौरुषी छायायाम् ।
विजयेन मुहूर्त्तेन, स उत्तरा फाल्गुनी योगे ।)

चतुर्थ प्रहर की वेला में छाया जब पूर्व दिशा की ओर अभिनिविष्ट होगी, उस समय चन्द्र का उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ योग होने पर विजय मुहूर्त में—।१०७२।

चंदप्पभा य सीता, उवणीया जम्म मरणमुक्कस्स ।
आस त्त मल्लदामा, जल थलय दिव्व कुसुमेहिं ।१०७३।
(चन्द्रप्रभा च सीता, उपनीता जन्म-मरण मुक्तस्य ।
आसक्त मल्लदामा, जलस्थलैजं दिव्य-कुसुमैः ।)

उन जन्म-मरण से विमुक्त होने वाले भगवान् महापद्म के लिए जल एवं स्थल-स्थल पर उत्पन्न हुए दिव्य पुष्पों एवं उनकी मालाओं से सर्वतः सुसज्जित चन्द्रप्रभा नाम की पालकी लाई जायगी ।१०७३।

पण्णासमायामा, धणूणि वीसाय पणवीसायाया ।
छव्वीसइतुस्सेहा, सीता चंदप्पभा भणिया ।१०७४।
(पञ्चाशदायामा, धनूंषि विंशतिश्च पंचविंशत्यायाता ।
षड्विंशत्युत्सेधा, सीता चन्द्रप्रभा भणिता ।)

वह चन्द्रप्रभा नाम वाली पालकी ५० धनुष लम्बी, मध्य में २५ और शेष आगे पीछे के भागों में २० धनुष चौड़ी तथा छत्तीस धनुष ऊँची बताई गई हैं ।१०७४।

सीयाए मज्झयारे, दिव्वं मणिरयणकणग बिंबइयं ।
सीहासणं महरिहं, सपाय पीढं जिणवरस्स ।१०७५।
(सीतायाः मध्यद्वारे, दिव्यं मणिरत्नकनकबिम्बितम् ।
सिंहासनं महार्घ्यं, सपादपीठं जिनवरस्य ।)

उस चन्द्रप्रभा शिबिका के बीचोबीच उन भगवान् महापद्म तीर्थंकर के लिये पादपीठ सहित दिव्य मणियों, रत्नों एवं स्वर्ण से निर्मित एक महा मूल्यवान् सिंहासन होगा ।१०७५।

आलइय भाल मउडो, भासुर बोदी [?] पलंबवणमालो ।
सियवत्थ संनियत्थो, जस्स य मोल्लं सयसहस्सं ।१०७६।
(आललित भालमुकुटः, भासुर बोंदि प्रलम्बवनमालः ।
सितवस्त्र सन्न्यस्तः, यस्य च मूल्यं शतसहस्रम् ।)

सुविशाल भाल पर अति ललित मुकुट धारण किये हुए, प्रकाशमान देह छबि वाले आजानु विशाल वनमालाओं से विभूषित एवं लाख स्वर्ण-मुद्राओं के मूल्य वाले श्वेत वस्त्र को धारण किये हुए —।१०७६।

छट्ठेणं भत्तेणं, अज्झवसाणेण सोहणेण जिणो ।
लेसाहि विसुज्झंतो, आरुभती उत्तमं सीयं ।१०७७
(षष्ठेन भक्तेन, अध्यवसायेन शोभनेन जिनः ।
लेश्याभिः विशुद्ध्यमानः, आरोहति उत्तमां सीताम् ।)

षष्ठ भक्त (बेला) किये हुए, अतिविशुद्ध अध्यवसायों (परिणामों) एवं लेश्याओं से युक्त भगवान् महापद्म उस चन्द्रप्रभा पालकी पर आरूढ़ होंगे ।१०७७।

सीहासणे निसन्नो, सक्कीसाणेहिं दोहि पासेहिं ।
वीयंति चामरेहिं, मणिकणगविचित्त दंडेहिं ।१०७८।
(सिंहासने निषण्णः, शक्रेशानाभ्यां द्वयोर्पार्श्वयोः ।
वीजयंति चामरैः, मणिकनकविचित्रदण्डैः ।)

पालकी के मध्य भाग में स्थित सिंहासन पर प्रभु महापद्म आसीन होंगे । उनके दोनों पार्श्वों में खड़े शक्र तथा ईशानेन्द्र स्वर्ण एवं मणियों से विनिर्मित दण्डों वाले चामर उन पर डुलायेंगे ।१०७८।

पुव्विं ओखि माणुसेहिं, संहिट्ठ-रोमकूवेहिं ।
पच्छा वहंति सीयं, असुरिंद सुरिंद नागिन्दा ।१०७९।
(पूर्वतः उत्क्षिप्ता (व्यूढा) मानुषैः, संहृष्टरोमकूपैः ।
पश्चात् वहन्ति सीतां, असुरेन्द्रसुरेन्द्रनागेन्द्राः ।)

भगवान महापद्म की उस पालकी को आगे की ओर से हर्षातिरेक के कारण रोमाञ्चित हुए मनुष्य और पीछे की ओर से असुरेन्द्र, सुरेन्द्र और नागेन्द्र वहन करेंगे ।१०७९।

चलचवल कुंडलधरा, सच्छंद विउव्विया भरणधारी ।
देविंद दाणविंदा, वहंति सीयं जिणवरस्स ।१०८०।
(चल चपलकुण्डलधराः, स्वछन्द विकुर्वीत आभरणधारिणः ।
देवेन्द्र दानवेन्द्राः, वहन्ति सीतां जिनवरस्य ।)

निरन्तर चलायमान रहने के कारण चचल कुण्डलों को धारण करने वाले, वैक्रिय लब्धि द्वारा यथेप्सित विनिर्मित आभरणों को धारण किये हुए देवेन्द्र तथा दानवेन्द्र तीर्थंकर प्रभु की पालकी उठाते हैं ।१०८०।

वणसंडोव्व कुसुमिओ, पउमसरो वा जहा सरयकाले ।
सोहइ कुसुमभरेणं, इय गगणयलं सुर गणेहिं ।१०८१।

(वनखण्ड इव कुसुमितः पद्मसरो वा यथा शरत्काले ।
शोभते कुसुमभरेण, एवं गगनतलं सुरगणैः ।)

जिस प्रकार प्रफुल्लित सुविशाल पुष्प वन अथवा शरद् ऋतु में पद्म-सरोवर यत्र तत्र-सर्वत्र खिले फूलों से सुशोभित होता है, उसी प्रकार सुरों एवं सुरबालाओं के समूहों से व्याप्त वहां का गगन मण्डल बड़ा सुशोभित हो उठता है ।१०८१।

अह सिद्धत्थवणं व जहा, असणवणं सणवणं असोगवणं ।
चूतवणं व कुसुमियं, इय गयणयलं सुरगणेहिं ।१०८२।
(अथ सिद्धार्थवनं वा यथा, अशनवनं सणवनं अशोकवनम् ।
चूतवनं वा कुसुमितं, एवं गगनतलं सुरगणैः ।)

देव-देवी वृन्द से व्याप्त गगन मण्डल इस प्रकार शोभायमान होने लगेगा मानो सिद्धार्थ वन, अशनवन, सरण वन, अशोक वन, और आम्रवन एक साथ ही वहां कुसुमित हो उठे हों ।१०८२।

अलसिवणं व कुसुमितं, कणियारवणं व चंपयवणं वा ।
तिलगवणं सुकुसुमियं, इय गयणयलं सुरगणेहिं ।१०८३।
(अलसिवनं वा कुसुमितं, कर्णिकारवनं वा चम्पकवनं वा ।
तिलकवनं सुकुसुमितं, एवं गगन-तलं सुरगणैः ।)

देवों एवं अप्सराओं के समूहों से व्याप्त वहां का गगन मण्डल उस समय ऐसा शोभायमान हो रहा होगा, मानो अलसी, कनेर, चंपक और तिलों के वन विविध सुन्दर पुष्पों से भरे पूरे हो लहलहा रहे हों ।१०८३।

वरपडहभेरि झल्लरि, दुंदुहि संखसतेहिंतुरीहिं ।
धरणि यलगयणयले, तुरिय निनाओ परम रम्मो ।१०८४।
(वर पटह-भेरि-झल्लरि-दुंदुभि-शंख शतैः तुरीभिः ।
धरणितल गगनतले, तूर्य निनादः परम रम्यः)

सैंकड़ों अत्युत्तम पटहों भेरियों झल्लरियों, दुंदुभियों शङ्खों एवं तूर्यों के कर्णप्रिय अतिरम्य निनाद धरातल पर और गगन मण्डल में होने लगेंगे ।१०८४।

एवं सदेवमणुयासुराण, परिसयाए परिवुडो भगवं ।
अभिथुव्वंतो गिरा हिं. मज्झं मज्झेण सतवारं ।१०८५।
(एवं सदेवमनुजासुराणां, परिषदया परिवृतः भगवान् ।
अभिस्तूयमानः गिराभिः, मध्यं मध्येन शतद्वारस्य ।)

इस प्रकार देवों, मनुष्यों एवं असुरों की परिषदों द्वारा परिवृत्त एवं स्तुति वचनों से स्तूयमान भगवान् महापद्म शतद्वार नगर के मध्यवर्ती मुख्य मार्गों में—।१०८५।

अणवरय दाणसीलो, नलिणकुमारेण परिवुडो वीरो ।
उज्जाणं संपत्तो*, नामेणं पउमिणी संडं ।१०८६।
(अनवरत दानशीलः, नलिनकुमारेण परिवृतः वीरः ।
उद्यानं संप्राप्तः (सन्), नाम्ना पद्मिनी खण्डम्)

निरन्तर दान देते हुए तथा नलिन कुमार से सेवित वीरवर पद्मिनी खण्ड नामक उद्यान में पधारेंगे ।१०८६।

ईसाणाए दिसाए, उइण्णो उत्तमाओ सीयाओ ।
सयमेव कुणइ*लोयं सक्को से पडिच्छ*ई केसे ।१०८७।
।त्रिर्मिकुलकम्।
(ईशानायां दिशायां, उत्तीर्ण उत्तमायाः सीतायास्तु ।
स्वयमेव करोति लोचं, शक्रः तान् प्रतीच्छति केशान्0)

प्रभु महापद्म पद्मिनी खण्ड नामक उस उद्यान में ईशान दिशा में पहुँचने पर पालकी से नीचे उतर कर स्वयमेव पंचमुष्टि-लुञ्चन करेंगे। शक्र उन लुञ्चित केशों को (अपने उत्तरीय में) ग्रहण करेगा ।१०८७।

---

* तारांकित शब्देषु भविष्यत् काले भावीनां भावानामवश्यंभावीत्वात् वर्तमानवत् प्रयोगः कृतो भाति ।

0 शक्रस्तान् प्रतिच्छति केशान्--शक्रस्तान् केशान् स्वकीयोत्तरीये गृहणातीत्यर्थः ।

जिणवरमणुण्णवित्ता, अंजणघणरूयगब्भमर संकासा ।
केसा खणेण नीता, खीर सरीस नाम यं उदहिं ।१०८८।
(जिनवर मनुज्ञाप्य, अंजन घन रुचक भ्रमर संकासा ।
केशा क्षणेन नीता क्षीर-सरिदीश नामकं उदधिम् ।)

शक्र प्रभु महापद्म की आज्ञा प्राप्त कर काजल, काले बादल, रुचक तथा भ्रमर के समान काले उन लुञ्चित केशों को क्षण मात्र में क्षीर सागर में डाल लौट आयेगा १०८८।

दिव्वो मणुस्स-घोसो तुरिय निनाओ य सक्क वयणेणं ।
खिप्पामेव निलुक्को, ताहे पडिवज्जइ चारित्तं ।१०८९।
(दिव्यो मनुष्यघोषस्तुरहीनिनादश्च शक्रवनेन ।
क्षिप्रमेव निर्लुप्त, ततः प्रतिपद्यते चारित्रम्)

तदनन्तर शक्र के कथन से तत्काल देवों तथा मनुष्यों द्वारा किये जाने वाले जयघोष और तूर्य आदि वाद्यों की ध्वनि बन्द हो जायगी और प्रभु निर्ग्रन्थ चारित्र ग्रहण करेंगे ।१०८९।

काऊण नमोक्कारं, सिद्धाणमभिग्गहं तु सो गिण्हे ।
सव्वं मे अकरणिज्जं. पावंति चरित्तमारूढो ।१०९०।
(कृत्वा नमस्कारं, सिद्धेभ्योऽभिग्रहं तु स गृहणेत् ।
सर्वं मे अकरणीयं, पापमिति चारित्रमारूढः ।)

वे सिद्धों को नमस्कार कर यह प्रतिज्ञा करेंगे:—"मेरे लिये सब प्रकार के पाप अकरणीय हैं" (अर्थात् मैं यावज्जीव अब किसी प्रकार का पाप नहीं करूँगा) और इस प्रकार की प्रतिज्ञा द्वारा वे चारित्र (पंच महाव्रत) ग्रहण करेंगे ।१०९०।

तिहिं नाणेहिं समग्गा, तित्थयरा जाव होंति गिहवासे ।
पडिवण्णम्मि चरित्ते, चउनाणी जाव छउमत्था ।१०९१।
(त्रिभिर्ज्ञानैः समग्राः तीर्थंकराः यावत् भवन्ति गृहवासे ।
प्रतिपन्ने चारित्रे, चतुर्ज्ञानी यावत् छद्मस्था ।)

सभी तीर्थंकर माता के गर्भ में अवतरण करते समय के च्यवनकाल से ले कर चारित्र ग्रहण करने से पूर्व के गृहस्थ काल तक मति, श्रुति और अवधि इन तीन ज्ञान के धारक होते हैं। चारित्र ग्रहण करते ही उन्हें मनःपर्यव नामक चौथा ज्ञान भी हो जाता है और छद्मस्थ काल में कैवल्योपलब्धि से पूर्व तक वे चार ज्ञान के धनी रहते हैं।१०९१।

नवसुवि वासेसेवं, सिद्धत्थादी जिणिंद चन्दाउ।
हत्थुत्तराइं सव्वे, मिगसिर बहुलस्स दसमीए।१०९२।
(नवस्वपि वर्षेष्वेवं, सिद्धार्थादि जिनेन्द्र चन्द्रास्तु।
हस्तोत्तरायां सर्वे, मृगशिर बहुलस्य दशम्याम्।)
(चारित्रमारोक्ष्यन्ते इति शेषः)

इसी प्रकार शेष ९ क्षेत्रों में भी सिद्धार्थ आदि ९ तीर्थंकर मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी के दिन हस्तोत्तरा नक्षत्र के योग में अभिनिष्क्रमण कर प्रव्रजित होंगे।१०९२।

बारस चेव य वासा, मासा छच्चेव अद्ध मासो य।
पउमादीण दसण्हवि, एसो छउमत्थ परियाओ।१०९३।
(द्वादश चैव च (तु) वर्षाः, मासाः षड्चैव अर्द्ध मासश्च।
पद्मादीनां दशानामपि, एषः छद्मस्थ पर्यायः।)

महापद्म आदि दशों ही तीर्थंकरों का १२ वर्ष, ६ मास और १५ दिन का छद्मस्थपर्याय रहेगा।१०९३।

एवं तवोगुणरतो, अणु पुव्वेणं मुणी विहरमाणो।
वज्जरि सह संघयणे, सत्तेव य होंति रयणीओ।१०९४।
(एवं तपोगुणरतः आनुपूर्व्या मुनिः विहरमानः।
वज्रर्षभ संहननः, सप्तैव च भवति रत्नीकः।

इस प्रकार सात रत्नी (मुँड हाथ) लम्बे, वज्र ऋषभ नाराच संहनन वाले, तपश्चरण और श्रमण-गुणों में अनुरक्त भगवान् महापद्म अनुक्रमशः अप्रतिहत विहार करते हुए—।१०९४।

वइसाह सुद्धदसमीए, केवलं नाम साल हेट्ठं मि ।
छट्ठेणुक्कडुय सओ, उप्पण्णं जंभिया गामे ।१०९५।
(वैशाख शुद्धदशम्यां. केवलं नाम सालस्य अधः ।
षष्ठेन उत्कुट सतः, उत्पन्नं जृम्भिका ग्रामे ।)

वैशाख शुक्ला दशमी के दिन जृंम्भिका नामक ग्राम के बाहर शालवृक्ष के नीचे उकडू (गोदोहिका) आसन से बैठे हुए बेले की तपस्या से केवल ज्ञान प्राप्त करेंगे ।१०९५

सेसाणंपि नवण्हं, एवं वइसाह सुद्धद समीए ।
हत्थुत्तराहिं नाणं, होही जुगवं जिणंदाणं ।१०९६।
(शेषानामपि नवानां, एवं वैशाख शुद्ध दशम्याम् ।
हस्तोत्तराभिर्ज्ञानं, भविष्यति युगपज्जिनेंद्राणाम्)

इसी प्रकार शेष ९ क्षेत्रों के ९ (प्रथम) तीर्थंकर भी वैशाख शुक्ला दशमी के दिन हस्तोत्तरा नक्षत्र के योग में एक साथ (एक ही समय में) केवल ज्ञान प्राप्त करेंगे ।१०९६।

उप्पण्णंमि अणंते, नट्ठंमिउ छाउमात्थिए नाणे ।
राइए संपत्तो, महसेणवणं तु उज्जाणं १०९७
(उत्पन्ने अनन्ते, नष्टे तु छाद्मस्थिके ज्ञाने ।
रात्रौ सम्प्राप्तः, महासेन वनं तु उद्यानम् ।)

अनन्त ज्ञान अनंत दर्शन और अनन्त चारित्र के उत्पन्न होने और छाद्मत्थिक ज्ञान के नष्ट होने पर जम्बू द्वीपस्थ भरत क्षेत्र के आगामी उस्सर्पिणी काल के) प्रथम तीर्थंकर भगवान् महापद्म रात्रि के समय में ही विहार कर महासेन वन नामक उद्यान में समवसृत होंगें ।१०९७।

अमरनर राय महिओ, पत्तो धम्मवर चक्कवट्टित्तं ।
बीयम्मि समोसरणे, पावाए मज्झिमाए उ ।१०९८।
(अमरनरराजमहितः, प्राप्तः धर्मवर चक्रवर्तीत्वम् ।
द्वितीये समवसरणे, पावायां (अपायायां) मध्यमायां तु ।)

सुरेन्द्रों एवं नरेन्द्रों द्वारा पूजित प्रभु महापद्म मध्यम पावा नगरी में हुए दूसरे समवसरण में (चतुर्विध तीर्थ का प्रवर्तन कर) धर्मचकवर्ती प्रवर के पद से विभूषित होंगे ।१०९८।

एक्कारस वि गणहरा, सव्वे उन्नय विसाल कुलवंसा ।
पावाए मज्झिमाए, समोसढा जण्णवाडम्मि ।१०९९।
(एकादशाऽपि गणधराः, सर्वे उन्नत-विशाल कुलवंशाः ।
पावायां मध्यमायां, समवसृता यज्ञवाटे ।)

उन्नत कुल एवं विशाल वंश के उनके सभी ग्यारह गणधर मध्यम पावा में अनुष्ठित होने वाले यज्ञ की यज्ञशाला में एकत्र होंगे ।१०९९।

पढमेत्थ कुम्भसेणो, नामेणं गणहरो महासत्तो ।
वज्जरिसभसंघयणो, चउद्दस पुव्वी महावीरो ।११००।
(प्रथमोऽत्र कुम्भसेनः नाम्ना, गणधरः महासत्त्वः ।
वज्रर्षभ संहननः चतुर्दशपूर्वी महावीरः ।)

महापद्म तीर्थंकर के उन ग्यारह गणधरों में प्रमुख एवं प्रथम गणधर काम कुम्भसेन होगा, जो महासत्त्वशाली, वज्रऋषभ संहनन के धनी चतुर्दश पूर्वधर और महान् धीर वीर होंगे ।११००।

वइसाहसुद्ध एक्कारसीए, तह पढम पोरिसीए उ ।
हत्थुत्तर पय कमलेः गणिपिडगस्स भाणिहि अत्थं ।११०१।
(वैशाखशुद्धैकादश्यां, तथा प्रथम पौरुष्याम् तु ।
हस्तोत्तर पदकमले, गणिपिटकस्य भणिष्यति अर्थम् ।)

वैशाख शुक्ला एकादशी के दिन प्रथम प्रहर में, हस्तोत्तरा नक्षत्र के योग में भगवान् महापद्म गणिपिटक (द्वादशांगी) के अर्थ का उपदेश करेंगे ।११०१।

एवं तित्थुप्पत्ती, दससुवि वासेसु होइ नायव्वा ।
एक्कारस वि गणहरा, नव गणावि तस्स एमेव ।११०२।

(एवं तीर्थोत्पत्तिः, दशस्वपि वर्षेषु भवपि ज्ञातव्या ।
एकादशोऽपि गणधराः, नवगणा अपि तस्य एवमेव ।)

इस प्रकार दशों क्षेत्रों में तीर्थ की उत्पत्ति होगी-यह जानना चाहिए। इसी प्रकार (भ० महावीर के धर्मतीर्थ के समान) उन तीर्थंकर महापद्म के भी ग्यारह गणधर और ९ गणधर होंगे ।११०२

सोहि, यसं, सब्भावो, ववहारो अगरुया खमा सच्चं ।
आउग उच्चत्ताइं, दससु वि वासेसु वड्ढंति ।११०३।
(शोधिः यशः सद्भावः व्यवहारश्च अगुरुता क्षमा सत्यम् ।
आयुः उच्चत्वादीनि दशस्वपि वर्षेषु वर्धन्ते ।)

तदनन्तर उस काल में शोधि (सब प्रकार की शुद्धता), यश-कीर्ति, सद्भाव अथवा आगमज्ञान, व्यवहार, अगुरुता (निरभिमानता), क्षमा, सत्य, आयु और देह की ऊँचाई—ये सब चीजें दशों क्षेत्रों में उत्तरोत्तर बढ़ती रहेंगी ।११०३।

चन्दसमा आयरिया, खीरसमुद्दोवमा उवज्झाया ।
साहु साहुगुणावि य, समणीओ समिय पावाओ ।११०४।
चन्द्रसमा आचार्याः क्षीरसमुद्रोपमा उपाध्यायाः ।
साधवः साधुगुणा अपि च श्रमण्यस्तु शमित पापाः ।)

उस समय आचार्य चन्द्रमा के समान सौम्य, शीतल, सुखद, उपाध्याय क्षीर सागर के समान अगाध ज्ञान-गुणसम्पन्न, साधु सभी श्रेष्ठ गुणों के धारक, श्रमणियां निष्पाप—विशुद्ध—।११०४।

ससिलेहव्व पवित्तिणि, अम्मापियरो य देवय समाणा ।
माइसमा विय साहू, सुसरावि य पितिसमा हु तया ।११०५।
(शशिलेखेव प्रवर्तिनी, अम्बापितरौ च दैवतसमानौ ।
मातृसमापि च श्वश्रू, श्वशुरा अपि च पितृसमाहुः तदा ।)

प्रवर्तिनियां चन्द्रलेखा के समान, माता-पिता देवदम्पती तुल्य, सास माता के समान ममतामयी और श्वसुर पिता तुल्य स्नेह मूर्ति होंगे ।११०५।

धम्माधम्म विहिन्नू, विणयत्त सच्च सोय संपण्णो ।
गुरुसाहुपूयरओ, सदार निरतो जणो तइया ।११०६।
धर्माधर्मविधिज्ञः, विनयत्वसत्यशौचसम्पन्नः ।
गुरुसाधुपूजारतः, स्वदारनिरतः जनः तदा ।)

उस समय के मानव धर्म तथा अधर्म के भेद को भली-भांति जानने वाले, विनय, सत्य एवं शौच सम्पन्न, गुरु और साधु जनों की पूजा में तत्पर और स्वदार संतोषी होंगे ।११०६।

अच्छइ य सविण्णाणो, धम्मे य जणस्स आयरो तइया ।
विज्जा पुरिसा, पुज्जा, वरिज्जइ कुलं च शीलं च ।११०७।
(अच्छति च सविज्ञानः, धर्मे च जनस्य आदरस्तदा ।
विद्यापुरुषाः, पूज्याः, वरीय ते कुलं च शीलं च ।)

उस समय के लोग विज्ञान सम्पन्न और धर्म के प्रति आदर भाव रखने वाले होंगे । उस समय विद्यासम्पन्न पुरुषों का पूजा-सत्कार किया जायगा और कुल तथा शील को सर्वाधिक महत्त्व दिया जायगा ।११०७।

एवं कुसुमसमिद्धे, जणवय देसंमि विहरइ भगवं ।
नवसु वि वासे सेवं, विहरंति जिणा जिणा विंति ।११०८।
(एवं कुसुमसमृद्धे, जनपद-देशे विहरति भगवान् ।
नवस्वपि वर्षेष्वेवं, विहरन्ति जिनाः (इति) जिनाः ब्रुवन्ति ।)

इस प्रकार फूलों से लहलहाते हुए जनपदों में भगवान् महापद्म विचरण करेंगे । शेष ९ क्षेत्रों में भी जिनेश्वर इसी प्रकार विचरण करेंगे—ऐसा जिनेश्वर फरमाते हैं ।११०८।

सुबहुहिं केवलिहिं य, मणपज्जेवओहि नाण इड्ढीहिं ।
समणगण संपरिवुडा, विहरंति जिणा तिहुयणिंदा ।११०९।
(सुबहुभिः केवलिभिश्च, मनःपर्यवावधि ज्ञान-ऋद्धिभिः ।
ण संपरिवृताः, विहरन्ति जिनाः त्रिभुवनेन्द्राः ।)

बहुत से केवलियों, मनःपर्यवज्ञान और अवधिज्ञान की ऋद्धि से सम्पन्न श्रमणों के समूह से परिवृत्त--सेवित वे त्रिभुवननाथ तीर्थंकर (अपने अपने क्षेत्रों में) विचरण करेंगे।११०९।

वड्ढति जणवयवंसो,* नलिणिकुमार रायवंसो उ ।
सब्भावो वि य वड्ढति, एवं कालाणुभावेण ११११०।
(वर्द्धते जनपदवंशः, नलिनीकुमार राजवंशस्तु ।
सद्भावोऽपि च वर्द्धते, एवं कालानुभावेन ।)

इस प्रकार उत्सर्पिणी काल के ऊर्ध्वगामी वर्द्धमान काल प्रभाव से, जनपदों की संख्या-श्री-समृद्धि नलिनी कुमार का राजवंश और सद्भाव (आगमज्ञान-सम्यग्ज्ञान) की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होगी।१११०।

निट्ठविय कम्मजालो, कत्तियबहुलस्स चरम रातीए ।
सिज्झिहिति नाम पउमो, अण्णाए पावा नगरीए ।१११११।
(निष्ठापित कर्मजालः, कार्तिकबहुलस्य चरम रात्रौ ।
सेत्स्यति नाम पद्मः, अन्यायां अपापा नगर्याम् ।)

अन्त में जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के आगामी उत्सर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर महापद्म कार्तिक की मास के कृष्णपक्ष की अन्तिम रात्रि में शेष अघाती चार कर्मों के जाल को भी पूर्णतः समाप्त कर अपर अपापा नगरी में सिद्ध, बुद्ध एवं मुक्त होंगे।१११११।

नवसु वि वासे सेवं, सिद्धत्थादीय जिणवरिंदाउ ।
साइंमि जोग-जुत्तो, कत्तियबहुलस्स अंतम्मि ।१११२।
(नवस्वपि वर्षेष्वेवं, सिद्धार्थादयश्च जिनवरेन्द्रास्तु ।
स्वातौ योगयुक्ते, कार्तिकबहुलस्य अन्ते ।)

इसी प्रकार ढाई द्वीप के शेष चार भरत तथा पांच ऐरवत--इन ९ क्षेत्रों में भी सिद्धार्थ आदि उत्सर्पिणी काल के ९ प्रथम तीर्थंकर

---

* आहोर ग्रामस्थ श्री राजेन्द्रसूरि ग्रन्थागारादुपलब्ध प्रतौ तु 'वड्ढति जिणवयणवंसो"—इति पाठः विद्यते ।

भी कार्तिक मास के कृष्णपक्ष की अन्तिम रात्रि में चन्द्र का स्वाति नक्षत्र के साथ योग होने पर सिद्ध अर्थात् संसार से मुक्त होंगे ।१११२।

[आहोर मे प्राप्त प्रति में ऊपर को गाथा का अन्तिम अर्द्ध भाग और यह गाथा लिपिक के प्रमाद से छूट गई है और इसके परिणाम स्वरूप आगे की बहुत सी गाथाओं में पूर्व की गाथा के साथ आगे की गाथाओं के अन्तिम भाग जोड दिए गए हैं ।]

एसा उ मते (ए) भणिता, पउम जिणिंदस्स संकहा पुण्णा ।
एत्तो परं तु जाणह, जिणंतरा चेव पडिलोमे ।१११३।
(एषा तु मया भणिता, पद्मजिनेन्द्रस्य संकथा पुण्या ।
इतः परं तु जानीहि, जिनान्तराणि चैव प्रतिलोमानि ।)

यह मैंने भगवान् महाद्म तीर्थंकर को पवित्र कथा का कथन किया । इसके पश्चात् प्रवर्तमान अवसर्पिणी काल के २४० तीर्थंकरों का अन्तर काल है उसी को प्रतिलाम (उल्टे क्रम) से आगामी उत्सर्पिणी काल के २४० तीर्थंकरों का अन्तराल-काल समझना चाहिए ।१११३।

ते चेव जंम रिक्खा, ते वि य मासा तिही उ ता चेव ।
आउग उच्चत्ताइं, वन्ना रुक्खा वि ते चेव ।१११४।
(ते चैव जन्म-ऋक्षाः, तेऽपि च मासाः तिथयस्तु ताश्चैव ।
आयु उच्चत्वादिनि, वर्णाः वृक्षा अपि ते चैव)

प्रवर्तमान अवसर्पिणी काल के २४० तीर्थंकरों के जो जन्म (च्यवन, जन्म, अभिनिष्क्रमण, केवल-ज्ञान, तीथ-प्रवर्तन, मोक्षगमन) आदि के नक्षत्र; मास और तिथियां उनकी आयु, शरीर की लम्बाई, शरार केवर्ण एवं चैत्य वृक्ष आदि थे—वे ही आगामी उत्सर्पिणी काल २४० तीर्थंकरों के भी होंगे ।१११४।

नवरं पडिलोमाइं, तित्थोगालीए वीर भणियाइं ।
तित्थगरे आगमिस्से, नाम नामेहि केत्तेहि ।१११५।

(नवरं प्रतिलोमानि, तीर्थोद्गालिकेवीर भणितानि ।
तीर्थंकरान् आगमिष्यतः नाम नामभिः कीर्तयिष्यामि ।)

इस अवसर्पिणी काल के २४० तीर्थ करों के अन्तराल, आयु उत्सेध आदि का जो अनुक्रमशः वर्णन किया गया है, जिनेश्वर महावीर ने व्यतिक्रम अर्थात् प्रतिलोमात्मक अनुक्रम से वही अन्तर आयु उत्सेध आदि आगामी उत्सर्पिणी काल की दश चौवीसियों के तीर्थंकरों का भी तीर्थ-ओगाली (प्रवाहों) में बताया है। अब मैं आगामी उत्सर्पिणी काल के तीर्थङ्करों का नामस्मरण-पूर्वक कीर्तन करूँगा ।१११५।

महा पउमे हिय सुरदेवे सुपासे य सयंपभे ।
सव्वाणुभूति अरहा, देवगुत्तो य होहिहि ।१११६।
(महापद्मः हि च सुरदेवः सुपार्श्वश्च स्वयं प्रभः ।
सर्वानुभूति अर्हत्, देवगुप्तश्च भविष्यति ।)

महापद्म (१) सुरदेव (२), सुपार्श्व (३), स्वयंप्रभ (४), सर्वानुभूति जिन (५) देवगुप्त (६) और--।१११६।

उदग पेढाल पुत्ते य पोट्टिले सत्त गीत्तिय ।
मुणिसुव्वते य अरहा सत्वभाव विउजिणे ।१११७।
(उदकः पेढालपुत्रश्च, प्रोट्टिलः शतकीर्तिश्च ।
मुनि सुव्रतश्च अर्हत्, सर्वभावविदो जिनाः ।)

उदक (७), पेढाल पुत्र (८) पोट्टिल (९), शतकीर्ति (१०), मुनि सुव्रत अर्हंत (११)—ये त्रिकालवर्ती भावों को देखने जानने वाले जिनेश्वर--।१११७।

अममे णिक्कसाए य, निप्पुलाए य निम्ममे ।
चित्तगुत्ते समाही य, आगमिस्साए ते होहिति ।१११८।
(अममः निष्कषायश्च, निष्पुलाकश्च निर्ममः ।
चित्रगुप्तः समाधिश्च, आगमिष्यायां भविष्यन्ति ।)

अमम (१२), निष्कषाय (१३), निष्पुलाक (१४), निर्मम (१५) चित्रगुप्त (१६), समाधि (१७)—ये आगामी चौबीसी के तीर्थंकर तथा--।१११८।

संवरे अणियत्ती य, विवागे विमलित्ति य ।
देवोववायए अरहा, समाहिं पडिदिसंतु मे ।१११९।
(संवरः अनिवर्ती च विपाकः* (विजयः) विमल इति च ।
देवोपपातक अर्हत्, समाधिं प्रतिदिशंतु मे ।)

संवर (१८), अनिवर्ती (१९), विपाक (विजय) (२०), विमल (२१), देवोववाए (देवोपपातक) (२२), (हमें समाधि प्रदान करें)--१११९।

अणंतविजए तियए, एतेवुत्ता चउव्वीसं ।
भरहे वासंमि केवली, आगमेस्साए होहिंति ।११२०।
। धम्मतित्थस्स देसगा ।♣

---

* समवायांगे तु विजय: इति पाठः ।

♣ अशुद्धयामिमायां गाथायां छन्दोभंग सुव्यक्त एव । तथापि गाथेयं विचारणीया परममहत्त्वपूर्णा च प्रति भाति । भरते भावी चतुर्विंशत्याः यानि नामानि समवायांगे समुल्लिखितानि सन्ति । समवायांगस्थानां गाथानां समीचीनतया पर्यालोचनानन्तरं सुस्पष्टमनुभूयते यत्तासु गाथासु चतुर्विंशति जिनानां स्थाने त्रयोविंशतीनामेव जिनानां नामानि लिखितानि सन्ति । नामस्य तथा संख्यायाः पूर्ति हेतोः समवायांगस्थायाः त्रिंसप्तति संख्यकायां गाथायां उत्तरार्द्धं पूर्त्यर्थमवकाशमस्तीत्यवधार्य 'सव्वभाव-विऊजिणे" इत्यन्तिमचरणस्य—'सर्वभावविदो जिनाः'—इति स्पष्टार्थं विहाय "सर्वभावित जिनः' इत्यर्थो कल्पितः प्रतीयते ।

'तीर्थोद्गालिक प्रकीर्णकस्य' विवेच्य गाथायां भाविनः चतुर्विंशतितमस्य जिनस्य 'तिव्वये' अथवा 'तियए' इति नाम दत्तं स्यादित्याशङ्क्यते । दृष्ट्यानया विदुषां विचारणीयैषा गाथा महत्त्वपूर्णा प्रतिभाति ।

आहोर ग्रामस्थ राजेन्द्र सूरि ग्रन्थागारात् प्राप्त प्रतावपि पूर्वोल्लेखानुसारतः लिपिकेन सार्द्धंका गाथा न लिखितेति स्पष्टमेव प्रतीयते । फलतश्च कतिपय गाथासु पूर्वार्द्धमेकाया गाथायाः परार्द्धञ्च अपरयाः गाथायाः विद्यते । तस्यां 'अणंतविजय तया"—इति पाठः वर्तत ।

१११९ संख्यकायाः गाथायाः "समाधि प्रतिदिसतु मे"—इति चतुर्थ चरणस्थाने यदि "अणंत विजह तियए' एतादृशः पाठो यदि विधीयते तदा चेयं गाथा सुपाठ्या भवत्येवम् :—

एते वुत्ता चउव्वीसं, भरहे वासम्मि केवली ।
आगमेस्साए होहिंति, धम्मतित्थस्स देसगा ।११२०।

(अणंत विजय त्रियक् (?), एते उक्ता चतुर्विंशतिः ।
भारते वर्षे केवलिनः, आगमिष्यायां भविष्यन्ति ।
। धर्मतीर्थस्य देशका ।)

अनन्त विचय (२३) और तियए [त्रियक् ?] (२४)- ये आगामी उत्सर्पिणी काल में भरत क्षत्र में चौबीस धर्मतीर्थ के उपदेशक अथवा प्रवर्तक तीर्थंकर होंगे ।११२०।

एत्तो परंतु वोच्छं, तित्थगराणं तु नाम संखेवं ।
एरवते आगमिस्से, सिरसा वंदित्तु कित्तेहं ।११२१।
(इतः परं तु वक्ष्ये, तीर्थकराणां तु नाम संक्षेपम् ।
ऐरवते आगामीनां, शिरसा वन्दित्वा कीर्तयिष्येऽहम् ।)

अब इससे आगे मैं आगामी उत्सर्पिणी काल के ऐरवत क्षेत्र में होने वाले तीर्थंकरों को शिरः नमनपूर्वक वन्दन कर नामस्मरण के साथ संक्षेपतः कीर्तन करूँगा ।११२१।

सिद्धत्थे पुण्ण घोसेय, महाघोसे य केवली ।
सुयसागरे य अरहा, समाहिं पडिदिसंतु मे ।११२२।
(सिद्धार्थः पुण्यघोषश्च, महाघोषश्च केवली ।
श्रुतसागरश्च अर्हत्, समाधिं प्रतिदिशंतु मे ।)

सिद्धार्थ (१), पुण्य घोष (२), केवली महाघोष (३) अर्हत् श्रुतसागर (४) मुझे समाधि प्रदान करें ।११२२।

सुमंगले अत्थसिद्धे य, निव्वाणे य महाजसे ।
धम्मज्झाए य अरहा, समाहिं पडिदिसंतु मे ।११२३।
(सुमंगलोऽर्थसिद्धश्च, निर्वाणश्च महायशः ।
धर्मध्यातश्च अर्हत्, समाधिं प्रतिदर्शयंतु मे ।)

सुमंगल (५), अर्थसिद्ध (६), निर्वाण (७), महायश (८), धर्मध्यात (९) अर्हत् मुझे समाधि प्रदान करें ।११२३।

सिरिचंदे दढकेतू, महाचंदे य केवली ।
दीहपासे य अरहा, समाहिं पडिदिसंतु मे ।११२४।

(श्रीचन्द्रः दृढकेतुश्च, महाचन्दश्च केवली।
दीर्घपार्श्वश्च अर्हत्, समाधिं प्रतिदिशन्तु मे ।)※

श्रीचन्द्र (१०), दृढकेतु केवली (११), महाचन्द केवली (१२), अर्हत् दीर्घपार्श्व (१३), मुझे समाधि प्रदान करें।११२४।

सुव्वए य सुपासे य, अरहाय सुकोसले ।
अणंत पासी य अरहा, समाहिं पडिदिसंतु मे ।११२५।
(सुव्रतश्च सुपार्श्वश्च, अर्हच्च सुकौशलः ।
अनन्त पासी (द्रष्टा) च अर्हत्, समाधिं प्रतिदर्शयंतु मे ।)

सुव्रत (१४), अर्हत् सुपार्श्व (१५), सुकोशल (१६), अर्हत् अनन्त पासी (१७), मुझे समाधि प्रदान करें।११२५।

[एषैव गाथा प्रतौ लिपिकप्रमादेनः समुल्लिखिता वर्तते]

[११२६ गाथांक में यही गाथा लिपिक दोष से पुनः लिख दी गई है—११२६।—]

विमले उत्तरे चेव, अरहा य महाबले ।
देवाणंदे य अरहा, समाहिं पडिदिसंतु मे ।११२७।०

※ समवायांगे तु गाथायामिमायां निर्दिष्टानि तीर्थकृतां नामानि निम्नरूपेण समुल्लिखितानि सन्तिः—

सिरिचंदे पुप्फकेऊ, महाचंदे य केवली ।
सुयसायरे य अरहा, आगामिस्साण होक्खई ॥८८॥

० ११२२ तमायाः गाथायाः प्रारभ्य ११२७ तमा पर्यन्ताषु गाथाषु केवलं एकविंशति तीर्थंकराणामेव नामानि समुल्लिखितानि सन्ति । अतः सुस्पष्टमेवैतद्यल्लिपिकेन लेखनकाले न केवलं समग्राः गाथाः एव न लिखिता अपितु गाथानां क्रमेऽपि व्यतिक्रमः कृतः । पाठकानां हितायैतद्विषयकाः समवायांगसूत्रस्था गाथा अत्र समुल्लिख्यन्तेः—

(विमले उत्तरश्चैव, अर्हच्च महाबलः ।
देवानन्दश्च अर्हत्, समाधिं प्रतिदिशन्तु मे ।)

विमल (१८), उत्तर (१९), अर्हत् महाबल (२०) और अर्हत् देवानन्द (२१) मुझे समाधि प्रदान करें ।११२७।

[इन गाथाओं में २४ के स्थान पर केवल २१ तीर्थंकरों के ही नाम हैं। बार-बार दुहराए गए—"समाहिं पडिदिसंतु मे"—इस पद में तीन नाम लुप्त हो गए हैं। आहोर से प्राप्त प्रति में तीसरे तीर्थंकर महाघोष का नाम नहीं है, कि लिपिक की असावधानी से वह नाम नहीं लिखा गया है ।]

एते वुत्ता चउव्वीसं, एरवतंमि य केवली ।
आगमेसाए होहिंति, धम्मतित्थस्स देसगा ।११२८।
(एते उक्ताश्चतुर्विंशति, एरवते च केवलिनः ।
आगामिन्यां भविष्यन्ति, धर्मतीर्थस्य देशकाः ।)

ये जो २४ तीर्थंकर बताये गये है वे आगामी उत्सर्पिणी काल में ऐरवत क्षेत्र में धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले होंगे ।११२८।

सुमंगले य सिद्धत्थे, णिव्वाणे य महाजसे ।
धम्मज्झए य अरहा, आगमिस्साण होक्खई ।८७

सिरिचंदे पुप्फकेऊ, महाचंदे य केवली ।
सुय सागरे य अरहा, आगमिस्साण होक्खई ।८८

सिद्धत्थे पुण्णघोसे य, महाघोसे य केवली ।
सच्चसेणे य अरहा, आगमिस्साण होक्खई ।८९

सूरसेणे य अरहा, महासेणे य केवली ।
सव्वाणंदे य अरहा, देवउत्तेय होक्खई ।९०

सुपासे सुव्वए अरिहा, अरहे य सुकोसले ।
अरहा अणंतविजए, आयमिस्साण होक्खई ।९१

विमले उत्तरे अरहा, अरहा य महाबले ।
देवाणंदे य अरहा, आगमिस्साण होक्खई ।९२

एवं एते वुत्ता, जिण चंदा य केवली ।
एत्तो परं तु वोच्छं, भरहेरवएसु चक्किणो ।११२९।
(एवं एते उक्ताः, जिनचन्द्राश्च केवलिनः ।
इतः परं तु वक्ष्यामि, भरतैरवतेषु चक्रिणः ।)

इस प्रकार इन केवली तीर्थंकरों के सम्बन्ध में कथन किया गया। अब मैं भरत तथा ऐरवत क्षेत्र के चक्रवर्तियों के सम्बन्ध में कथन करूँगा ।११२९।

भरहे य दीहदंते य, गूढदंते य सुद्धदंते य ।
सिरिचंदे सिरिभूमी, सिरिसोमे य सत्तमे ।११२९।
(भरतश्च दीर्घदन्तश्च, गूढ दन्तश्च शुद्धदन्तश्च ।
श्रीचन्द्रः श्रीभूतिः, श्री सोमश्च सप्तमः ।)

भरत, दीर्घदन्त, गूढदन्त, श्रीचन्द्र, श्रीभूति, सातवें श्री सोम—।११२९। (ब)

पउमे य महापउमे, विमले तह विमलवाहणे चेव ।
वरिट्ठे बारममेवुत्तो, भरहपती आगमेस्साए ।११३०।
(पद्मश्च महापद्मः विमलस्तथा विमलवाहनश्चैव ।
वरिष्ठो द्वादशमः उक्तः, भारतपतिः आगमिष्यायाम् ।)

पद्म महापद्म, विमल, विमलवाहन और बारहवें वरिष्ठ ये आगामी उत्सर्पिणी काल में भरत क्षेत्र में (बारह) चक्रवर्ती होंगे ।११३०।

नवसुवि वासे सेवं, बारस बारसय चक्कवट्टीओ ।
एतेसिं तु निहीओ, वोच्छामि समासतो सुण सु ।११३१।

प्रस्तुत प्रतौ अस्यापि गाथाया अग्रे ११२८ संख्यैव समुल्लिखितास्ति ।
समवायांगे तु—'सिरिउत्ते सिरिभूई'—इति पाठः ।
"विमलवाहणे विपुलवाहणे चेव"—इति समवायांग सूत्रे ।

(नवस्वपि वर्षेष्वेवं, द्वादश द्वादश च चक्रवर्तिनः [चक्रवर्तयः]
एतेषां तु निधीन्, वक्ष्यामि समासतः शृणुत ।)

इस प्रकार ढाई द्वीप के पांच ऐरवत और शेष चार भरत—इन ९ क्षेत्रों में भी प्रत्येक में बारह-बारह चक्रवर्ती होंगे। अब मैं इन चक्रवर्तियों की निधियों का संक्षेपतः कथन करूंगा, उसे सुनिये ।११३१।

नेसप्प पंडु पिंगल, सव्वरयणवर तहा महापउमे ।
काले य महाकाले, माणवग महानिही संखे ।११३२।
(नैसर्पः पाण्डुकः पिङ्गलः, सर्वरत्नवर तथा महापद्मः ।
कालश्च महाकालः, माणवकः महानिधिः शंखः ।)

नैसर्प, पाण्डुक, पिङ्गल, सर्वरत्नवर, महापद्म, काल, महाकाल, माणवक और शङ्ख—ये चक्रवर्तियों की ९ निधियां होती हैं ।११३२।

नेसप्पंमि निवेसा, गामागरनगर पट्टणाइं तु ।
दोणमुहमडंबाणं, खंधाराणं गिहाणं च ।११३३।
(नैसर्पे निवेशाः, ग्राम-आकर-नगर-पत्तनानि तु ।
द्रोणमुख-मडम्बानि, स्कन्धावाराणि गृहाणि च)

नैसर्प निधि द्वारा निवेशों, ग्रामों, आकरों, नगरों, पत्तनों, द्रोणमुखों, मडम्बों, स्कन्धावारों और गृहों का (तत्काल) निर्माण किया जाता है ।११३३।

गणियस्स य उप्पत्ती, माणुम्माणस्स जं पमाणं च ।
धण्णस्स य बीयाण य, उप्पत्ती पंडुए भणिया ।११३४।
(गणितस्य च उत्पत्तिः, मान-उन्मानस्य यत् प्रमाणं च ।
धान्यस्य च बीजानां च, उत्पत्तिः पाण्डुके भणिता ।)

पाण्डुक निधि में गणित, मान, उन्मान, परिमाण, धान्य एवं बीज आदि की उत्पत्ति बताई गई है ।११३४।

सव्वाभरण विही, महिलाणं जाय होइ पुरिसाणं ।
आसाण य हत्थीण य, पिंगलग णिहिंमि सा भणिया ।११३५।
(सर्वाभरणविधिः, महिलानां या च भवति पुरुषाणाम् ।
अश्वानां च हस्तीनां च, पिंगलक निधौ सा भणिता ।)

पिङ्गलक निधि में महिलाओं एवं पुरुषों की सभी प्रकार की आभरण सामग्री, अश्वों एवं हाथियों की उपलब्धि होती है ।११३५।

रयणाणि सव्वरयणे, चोद्दसवि पवराइं चक्कवट्टिस्स ।
उप्पज्जंते य एगिंदियाणि, पंचेन्दियाइं च+ ।११३६।
(रत्नानि सर्वरत्ने, चतुर्दशान्यपि प्रवराणि चक्रवर्तिनः ।
उत्पद्यन्ते च एकेन्द्रियाणि, पंचेन्द्रियाणि च ।)

सर्वरत्न निधि में चक्रवर्तियों के चौदहों श्रेष्ठ रत्न उत्पन्न होते हैं, जिनमें से अनेक एकेन्द्रिय एवं कतिपय पंचेन्द्रिय होते हैं।११३६।

वत्थाण य उप्पत्ती, निप्फत्ती चेव सव्वभत्तीणं ।
रंगाण य धोवाण य, सव्वाएसा (सव्वादेसा) महापउमे ।११३७।
(वस्त्राणां चोत्पत्तिः, निष्पत्तिः चैव सर्वभक्तीनाम् ।
रंगानां[रक्तानां]च धौतानां[शुद्धानां], वैआदेशाः महापद्मे ।)

महापद्म निधि में चक्रवर्तियों के लिए सब प्रकार के वस्त्रों: सब प्रकार के भोज्य व्यञ्जनों तथा उनके आदेश अथवा उनके द्वारा इच्छित सभी प्रकार की उपभोग्य वस्तुओं की उत्पत्ति होती है ।११३७।

काले कालण्णाणं, नव्व पुराणं च तीसु वासेसु ।
सिप्पसतं कम्माणि य, तिन्नि पयाए हियकराणि ।११३८।

+ एकेन्द्रियाणि चक्रादीनि सप्त, पञ्चेन्द्रियाणि सेनापत्यादीनि च सप्त ।

(काले [कालनिधौ] कालज्ञानं, नव्यं पुराणं जत्रित्रिषु वर्षेषु= ।
शिल्पशतं कर्माणि च, त्रीणि प्रजायाः हितकराणि ।)

काल नामक निधि में वर्तमान वस्तु विषयों भावी तीन वर्षों के वस्तु विषयों का तथा अतीत तीन वर्षों के वस्तु विषयों का नवीन और पुरातन कालज्ञान तथा प्रजा के लिये हितकारी सैंकड़ों प्रकार के शिल्पों, कृषि वाणिज्यादि कर्मों एवं कालज्ञान की उत्पत्ति होती है ।११३८।

लोहाण य उप्पत्ती, होई महाकाले आगराणं च ।
रुप्पस्स सुवण्णस्स य, मणि मोत्ति सिलप्पवालाणं ।११३९।
(लोहानां च उत्पत्तिः, भवति महाकाले आकराणां च ।
रूप्यस्य स्वर्णस्य च, मणिमौक्तिकशिला [स्फटिक] प्रवालानाम् ।)

महाकाल निधि में सभी प्रकार के लोहों, विविध खनिजों चांदी, सोना, मणि, मौक्तिक, स्फटिक आदि शिलाओं एवं मूंगों (प्रवालों) की उत्पत्ति होती है ।११३९।

सेणाण य उप्पत्ती, आवरणाणं च पहरणाणं च ।
सव्वा य दंडनीति, माणवगे रायनीती य ।११४०।
(सैन्यानां च उत्पत्तिः, आवरणानां [संनाहानां], च प्रहरणानां च ।
सर्वा च दण्डनीतिः, माणवके राजनीतिश्च ।)

चक्रवर्तियों की माणवक नामक निधि में चतुरग सैन्यों, आवरणों (शत्रु के शस्त्रास्त्रों से रक्षा करने वाले तनुत्राणों, कवचों, ढालों, प्रहार करने योग्य सभी शस्त्रों, अस्त्रों, सब प्रकार की दण्ड-नीतियों एवं राजनीति की उत्पत्ति होती है ।११४०।

नट्टविही नाउगविही, कव्वस्स चउ व्विहस्स उप्पत्ती ।
संखे महानिहिम्मि, होइ तुडियंगाणं च सव्वेसिं ।११४१।

= वर्तमानवस्तुविषय, अनागतवर्षत्रयविषयं अतीतवर्षत्रयविषयमित्यर्थः ।
त्रीणि—कालज्ञान-शिल्पशत-कृषिवाणिज्यादिकर्माणि च-इत्यर्थः ।

(नृत्यविधिः नाटकविधिः, काव्यस्य चतुर्विधस्य उत्पत्तिः ।
शङ्खे महानिधौ, भवति तूर्याङ्गाणां [मृदङ्गादीनां] च सर्वेषाम् ।)

चक्रवर्तियों की शङ्ख नामक महानिधि में सब प्रकार के नृत्यों की विधि, नाटकविधि चार प्रकार के काव्यों तथा सभी प्रकार के वाद्य-यन्त्रों की उत्पत्ति होती है ।११४१।

चक्कट्ठपइट्ठाणा, अट्ठुस्सेहा य नव य विक्खंभा ।
बारसदीहा मंजूस, संठिया जाण्हवीइ मुहे ११४२।
(चक्राष्टप्रतिष्ठानाः अष्टौ♣ उत्सेधाः नव च विष्कम्भाः ।
द्वादश दीर्घा मञ्जूषाः, संस्थिताः जाह्नव्याः मुखे ।)

प्रत्येक निधि आठ-आठ चक्रों (पहियों) पर प्रतिष्ठित आठ योजन ऊँची, ९ योजन चौड़ी और बारह योजन लम्बी एक मंजूषा होती है, जो आठ चक्रों (पहियों) पर प्रतिष्ठित और गंगा के मुख में रहती हैं ।११४२।

वेडुलियमणिकवाडा, कणगमया विविहरयणपडिपुण्णा ।
ससि सूर चक्कलक्खणा, अणुसमरयणोववत्तीय* ।११४३।
(वैडूर्यमणिकपाटाः, कनकमयाः विविधरत्नप्रतिपूर्णाः ।
शशिसूर्यचक्रलक्षणा, अनुसम रत्नोपपत्तिकाः)

प्रत्येक निधि के वैडूर्य मणि के कपाट होते हैं। वह स्वर्ण-निर्मित, अनेक रत्नों से परिपूर्ण तथा रत्नों की परस्पर पूर्णतः समान पत्तियों (चित्र पंक्तियों) से चित्रित होती है ।११४३।

पलितोवम ठिईया, निहिसरिनामा य तेसु खलु देवा ।
तेसिं ते आवासा, मणहर गुणरासि संपण्णा** ।११४४।

♣ योजनानीति शेषः ।

* "अणुसमजुगबाहुवयणा य" स्थानांगसूत्र, स्थान ९ । अनुसमा अविषमाः (जुगत्ति) यूपः तदाकारा वृत्तत्वाद्दीर्घत्वाच्च बाहवो द्वारशाखा वदनेषु मुखेषु येषां ते तथा —इति अनुसमयुगबाहुवदनाः ।

** स्थानाङ्गे तु—"जेसिं ते आवासा, अक्केया आहिवच्चं च ।।" अर्थात् येषा ते आवासाः । किं भूतास्ते देवाः ? अक्रेयाः—अक्रयणीयाः, आधिपत्यं स्वामित्वं च तेषु येषां देवानामित्यर्थः ।

(पल्योपम स्थितिकाः, निधिसदृशनामानश्च तेषु खलु देवाः।
तेषां ते आवासाः, मनोहर गुणराशिसंपन्नाः ।)

एक पल्योपम की आयु वाले तथा उन निधियों के समान नाम वाले देवता उन निधियों में रहते हैं। मनोहर गुणराशियों से सम्पन्न वे निधियां ही उन देवों के आवास होती है।११४४।

एए ते नवनिहिओ, पभूयधणकणगरयणपडिपुण्णा ।
अणुसमयमणुव्वयंति, चक्कीणं सतत कालंमि * ।११४५।
(एते ते नवनिधयः, प्रभूतधनकनकरत्नप्रतिपूर्णाः ।
अनुसमयमनुव्रजन्ति, चक्रीन् सतत काळे ।)

ये, वो नौ निधियां हैं जो विपुल धन स्वर्ण रत्नादि से परिपूर्ण रहती हैं। ये नौ निधियां चक्रवर्ती के सम्पूर्ण चक्रवर्तित्व काल में प्रतिक्षण चक्रवर्ती का अनुगमन करती हैं।।११४५

आउग उच्चत्ताइं, वण्णा रिद्धी य गति विसेसाइं ।
ओसप्पिणी इमीसे, समाइं जा बंभदत्ताइं ।११४६।
(आयु-उच्चत्वादि वर्णाः रिद्धयश्च गति विशेषाणि ।
अवसर्पिण्यामिमायां समानानि यावत ब्रह्मदत्तः ।)

प्रवर्तमान अवसर्पिणी काल में प्रथम चक्रवर्ती भरत से लेकर अन्तिम चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त के चक्रित्व काल तक इन ९ निधियों को आयु ऊंचाई, वर्ण, ऋद्धि और गति आदि विशिष्टताएं समान रहती है।।११४६

एवं एते वुत्ता, कित्तीपुरिसाउ चक्किणो सव्वे ।
एत्तो परं तुवोच्छं, दसार वंसुब्भवा जेउ ।११४७।
(एवं एते उक्ताः, कीर्तिपुरुषास्तु चक्रिणः सर्वे ।
इतः परं तु वक्ष्यामि, दशार्हवंशोद्भवाः ये तु ।)

* स्थानांगे तु—"जे वसमुव गच्छंती, सव्वेसि चक्कवट्टीणं ।" इति पाठः। द्वितीय चरणो 'कणग' शब्दस्याप्य भावः।

इस प्रकार कीर्तिशाली पुरुषों—सब चक्रवर्तियों के सम्बन्ध में कथन किया गया । अब मैं उन कीर्तिपुरुषों के विषय में कथन करूंगा जो कि दशार्हवंश में उत्पन्न होंगे ।११४७।

नंदी य नन्दिमित्तो, सुन्दरबाहू य तह महाबाहू ।
अइबल महब्बले य, भद्दविण्हु विट्ठूति विट्ठू य ।११४८।
(नंदिश्च नन्दिमित्रः, सुन्दरबाहुश्च तथा महाबाहुः ।
अतिबलमहाबलश्च, भद्र-विष्णुद्विपृष्ठस्त्रिपृष्ठश्च ।)

नन्दी, नन्दिमित्र, सुन्दरबाहु, महाबाहु, अतिबल, महाबल, भद्र, द्विपृष्ठ और त्रिपृष्ठ—ये ९ वासुदेव अर्थात् त्रिखण्डाधिपति अर्द्ध-चक्री आगामी उत्सर्पिणी काल में जम्बूद्वीप के भरतक्षत्र में होंगे ।११४८।

जयंत विजये भद्दे, सुप्पभे सुदरिसणे य बोधव्वे ।
आणंदे नंदणे पउमे रामा संकरिसणे चेव ।११४९।
(जयन्तः विजयः भद्रः सुप्रभः सुदर्शनश्च बौद्धव्याः ।
आनन्दः नन्दनः पद्मः, रामाः संकर्षणश्चैव ।)

जयन्त, विजय, भद्र, सुप्रभ, सुदर्शन, आनन्द,नन्दन, पद्म और संकर्षण – ये ९ (उपरिचर्चित वासुदेवों के ज्येष्ठ भ्राता) बलराम होंगे ।११४९।

एतेसिं तु नवण्हं, पडिसत्तू चेव तत्तिया जाणे ।
गरुय पडिवक्ख महणा तेसिं नामाणि मे सुणह ।११५०।
(एतेषां तु नवानां, प्रतिशत्रवश्चैव तावन्तः जानीहि ।
गुरु प्रतिपक्ष महान्तः, तेषां नामानि मे शृणुत ।)

उन ९ वासुदेवों के उतने ही अर्थात् ९ प्रतिशत्रु (प्रतिवासुदेव) होंगे । वे भी महा पराक्रमशाली एवं महान् होंगे । मुझ से उनके नाम सुनिये :—।११५०।

तिलए य जंघलोहे य, वइरजंघे य केसरी चेव ।
पहराए अपराजिय, भीम महाभीम सुग्गीवे ।११५१।

(तिलकश्च जंघलोहश्च, वज्रजंघश्च केशरी चैव ।
प्रहरको ऽपराजितः, भीमः महाभीमः सुग्रीवः ।)

तिलक, लोहजङ्घ, वज्रजङ्घ, केशरी, प्रहरक, अपराजित, भीम, महाभीम और सुग्रीव—।११५१।—

एते खलु पडिसत्तू, कित्ती पुरिसाण वासुदेवाणं ।
सव्वे विचक्क जोही, सव्वे वि हता सचक्केहिं= ।११५२।
(एते खलु प्रतिशत्रवः, कीर्तिपुरुषाणां वासुदेवानाम् ।
सर्वेऽपि चक्रयोद्धारः, सर्वेऽपि हताः स्वचक्रैः ।)

कीर्तिपुरुष वासुदेवों के ये ६ प्रतिशत्रु होंगे और अपने ही चक्रों द्वारा मारे जायेंगे ।११५२।

एवं एते भणिता, उस्सप्पिणीए उ उत्तमा पुरि ।।
गरुय परक्कमपयडा, सम्मदिट्ठी चउप्पण्णं ।११५३।
(एवमेते भणिता, उत्सर्पिण्यास्त्वुत्तमाः पुरुषाः ।
गरुत् पराक्रमप्रकटाः, सम्यग्दृष्टयश्चतुःपञ्चाशत् ।)

इस प्रकार आगामी उत्सर्पिणी काल में जो कीर्तिपुरुष होंगे, उनका कथन किया गया । वे चौवन कीर्तिपुरुष सर्वतः विख्यात, महा पराक्रमी और समदृष्टि होंगे ।११५३।

तेसीतिलक्ख णवणउति. सहस्सा नवमता य पणनउया ।
(वासा) मासा सत्तट्ठमा, दिणा य, धम्मो चउ समाए ।११५४।
(त्र्यशीतिलक्ष नवनवति सहस्रा नवशताश्च पंचनवतिः ।
(वर्षाः) मासा सप्त अर्द्धाष्टम, दिनाश्च धर्मश्चतुः समायां ।)

तिरासी लाख निन्यानवे हजार नौ सौ पच्यानवें (पूर्वांग ?) साढे सात मास और आठ दिन तक आगामी उत्सर्पिणी काल के

= समवायांगे तु "सव्वे वि चक्कजोही, हम्मिहिंति सचक्केहिं ।" अर्थात् सर्वेऽपि चक्रयोद्धारः हनिष्यन्ते-घानिष्यते व स्वचक्रैः । भावी प्रतिवासुदेवेभ्यः भविष्यत्कालक्रिया प्रयोग एव समीचीनः ।

सुषम-दुःषम नामक चतुर्थ आरक में धर्म (धर्माचरण) विद्यमान रहेगा। (तदनन्तर धर्मचरण रहित यौगलिक भोगयुग का प्रादुर्भाव-होगा।)।११५४।

[स्पष्टीकरण:-- ८३, ९९ ९९५-पूर्व हैं या पूर्वांग अथवा वर्ष—यह विचारणीय है। इस प्रश्न पर विचार करते समय ध्यान में रखना होगा कि इस अवसर्पिणी के सुषम-दुःषम आरक के ८४ लाख पूर्व, ३ वर्ष और साढे आठ मास शेष रहने पर भगवान् ऋषभदेव का जन्म हुआ। २० लाख पूर्व तक वे कुमारावस्था में रहे। ६३ लाख पूर्व तक उन्होंने राज्य किया, १ लाख पूर्व तक साधक जीवन व्यतीत किया, १ हजार वर्ष कम १ लाख पूर्व तक वे तीर्थेश्वर रहे और इस प्रकार सुषम-दुःषम आरक की समाप्ति १००३ वर्ष साढ़े आठ मास कम एक लाख पूर्व (काल) पहले ही धमतीर्थ का प्रवर्तन हो चुका था।

जाव य पउमजिणिंदो, जाव य विजओ वि जिणवरो चरिमो।
इय सागरोवमाणं कोडा कोडी भवे कालो※ ११५५।
(यावच्च पद्मजिनेन्द्रः, यावच्च विजयोऽपि जिनवरश्चरमः।
एवं सागरोपमानां कोट्याकोटिः भवेत् कालः।)

आगामी उत्सर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर महापद्म से अन्तिम (२४ वें) तीर्थंकर भगवान् विजय तक एक कोटाकोटि सागरोपम काल होता है।११५५।

[स्पष्टीकरण:—भगवान् ऋषभदेव से महावीर के निर्वाण तक का काल ४२ हजार वर्ष कम एक कोटाकोटि सागरोपम और ८४ लाख पूर्व था—इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए यह गाथा भी विचारणीय है।]

उस्सप्पिणी इमीसे, दूसम सुसमा उ वण्णिया एसा।
अरगो य गतो तइयो, चउत्थमरगं तु वोच्छामि।११५६
(उत्सर्पिण्या इमायाः, दुःषम-सुषमा तु वर्णिता एषा।
आरकश्च गतः तृतीयः, चतुर्थमारकं तु वक्ष्यामि।)

※ ताराङ्किते द्वे ऽपि (११५४—५५) गाथे विचारणीये।

आगामी उत्सर्पिणी काल के दुःषम-सुषम आरक का यह वर्णन किया गया। तृतीय आरक का कथन समाप्त हुआ। अब मैं उत्सर्पिणी काल के सुषम-दुःषम नामक चतुर्थ आरक के सम्बन्ध में कथन करता हूँ।११५६।

पलितोवम लोहड्ढ (?) परमाउं होइ तेसि मणुयाणं।
उक्कोस चउत्थीए, पवड्ढमाणाउ रुक्खादी।११५७।
(पल्योपमं साद्धं (?) परमायुः भवति तेषां मनुष्याणाम्।
उत्कर्ष चतुर्थ्यां, प्रवर्द्धमानास्तु वृक्षादयः।)

उन (सुषम-दुःषम आरक के) मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु एक पल्योपम होती है। ज्यों ज्यों इस चतुर्थ आरक का समय व्यतीत होता जाता है त्यों त्यों कल्पवृक्ष आदि बढ़ते – वृद्धिगत रहते हैं।११५७।

जह जह वड्ढइ कालो, तह तह वड्ढंति कप्परुक्खादी।
एकं गाउगमुच्चा, नर नारी रूव संपण्णा।११५८।
(यथा यथा वर्द्धते कालस्तथा तथा वर्द्धन्ते कल्पवृक्षादयः।
एकं गाउकमुच्चा, नरनार्यः रूपसंम्पन्नाः।)

ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है, त्यों त्यों कल्पवृक्षादि की वृद्धि होती रहती है। एक गाउ (माप विशेष क्रोश) की ऊंचाई वाले उस समय के नर-नारीगण बड़े रूप सम्पन्न होते हैं।११५८।

मूलफलकंदनिम्मल, नाणा विह इट्ठगंध रस भ ई।
ववगतरोगातंका, सुरू य सुर दुंदुहि थणिया।११५९।
(मूलफलकंदनिर्मल, नानाविधेष्टगंधरसभोजिनः।
व्यपगत रोगातंकाः, सुरूप-सुरदुंदुभिस्तनिताः।)

उस आरक के मानव अनेक प्रकार के सुगन्धित गन्ध रस वाले निर्मल कन्द-मूल-फलों का उपभोग करने वाले, रोग अथवा आतंक विहीन, सुन्दर रूप-सम्पन्न और देवदुन्दुभि के निर्घोष के समान मधुर स्वर वाले होते हैं।११५९।

सच्छंद वण विहारी, ते पुरिसा ताय होंति महिलाउ ।
निच्चोउयपुप्फफला, ते विय रुक्खा गुणसमिद्धा ।११६०।
(स्वच्छन्दवनविहारिणः, ते पुरुषास्ताश्च भवन्ति महिलास्तु ।
नित्य र्तुक पुष्पफलाः, तेऽपि च वृक्षाः गुणसमृद्धाः ।)

उस समय के नर एवं नारी-गण वनों में यथेच्छ विचरण करने वाले तथा कल्पवृक्ष भी सदा सब ऋतुओं के फलों से और गुणों से समृद्ध होते हैं ।११६०।

कोड़ा कोडी कालो, दो चेव य होंति सागराणं तु ।
सुसम दुसमा एसा, चउत्थ अरगम्मि अवक्खाया ।११६१।
(कोटा-कोटी कालः द्वौ चैव च भवति सागरयोस्तु ।
सुःषम दुःषमा एषा, चतुर्थ आरके अवख्याता ।)

उत्सर्पिणी काल के उस चतुर्थ आरक में दो कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण काल होता है और वह सुषम-दुःषमा के नाम से विख्यात है ।११६१।

एत्तो परं तु वोच्छं, सुसमाए किंचि एत्थ उद्देसं ।
जह होइ मणुय तिरियाण, कप्परुक्खाण य वुड्ढीओ ।११६२।
(इतः परं तु वक्ष्यामि, सुषमायाः किंचिदत्रोद्देशं ।
यथा भवति मनुज तिर्यञ्चानां, कल्पवृक्षाणां च वृद्धयः ।)

अब मैं यहां आगामी उत्सर्पिणी काल के सुषम नामक आरक में जिस प्रकार मनुष्यों, तिर्यञ्चों और कल्पवृक्षों की वृद्धि होती है, उसके सम्बन्ध में कुछ कथन करूँगा ।११६२।

जह जह वड्ढइ कालो, तह तह वड्ढंति आउ दीहादी ।
उवभोगा य नराणं, तिरियाणं चेव रुक्खे सु ।११६३।
(यथा यथा वर्धते कालः, तथा तथा वर्द्धन्ते आयु दीर्घतादि ।
उपभोगाश्च नराणां, तिर्यञ्चानाञ्चैव वृक्षेषु ।)

ज्यों ज्यों काल आगे की ओर बढ़ता है, त्यों त्यों इन सब की आयु; दीर्घता आदि तथा मनुष्यों एवं तिर्यञ्चों के वृक्षों में उपभोग बढ़ते रहते हैं।११६३।

अणिगणि दीवसिहा तुडियंगा, भिंग कोवीणे उदुसुहा चेव ।
आमोदा य पमोदा, चित्तरसा (पत्थ)♣ कप्परुक्खा य ।११६४।
(अनग्नाः दीपशिखाः त्रुटितांगाः, भिङ्गाः कोपीना ऋतुसुखा चैव ।
आमोदाश्च प्रमोदाः, चित्ररसाः प्रस्थाः कल्पवृक्षाश्च ।)

अनग्ना दीपशिखा, त्रुटितांग भृंग, कोपीना, ऋतुसुखा, आमोदा, प्रमोदा चित्ररस और प्रस्थ--ये दस प्रकार के कल्पवृक्ष उस समय में होते हैं।११६४।

वत्थाइं अणिगणेसुं, दीवसिहा तह करेंति उज्जोयं ।
तुडियंगेसु उ गेज्झं, भिंगेसु य भायण विहीओ ।११६५।
(वस्त्रादि अनग्नेषु, दीपशिखाः तथा कुर्वन्ति उद्योतम् ।
त्रुटितांगेषु च गेयं, भृंगेषु च भाजन विधयः ।)

उस समय के मनुष्यों को अनग्ना नामक कल्पवृक्षों से वस्त्रादि, दीपशिखा नामक कल्पवृक्षों से प्रकाश, त्रुटितांगों से संगीत, भृंग नामक कल्पवृक्षों से सब प्रकार के भाजन पात्रादि—।११६५।

कोवीणे आभरणं, उदुसुहे भोग वण्णग विहीओ ।
आमोएसु य वज्जं, मल्ल विहीउ पमोए सु ।११६६।
(कोपीने आभरणानि, ऋतुसुखेषु भोगवर्णक विधयः ।
आमोदेषु च वाद्यानि, मल्लविधयः प्रमोदेषु ।)

कोपीन नामक कल्पवृक्षों से आभरणालंकार, ऋतुसुख नामक कल्पवृक्षों से विविध भोगोपभोग एवं शृंगार-प्रसाधन की सामग्री, आमोद नामक कल्पवृक्षों से वाद्य, प्रमोद नामक कल्पवृक्षों से मल्लविधियाँ—।११६६।

♣ लिपिकेन प्रतौ 'प्रस्थ' इति प्रमादान्न लिखितम् ।

चित्तरसेसु य इट्ठा, नाणाविह साउ भोयण विहीओ ।
पत्था मंडवसरिसा, बोधव्वा कप्परुक्खेसु ।११६७।
(चित्ररसेषु च इष्टा, नानाविध स्वादु भोजनविधयः ।
प्रस्था मण्डप सदृशाः, बोद्धव्या कल्पवृक्षेषु ।)

चित्ररस नामक कल्पवृक्षों से अनेक प्रकार के अभीष्टस्वादु भोजन प्राप्त होते हैं। प्रस्था नामक कल्पवृक्ष मण्डप के समान होते हैं।११६७।

जह जह वड्ढति कालो, तह तह वड्ढंति आउ दीहादी ।
उवभोगा य नराणं, तिरियाणं चेव रुक्खेसु ।११६८।
(यथा यथा वर्द्धते कालस्तथा तथा वर्द्धन्ते आयुदीर्घतादि ।
उपभोगाश्च नराणां, तिर्यञ्चानां चैव वृक्षेषु ।)

ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है, त्यों त्यों आयु तथा शरीर की लम्बाई एवं मनुष्यों और तिर्यञ्चों को कल्पवृक्षों से प्राप्त होने वाली उपभोग्य सामग्री में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है ।११६८।

दो गाउय + गुव्विद्धा ते, पुरिसा तया होंति महिलाउ ।
दोन्नि पलिओवमाइं, परमाऊं तेसिं बोधव्वम् ।११६९।
(द्वौ गव्यूतौ उद्विद्धाः ते पुरुषास्तदा भवन्ति महिलास्तु ।
द्वे पल्योपमे, परमायुस्तेषां बोद्धव्या ।)

उत्सर्पिणी के सुःषमा नामक उस पंचम आरक में पुरुषों एवं महिलाओं के शरीर की ऊंचाई दो गाउ (कोस) और दो पल्योपम की आयु जाननी चाहिये।११६९।

एसा उवभोग विही, समासतो होइ पंचमे अरगे ।
कोडाकोडीनिण्णिउ, छट्ठं अरगं तु वोच्छामि ।११७०।

+ गाउय—गव्यूत । द्विधनुसहस्रप्रमाण क्षेत्रे । प्रज्ञा० १ पद । चउहत्थं पुण धनुहं दुन्निसस्साइ गाउयं तेसिं । प्रवचन ५४ द्वार । क्रोशद्वये च, ओघ० ।

(एषा उपभोगविधिः, समासतः भवति पंचमे आरके।
कोट्याकोट्यस्त्रीणिस्तु, षष्ठं आरकं तु वक्ष्यामि।)

तीन कोटा-कोटि सागरोपम की स्थिति वाले सुःषमा नामक पंचम आरक में, जैसा कि संक्षेपतः बताया गया—इस प्रकार की उपभोग विधि होती है। अब मैं उत्सर्पिणी काल के छट्ठे आरक के सम्बन्ध में कथन करूंगा।११७०।

सुसम सुसमाए कालो, चत्तारि हवंति कोडिकोडीउ ।
इय सागरोवमाणं, काल पमाणेण नायव्वो।११७१।
(सुषम-सुषमायां कालः, चत्वारि भवन्ति कोटिकोट्यस्तु ।
एवं सागरोपमानां, कालप्रमाणेन ज्ञातव्यः)

सुषम-सुषम नामक (उत्सर्पिणी के षष्ठम) आरक काल प्रमाण से चार कोटाकोटि सागरोपम का होता है।११७१।

जह जह वड्ढइ कालो, तह तह वड्ढंति आउ दीहादी ।
उवभोगा य नराणं, तिरियाणं चेक रुक्खेसु ।११७२।
(यथा यथा वर्धते कालस्तथा तथा वर्द्धन्ते आयुर्दीर्घतादि ।
उपभोगाश्च नराणां, तिर्यञ्चानां चैव वृक्षेषु)

ज्यों ज्यों समय आगे की ओर बढ़ता जाता है, त्यों त्यों मनुष्यों एवं तिर्यञ्चों की आयु, शरीर की ऊचाई तथा उन्हें कल्पवृक्षों से प्राप्त होने वाली भोग सामग्री की वृद्धि होती जाती है।११७२।

सुसम सुसमाए मणुयाणं, तिण्णेव गाउयाइं उच्चत्तं ।
तिन्नि पलिओवमाइं, परमाउं तेसिं होइ बोधव्वं ।११७३।
(सुषम सुषमायां मनुजानां, तिस्त्र, एव गव्यूतयः उच्चत्वम् ।
त्रीण्येव पल्योपमानि, परमायुस्तेषां भवति (इति) बोद्धव्यम् ।)

सुःषम-सुःषम नामक आरक में मनुष्यों के शरीर की ऊंचाई तीन गव्यूति (कोस) और उत्कृष्ट आयु ३ पल्योपम होती है, यह जानना चाहिये।११७३।

नयण मणकंत रूवा, भोगुत्तम सव्वलक्खणधरा य ।
सव्वंग सुंदरंगा, रत्तुप्पल पत्तकर चरणा ११७४।
(नयनमनकान्तरूपाः भोगोत्तमसर्वलक्षणधराश्च ।
सर्वांग सुन्दराङ्गः, रक्तोत्पल पत्रकर चरणाः ।)

आंखों और मन को अति प्रिय लगने वाले सुन्दर रूप वाले, भोगों के उपभोग योग्य सभी उत्तम लक्षणों को धारण करने वाले, अति सुन्दर अंग—प्रत्यंग वाले, रक्तकमल के पत्र के समान सुकोमल हाथ—पैर वाले —।११७४।

नग-नगर-मगर-सागर, चक्कंकुस वज्ज पच्चक्ख जुत्ता ।
सुपइट्ठियवरचलणा, उन्नयतणु तंब नक्खा य ।११७५।
(नग-नगर-मकर-सागर चक्रांकुश वज्र प्रत्यक्ष युक्ताः ।
सुप्रतिष्ठित वर चरणा, उन्नत तनु ताम्रनखाश्च ।)

पर्वत नगर मकर, सागर चक्र अंकुश और वज्र के प्रत्यक्ष (सुस्पष्ट) लांछनों (लक्षणों) से युक्त, सुघड़—सुगठित सुन्दर चरणों उन्नत शरीर और ताम्रवर्ण के नखों वाले ।।११७५।।

सुसिलिट्ठ गूढ गुप्फा, एणी-कुरुविंदवत्तवर जंघा ।
समुग्ग-निमग्गगूढ जाणू, गयसुसण सुजाय सरिसोरू ।११७६।
(सुश्लिष्ट-गूढ-गुल्फा[1], एणी + कुरु विन्दा* वर्त्तवर जंघाः ।
समुद्ग निमग्न गूढ जानवः, गजश्वसन सुजात सदृशोरवः ।)

अति सुन्दर एवं गूढ (अप्रकट) घुटनों, टखनों आदि के जोड़ वाले, एणी ? कुरुविन्द-कदलिस्थम्भ के समान सुगठित आवर्त (ढाल-उतार) सुन्दर जंघाओं वाले, उभार रहित सुदृढ़ घुटने वाले, गजराज की सूँड के समान ऊपरी भाग में स्थूल और अधो-भाग में उत्तरोत्तर प्रतनु (पतली) जंघाओं वाले ।।११७६।।

---

[1] तद्ग्रन्थौ घुटिके गुल्फौ, पुमान्पार्ष्णिस्तयोरधः ।। १२१७। इत्यमरः ।
+ गोकर्णपृशतैणश्यं रोहिताश्चमरो मृगाः ।१००८। इत्यमरः ।
* वनस्पति विशेषः । 'कुरुविन्दो मेघनामा, मुस्ता मुस्तकमस्त्रियाम् । इत्यमरः ।

वर वारण मत्तगती, वरतुरग सुजाय गुज्झ देसा य ।
वरसीहवट्टियकडी, वइरोवम देसमज्झा य ।११७७।
वरवारणमत्त गतयः, वरतुरंगसुजातगुह्यदेशाश्च ।
वरसिंहवर्तित कटयः, वज्रोपम देशमध्याश्च❀ ।)

श्रेष्ठ हस्तो के समान मत्त गम्भीर चाल, अच्छी जाति के उत्तम घोड़े के समान प्रच्छन्न गुप्तांगों वाले, केसरी के समान कटि और वज्र के समान त्रिवलि युक्त मध्य भाग (कटि एवं उदर) वाले।११७७।

गंगावत्त पयाहिण, रवि किरण विबुद्ध कमल समनाभी ।
रमणिज्ज रोमराई, झस विहग सुजाय कुच्छीया ।११७८।
(गंगावर्त प्रदक्षिण-रविकिरण विबुद्धकमलसमनाभयः ।
रमणीयरोमराजयः, झष-विहग सुजात कुक्षीकाः ।)

गंगा प्रवाह के आवर्त अर्थात् भँवर के समान प्रदक्षिणा करती हुई सी और सूर्य की किरणों के द्वारा विबुद्ध अर्थात् प्रफुल्लित कमल के फूल के समान नाभि वाले, मनोरम रोमावलि वाले, मछली अथवा पक्षी के समान प्रछन्न कुक्षि वाले ॥११७८॥

संगत पासा संणयपासा, सुंदर सुजाय पासा वि ।
बत्तीस लक्खणधरा, उवइअ विस्थिण्णवर वक्खा ।११७९।
(संगत पार्श्वाः सन्नत पार्श्वाः, सुन्दर-सुजात पार्श्वा अपि ।
द्वात्रिंशल्लक्षणधरा, उपचित+ विस्तीर्ण वरवक्षाः ।)

यथास्थान समुचित रूपेण सुगठित, क्रमशः अन्दर की ओर झुके हुए, सांचे में ढले हुए से पार्श्वों, वाले बत्तीस लक्षणों के धारक एवं मांसल समुन्नत विशाल वक्षस्थल वाले ॥११७९॥

पुरवर वर फलिह भुजा, घण थिर सुसिलिट्ठ बद्ध संधीया ।
वर पीवरंगुलितला, चउरंगुल कंबुसरिस गीवा ।११८०।

❀ वज्रवत् वलित्रयोपेत मध्यभागाः । क्षीण कटश्चेत्यर्थः ।
+ उपचितः—मांसलः ।

(पुरवर वर फलिह* भुजा, घन-स्थिर-सुश्लिष्ट बद्ध संधिकाः ।
वर पीवरांगुलितलाः, चतुरांगुल-कम्बुसदृश ग्रीवाः ।)

समृद्ध एवं सुविशाल श्रेष्ठ नगर के द्वार की अर्गला के समान सुदृढ़ भुजाओं वाले, प्रगाढ़, सुदृढ़ सुस्थिर सुन्दर एव दृढ़तापूर्वक सधे एवं बंधे हुए शारीरिक सन्धियों वाले, मांसल होने के कारण उभरे हुए अंगुलितलों वाले, चार अंगुल लम्बी एवं शंख जैसी सुन्दर ग्रीवा (गर्दन) वाले ॥११८०॥

सुविभत्तः चित्त मंसू, पसत्थ-सद्दूल विपुलवरहणुया ।
बिंबोट्ठ-धवल दंता, गोखीरसरिच्छ दसन पभा ।११८१।
(सुविभक्त-चित्रश्मश्रू (वन्तः), प्रशस्त शार्दूल विपुलवरहनुकाः ।
बिम्बोष्ठ-धवलदन्ता गोक्षीरसदृशदशनप्रभाः)

अच्छी तरह छटी अथवा बल खाई हुई अति सुन्दर तीखी मूछों वाले, सभी तरह सराहनीय सिंह की हनु के समान पुष्ट एवं बड़ी सुन्दर ठुड्डी वाले, बिंब फल के समान लाल ओष्टपुटों तथा गाय के दूध के समान धवल दंत पंक्तियों की प्रभा वाले ॥११८१॥

[तत्त] तवणिज्ज रत्तजीहा, गरुलायअ उज्जु तुंग णासा य ।
वर पुंडरीय नयणा, आणामिय चावभुमआ ।११८२।
(तप्त) तपनीय रक्त जिह्वा, गरुडायत ऋजु तुंगनासाश्च ।
वर पुण्डरीकनयनाः, आनामित = चापवर भ्रुवः ।)

प्रतप्त स्वर्ण के समान लाल-लाल जिह्वा, गरुड़ की चोंच के समान आयत, सीधी, उन्नत तीखी नाक, श्रेष्ठ लाल कमल के फूल के समान प्रफुल्ल लोचनों, संधान हेतु कुछ झुकाये हुए श्रेष्ठ धनुष के समान भौंहों वाले ॥११८२॥

---

* वर फलिह—वरा अर्गला ।

= आनामित चाप–ईषद् नामित अर्थात् इषुना सन्नद्ध धनुः ।

अल्लीण जुत्त सवणा, पीण सुमंसल पसत्थ सुकवोला।
पंचमिचंद णिडाला, उडुवइ परिपुण्ण वरवयणा।११८३।
(आलीन युक्त श्रवणाः, पीन सुमांसल प्रशस्त सुकपोलाः।
पंचमी ❀चन्द्रललाटा, उडुपति प्रतिपूर्ण वरवदनाः।)

न तो चिपके हुए और न अधिक उभरे हुए अपितु उपयुक्त रूपेण उभरे हुए सुन्दर श्रवणों (कानों) वाले उभरे हुए मांसल एवं श्लाघनीय सुन्दर कपोलों वाले, शुक्ल पक्ष की पंचमी के चांद तुल्य ललाट वाले, पूर्णिमा के चन्द्र के समान मुखमण्डल वाले ॥११८३॥

छत्तुत्तमंग सोहा, घणनिचिय सुबद्धलक्खणो किण्णा।
कूडागार सुसंठिय, पयाहिणावत्तवरसिरजा।११८४।
(छत्रोत्तमांग शोभाः, घन-निचित-सुबद्धलक्षणोत्कीर्णाः।
कूटागार सुसंस्थित, प्रदक्षिणावर्त्त वरशिरजाः।)

छत्र के समान सुशोभित शिर वाले, गिरिराज के उच्चतम शिखर पर संस्थित काले बादलों के समान घने तथा सँवरे हुए काले घुंघराले बालों वाले ॥११८४॥

लक्खणगुणोववेया, माणुम्माण पडिपुण्ण सव्वंगा।
पासाय दरिसणिज्जा, अभिरूवा चेव ते मणुया।११८५।
(लक्षण गुणोपपेताः, मानोन्मान प्रतिपूर्ण सर्वांगाः।
प्रासाद [वत्] दर्शनीया, अभिरूपाश्चैव ते मनुजाः।)

सब प्रकार के शुभ लक्षणों एवं गुणो से युक्त, मान-उन्मान सहित परिपूर्ण अंगोपांगों वाले, प्रासाद के समान दर्शनीय उस सुःषम सुःषम आरक के मनुष्य अतीव सुन्दर होंगे ॥११८५॥

सुपइट्ठिया चलणाउ, निच्चं पीणुण्णएहिं थणएहिं।
ससि सोम दंसणाउ, ताणं मणुयाण महिलाओ ११८६।

❀ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तौ अष्टमी चन्देणोपमितं सुषम सुषमाया-मुत्पन्नानां मनुजानां मुखारविन्दानि।

(सुप्रतिष्ठित चरणास्तु, नित्यं पीनोन्नतैः स्तनैः ।
शशि सोम दर्शनास्तु, तेषां मनुजानां महिलाः ।)

सुघड़ सुन्दर चरणों वाली तथा सदा (मृत्यु पर्यन्त) पीन एवं उन्नत पयोधरों वाली, उन पुरुषों की स्त्रियां भी चन्द्रमा के समान अति सौम्य एवं सुन्दर होंगी ।११८६।

एवं परिवड्ढमाणो, लोए चंदेव धवल पक्खम्मि ।
सुसमसुसमा तइया, तिरियाण वि सव्व सोक्खाइं ।११८७।
(एवं परिवर्तमाने, लोके चन्द्र इव धवलपक्षे ।
सुषमं सुषमायांतदा, तिर्यञ्चानामपि सर्व सौख्यानि ।)

उस समय सुःषम सुःषम काल में शुक्ल पक्ष के चन्द्र की तरह बढ़ते हुए सौख्यपूर्ण लोक में पशु-पक्षी आदि तिर्यञ्चों को भी सब प्रकार के सुख उपलब्ध होंगे ।११८७।

*समं वासति मेहो, होंति सुसरसाइं ओसहि फलाइं ।
ओसहिबलेण आऊ, वड्ढइ मणुयाण तिरियाणं ।११८८।
(समं वर्षति मेघः, भवन्ति सुसरसानि औषधि-फलानि ।
औषधि बलेन आयुः, वर्द्धते मनुजानां नियंचानाम् ।)

उस समय मेघ समुचित वर्षा करेंगे, औषधियां, फल आदि समीचीन रूप से सरस होंगे । पूर्णतः सरस उन औषधियों (वनस्पतियों) के बल अर्थात् प्रभाव से मनुष्यों तथा तिर्यञ्चों की आयु बढ़ेगी ।११८८।

उस्सप्पिणी इमीसे, छट्ठो अरगोउ वण्णिओ एसो ।
रायगिहे गुणसिलए, गोयमादीणा समणाणं ।११८९।
(उत्सर्पिण्यामिमायां, षष्ठोऽरकस्तु वर्णित एषः ।
राजगृहे गणशिलके, गौतमादि श्रमणेभ्यः ।)

---

* तारांकिता गाथा विचारणीया । भोगभूमिकाले समं वर्षति पर्जन्य, इत्येतादृशो समुल्लेखः सम्पूर्णजैनवाङ्मये न जायते दृष्टिगोचर । एतादृशमुल्लेखं तु केवलमस्यां गाथायामेव दृश्यते ।

राजगृह नगर के गुणशील नामक उद्यान में भगवान् महावीर ने इन्द्रभूति आदि श्रमणों के समक्ष आगामी उत्सर्पिणी काल के षष्ठ आरक का यह उपर्युक्त वर्णन किया ।११८९।

ओसप्पिणि छब्भेया, एवं उस्सप्पिणी वि छब्भेया ।
एवं बारस अरगा, निद्दिट्ठा वद्धमाणेणं ।११९०।
(अवसर्पिणी षट्भेदा, एवमुत्सर्पिण्यपि षड्भेदाः ।
एवं द्वादशारका, निर्दिष्टा वर्द्धमानेन ।)

जिस प्रकार अवसर्पिणी काल के छः भेद हैं उसी प्रकार उत्सर्पिणी काल के भी छः भेद हैं । इस प्रकार भगवान् वर्द्धमान ने कालचक्र के १२ आरक बताये हैं ११९०।

एवं तित्थोगालिं, जिणवरवीरेण भासियमुदारं ।
रायगिहे गुणसिलए, परमरहस्सं सुयमहग्घं ।११९१।
(एवं तीर्थोद्गालिकं, जिनवरवीरेण भाषितमुदारम् ।
राजगृहे गुणशिलके, परमरहस्यं श्रुतं महार्घ्यम् ।)

इस प्रकार भगवान् महावीर ने राजगृह नगर के गुणशील उद्यान में भाषित परम रहस्यपूर्ण, उदार एवं बहुमूल्य श्रुत "तीर्थ-ओगाली" का ।११९१।

मिच्छत्त मोहियाणं, सद्धम्म परंमुहाण जीवाणं ।
सियवायवाहिराणं, तहकुस्सुइ पुण्णकण्णाणं ।११९२।
(मिथ्यात्वमोहितानां, सद्धर्मपराङ्मुखानां जीवानां ।
स्याद्वादबहिराणां, तथा कुश्रुतिपूर्ण कर्णानाम् ।)

—मिथ्यात्व से मोहित, सद्धर्म से विमुख, स्याद्वाद को न मानने वाले तथा जिनके कान कुशास्त्रों (मिथ्या श्रुतों) के श्रवण से भरे पड़े हैं, उन जीवों को ।११९२।

परपरिवायरयाणं, कुलगणसंघस्सनिव्वुइरयाणं ।
चारित्त दुब्बलाणं, मा हु कहेज्जाहि जीवाणं ।११९३।

(परपरिवादरतानां, कुलगणसंघस्य निर्वृतिरतानाम् ।
चारित्रदुर्बलानां, मा खलु कथयेत् जीवानाम् ।)

दूसरों की निन्दा में निरत, कुल, गण और संघ से सदा दूर रहने वाले और चरित्र-पालन में दुर्बल जीवों को, कभी कथन न करे ।११९३।

बज्जाणं व जवाणं निग्घिणाण य निव्विसेसाणं ।
संसारसूयराणं, कहियंपि निरत्थ यं होइ ।११९४।
(वज्रजडेभ्यः, निर्घृणेभ्यश्च निर्विशेषेभ्यः ।
संसारसूकरेभ्यः, कथितमपि निरर्थकं भवति ।)

वज्रजड़ों (नितान्त मूर्खों), निर्लज्जों, निर्गुणों और संसार के कीचड़ में सूअर की तरह मग्न लोगों को तीर्थ ओगालो का कथन किया भी जाय तो वह सर्वथा निरर्थक ही होता है ।११९४।

एयस्सि पडिवक्खा, जे जीवा पयइभद्दग विणीया ।
पगइई मउयचित्ता, तेसिं तु पुणो कहेज्जा हि ।११९५।
(एतेषां प्रतिपक्षाः, ये जीवाः प्रकृतिभद्रक विनीताः ।
प्रकृत्या मृदुचित्ताः, तेभ्यस्तु पुनः कथयेत् हि ।)

उपरि चर्चित लोगों के प्रतिपक्षी जो जीव भद्र प्रकृति के, विनीत और स्वभाव से ही कोमल चित्त वाले हैं, उन लोगों को तीर्थ-ओगाली का कथन करना चाहिये ।११९५।

सोऊण महत्थमिणं, निस्संद मोक्खमग्गसुत्तस्स ।
यत्तो मिच्छत्त परंमुहा, होहलद्धूण य सम्मत्तं ।११९६।
(श्रुत्वा महार्थमेतं निस्यन्दं मोक्षमार्ग-सूत्रस्य ।
यस्मात् मिथ्यात्व-पराङ्मुखाः, भवन्तु लब्ध्वा च सम्यक्त्वम् ।)

मोक्षमार्ग सूत्र की पहिचान कराने वाले इस महान् अर्थ भरे तीर्थ-ओगाली श्रुत की सुनकर इसके प्रभाव द्वारा मिथ्यात्व से पराङ्मुख होकर एवं सम्यक्त्व को प्राप्त कर ।११९६।

नाणं च चरित्रमुत्तम,-तुब्भे पुव्वपुरिसाणुदिण्णं ।
लग्गंति जे य पुरिसा, मग्गं निव्वणगमणस्स ।११९७
ज्ञानं च चारित्रमुत्तमं, युष्मभ्यं पूर्वपुरुषानुदत्तम् ।
लग्नन्ति ये च पुरुषाः, मार्गं निर्वाणगमनस्य ।)

पूर्व पुरुषों द्वारा तुम्हें प्रदत्त अर्थात बताये हुए मोक्षगमन के मार्ग उत्तम ज्ञान और चारित्र में जो पुरुष अग्रसर होते हैं (वे धन्य-हैं) ।११९७।

तह तह करेह सिग्घं, जह जह मुच्चह कसाय-जालेण ।
किसलदलग्गसंठिय, जललव इव चंचलं जीयं ।११९८।
तथा तथा कुरुत शीघ्रं, तथा यथा मुच्यते कषाय जालेन ।
किसलय दलाग्र संस्थित, जल लवेव च चंचल जीवितम् ।)

शीघ्रता पूर्व उस तरह के सब प्रयास करो, जिनके द्वारा कषायों के जाल से मुक्त हो सको क्योंकि किसी पौध के पत्ते पर पड़े जल-कण के समान जीवन अतीव चञ्चल अर्थात् क्षण विध्वंसी है ।११९८।

धण्णाणं तु कसाया, जगडिज्जंता वि अण्णमन्नेहिं ।
नेच्छंति समुट्ठेउं, सुणिविट्ठो पंगुलो जेव ।११९९।
धन्यानां तु कषायाः, जागृह्यमाना अपि अन्योन्यैः ।
नेच्छन्ति समुत्थातुं, सुनिविष्टः पंगुलः यथैव)

धन्यभाग्य प्राणियों के कषाय परस्पर एक दूसरे द्वारा जगाये जाते रहने पर भी अच्छी तरह सुख पूर्वक बैठे हुए पंगु की तरह उठने की इच्छा नहीं करते ।११९९

उवसाममुवणीयं, गुणमहयाजिणचरित्त सरिसं पि ।
पडिपाएंति कसाया, किं पुण सेसे सरागत्थे ।१२००।
(उपशममुपनीतं, गुणमहत्तया जिनचरित्रसदृशमपि ।
प्रतिपातयन्ति कषायाः, किं पुनः शेषान् सरागस्थान् ।)

गुणों में महानता को दृष्टि से वीतराग के चरित्र की तुलना करने वाले उपशम को प्राप्त चतुर्दश-पूर्वधर को भी कषाय नीचे की ओर गिरा देते हैं, राग में फंसे शेष लोगों की बात ही क्या है ।१२००।

सामन्नमनु चरंतस्स, कसाया जस्स उक्कडा होंति ।
मन्नामि उच्छु पुप्फंव्व, निप्फलं तस्स सामइयं ।१२०१।
(श्रामण्यमनुचरतः, कषाया यस्य उत्कटाः भवन्ति ।
मन्ये इक्षुपुष्पमिव, निष्फलं तस्य सामायिकम् ।)

श्रमण धर्म का परिपालन करने वाले व्यक्ति के अन्तर भी यदि कषाय सक्रिय होते हैं तो उस व्यक्ति की सामायिक को मैं गन्ने के फूल के समान निष्फल ही मानता हूँ ।१२०१।

जं अज्जि यं चरित्तं,देसूणाए पुव्वकोहीए ।
तंपि कसाइयमेत्तो, नासेइ नरो मुहुत्तेणं ।१२०२।
(यद् अर्जितं चारित्रं, देशोनया पूर्वकोट्या ।
तदपि कषायितमात्रः, नाशयति नरो मुहूर्त्तेन ।)

किंचित् न्यून-एक करोड़ पूर्व काल तक श्रमण धर्म का पालन कर जो चारित्र अर्जित किया जाता है, किसी भी एक कषाय को मन में उत्पन्न कर मानव एक ही मुहूर्त में उस समस्त चारित्र को नष्ट कर डालता है ।१२०२।

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे ।
मायं चाज्जव भावेणं, लोभं संतुट्ठिए जिणे ।१२०३।
(उपशमेन हन्यात् क्रोधं, मानं मार्दवेन जयेत् ।
मायां च ऋजुभावेन, लोभं संतुष्टिना जयेत् ।)

क्रोध को उपशम भाव अर्थात् शान्ति के द्वारा नष्ट करे, मान को मार्दवता-कोमलता से जीते, माया को ऋजुभाव अर्थात् सरलता से और लोभ को संतोष भाव से जीते ।१२०३।

जह जह दोसोवरमो, जह जह विसयेसु होइ वेरग्गं ।
तह नायव्वं तं खलु, आसन्नं मे पदं परमं ।१२०४।
(यथा यथा दोषो परमः, यथा यथा विषयेषु भवति वैराग्यम् ।
तथा ज्ञातव्यं तत् खलु, आसन्नं मे पदं परमम् ।)

ज्यों ज्यों दोषों में अनिच्छा अर्थात् दोषों से दूर रहने की वृत्ति होती है और ज्यों ज्यों विषय-कषायों के प्रति वैराग्य भावना जागृत होती है त्यों त्यों समझना चाहिये कि परमपद मोक्ष मेरे निकट आ रहा है ।१२०४।

दुग्गमभवकंतारे, भममाणेहिं सुइरं पणट्ठेहिं ।
दल्लहो जिणोवदिट्ठो, सोग्गइ मग्गो इमो लद्धो ।१२०५।
(दुर्गम भवकान्तारे, भ्रममानैः सुचिरात् प्रणष्टैः ।
दुर्लभः जिनोपदिष्टः, सुगति मार्ग अयं लब्धः ।)

भव रूपी इस दुर्गम अटवी में भ्रमण करते करते चिरकाल से भटके-नष्ट हुए हमने, जिनेश्वर द्वारा प्ररूपित सुगति का यह दुर्लभ मार्ग पाया है ।१२०५।

इणमो मुगतिगइ पहो, सुदेसिओ उ जओ जिणवरेण ।
ते धन्ना जे एयं, पहमणवज्जमोतिण्णा ।१२०६।
(एष मुक्तिगतिपथः, सुदेशितस्तु यत् जिनवरेण ।
ते धन्याः ये एतं पथमनवद्यमवतीर्णाः ।)

जो यह मोक्ष का मार्ग जिनवर ने उपदेश द्वारा दिखाया है, उस पर जो व्यक्ति अग्रसर हुए हैं, वे धन्य हैं ।१२०६।

जाहे य पावियव्वं, इय परलोगे य होइ कल्लाणं ।
ताहे जिणवरभणियं, पडिवज्जह भावतो धम्मं ।१२०७।
(यदा च प्राप्तव्यं, इह पर लोके च भवति कल्याणम् ।
तर्हि जिनवरभणितं, प्रतिपद्यस्व भावतः धर्मम् ।)

यदि यह चाहते हो कि चरम लक्ष्य की अथवा अभीप्सित सुखों को प्राप्ति तथा इस लोक और परलोक में कल्याण हो, तो जिनेश्वर द्वारा प्ररूपित जिन धर्म को भाव पूर्वक ग्रहण करो।१२०७।

खंती य मद्दवज्जव, मुत्ती तव संजमे य बोधव्वे।
सच्चं सोयं अकिंचणं च, बंभं च जइ धंमो।१२०८।
(क्षान्तिश्च मार्दवार्जव, मुक्तिः तपसंयमाश्च बोद्धव्याः।
सत्यं शौचामकिंचनं च, ब्रह्म च यतिधर्मः।)

क्षमा मार्दव (मृदुता), सरलता, कर्मबन्ध से मुक्त होने की भावना, तपश्चरण, संयम, सत्य भाषण आभ्यन्तर शुद्धि, अकिंचन भाव और ब्रह्मचर्य का पालन-इन्हीं को यति धर्म जानना चाहिये।१२०८।

जो समो सव्व भूतेसु, तसेसु थावरेसु य।
धम्मो दसविहो तस्स, इति केवलि भासियं।१२०९।
(य समः सर्वभूतेषु, त्रसेषु स्थावरेषु च।
धर्मः दशविधस्तस्य, इति केवलि भाषितम्।)

जो त्रस और स्थावर सभी प्रकार के प्राणियों में समभाव रखता है उसको दश प्रकार का धर्म प्राप्त है, यह त्रिकालदर्शी केवलज्ञानी भगवान् ने कहा है।१२०९।

जो दस विहं पि धम्मं, सद्दहती सत्त तत्त संजुत्तं।
सो होइ समादिट्ठी, संकादि दोसरहिओ य।१२१०।
(यः दशविधमपि धर्मं, श्रद्धाति सप्त तत्त्व संयुक्तम्।
स भवति सम्यग्दृष्टिः, शंकादि दोष रहितश्च।)

जो व्यक्ति सात तत्त्वों सहित दशों प्रकार के धर्म में श्रद्धा रखता है, वह शंका, आकांक्षादि दोषों से रहित सम्यग्दृष्टि होता है।१२१०।

सम्मद्दंसण मूलं, दुविहं धम्मं समासतो उत्तं।
जेट्ठं च समण धम्मं, सावग धम्मं च अणुजेट्ठं।१२११।

(सम्यग्दर्शन मूलं, द्विविधं धर्मं समासत उक्तम् ।
ज्येष्ठं च श्रमण धर्मं, श्रावक धर्मं च अनुज्येष्ठम् ।)

सम्यक् दर्शन का मूल संक्षेपतः दो प्रकार का धर्म बताया गया है उन दो प्रकार के धर्मों में से ज्येष्ठ धर्म है श्रमण धर्म और उस ज्येष्ठ धर्म के पश्चात् दूसरा धर्म है श्रावक धर्म ।१२११।

जा जिणवरदिट्ठाणं, भावाणं सद्दहणया सम्मं ।
अत्तणओ बुद्धीयया, सोऊण व बुद्धि मंताणं ।१२१२।
(या जिनवर दृष्टानां, भावानां श्रद्धनया सम्यक्त्वम् ।
आत्मनः बुद्धया, श्रुत्वा वा बुद्धिमन्तेभ्यः ।)

या तो त्रिकालदर्शी जिनेश्वरों द्वारा देखे-जाने एवं प्ररूपित भावों पर श्रद्धा करने से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है या तत्त्वदर्शी ज्ञान स्थावरों से सुनकर अथवा स्वयं की बुद्धि से तत्त्व चिन्तन द्वारा सम्यक्त्व प्राप्त किया जा सकता है ।१२१२।

मिच्छाविगप्पिएसु य, अत्थिकुसासणोवदिट्ठेसु ।
एतं मेव मितिरुई, सुद्धं तं होइ संमत्तं ।१२१३।
(मिथ्या विकल्पितेषु च, अस्ति कुशासनोपदिष्टेषु ।
एतन्मैवमिति रुचिः, शुद्धं तद् भवति सम्यक्त्वम् ।)

मिथ्या विकल्पित कुशासनों द्वारा उपदिष्ट सिद्धान्तों में जो कुछ है, वस्तुतः वह वैसा नहीं है, इस प्रकार की रुचि होने पर शुद्ध सम्यक्त्व होता है ।१२१३।

एगंते मिच्छत्तं, जिणाण आणा य होइ णेगंतो ।
एगं पि असद्दहिओ, मिच्छादिट्ठी जमालिव्व ।१२१४।
(एकान्ते मिथ्यात्वं, जिनानामाज्ञा च भवति नैकान्तः ।
एकमपि अश्रद्दधतः, मिथ्यादृष्टिः जमालीव ।)

वस्तुतः एकान्त में मिथ्यात्व है, जिनेश्वरों की आज्ञा अनेकान्त को स्वीकार करने की है। जिनेश्वर द्वारा प्ररूपित सिद्धान्तों में से

यदि कोई व्यक्ति किसी एक तथ्य पर भी अश्रद्धा करता है तो वह जमाली के समान मिथ्यात्वी होता है।१२१४।

जिणसासण भत्तिगतो, वरतरमिहसील विप्पहीणो वि ।
न य नियमपरो वि जणो, जिणसासण बाहिरमतीओ ।१२१५।
(जिनशासन भक्तिगतः, वरतर इह शीलविप्रहीनोऽपि ।
न च नियम परोऽपि जनः, जिनशासन बहिर्मतिस्तु ।)

जिन शासन के प्रति भक्ति रखने वाला व्यक्ति चाहे श्रेष्ठ शील से रहित अथवा नियमों से परे अर्थात् नियमों का पालन न भी करता हो तो भी वह जिन-शासन से बाहर मति वाला नहीं अर्थात् जिन शासन के अन्दर ही है।१२१५। (क्यों कि)

जह निम्मले पडे, पंडुरम्मि सोभाविणा वि रागेणं ।
सुंदर रागे वि कए, सुंदरतरिया हवई सोभा ।१२१६।
(यथा निर्मले पटे पाण्डुरे, शोभा विनापि रागेण ।
सुन्दर रागे च कृते, सुन्दरतरा भवति शोभा ।)

जिस प्रकार एक निर्मल श्वेत वस्त्र में बिना रंग के भी शोभा अर्थात् सुन्दरता होती है और श्वेत वस्त्र पर कोई सुन्दर रंग चढ़ा देने पर उस वस्त्र की शोभा और बढ़ जाती है।१२१६।

एवमह निम्मले दरिसणंमि, सोभा विणावि सीलेण ।
सीलसहायम्मि उ दरिसणम्मि, अहिया हवइ सोभा ।१२१७।
(एवमथ निर्मले दर्शने, शोभा विनापि शीलेन ।
शीलसहाय्ये तु दर्शने, अधिका भवति शोभा ।)

इसी प्रकार दर्शन के निर्मल होने पर उसमें शील के बिना भी शोभा होती है। उस निर्मल दृष्टि में यदि शील का पुट और लग जाय तो उसकी शोभा अधिक हो जाती है।१२१७।

भट्ठेण चरित्ताओ, सुट्ठुयरं दंसणं गहेयव्वं ।
सिज्झंति चरणहीणा, दंसणहीणा न सिज्झंति ।१२१८।

(भ्रष्टेन चारित्रात्, सुष्ठुतरं दर्शनं गृहीतव्यम् ।
सिद्ध्यन्ति चरणहीनाः, दर्शनहीना न सिद्ध्यन्ति ।)

यदि कदाचित् कोई व्यक्ति दुर्भाग्यवशात् चारित्र से भ्रष्ट भी हो जाय तो उसे दर्शन का अच्छी तरह दृढ़ता पूर्वक पकड़ लेना चाहिए। क्यों कि चारित्र से हीन व्यक्ति सिद्ध (कर्मबन्ध से विमुक्त) हो जाते हैं किन्तु दर्शन हीन व्यक्ति कभी सिद्ध नहीं होते।१२१८

एत्थ य संका कंखा, वितिगिच्छा अन्नदिट्ठिय पसंसा ।
परतित्थिय संथव्वो, पंच हासंति सम्मत्तं १२१९।
(अत्र च शंकाऽऽकांक्षा, विचिकित्सा अन्य दृष्टिक प्रशंसा ।
परतीर्थिक संस्तवः, पञ्च ह्रासन्ति सम्यक्त्वम् ।)

यहां (यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि) शंका आकांक्षा, विचिकित्सा (संशय), अन्य दर्शन को मानने वालों की प्रशंसा और परतीर्थिकों की स्तुति-ये पांच दोष सम्यक्त्व का ह्रास करने वाले हैं।१२१९।

संकादि दोसरहियं, जिण सासण कुसलयाइ गुण जुत्तं ।
एयं तं जं भणियं, मूलं दुविहस्स धम्मस्स १२२०।
(शंकादि दोष रहितं, जिनशासन कुशलतादि गुणयुक्तम् ।
एतत्तद् यद् भणितं, मूलं द्विविधस्य धर्मस्य ।)

शंका, आकांक्षादि दोषों से सर्वथा दूर रहना और जिनशासन में प्रगाढ़ निष्ठा रखते हुए जिनाज्ञानुसार आचरण-प्रचार-प्रसार आदि गुणों से युक्त कौशल प्रकट करना यही दो प्रकार के धर्म (श्रमण धर्म और श्रावक धर्म) का मूल बताया गया है।१२२०।

जिण सासणे कुसलया, पभावणा य तणसेवणा य ।
विरति भत्ती य गुणा, सम्मत्त दीवगा उत्तमा पंच ।१२२१।
(जिन शासने कुशलता, प्रभावना च तृणसेवना च ।
विरतिः भक्तिश्च गुणाः, सम्यक्त्वदीपका उत्तमा पञ्च ।)

जिन शासन (जिनाज्ञापालन) में कुशलता, प्रभावना, तृण सेवना (तप सेवना ?), विरक्ति और भक्ति-ये पांच उत्तम गुण सम्यक्त्व को प्रदीप्त (प्रकाशित) करने वाले हैं ।१२२१।

सव्वन्नू सव्व दरिसीय, वीतरागाय जे जिणा ।
तम्हा जिणवरवयणं, अवितहमिति भावतो मुणह ।१२२२।
(सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनश्च, वीतरागश्च यज्जिनाः ।
तस्मात् जिनवरवचनं, अवितथमिति भावतः जानीहि ।)

क्यों कि जिनेश्वर भगवान् सर्वज्ञ-सर्वदर्शी और वीतराग होते हैं अतः जिनेश्वर भगवान् की वाणी शाश्वत सत्य होती है यह दृढ़ आस्था भाव पूर्वक मानना चाहिये ।१२२२।

संमत्ताउ नाणं, सियवाय समन्नियं महाविसमं ।
भावाभावविभावं, दुवालसंगंपि गणिपिडगं ।१२२३।
(सम्यक्त्वात् ज्ञान, स्याद्वादसमन्वितं महा विषमम् ।
भावाभावविभावं, द्वादशांगमपि गणिपिटकम् ।)

सम्यक्त्व से स्याद्वाद सहित भाव अभाव और विभाव तथा द्वादशांग्यात्मक गणिपिटक का भी अति गहन ज्ञान प्राप्त होता है ।१२२३।

जं अन्नाणी कम्मं, खवेइ बहुयाहिवास कोडीहिं ।
तं नाणी तिहि गुत्तो, खवेइ ऊसासमेत्तेण ।१२२४।
(यद् अज्ञानी कर्म, क्षपयति बहुकाभिर्वर्षकोटीभिः ।
तद् ज्ञानी त्रिभि गुप्तः, क्षपयति उच्छ्वास मात्रेण ।)

अज्ञानी व्यक्ति जिस कर्म को अनेक करोड़ वर्षों के कठोर प्रयास से नष्ट करने में समर्थ होता है, उसी कर्म को मनगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति—इन तीन गुप्तियों से गुप्त ज्ञानी व्यक्ति एक उच्छ्वासमात्र लेने जितने से समय में नष्ट कर डालता है ।१२२४।

नाणाहिंतो चरणं, पंचहिं समिइहिं तिहिं गुत्तीहिं ।
एयं सीलं भणियं, जिणेहिं तेलोक्कदंसी हि ।१२२५।
(ज्ञानेभ्यः चरणं, पंचभिर्समितिभिस्त्रिभिर्गुप्तिभिः ।
एतत् शीलं भणितं, जिनैस्त्रैलोक्यदर्शिभिः ।

ज्ञान से पांच समितियों और तीन गुप्तियों सहित चारित्र की उपलब्धि होती है । त्रैलोक्यदर्शी जिनेश्वरों ने इसे शील बताया है ।१२२५।

सीले दोन्नि वि नियमा, सम्मत्तं तह य होइ नाणं च ।
तिण्हं वि समाओगे, मोक्खो जिण सासणे भणिओ ।१२२६।
(शीले द्वावपि नियमात्, सम्यक्त्वं तथा च भवति ज्ञानं च ।
त्रयाणामपि समायोगे, मोक्षः जिनशासने भणितः ।)

शील में नियमतः सम्यक्त्व और ज्ञान दोनों ही होते हैं । जिन शासन में इन तीनों (शील, सम्यक्त्व और ज्ञान) के समायोग पर मोक्ष की प्राप्ति बताई गई है १२२६।

असरीरा जीव घणा, उवउत्ता दंसणे य नाणे य ।
सागारमणागारं, लक्खणमेयं तु सिद्धाणं ।१२२७।
(अशरीराः जीवघना, उपयुक्ता दर्शने च ज्ञाने च ।
साकारमनाकारं, लक्षणमेतत्तु सिद्धानाम् ।)

अशरीरी अर्थात् अरूपी, शरीर न होने के कारण केवल जीव-स्वरूप—अतः एव घन, ज्ञान और दर्शन में उपयुक्त अर्थात् ज्ञान-दर्शन स्वरूप अथवा ज्ञान-दर्शन की सज्ञा वाले तथा साकार अणाकार-यह सिद्धों का स्वरूप है ।१२२७।

सव्वट्ठ विमाणाओ, सव्वोपरि सा उ थूभिया ।
बारसहिं जोयणेहिं, इसिपभार पुढवीओ ।१२२८।
(सर्वार्थ विमानात् सर्वोपरि सा तु स्तूपिका ।
द्वादशाभिर्योजनै, ईषत्प्राग्भारा नाम पृथिवीतः ।)

सर्वार्थसिद्ध विमान से १२ योजन ऊंची, लोक में सर्वोपरि अर्थात् लोक के अग्रभाग पर, ईषत्प्राग्भारा नाम की वह भूमि (सिद्ध शिला) छत्राकार में संस्थित है ।१२२८।

निम्मल दगरय* वन्ना, तुसार गोखीर हार सरिवन्ना ।
भणियाउ जिणवरेहि, उत्ताणग छत्त संठाणा ।१२२९।
(निर्मल दगरजवर्णा, तुषारगौक्षीर हार सदृग्वर्णा ।
भणिता तु जिनवरैः, उत्तानकछत्र संस्थाना ।)

जिनवरों द्वारा वह पृथ्वी, निर्मल जल की कणिका, तुषार, गाय के दूध की धार के समान वर्ण वाली और औंधे किये हुए छत्र तुल्य संस्थान वाली बताई गई है ।१२२९।

ईसीपब्भाराए, सीयाए जो यणंमि लोगंतो ।
बारसहिं जोयणेहिं सिद्धी सव्वट्ठसिद्धाओ ।१२३०।
(ईषत् प्राग्भारायाः सितायाः योजने लोकान्तः ।
द्वादशभिर्योजनैः, सिद्धिः [मुक्तिः] सर्वार्थसिद्धात् ।)

उस श्वेतवर्णा ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी अर्थात् सिद्धि अथवा मुक्ति से एक योजन ऊपर लोकान्त है। (उससे आगे द्युलोक है) यह सिद्ध भूमि सर्वार्थ सिद्ध विमान से १२ योजन ऊपर है ।१२३०।

पणयालीसं आयामा, वित्थडा होइ सत सहस्साइं ।
तंपि तिगुण विसेसं, परिरओ होइ बोधव्वो ।१२३१।
(पंचचत्वारिंशत् आयामा, विस्तीर्णा [च] भवति शतसहस्राणि ।
तमपि त्रिगुणविशेषं परिरयो [परिधिः] भवति बोद्धव्यः ।)

---

* दगरय—उदकरजस् । पानीय कणिकायाम् । जी० ३ प्रति०, ४ उ० । उदकरेणो ।

तथा च 'दगपासाय'—दकप्रासाद — स्फटिक प्रासादे, जं० १ वक्ष० वचनात् स्फटिकरज;—इत्यर्थोऽपि भवति ।

वह ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी ४५.०००० (पैंतालीस लाख) योजन विस्तीर्ण और तीन गुना अधिक योजनों की परिधि वाली है-यह जानना चाहिये ॥१२३१॥

एगा जोयण कोडी, बायालीसं च सयं संहस्साइं ।
तीस च सहस्साइं, दोयसयाअ ऊणवीसाउ ।१२३२।
(एका योजनकोटिः, द्वात्रिंशच्च शत सहस्राणि ।
त्रिंशच्च सहस्राणि, द्वे शते च एकोनविंशतिस्तु ।)

उस पृथ्वी का, एक करोड़, बयालीस लाख, तीस हजार, दो सौ उन्नीस योजन ॥१२३२॥

[अ] खेत्त समत्थ वित्थिन्ना, अट्ठेव जोयणाइं बाहल्लं ।
परिहायइ चरिमंते, मच्छि य पत्ताउ तणुयतरी ।१२३३।
(क्षेत्र समस्त विस्तीर्णा, अष्टावेव योजनानि बाहल्या ।
परिहीयते चरमान्ते, मक्षिकापत्रात्तनुतरी ।)

विस्तृत क्षेत्रफल और मध्य में आठ योजन बाहल्य (दीर्घता-अथवा मोटाई) है। वह पृथ्वी मध्य भाग से चारों ओर उत्तरोत्तर पतली होते होते अन्त में मक्खी के पंख से अधिक प्रतली है।१२३३।(अ)

गंतूण जोयणं तु, परिहाइ अंगुल पहुत्तं ।
संखतूल संनिगासा+, परंता होति पतणु सा ।१२३३।
(गत्वा योजनं तु, परि हीयते अंगुल पृथक्त्वं ।
शंखतूल संनिकाशा, परं-परंतावत् भवति प्रतनु सा ।)

मध्य भाग से लेकर वह शंख अथवा रूई के समान वर्ण वाली ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी क्रमशः एक एक योजन के अन्तर पर एक एक अंगुल प्रमाण पतली होते होते अंत में नितान्त पतली हो गयी है।१२३३। (ब)

+ शंख तथा अर्कतूलवत् श्वेतवर्णा ।

अज्जुएण सुवन्नगमयी, नामेण सुदंसणा पभासा य ।
संख तूल संनिगासा, छत्तागारा य सा पुढवी ।१२३४।
(अर्जुनस्वर्णकमयी, नाम्ना सुदर्शना प्रभासा च ।
शंख-तूल सन्निकाशा, छत्राकारा च सा पृथ्वी ।)

अर्जुन स्वर्णमयी (श्वेत स्वर्णमयी– Made of Platinum) सुदर्शन प्रभानाम की वह सिद्धशिला पृथ्वी शंख अथवा रूई के समान श्वेत और औंधे अथवा उल्टे किये हुए छत्र के आकार की है ।१२३४।

ईसि पब्भाराए उवरिं, खलु जोयणस्स जो कोसो ।
कोसस्स [य] छब्भाए, सिद्धाणो गाहण भणिया ।१२३५।
(ईषत् प्राग्भाराया उपरि, खलु योजनस्य यः क्रोशः ।
क्रोशस्य [च] षड्भागे, सिद्धानामवगाहना भणिता ।)

ईषत प्राग्भारा पृथ्वी पर योजन के कोस भागों में से एक कोस के छट्ठे भाग में सिद्धों की अवगाहना बताई गई है ।१२३५।

कहिं पडिहयां सिद्धा, कहिं सिद्धा पइट्ठिया ।
कहिं बोंदि[1] चइत्ताणं कत्थ गंतूण सिज्झई ।१२३६।
(क्व प्रतिहताः सिद्धाः, क्व सिद्धाः प्रतिष्ठिताः ।
क्व शरीरं त्यक्त्वा, कुत्र गत्वा सिद्ध्यन्ति ।)

सिद्ध कहां प्रतिहत हुए हैं अर्थात् सिद्धों की गति कहां जाकर रुकी-अवरुद्ध हुई है ? सिद्ध कहाँ प्रतिष्ठित अर्थात् विराजमान हैं ? वे कहां से शरीर का त्याग कर, किस स्थान पर जाकर सिद्ध हैं ? ।१२३६।

अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया ।
इहं बोंदिं चइत्ताणं, तत्थ गंतूण सिज्झई ।१२३७।

---

[1] भाषाविज्ञान दृष्ट्या प्राकृत भाषायाः 'बोंदि' शब्दस्यातन्तिकं महत्त्वं ।
आंग्ल भाषोया Body बॉडी शब्देन साद्धं मस्य साम्यं विचारणीयमस्ति ।

(अलोके प्रतिहताः सिद्धाः, लोकाग्रे च प्रतिष्ठिता ।
इह बोन्दि (शरीरं) त्यक्त्वा, तत्र गत्वा सिद्धयन्ति ।)

अलोक में सिद्धों की गति प्रतिहत (अवरुद्ध) हुई अर्थात् रुकी। वे लोक के (ऊपरी) अग्र भाग में प्रतिष्ठित हैं। यहां (तिर्यक लोक में) देह त्याग, वहां लोकाग्र में जाकर सिद्ध होते हैं।१२३८।

दीहं वा हस्सं वा, जं संठाणं तु आसि पुव्वभवे ।
तत्तो तिभाग हीणा, सिद्धाणोगाहणा भणिता ।१२३८।
(दीर्घं वा ह्रस्वं वा, यत् संस्थानं तु आसीत् पूर्वभवे ।
तत्तः त्रिभागहीनाः, सिद्धानामवगाहनो भणिता ।)

पूर्व भव में, दीर्घ अथवा ह्रस्व जो भी शरीर का संस्थान था, उससे तीन भाग कम अर्थात् एक चौथाई अवगाहना कही गई है।१२३८।

जं संठाणं तु इहं, भवं चयन्तस्स चरिम समयम्मि ।
आसी य परासघणं, तं संठाणं तहिं तस्स ।१२३९)
(यत् संस्थानं तु इह, भवं त्यजतः चरम समये ।
आसीत् च प्रदेशघनं, तत् संस्थानं तत्र तस्य ।)

यहां अन्तिम काल में भव अर्थात् जन्म-मरण का अन्त करते समय शरीर के प्रदेश घन रूपी शरीर का संस्थान था वही संस्थान उस सिद्धचमान व्यक्ति का सिद्ध हो जाने पर वहां उस ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी (सिद्धशिला) पर रहता है।१२३९।

उत्ताण उच्च पासिल्ल, उच्चट्ठियओनिसन्नओ चेव ।
जो जह करेइ कालीं (कालं) सो तह उववज्जए सिद्धो ।१२४०।
(उत्तान-उच्चपार्श्वल, उच्चैस्थितःनिषण्णश्चैव ।
यः यथा करोति कालं, स तथा उपपद्यते सिद्धः ।)

उत्तानासन, खड़े हुए किसी पार्श्व पर लेटे, ऊपर बैठे और पद्मासन से बैठे आदि जिस जिस आसन से जो सिद्ध्यमान जीव जन्म मरण का अन्त करता है वह उसी आसन से ईषत्प्राग्भारा नामक सिद्ध भूमि पर सिद्धावस्था में संस्थित रहता है।१२४०।

तिन्निसया तेत्तीसा, धणु ति भागो य होइ बोधव्वो ।
एसा खलु सिद्धाणं, उक्को सोगाहणा भणिता ।१२४१।
(त्रीणि शतानि त्रयत्रिंशद्धनुस्त्रिभागश्च भवति बोद्धव्यः ।
एषा खलु सिद्धानामुत्कृष्टाऽवगाहना भणिता ।)

तीन सौ तेतीस धनुष और एक धनुष का तीसरा भाग-यह सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना बताई गई है।१२४१।

चत्तारि रयणीओ, रयणि तिभागूणिया य बोधव्वा ।
एसा खलु सिद्धाणं, मज्झिमोगहणा भणिया ।१२४२।
(चत्वारि रत्नयः, रत्नित्रिभागोनाश्च बोद्धव्या ।
एषा खलु सिद्धानां, मध्यमाऽवगाहना भणिता ।)

एक तिहाई रत्नी कम चार रत्नी-यह सिद्धों की मध्यम अवगाहना बताई गई हैं।१२४२।

एगा य होइ रयणी, अट्ठेव अंगुलाइं साहीया ।
एसा खलु सिद्धाणं, जहन्न ओगाहणा भणिता ।१२४३।
(एका च भवति रत्निः, अष्टावेवांगुल्यः साधिकाः ।
एषा खलु सिद्धानां, जघन्याऽवगाहना भणिता ।)

एक रत्नी और आठ अंगुल-यह सिद्धों की जघन्य (कम से-कम) अवगाहना बताई गई है।१२४३। (अ)

(ब) जत्थ य एगो सिद्धो, तत्थ अणंता भवक्खयविमुक्का ।
अन्नोन्नं समोगाढा, पुट्ठा लोगंता लोगंते ।१२४३।

(यत्र चैकः सिद्धः, तत्र अनन्ताः भवरजोविमुक्ताः ।
अन्योऽन्यं समवगाढाः, स्पृष्टाः लोकान्ताः लोकान्ते)

उस ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी पर जहां एक सिद्ध है, वहां जन्म-मरण रूपी भव की रज से सर्वथा विमुक्त अनन्त सिद्ध हैं। लोक (संसार) का अन्त कर देने वाले वे अनन्त सिद्ध लोकान्त अर्थात् लोक के अग्रभाग पर एक परस्पर एक दूसरे से समवगाढ़ और स्पृष्ट हैं।१२४३ (ब)

फुसइ अणंते सिद्धे, सव्व पदेसेहिं नियमसो सिद्धा ।
ते वि असंखेज्जगुणा, देस पदेसेहिं जे पुट्ठा ।१२४४।
(स्पृशन्ति अनन्तान् सिद्धान् सर्व प्रदेशैः नियमशः सिद्धाः ।
तेऽपि असंख्यात गुणिताः, देशप्रदेशैर्ये स्पृष्टाः ।)

नियमतः सिद्ध अपने सर्व आत्म प्रदेशों से अनन्त सिद्धों को स्पर्श करते हैं, इनके अतिरिक्त उनके द्वारा जो सिद्ध उनके देश अर्थात् कतिपय आत्म प्रदेशों से स्पृष्ट हैं वे सर्वात्म प्रदेशों से स्पृष्ट सिद्धों से असंख्यात गुना अधिक हैं।१२४४।

केवलनाणुवउत्ता, जाणंति सव्वभावगुणभावे ।
पासंति सव्वतो खलु, केवलदिट्ठीए अणंताहिं ।१२४५।
(केवलज्ञानोपयुक्ताः, जानन्ति सर्वभाव गुणभावान् ।
पश्यन्ति सर्वतो खलु, केवलदृष्ट्या अनन्ताभिः ।)

केवल-ज्ञान में उपयुक्त वे लोकालोक के त्रिकालवर्ती भूत, भविष्यत् और वर्तमान सभी भावों और गुणों को जानते तथा अनन्त केवल-दृष्टि द्वारा सब देखते हैं।१२४५।

न वि अत्थि माणुसाणं, तं सोक्खं न वि य सव्व देवाणं ।
जं सिद्धाणं सोक्खं, अव्वाबाहं उवगताणं ।१२४६।

(नाप्यस्ति मनुष्याणां, तद् सौख्यं नापि च सर्व देवानाम् ।
यत् सिद्धानां सौख्यं, अव्याबाधं उपगतानाम् ।)

अव्याबाध मोक्ष में गये हुए सिद्धों को जो सुख है, वह सुख वस्तुतः न तो मनुष्यों में से किसी भी मनुष्य को प्राप्त है और न सब देवताओं में से किसी एक देव को ही ।१२४६।

सुरगण सुह संमत्तं, सव्वद्धा पिंडितं अणंत गुणं ।
न वि पावइ मुत्तिसुहं अणंताहिं विवग्गवग्गूहिं ।१२४७।
(सुरगण-सुखसमस्तं सर्वाद्धा-पिण्डितं अनन्तगुणम् ।
नापि प्राप्नोति मुक्तिसुखं, अनन्तैरपि वल्ग वल्गूभिः ।)

संसार के समस्त देव समूहों के समग्र सुख को एकत्र कर उसे अनन्त गुणित किया जाय तो भी वह पिण्डीभूत देव सुख मुक्ति के सुख के अनन्तवें भाग के अनन्तवें भाग की भी तुलना नहीं कर सकता ।१२४७।

सिद्धस्ससुहोरासी, सव्वद्धा पिंडिआ जइ हवेज्जा ।
सो-णंत भागभइओ, सव्वागासे न मायेज्जा ।१२४८।
(सिद्धस्य सुखराशिः, सर्वाद्धापिण्डिता यदि भवेत् ।
स अनंत भागभजितः, सर्वाकाशे न मायेत् ।)

(दूसरी ओर) एक सिद्ध की सुख राशि यदि सब तरह से पिण्डीभूत की जाय और उसको अनन्त भागों में विभक्त किया जाय तो सिद्ध सुख का वह अनन्तवां भाग सम्पूर्ण आकाश में भी नहीं मायेगा—नहीं समा सकेगा ।१२४८।

जहनाम कोइ मेच्छो, नगरगुणे बहु विहे वि जाणंतो ।
न वएइ परिकहेउ, उवमाए तहिं असंतीए ।१२४९।

(यथा नाम कोऽपि म्लेच्छः, नगर गुणान् बहुविधानपि जानन्।
न शक्यते परिकथयितुं उपमायास्तत्र अभावात्।)

जिस प्रकार कोई म्लेच्छ (वर्षों तक एक समृद्ध नगर में राजा का अतिथि रहकर पुन अपने म्लेच्छ बन्धुओं के बीच म्लेच्छ देश में जावे तो वह) नगर के बहुत से गुणों अथवा सुखों का भली भांति जानता हुआ भी. उनका कथन करने में असमर्थ ही रहता है, क्यों कि उसके उस म्लेच्छ देश में नगर के गुणों का अथवा सुखों का वर्णन करने के लिये कोई उपमा ही नहीं है।१२४९।

इय सिद्धाणं सोक्खं, अणोवमं नत्थि तस्स उवमंउ।
किंचि विसेसेणेत्तो, सारिक्खमिणं सुणह वोच्छं।१२५०।
(एवं सिद्धानां सौख्यं, अनुपमं नास्ति तस्य उपमा तु।
किंचित् विशेषेण इतः, सादृश्यमेतस्य शृणुत वक्ष्यामि।)

इसी प्रकार सिद्धों का सुख अनुपम है, उसको बताने के लिये समस्त संसार में कोई उपमा है ही नहीं। इस से मिलता जुलता पर कुछ विशेष दृष्टान्त मैं बताऊंगा, उसे सुनो।१२५०।

जह सव्वकामगुणियं, पुरिसो भोत्तूण भोयणं कोइ।
तण्हा छुहाविमुक्को, अच्छेज्ज जहा अमिय तित्तो।१२५१।
(यथा सर्वकामगुणिकं, पुरुषः भुक्त्वा भोजनं कोऽपि।
तृष्णा-क्षुधाविमुक्तः, तिष्ठेत् यथा अमित तृप्तः।)

जिस प्रकार कोई पुरुष पुष्टि तुष्टि आदि सब प्रकार के गुणों से सम्पन्न अत्यन्त स्वादु भोजन खाकर तृष्णा तथा क्षुधा से विमुक्त हो पूर्णतः तृप्तावस्था में बैठता है।१२५१।

इय निच्चकालतित्ता, अतुलं निव्वाणमुवगता सिद्धा।
सासयमव्वाबाहं, चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता।१२५२।

एवं नित्यकालतृप्ताः अतुलं निर्वाणमुपगताः सिद्धाः ।
शाश्वतमव्याबाधं, तिष्ठन्ति सुखिनः सुखं प्राप्ताः ।)

उसी प्रकार निर्वाण को प्राप्त हुए सिद्ध अतुलरूपेण नित्य-काल तृप्त हैं। वे शाश्वत अव्याबाध शिव-सुख को प्राप्त कर परमानन्द में विराजमान है १२५२।

तत्थ वि य ते अभेदा, अवेयणा णिम्ममा णिसंगा य ।
संजोग विप्पमुक्का, अपएसा निच्च एक संगणा ।१२५३।
(तत्रापि च ते अभेदा, अवेदनाः निर्ममा निस्संगाश्च ।
संयोग विप्रमुक्ता, अप्रदेशा नित्यैक संस्थाना ।)

वहां पर (सिद्ध क्षेत्र में) वे भेद रहित, वेदना रहित, ममत्व रहित निस्संग, संयोग से विप्रयुक्त प्रदेशों से रहित, नित्य एक ही संस्थान में स्थित—।१२५३।

तित्थिन्न सव्वदुक्खा, जाइ जरा मरण बंधणविमुक्का ।
अव्वाबाहं सोक्खं, अणुहोंति सासयं सिद्धा ।१२५४।
(निस्तीर्ण सर्वदुःखाः, जातिजरामरणबंधनविमुक्ताः ।
अव्याबाधं सौख्यं, अनुभवन्ति शाश्वतं सिद्धाः ।)

सब दुःखों से पार उतरे हुए और जाति (जन्म), जरा, मरण के बन्धनों से विमुक्त सिद्ध अव्याबाध शाश्वत सुख का अनुभव कर रहे हैं ।१२५४।

एसा य पय सहस्सेण, वन्निया समणगंधहत्थीणं ।
पुट्ठेणऊ रायगिहे, तित्थोगालीउ वीरेण ।१२५५।
(एषा च पद सहस्रेण, वर्णिता श्रमणगंधहस्तीभ्यः ।
पृष्टेन तु राजगृहे, तीर्थोद्गाली तु वीरेण ।)

भगवान् महावीर ने राजगृह नगर में, प्रश्न का उत्तर देते हुए श्रमणों में गन्ध-हस्तियों के समान श्रेष्ठ गणधरों को एक लाख पदों द्वारा इस तीर्थ-ओगाली का वर्णन किया ।१२५५।

सोउं तित्थोगालिं, जिणवरवेसहस्स वद्धमाणस्स ।
पणमह सुगइगयाणं, सिद्धाणं निट्ठितट्ठाणं ।१२५६।
(श्रुत्वा तीर्थोद्गालिं, जिनवरवृषभस्य वर्द्धमानस्य ।
प्रणमत सुगतिगतान्, सिद्धान् निष्ठिता र्थान् ।)

जिनेश्वरों में वृषभ तुल्य वर्द्धमान द्वारा वर्णित तीर्थ प्रवाहों को सुनकर सुगति-मुक्ति में विराजमान सर्वकाम सिद्ध सिद्धों को प्रणाम करो ।१२५६।

भद्दं सव्व जगुज्जोयगस्स, भद्दं जिणस्स वीरस्स ।
भद्दं सुरासुर नमं सियस्स, भद्दं धुअरयस्य ।१२५७।
(भद्रं सर्व जगदुद्योत कस्य, भद्रं जिनस्य वीरस्य ।
भद्रं सुरासर नमस्यितस्य, भद्रं धुतरजसः ।)

केवल्यालोक से समग्र संसार को प्रकाशित करने वाले का भद्र-कल्याण हो, जिनेन्द्र वीर का कल्याण हो, देवासुरों द्वारा वन्दनीय का कल्याण हो कर्मरज को नष्ट कर देने वाले का कल्याण हो ।१२५७।

गुण गहण भवण सुतरयण भरित दंसण विसुद्ध रत्थागा ।
संघनगर ! भद्दं ते, अक्खंड चारित्र पागारा ।१२५८।
(गुण गहन भवन, श्रुतरत्न भरित दर्शन विशुद्ध रथ्याक !
संघनगर ! भद्रं ते, अखण्ड चारित्र प्राकारः ।)

अमित गुण रूपी भवनों से व्याप्त होने के कारण अति गहन ! आचारांगादि अनेक सुखद श्रुतरत्नों से परिपूर्ण ! मिथ्यात्व आदि कचरे से रहित विशुद्ध दर्शन रूपी रथ्याओं वाले ! और अखण्ड चारित्र रूपी प्राकार द्वारा सदा सुरक्षित ओ संघ-नगर ! तुम्हारा कल्याण हो ।१२५८।

जं उद्धितं सुयाओ, अहव मतीए य थोव दोसेण ।
तं च विरुद्ध नाउं, सोहियव्वं सुयधरेहिं ।१२५९।

(यदुद्धृतं श्रुतात्, अथवा मत्या च स्तोक दोषेण ।
तच्च विरुद्धं ज्ञात्वा, शोधितव्यं श्रुतधरैः ।)

मैंने जो कुछ श्रुत से उद्धृत किया है अथवा अपनी बुद्धि से कहा है, उसमें मेरी मति के दोष समूहों के कारण रहे हुए शास्त्र विरुद्ध कथन का भान होते ही श्रुतधर उसे शुद्ध कर लें ।१२५९।

तेतीसं गाहाउ दोन्नि सता उ सहस्स मेगं च ।
तित्थोगालीए संखा, एसा भणिया उ अंकेणं ।।
त्रयत्रिंशद् गाथास्तु, द्विशते तु सहस्रमेकं च ।
तीर्थोद्गालिके संख्या एषा भणिता तु अंकेन ।।

तीर्थ-ओगाली (तीर्थ के प्रवाह) में १२३३ गाथाएँ है। यह संख्या अंकों में बताई गई है।

।। गाथा १२५९ ग्रंथाग्रं श्लोक १६६५ छ ।।
इति श्री तीर्थोद्गालिक प्रकीर्णक नामा ग्रन्थो समाप्त ।।

।। जैन जयतु शासनं, ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।

जम्मणमरणजलोघं दुक्खयरकिलेससोगवीचीयं ।
इय संसार-समुद्दं तरंति चदुरंगणावाए ।।

यह संसार समुद्र जन्म-मरण रूप जल प्रवाह वाला, दुःख, क्लेश और शोक रूप तरंगों वाला है । इसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप रूप चतुरंग नाव से मुमुक्षुजन पार करते हैं ।